सर्वे भवन्तु सुखिनः

मानव अधिकार

नई दिशाएं

अंक 20, वर्ष 2023

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

सर्वे भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

मानव अधिकार : नई दिशाएं

अंक-20, वर्ष-2023

प्रकाशक : **राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग**
मानव अधिकार भवन,
ब्लॉक-सी, जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स,
आई.एन.ए., नई दिल्ली-110023 भारत

© 2023 राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

मूल्य : ₹50/-

यूजीसी-केयर की गुणवत्ता पत्रिका की संदर्भ सूची में शामिल

ISSN : 0973-7588

अस्वीकरण : प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, सलाहकार मण्डल या संपादक मण्डल का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

प्राप्ति स्थान : **राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग**
मानव अधिकार भवन,
ब्लॉक-सी, जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स,
आई.एन.ए., नई दिल्ली-110023
वेबसाईट: www.nhrc.nic.in
ई-मेल: covdnhrc@nic.in

सर्वे भवन्तु सुखिनः

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

अध्यक्ष

न्यायमूर्ति श्री अरुण मिश्रा

सदस्य

डॉ. ज्ञानेश्वर मनोहर मुले
श्री राजीव जैन

महासचिव

श्री भरत लाल

रजिस्ट्रार (विधि)

श्री सुरजीत डे

संयुक्त सचिव

श्रीमती अनिता सिन्हा

संयुक्त सचिव

श्री देवेन्द्र कुमार निम

मानव अधिकारः नई दिशाएं

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

अंक–20 **वर्ष–2023**

सलाहकार मंडल

डॉ. ज्ञानेश्वर मनोहर मुले

माननीय सदस्य, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

श्री भरत लाल महासचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग	**श्री ओम निश्चल** वरिष्ठ साहित्यकार एवं लेखक
श्री देवेन्द्र कुमार निम संयुक्त सचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग	**प्रो. मोहन** डीन, कला संकाय, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
ले. कर्नल वीरेन्द्र सिंह निदेशक (प्रशासन) राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग	**श्रीमती सर्वमित्रा सुरजन** स्वतंत्र पत्रकार एवं लेखिका
श्रीमती अंजलि सकलानी सहायक निदेशक (हिंदी) राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग	

प्रधान संपादक

श्री देवेन्द्र कुमार निम

सह–संपादक

श्रीमती अंजलि सकलानी

मानव अधिकारः नई दिशाएं

अंक-20 वर्ष-2023

अनुक्रम

पुरोवाक्

न्यायमूर्ति श्री अरुण मिश्रा

अध्यक्ष, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

दो शब्द

डॉ. ज्ञानेश्वर मनोहर मुले

सदस्य, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

आमुख

श्री भरत लाल

महासचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

संपादकीय

श्री देवेन्द्र कुमार निम

संयुक्त सचिव, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

खंड - I
आलेख

क्र. सं.	लेखक का नाम	शीर्षक	पृष्ठ
1.	शंकर सिंह	उत्तराखण्ड में राज्य जल नीति परम्परागत जल संचयन प्रणाली व उपेक्षित प्राकृतिक जलस्रोत	3
2.	अभय राज सिंह	उत्तर-पूर्व भारत में उग्रवाद और मानवाधिकार	12
3.	संदीप भट्ट	युद्धकाल में मानवाधिकारों का संकट और मीडिया	18
4.	विनय कुमार शर्मा	राष्ट्रीय एकता में भाषा की भूमिका	25
5.	विकास यादव	स्वच्छ पेयजल : मानवाधिकार का सवाल	33
6.	राहुल तिवारी	जैविक हथियार विपदा: आधारभूत मानव अधिकारों के संरक्षण की आवश्यकता	41
7.	सर्वेश कुमार	मानवाधिकारों के संरक्षण में राजस्थान के संत समाज की भूमिका	51
8.	जितेन्द्र कुमार सरोज	मानव अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय आयाम और भारत में लैंगिक रुढ़िवाद: महिलाओं के विशेष सन्दर्भ में एक अध्ययन	59
9.	भवेश सक्सेना 'दिलशाद'	यातना गृह बन रही दुनिया और मनुष्य की अस्मिता के प्रश्न	69
10.	रमेश कुमार एवं अनु	अफगानिस्तान में तालिबान शासन के अंतर्गत महिलाओं के अधिकार: एक विश्लेषण	77
11.	सुप्रिया पाठक	युद्ध, संघर्ष एवं स्त्री मानवाधिकार के प्रश्न : वैश्विक नारावादी दृष्टिकोण	85
12.	वरुण कुमार	स्वच्छता का मानवाधिकार: जल संकट, ग्रामीण समुदाय एवं जेंडर के प्रश्न	93
13.	रजनी गोसाई	मानव अधिकारों में संत काव्य की भूमिका	102
14.	भुवन्या रंजन	स्त्री शिक्षा की राह में कट्टरता के रोड़े	106
15.	सुनील कुमार सुधांशु	मानवता की रक्षा का सन्देश : संत कबीर का साहित्य	110

16.	ज्ञानवती धाकड़	मानव अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय आयाम	116
17.	सुदर्शन वर्मा	मानव अधिकारों के संरक्षण में संत रविदास की काव्य की भूमिका : मानव अधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा के उद्देश्य के परिपेक्ष्य में एक अवलोकन	123
18.	उर्मिला	संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार तथा अपराध से बच्चों का संरक्षण और बाल अधिकार एक अवलोकन	134
19.	कन्हैया त्रिपाठी	यूएन-यूडीएचआर के अमृत पर्व पर मनुष्यता को मानवाधिकारों का प्रदेय	144
20.	सुमिता मुद्गल	मानवाधिकारों की परिप्रेक्ष्य में किशोर न्याय अधिनियम: एक संक्षिप्त विवेचना	152
21.	पिंकी तुलसीदास चंदवानी	अंतरराष्ट्रीय समझौते, युद्ध और मानवाधिकार	165
22.	शरद कुमार यादव	जल-संरक्षण की देशज परम्पराएं : समकालीन जल-संकट, चुनौतियाँ और संभावनाएं	172
23.	अपर्णा तिवारी	राष्ट्रीय एकता में भाषा की भूमिका	181
24.	वन्दना यादव	वैश्वीकरण के दौर में संस्कृत की भूमिका	188
25.	प्रदीप कुमार	जैविक हथियारों के प्रयोग से मानवाधिकारों का उल्लंघन: जीवन के अधिकार के विशेष सन्दर्भ में	197
26.	सुमन देवी शर्मा	राजस्थान के संत साहित्य में पर्यावरण संरक्षण संबंधी मानवाधिकार चिंतन	205
27.	अमित कुमार विश्वास	राष्ट्रीय एकता में हिंदी भाषा का अवदान	215
28.	ओम प्रकाश	राष्ट्रीय एकता में भाषा की भूमिका	222
29.	नरेश कुमार जितेंद्र कुमार	युद्धकाल में मानवाधिकारों की घोर मानवीय त्रासदी : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	229
30.	नीलमणि शर्मा	जल संरक्षण - समस्या एवं समाधान	237
31.	ओम निश्चल	बेघरी का आलम और दर-ब-दर मनुष्यता विस्थापितों के वृत्तांत	245

खंड - II **कविताएं**			
1.	रितु श्रीवास्तव	औरत और पानी	263
2.	प्रियंका पुरोहित	युद्ध और अशांति	265
3.	मणिबेन पटेल	नफरतों के सिपहसालार	267
4.	तजिन्दर एस. लूथरा	गहरी नींद	269
		मेरे जैसा ईश्वर	271
खंड - III **कहानियां**			
1.	लक्ष्मी अग्रवाल	बोझ नहीं बेटी	275
2.	नीलम चतुर्वेदी	बरामदे के लोग	282
3.	मुकुल अमलास	बंद अलमारी	293
खंड - IV **आयोग द्वारा पूर्वात्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार में पढ़े गए कुछ महत्वपूर्ण आलेख**			
1.	दामोदर खड्से	साहित्य में मानव अधिकार : विविध पहलु	303
2.	अरुण कुमार पाण्डेय	साहित्य में मानव अधिकार : विविध पहलु	313
3.	रविशंकर रवि	भाषाई मीडिया उठा रहे हैं आम जन की अवाज	321
4.	विजय कुमार भारती	समकालीन हिन्दी गजलों में मानव मूल्य के प्रश्न	324
खंड - V **समीक्षा**			
1.	डॉ. ओम निश्चल (समीक्षक)	पर्यावरण के पाठ	333
खंड - VI **साक्षात्कार, साक्षात्कारकर्ता - सर्वमित्रा सुरजन**			
1.	डॉ. राजेंद्र सिंह, अध्यक्ष, तरुण भारत संघ	बादल से निकली हर बूंद बचाएं, तभी जीवन बचेगा	347

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन
ब्लॉक-सी, जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स
आई.एन.ए., नई दिल्ली - 110023

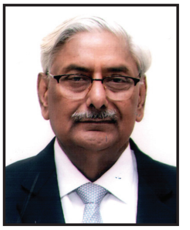

न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा
अध्यक्ष

पुरोवाक्

मानव सभ्यता की प्रगति के साथ-साथ विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी की सहायता से एक नई चैतन्यता प्रदान हुई है एवं इसके समानांतर कृत्रिम बुद्धि का प्रयोग भी प्रचलित हुआ है। साथ ही साथ मानव अधिकारों की सुरक्षा के संबंध में भी नई समस्याएं उत्पन्न हुई हैं।

मानव सभ्यता पर हिंसक विनाश का खतरा मंडरा रहा है। युद्ध एवं आंतकवाद के कारण मानव की सुरक्षा पर मंथन की आवश्यकता है। भारत की सांस्कृतिक परम्परा एवं सभ्यता के कारण मानव अधिकारों का संरक्षण अभिन्न भाग होने से, मानव अधिकार के संरक्षण में भारत ने अपनी एक अलग पहचान स्थापित की है। हमारी संस्कृति के मूल में मानव अधिकारों की अवधारणा है। भारत की संस्कृति ने कभी धर्म या अन्य कारकों के आधार पर दूसरों को अपने अधीन करने का प्रयास नहीं किया है। भारत वैश्विक स्तर पर निरंतर मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन का समर्थन करता रहा है।

भारत अहिंसा में विश्वास रखता है। भारत में प्राचीन काल से ही, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी अहिंसा के पक्षधर रहे हैं। हमारी स्वतंत्रता के आन्दोलन में अहिंसात्मक प्रवृति मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रेरणा का एक बड़ा स्रोत रही है। जीवन के अधिकार में वैयक्तिक स्वतंत्रता, समानता और सम्मान का अधिकार शामिल हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, कार्य, शिक्षा का अधिकार आदि तथा जिम्मेदारियों का निर्वहन भारतीय संविधान के अंतर्गत सम्मिलित है। सभी प्रकार की यातना से मुक्ति संविधान प्रदत्त अधिकार हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग तथा देश की निष्पक्ष अदालतें इन स्वतंत्रता के मूल्यों की रक्षा करती हैं।

मानव अधिकारों के व्यापक संरक्षण एवं संवर्धन हेतु संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा जारी मानव अधिकार घोषणा पत्र 75 वर्ष पूर्ण कर रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध में

मानव अधिकारों के उल्लंघन के कारण, पूर्व से प्रचलित मानवीय मूल्यों को संग्रहीत कर घोषणा पत्र में शामिल किया गया। भारत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन में अग्रणी देश रहा है जिससे भारतीय गणराज्य की मानव अधिकारों के प्रति प्रतिबद्धता परीलक्षित होती है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए सतत कार्यरत है। आयोग ने हाल ही में कई परामर्शियां जारी की, जिनमें बच्चों के प्रति इंटरनेट पर होने वाले यौन अपराधों को रोकना, ट्रांसजेंडर समुदाय, बंधुआ मजदूरों, ट्रक ड्राईवरों के हितार्थ, चिकित्सालयों के सुधार, आंखों का अंधापन रोकने हेतु, जेल में कैदियों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं को रोकने तथा सीवर एवं सेप्टिक टैंक की यांत्रिक सफाई के संबंध में दिशा-निर्देश शामिल हैं। पर्यावरण क्षरण कम करने की दिशा में भी आयोग निरंतर प्रयासरत है।

आयोग प्रशिक्षण कार्यक्रमों के आयोजन के साथ-साथ देशभर में विभिन्न संस्थानों के सहयोग से कई कार्यक्रम जैसे राष्ट्रीय सेमिनारों आदि एवं विभिन्न मानव अधिकारों के प्रकाशनों के माध्यम से मानव अधिकारों के संबंध में समाज में जागरूकता फैलाने हेतु निरंतर प्रयत्नशील है।

आयोग की **'मानव अधिकार: नई दिशाएं'** का नवीन अंक भी मानवीय गरिमा के संवर्धन का एक प्रयास है। मुझे विश्वास है कि यह अंक पाठकों के लिए रोचक और ज्ञानवर्धक सिद्ध होगा।

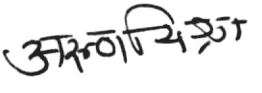

[न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा]

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन
ब्लॉक-सी, जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स
आई.एन.ए., नई दिल्ली - 110023

डॉ. ज्ञानेश्वर मनोहर मुले
सदस्य

दो शब्द

इंसान ने अपनी बुद्धि और क्षमता के बूते विकास का लंबा सफर तय किया है। अब तो इंसान ने चांद पर चहलकदमी के साथ चांद के अंधेरे हिस्से पर भी अपनी छाप छोड़ दी है। अंतरिक्ष की ऊंचाइयों को मापने का साहस इंसान कर रहा है। लेकिन इसके साथ यह देखना भी जरूरी है कि धरती पर हम मानवता की कैसी छाप छोड़ रहे हैं। अपनी अगली पीढ़ी के लिए हम कैसी दुनिया तैयार कर रहे हैं।

इस दुनिया में प्रकृति की रची सभी चीजें सहअस्तित्व में रहें, सबकी गरिमा बनी रहे, यह जिम्मेदारी मानव की है। इसके साथ ही मानव अधिकारों के संरक्षण की जिम्मेदारी भी हम इंसानों पर ही है। बिना किसी भेदभाव के इस दुनिया के हर इंसान को सम्मान के साथ जीने का अवसर मिले, इसके मद्देनजर संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसम्बर 1948 को मानव अधिकार की सार्वभौमिक घोषणा अंगीकार की। मनुष्य होने के नाते जो अधिकार मानव को सहज उपलब्ध हैं, वे मानव अधिकार हैं। किसी भी मानव के पूर्ण शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास के लिए मानव अधिकार आवश्यक हैं। मानव अधिकारों के बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न ही समाज के लिए उपयोगी कार्य कर सकता है।

भारत संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित की गई मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के पालन को सर्वोच्च प्राथमिकता देता है। 1993 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना इस हेतु की गई। हालांकि भारतीय परंपरा और संस्कृति तो सनातनकाल से मानवकल्याण की जो सीख देती रही है। यही कारण है कि इस धरती पर भारत हमेशा एक आदर्श देश के रूप में देखा जाता रहा है। हमारी शिक्षाओं को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आत्मसात किया गया है। अब मानव अधिकारों के लिए पूरे विश्व में जागरुकता फैल रही है। एक देश की घटनाओं से दूसरा देश अछूता नहीं रह रहा है। दुनिया में इस वक्त युद्ध, गृहयुद्ध, बीमारियां, जातीय व धार्मिक संघर्ष कई स्तरों पर चल रहे हैं। इन दारुण परिस्थितियों के बीच मानव अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय आयाम क्या हैं।

इसी केन्द्रीय विषय को ध्यान में रखकर **'मानव अधिकार : नई दिशाएं'** के नवीन अंक को तैयार किया गया है।

इस अंक को तैयार करते हुए एक बात की पुनः पुष्टि हुई कि मानव अधिकारों के साथ ही हम भावी मानव समाज का स्वप्न देख सकते हैं, जहां मनुष्य अपने मानवत्व की निरन्तर सिद्धि करता रह सके। मानव अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय आयाम, जल संरक्षण और जल के अधिकार, मानव अधिकारों की स्थापना में भाषा की भूमिका, बाल अधिकार, महिला अधिकार, श्रमिकों व हाशिए के समाज के लोगों के अधिकार किस तरह संरक्षित किए जा सकते हैं, ऐसे तमाम पहलुओं को इस अंक में समेटा गया है। साथ ही मानव अधिकार से जुड़ी कवितायें एवं कहानियों को भी प्रस्तुत किया गया है। कुछ रोचक साक्षात्कार भी हैं। मानव अधिकारों के प्रति रूचि रखने वाले बुद्धिजीवियों, लेखकों तथा अकादमिक क्षेत्र से जुड़े महानुभावों ने हमें जो रचनात्मक सहयोग प्रदान किया है, उसके लिए हम उनका हृदय से आभार व्यक्त करते हैं। हमें आपकी प्रतिक्रियाओं एवं सुझावों का इंतजार रहेगा ताकि आगामी अंक हम आपके समक्ष और बेहतर रूप में प्रस्तुत कर सकें।

[डॉ. ज्ञानेश्वर मनोहर मुले]

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन
ब्लॉक-सी, जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स
आई.एन.ए., नई दिल्ली - 110023

भरत लाल
महासचिव

आमुख

मानव पूरी प्रकृति में श्रेष्ठतम प्राणी कहलाता है, क्योंकि अपनी बुद्धि और वाणी के दम पर उसने ऐसी ऊंचाइयां हासिल की हैं, जो अन्य जीवों के लिए संभव नहीं हैं। लेकिन मानवता की श्रेष्ठता तभी तक है, जब तक वह अपने और दूसरों के अधिकारों का सम्मान और संरक्षण कर सके। वैसे तो प्रकृति में हर चीज नियम से बंधी है और इन्हीं नियमों के खिलाफ जाने पर प्रकृति कई बार अपनी तरह से न्याय भी कर देती है। लेकिन मानव का जीवन तभी सार्थक है, जब वह प्रकृति के नियमों और उसकी रची हरेक चीज का संरक्षण करें।

भारतीय संस्कृति में सनातन काल से ही हिंसा, आंतक एवं युद्ध के लिए कोई स्थांन नहीं रहा है। हमारे यहां न केवल मनुष्य अपितु समस्त प्राणियों के प्रति करुणा एवं दया का भाव रहा है। वैश्विक स्तर पर मानव अधिकारों को वैधानिक पहचान बहुत बाद में मिली है जबकि हमारे शास्त्र (जैसे कि वेद, पुराण, गीता आदि) पुरातन काल से ही मानव अधिकारों के पैरोकार रहे हैं। हमारी संस्कृति **सर्वे भवन्तु सुखिनः** की भावना से ओत-प्रोत है जो मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन की आधारशिला है तथा हमारा देश आज भी इसी परम्परा के पथ पर अग्रसर है।

मानव अधिकारों का संरक्षण जरूरी है, यह बात विश्व को दो-दो विश्वयुद्धों के बाद समझ आ चुकी हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने तो मानव अधिकारों का मसौदा तैयार किया है। भारत में 1993 में राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की स्थापना हुई। इन तीन दशकों में आयोग ने यह लगातार प्रयास किया कि भारत में लोगों को संविधान प्रदत्त अधिकारों के उपभोग की पूरी आजादी मिले, साथ ही उनके मानव अधिकारों की भी रक्षा हो। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने अपनी स्थापना के साथ ही देश में मानव अधिकारों के प्रति जागरुकता के प्रसार का कार्य भी किया। इस कड़ी में अनेक सेमिनार, कार्यशालाएं आदि नियमित आयोजित होते रहे हैं। और साथ ही मानव

अधिकारों से जुड़े ज्वलंत मुद्दों पर आयोग हर वर्ष नई दिशाएं नाम की पत्रिका भी प्रकाशित करता है।

इस वर्ष **'मानव अधिकार : नई दिशाएं'** मानव अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय आयाम पर मुख्य रूप से केन्द्रित है। साथ ही मानव अधिकारों और भाषा के परस्पर संबंधों पर भी सारगर्भित आलेख हैं। किसी भी अधिकार या कानून का पूरा लाभ तभी लिया जा सकता है, जब उस बारे में पूरी जानकारी हो। आयोग ने कई मौकों पर यह महसूस किया कि आम जन के बीच कानून की व्याख्या करने के लिए उस शब्दावली की आवश्यकता है, जिसमें समाज संवाद करता है। भारत बहुविध, बहुभाषी देश है, और मानव अधिकारों का ज्ञान हमारे पुरातन साहित्य में भी दिया गया है। इन्हीं विषयों पर इस बार की पत्रिका में प्रकाश डाला गया है। इसके अलावा कविताएं, कहानियां, साक्षात्कार और सेमिनारों में विद्वानों के द्वारा प्रस्तुत लेख भी पाठकों के लिए प्रस्तुत हैं। आशा है मानव अधिकार आयोग का यह प्रयास आपके लिए लाभदायक होगा।

[भरत लाल]

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन
ब्लॉक-सी, जी.पी.ओ. कॉम्प्लेक्स
आई.एन.ए., नई दिल्ली - 110023

देवेन्द्र कुमार निम
संयुक्त सचिव

संपादकीय

इस पृथ्वी पर सदियों से मनुष्य का अस्तित्व है जहां वह जीवन के बुनियादी अधिकारों के साथ रहता आया है। सुख-दुख, राग-विराग सब जीवन के अनिवार्य पहलु हैं। शास्त्रों में अनेकविध मनुष्य को सीधी सच्ची राहें बतलाई गयी हैं जिन पर चल कर वह मानव जीवन को सार्थक कर सकता है। लेकिन सदियों के इस रहन सहन के बावजदू देश काल और परिस्थितियों के कारण विभिन्न जातियों, संप्रदायों में संघर्ष होता रहा है। एक तरफ हम सह अस्तित्व का उच्चादर्श अपने सम्मुख रखते रहे हैं दूसरी तरफ जाति, नस्ल और एक दूसरे के विश्वासों और धर्म के प्रति आग भी उगलते हैं तथा उन्हें आहत करते हैं। साम्राज्यवादी शक्तियां पड़ोसी देशों की सीमाओं का अतिक्रमण करने की मुहिम में शामिल रहती हैं। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध मनुष्य के विरुद्ध हिंसा का प्रमाण हैं। वैश्विक स्तर पर इनका अत्यंत प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

आज भी विभिन्न देशों की सीमाओं पर ऐसे हालात देखने को मिलते हैं जिनके कारण पूरे विश्व में विस्थापन भी तेजी से हो रहा है। विस्थापन और निर्वासन के शिकार लोगों के हालात को गौर से देखें तो पाएंगे कि हमारे आधुनिक समय में भी हम एक दूसरे के विचारों को सह नहीं पा रहे हैं। विभिन्न समयों पर अनेक कवियों, लेखकों को विस्थापन का शिकार होकर दूसरे देशों में शरण लेनी पड़ी हैं और उनमें से कइयों की उनके निर्भीक विचारों के लिए हत्या भी की गयी है। ऐसी घटनाएं मानव अधिकारों के प्रति असहिष्णुता एवं एक दूसरे के प्रति असहनशीलता को दर्शाती हैं।

'मानव अधिकार: नई दिशाएं' का अंक हर बार मानव अधिकार के नए नए पहलुओं के साथ सामने आता रहा है। इस बार इसका विषय है **: मानव अधिकार : अंतरराष्ट्रीय आयाम**। मानव अधिकार के हनन के अनेक पहलुओं, व्यापक स्तर पर

पानी की समस्या, पेयजल की अनुपलब्धता, युद्ध और हिंसा, जलवायु एवं पर्यावरण परिवर्तन एवं उसके प्रतिकूल प्रभाव, भाषा के स्तर पर विकास की संभावनाओं तथा जैविक हथियारों की हिंसक होड़ के कारण मनुष्य जाति पर बढ़ते खतरे को पहचानने का प्रयास इस अंक में किया गया है। इसके साथ ही मानव अधिकार के अन्य सूक्ष्म पहलुओं पर भी पर्याप्त रोशनी डाली गयी है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग राजभाषा नीति के अनुपालन में एक अग्रणी संस्थान रहा है। हिंदी में मानव अधिकार के मुद्दे पर निकलने वाली यह एक मात्र ऐसी पत्रिका है जो मानव अधिकार विषयों पर अनुसंधान एवं चिंतनपरक सामग्री मुहैया कराती है। यह अंक भी इन विशिष्टताओं से लैस है। हाल के वर्षों में इसके अंक देश दुनिया में होने वाले मानव अधिकार हनन पर चिंतन विवेचन एवं उसके अनेक कारकों की पहचान एवं विश्लेषण के लिए जाने जाते रहे हैं। इसमें देश भर की प्रज्ञावान मनीषा की सहभागिता है तथा विश्वविद्यालयों से लेकर अनेक क्षेत्रों में कार्यरत विद्वानों एवं शोध लेखकों की इसमें सहभागिता है। यह अंक भी मानव अधिकार विषयक अंतरराष्ट्रीय आयामों पर विशद चर्चा के लिए जाना जाएगा। इस अंक में कुछ कहानियां एवं कविताएं भी दी गयी हैं जो मानव जीवन की गतिविधियों में गहराई में जाकर जीवन के कुछ अनछुए प्रसंगों के साथ यात्रा–सी करती हैं।

आशा है पिछले अंकों की तरह इस अंक का भी पाठक स्वागत करेंगे तथा इसकी सामग्री शोध संदर्भ के रूप में ग्रहण की जाएगी।

[देवेन्द्र कुमार निम]

खंड-I

आलेख

उत्तराखण्ड में राज्य जल नीति, परम्परागत जल संचयन प्रणाली व उपेक्षित प्राकृतिक जलस्रोत

–डॉ. शंकर सिंह, शैक्षिक परामर्शदाता
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली

प्रस्तावना

जल अत्यन्त महत्वपूर्ण और अपर्याप्त प्राकृतिक संसाधनों में से एक है जो जीवन, जीवकोपार्जन, कृषि, चिरस्थायी सामाजिक विकास के साथ–साथ पारिस्थितिकीय एवं पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने के लिये अति आवश्यक है। राज्य भरपूर जल संसाधन से सम्पन्न है, जहां इसकी उपलब्धता प्रचुर है, परन्तु वहीं दूसरी ओर जल के विविध उपयोगों यथा असमान वितरण, पेय और सिंचाई विद्युत औद्योगिक आदि की मांग में वृद्धि होने के कारण इसकी अपर्याप्तता प्रकट हो रही है, जो जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ और अधिक बढ़ेगी।

इसके अतिरिक्त राज्य को एक या सभी क्षेत्रों में बारम्बार बाढ़, भूस्खलन, मृदाक्षरण बादल फटने और सूखे की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त जलवायु परिवर्तन के प्रभाव असंगत वितरण, विभिन्न जल उपभोक्ता समूह में विवादों, जल संसाधन के नियोजन प्रबंधन एवं उपयोग एकीकृत परिदृश्य में अभाव होने के कारण उपयोगी जल की उपलब्धता में उत्तरोत्तर कमी होती जायेगी। राज्य जल नीति का उद्देश्य राज्य में वर्तमान स्थिति का परिज्ञान लेना तथा राज्य के पारिस्थितिकीय एवं विकास अभिज्ञता पर आधारित जल संसाधन के नियोजन विकास एवं प्रबंधन हेतु ढांचा प्रस्तावित करना है।

जल की उपलब्धता तथा वर्तमान परिदृश्य

राज्य के जनमानस व पशुधन कृषि तथा उद्योग हेतु आवश्यक कुल जल की जरूरत वार्षिक वर्षा.जल के मात्र 3 प्रतिशत ही आंकलित की गयी है। यद्यपि वार्षिक अवक्षेपण स्थान और समय के सापेक्ष अत्यधिक ही असमान है और मुख्य रूप से वर्ष में केवल 100 दिन तक की सीमित होता है जिसका अधिकांश भाग तीव्र ढलानों से बह जाता है। राज्य के जल संसाधनों के आवंटन में पेयजल एवं घरेलू उपयोग को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जायेगी। राज्य को शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के समस्त आबादी को पर्याप्त शुद्ध पेयजल एवं सफाई सुविधाएं; जनधन व पशुधन दोनों के लिये मुहैया कराना है।

पारिस्थितिकीय और स्वास्थ्य

जल की मात्रा इसका प्रदूषण से बचाव, रक्षा और जल संबंधी स्वास्थ्य खतरों का भी संज्ञान लिया जाना चाहिये। राज्य के जल संसाधन; सतही और भूमिगत जल की उपलब्धता और वर्तमान उपयोग की स्थिति व वर्ष 2040 तक की आवश्यकताओं की पूर्ति के दृष्टिकोण से इस सीमित संसाधन का न्यायसंगत एवं इष्टतम दोहन उपयोग संरक्षण तथा प्रबंधन अत्यावश्यक है।

राज्य के अन्तर्गत जल निकायों में पाये जाने वाले जलीय जैव विविधता के सुरक्षा हेतु आवश्यक कदम उठाए जायेंगे। यथोचित विधिक ढांचे एवं उपनियमों के द्वारा झीलों व नदियों के कुछ हिस्सों का किसी भी प्रकार के दोहन को संरक्षित करने की आवश्यकता है। राज्य आर्द्रभूमि प्राधिकरण को इस अधिनियम को सुनिश्चित करने के लिए प्राधिकृत किया जाएगा।

जल नीति की दूरदर्शिता

जल का अधिकार जल उपयोग एवं आवंटन समानता तथा सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति को उनके जीवन की गुणवत्ता में उत्तरोत्तर सुधार के साथ-साथ उत्तम स्वास्थ्य और स्वच्छता के दृष्टिगत सुरक्षित शुद्ध पेयजल एवं स्वच्छता प्राप्त करने का अधिकार है।

राज्य के प्राकृतिक जल संसाधनों को इस प्रकार संरक्षित व व्यवस्थापित करना चाहिए कि चिरस्थायी कृषि संवृद्धि जल विद्युत क्षमता का अनुकूलतम दोहन और औद्योगिक विकास आदि के प्रभावी विकासात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु उचित

गुणवत्तायुक्त जल आवश्यक मात्रा में उपलब्ध हो। जल संसाधन के प्रबंधन एवं उपयोग में सभी सरकारी स्तरों की भागीदारी साधनों के संरक्षण, विकास एवं प्रबंधन में पंचायतीराज संस्थाओं की सक्रिय भागीदारी एवं भूमिका होगी। राज्य सरकार के क्षेत्रीय संस्थान द्वारा पंचायती राज संस्थाओं को भी जल संरक्षण और पुनर्भरण उपायों, घरेलू वाणिज्यिक एवं उद्योगों की लगातार बदलती मांगों को सम्मिलित करते हुए मानवीय कचरा आधारित शुद्ध पेय जलापूर्ति प्रणाली के नियोजन परिकल्पन निर्माण संचालन एवं अनुरक्षण में मदद करेगी।

प्रणाली के नियोजन तथा संचालन में राज्य की जल आवंटन प्राथमिकतायें, पेयजल, स्वच्छता एवं पशुधन आवश्यकताओं सिंचाई पारिस्थितिकी वनीकरण, जैव विविधता, पर्यावरणीय पर्यटन जल विद्युत कृषि आधारित उद्योगों, गैरकृषि आधारित उद्योगों, नौपरिवहन व अन्य उपयोगों हेतु विनिर्दिष्ट होगा।

सरकार को अपने विशेषाधिकार का प्रयोग कर परंपरागत जल संरचनाओं तथा जल निकायों जैसे तालाबों के पुनरोद्धार तथा इसके अतिरिक्त अनुकूल कृषि-कार्यनीतियों एवं उन्नत जल अनुप्रयोग तरीकों; जैसे कि स्प्रिंकलर व ड्रिप सिंचाई एवं भूमि समतलीकरण आदि के साथ-साथ जल-भंडारण क्षमता में वृद्धि करने के लिये प्रोत्साहित करना होगा। कृषि युक्ति विकास मृदा क्षरण न्यूनीकरण और मृदा उर्वरता सुधार हेतु वैज्ञानिक निविष्टयों पर आधारित जलप्रबंधन में हितधारकों को बढ़ावा दिया जाएगा।

नीति

समस्त जल संसाधनों को राज्य द्वारा सार्वजनिक न्याय सिद्धांत के तहत राज्य को मुख्य धरोहरी के तौर पर आम जन समुदाय संसाधन के रूप में माना जायेगा। मानवीय सामाजिक, आर्थिक और पारिस्थितिकी जरूरत को ध्यान में रखते हुए जल संसाधनों का नियोजन विकास एवं प्रबंधन स्थानीय, क्षेत्रीय, राज्य तथा राष्ट्रीय संदर्भ में स्वस्थ पर्यावरणीय व्यवस्था पर आधारित सर्वनिष्ठ समेकित संदर्श द्वारा अधिनियंत्रित किया जाएगा।

राज्य के समस्त जल संसाधनों को मानचित्रित राजस्व अभिलेख के रूप में सरकारी जल संसाधन निर्देशिका में सूचीबद्ध तथा उपयोगी संसाधनों की कोटि में हर मुमकिन हद तक लाया जायेगा। राज्य के जल संसाधनों के नियोजन एवं विकास को सुनिश्चित करने हेतु विभिन्न जल प्रक्षेत्रों में झरना व नदी नालों के अन्वेषीकरण जल

विज्ञानी प्रमात्रण के उद्देश्य से उनके प्रवाह व गुणवत्ता का अनुश्रवण इन संसाधनों की स्थिति विभिन्न उपयोगों एवं दीर्घकालिक प्रचलन हेतु उनके सामयिक व्यवहार अभाव तथा पेय योग्यता अनुकूलता के आधार पर विभाजित किया जाएगा। जल का स्वामित्व किसी व्यक्ति में नहीं बल्कि राज्य में निहित है। सामाजिक न्याय के सिद्धांत के आधार पर राज्य न्यायसंगत व कुशल वितरण सुनिश्चित करने हेतु जल आवंटित करने का अधिकार रखता है। सूखा, बाढ़ एवं अन्य प्राकृतिक एवं भूजल-संभूर के प्रदूषण जैसे मानव निर्मित आपदाओं, जो जन स्वास्थ्य एवं पारिस्थितिक अखंडता को आहत करता हो, के दौरान राज्य समुदाय/हितधारकों की सक्रिय भागीदारी के साथ इसके उपयोग को बदल सकता है।

पेयजल की आपूर्ति हेतु सरकार द्वारा अधिकृत संस्था को विश्व स्वास्थ्य संगठन के मानकों के अनुसार जन-सामान्य को स्वच्छ एवं सुरक्षित गुणवत्तायुक्त पेयजल की आपूर्ति सुनिश्चित करने हेतु उत्तरदायी बनाया जाएगा तथा अन्यथा की स्थिति में सेवा प्रदाता संस्था पर दण्डात्मक उपायों यथा अर्थदण्ड आरोपित किया जा सकता है। पुनर्भरण योग्य उथले जलीयकों के संरक्षण हेतु राज्य सार्वजनिक भागीदारों के साथ मिलकर अभिज्ञात दुष्प्राप्य क्षेत्रों में जल-निष्कर्षण का विनियमन करेगा।

शहरों एवं गाँवों के समीप उपलब्ध मुख्य जलस्त्रोतों के जल को गुरुत्व अथवा लघु योजनाओं के माध्यम से जलापूर्ति हेतु उपयोग में लाया जायेगा। जल की आवर्ती मौसमी कमी से जूझ रहे प्रत्येक क्षेत्र के लिये वर्षा जल, सतही जल एवं भूजल के संयुक्त उपयोग को जलमांग पूर्ति के वैकल्पिक तरीकों के तौर पर बल देते हुए विशिष्ट सूखा निगरानी एवं आकस्मिक योजनाएं तैयार करनी होगी। राज्य गंभीर सूखे के समय कमी वाले क्षेत्रों में जल आवंटित करने के अधिकार स्थानीय निकायों को प्रदान कर सकता है तथा ये निकाय जल की व्यवस्था की निगरानी एवं विशिष्ट परिकल्पित तन्त्रावली से नियमों को लागू करेगा।

सभी जल संसाधन विकास कार्यक्रमों में घरेलू जल के प्रयोक्ता एवं प्रबंधक के रूप में महिलाओं की केन्द्रीय भूमिका निर्धारित की जाएगी। जल संसाधन कार्यक्रमों के नियोजन, विकास एवं प्रबंधन योजना तैयार करने में महिलाओं को सहभागी बनाया जाएगा। राज्य के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में स्थित अधिकांश सतही जलस्रोत प्राकृतिक आपदाओं तथा अत्यधिक वर्षा से बाढ़ का खतरा एवं अचानक बादल फटने की घटना आदि के प्रति अतिसंवेदनशील है, इसलिये पेयजल आपूर्ति एवं मलजल-निकास तन्त्र अवसंरचनाओं की सुरक्षा हेतु वर्षाजल के प्रबंधन व उसकी तीव्रता को कम करने

के लिये पर्याप्त बाढ़ सुरक्षा, संशोधन-गुंजाइश तथा अल्पीकरण उपायों का प्राविधान करना होगा।

भू-जल

परियोजना के नियोजन स्तर से ही झरना-जल, सतही जल एवं भूजल संसाधनों के समेकित एवं समन्वित विकास तथा उनके संयोजित उपयोग संकल्पित किए जाएंगे, जो परियोजना क्रियान्वयन का एक अभिन्न घटक होगा। अतएव, झरना व भूमिगत जलों तथा झरना व नदी के जलों के मध्य कड़ी को जानने की आवश्यकता है। सामाजिक सहभागिता के साथ विस्तृत जल-स्त्रोतागम प्रबंधन पद्धति के माध्यम से झरना-जल के विकास, प्रबोधन एवं प्रबंधन हेतु एक सहभागी भूजल प्रबंधन विकसित किया जायेगा।

उत्तराखण्ड में परम्परागत जल संचयन प्रणाली व उपेक्षित प्राकृतिक जलस्रोत

हिमालयी क्षेत्र के गांवों का अध्ययन करने पर इस बात की जानकारी मिलती है कि गांव बसने की प्रक्रिया में आवासीय भवन सर्वप्रथम इन्हीं जलस्रोतों के आसपास विकसित हुए। प्राकृतिक जलस्रोत उत्तराखण्ड में नौला तथा धारा अथवा मंगरा नाम से जाने जाते हैं। एक अनुमान के आधार पर समूचे भारतीय हिमालय क्षेत्र के साठ हजार गांवों में तकरीबन पांच लाख से अधिक जलस्रोत हैं। लगभग पांच करोड़ की ग्रामीण जनसंख्या का साठ प्रतिशत हिस्सा इन जलस्रोतों का उपयोग पेयजल के लिए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तौर पर करता है। उत्तराखंड में इन नौलों धारों का ऐतिहासिक व सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्व है। यहां के कई नौले अत्यंत प्राचीन हैं।

इतिहासविदों के अनुसार उत्तराखंड के कुमांऊ अंचल में स्थित अधिकांश नौलों-धारों का निर्माण मध्यकाल से अठारहवीं सदी के दौरान हुआ था। चम्पावत के समीप एक हथिया नौला, बालेश्वर का नौला, गणनाथ का उदिया नौला, पाटिया का स्यूनराकोट नौला तथा गंगोलीहाट का जाह्नवी नौला सहित कई अन्य नौले अपनी स्थाप्त्य कला के लिए आज भी प्रसिद्ध हैं।

कहा जाता है कि कभी अल्मोड़ा नगर में एक समय 300 से अधिक नौले थे, जिनका उपयोग नगरवासियों द्वारा शुद्ध पेयजल के लिए किया जाता था। यहां के आसपास के कई गांवों अथवा मुहल्लों का नामकरण भी नौलों धारों के नाम

पर हुआ है, जैसे- पनुवानौला, चम्पानौला, तामानौली, रानीधारा, धारानौला आदि। उत्तराखंड में विवाह और अन्य विशेष अवसरों पर नौलों धारों में जल पूजन की भी समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा दिखायी देती है जो एक तरह से मानव जीवन में जल के महत्व को इंगित करती है।

नौला

वस्तुत: नौला ऐसे स्रोत पर बना होता है, जहां पानी जमीन से रिस-रिस कर पहुंचता है। नौले की संरचना एक प्रकार से लघु बावड़ी की तरह ही होती है। नौले को तीन ओर से पत्थरों की दीवार से बंद किया जाता है जिसमें ऊपर से पाथर (स्लेट) की छत पड़ी होती है। अन्दर जिस स्थान में जल एकत्रित होता है उसका आकार वर्गाकार वेदी के ठीक उलट होता है, जो ऊपर की ओर चौड़ा रहता है तथा नीचे की ओर क्रमश: धीरे-धीरे संकरा होता जाता है। कुछ जगह पर नौलों का एक और रूप भी मिलता है, जिसे कुमांउनी बोली में चुपटौल कहते हैं। चुपटौल की बनावट नौलों की तरह नहीं होती उसकी उपस्थिति अनगढ़ स्वरुप में मिलती है। स्रोत के पास गड्ढा करके सपाट पत्थरो की बंध बनाकर जल को रोक दिया जाता है और इसमें छत भी नहीं होती।

नौलों के सन्दर्भ में मुख्य बात यह होती है कि इसका स्रोत बहुत संवेदनशील होता है। अगर अकुशल व्यक्ति किसी तरह इसके बनावट और मूल तकनीक में जरा भी छेड़छाड़ करता है तो नौले में पानी का रिसाव होना बंद हो जाता है। यही नहीं, भू-स्खलनव भू-धंसाव होने तथा भूकम्प आने पर भी नौले में पानी का प्रवाह कम हो जाता है। कभी-कभी यह परिणिति नौलों के सूख जाने तक पहुंच जाती है। नौले की बनावट में इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि इसमें अतिरिक्त पानी जमा न हो सके, इसके लिए जल निकास की नाली बनी होती है, ताकि निश्चित स्तर तक पहुंचने के बाद शेष पानी नौले से आसानी पूर्वक बाहर आ सके। नौले के गर्भगृह में देवी देवताओं विशेषकर विष्णु की मूर्ति रखी रहती है।

धारा अथवा मंगरा

धारे अथवा मंगरे उत्तराखण्ड के सर्वाधिक प्रचलित पारम्परिक पेयजल के साधनों में एक हैं। यह जमीन की सतह से थोड़ा ऊंचाई पर बने होते हैं। पहाड़ का भूमिगत जल जब सोत के रुप में फूटकर बाहर निकलता है तो उसे यहां के निवासी

पत्थर अथवा लकड़ी का पतनाला बनाकर उस जल को धार का रुप प्रदान कर देते हैं ताकि उसके नीचे जलपात्र रखकर पानी आसानी से भरा जा सके।

प्राचीन धारों के निकास द्वार मकर, कामधेनु अथवा सिंह की मुखाकृति से अलंकृत रहते हैं। बरसात के दिनों में भूमिगत जल स्तर बढ़ जाने से कुछ धारे अल्प अवधि तक आबाद रहते हैं जिनमें जलधारा के हेतु पत्ते लगा दिये जाते हैं। बनावट के आधार पर उत्तराखण्ड में स्थानीय स्तर पर कई तरह के धारे मिलते हैं यथा- सिरपत्या धारा, मुणपत्या धारा व पतबिड़िया धारा आदि, लेकिन आज इनकी स्थिति अत्यंत चिन्ताजनक है।

इस क्षेत्र में स्थान-स्थान पर स्थानीय समाज की अपनी जल संचयन प्रणाली सांस्कृतिक दृष्टि से समूची हिमालयी परम्परा को समृद्धता प्रदान करती थी। पूर्व में यहां के बावड़ी, व नौलों-धारों की देखरेख उनकी सफाई व्यवस्था व जीर्णोद्धार की जिम्मेदारी में गाँव समुदाय की सामूहिक सहभागिता का भाव होता था। लोग बढ़-चढ़ इसके रखरखाव, साफ-सफाई में श्रमदान कर अपनी भागीदारी निभाते थे। परन्तु आज पहाड़ के गांवों में बढ़ते पलायन तथा कस्बों व नगरों में बढ़ती जनसंख्या के फलस्वरूप इस तरह के परंपरागत साधनों पर संकट आ रहा है। इसके अलावा ग्लोबल वार्मिंग, पर्यावरण असन्तुलन, प्रत्यक्ष जनभागीदारी के अभाव तथा सरकारी पाइप लाइन, हैंडपम्प, व नलकूपों के जरिये पेयजल आपूर्ति होने के कारण इस तरह की परम्परागत जल संचयन प्रणाली व प्राकृतिक जलस्रोत उपेक्षित और बदहाल स्थिति में पहुंच गये हैं। पर्यावरणीय व सांस्कृतिक धरोहर की दृष्टि से इन नौलों व धारों का खत्म होना हम सब के लिए एक बहुत बड़ा सवाल है।

आवश्यकता इस बात की है कि इस जल संचयन परम्परा को पुनर्जीवित करने हेतु गांव समाज की पहल पर चौड़ी पत्ती के पौधों का रोपण व चाल-खाल निर्माण को प्राथमिकता दी जाय। साथ ही, सरकारी स्तर पर समुचित नीति निर्धारण के साथ समाजोन्मुखी विकास को केन्द्र में रखकर जल-संरक्षण की ऐसी दीर्घकालिक योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाए, जिसमें ग्रामीण व स्थानीय आम लोगों की प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित हो। इस तरह पर्यावरण का सतत विकास तो होगा ही, साथ ही सांस्कृतिक विरासत के तौर पर हिमालय की यह पुरातन परम्परा पुनः समृद्धता की ओर कदम बढ़ा सकेगी।

मीलों पानी ढोने वाली माएं खो देती हैं अपनी सेहत और बच्चे

पहली बार पानी ढोने वाली महिलाओं के स्वास्थ्य प्रभाव को लेकर एक अंतरराष्ट्रीय शोध किया गया है। इसके परिणाम चिंताजनक हैं। आपने अभी तक यह तो सुना या देखा ही होगा कि देश में कई ऐसे इलाके हैं जहां पानी की जरूरत के लिए महिलाओं या लड़कियों को रोजाना दूर-दराज इलाकों से पानी ढोकर लाना पड़ता है। पनिहारन और पनघट की कहानियों में हम इसे सामान्य दैनिक गतिविधि समझ लेते हैं। पानी भरने और ढोने के इस रोजमर्रा के काम में एक भयानक पीड़ा भी छिपी है। पहली बार यूनिवर्सिटी ऑफ ईस्ट एंजीला ने एक शोध प्रकाशित किया है। इस शोध के मुताबिक पानी लाने का काम करने वाली महिलाओं के स्वास्थ्य पर न सिर्फ खराब प्रभाव पड़ता है बल्कि यह काम उनके बच्चों की मृत्यु का कारण भी बन जाता है।

शोध के मुताबिक पानी इकट्ठा करने वाले वयस्कों के बच्चों की मृत्यु का खतरा तो सबसे ज्यादा होता है वहीं, बच्चे यदि खुद पानी एकत्र करने के काम में लगे हैं तो उनकी डायरिया जनित मौत हो सकती है। इसके अलावा घर का कोई भी सदस्य यदि पानी भरने के काम में लगा है तो यह संभावना बेहद कम हो जाती है कि प्रसूता स्वास्थ्य सुविधाओं की देखभाल में बच्चे को जन्म देगी। कोई महिला या लड़की यदि पानी भरने या एकत्र करने के काम में लगी है तो न सिर्फ उसके प्रसव पूर्व देखभाल में कमी हो जाती है बल्कि उनके पांच वर्ष से छोटे बच्चों को अकेले ही कई घंटे रहना पड़ता है। ऐसे में बच्चों के साथ दुर्घटना या किसी अनहोनी की आशंका कई गुना बढ़ जाती है।

इस शोध के लिए 41 देशों के 27 लाख लोगों को शामिल किया गया। पहली बार पानी ढोने और स्वच्छ जल की पहुंच, स्वच्छता और माताओं व बच्चों की सेहत के बीच का संबंध जोड़ा गया है। इस संबंध की जांच के लिए यूनिसेफ के संकेतकों और आंकड़ों को भी इस्तेमाल किया गया है। यूईए के स्कूल ऑफ हेल्थ साइंसेज के प्रोफेसर हंटर और डॉक्टर जो गीर ने इन आंकड़ों का अध्ययन किया है।

यूईए नॉर्विच मेडिकल स्कूल के वरिष्ठ लेखक प्रोफेसर पॉल हंटर ने बताया कि लाखों की तादाद में लोगों को प्रतिदिन पानी ढोना पड़ता है। यह काम ज्यादातर बेहद गरीब घर की महिलाएं और लड़कियां करती हैं लेकिन अभी तक पानी ढोने और उसके स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में बेहद कम जानकारी थी।

"हम दूर-दराज से पानी भरकर लाने के कारण स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों को और अधिक जानना चाहते थे। साथ ही असुरक्षित जल आपूर्ति से स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभाव को और स्वच्छता के लिए अपर्याप्त पहुंच आदि का भी महिला और उसके बच्चे पर पड़ने वाले स्वास्थ्य प्रभावों को जांचना चाहते थे। हमने अपने शोध में पाया कि घर तक पानी को ढोना और स्वच्छता का बेहद निम्न स्तर माताओं और बच्चों के स्वास्थ्य से जुड़ा हुआ है।"

शोध से जुड़े डॉक्टर गीर ने कहा कि ऐसी माताएं जिन्हें पानी भरने बाहर जाना पड़ता है उनके पास दुविधा भरा विकल्प होता है कि या तो वे बच्चे को घर पर अकेला छोड़ जाएं या फिर उन्हें असुरक्षित रास्तों पर अपने साथ ले जाएं। ऐसे में पानी के स्रोत पर जाना, कतारों में लगना और पानी भरकर वापस लौटने में काफी समय लगता है। इस बीच बच्चे बिना निगरानी के रहते हैं। बिना निगरानी वाले ऐसे बच्चों में दुर्घटना या अचानक उत्पन्न हुई बीमारी के कारण मृत्यु का जोखिम सबसे ज्यादा होता है। यदि कोई मां बच्चे को अपने साथ लेकर जाना चाहती है तो उसे बेहद दुर्गम रास्तों से गुजरना होता है। जहां किसी हिंसा, ट्रैफिक या अतिशय पर्यावरणीय स्थितियों के कारण मां और बेटे दोनों को खामियाजा उठाना पड़ सकता है। वहीं, पानी भरने और ढोने में लगने वाली ऊर्जा व समय के कारण महिलाएं स्वास्थ्य सुविधा केंद्रों तक नहीं पहुंच पाती हैं। इस काम से महिलाओं में पोषण की भी जबरदस्त कमी होती है जिसका दुष्प्रभाव प्रसव और बच्चों को दूध पिलाने जैसी गतिविधियों पर भी पड़ता है। यह बच्चों की मृत्यु के जोखिम को भी बढ़ा देती हैं। कई रिपोर्ट पर गौर भी किया गया है कि पानी ढोने का काम काफी थका देने वाला है।

स्वच्छ पानी तक पहुंच को सुविधाजनक बनाया जाए तो यह महिला और उसके बच्चे की सेहत के लिए काफी लाभप्रद हो सकता है। प्रोफेसर हंटर ने कहा कि इथोपिया में एक अन्य अध्ययन में यह पाया गया था कि घर के पास पानी का एक टैप लगा दिए जाने से महीने में होने वाली बच्चों की मृत्यु में कमी आई। स्वच्छ पानी तक आसान तरीके से पहुंच एक बड़ा सुधार और अंतर पैदा कर सकती है। बिना फ्लश टॉयलेट वाले घर में भी बच्चों की मृत्यु का जोखिम 9 से 12 फीसदी ज्यादा होता है। वहीं, ऐसे समुदाय में जन्म लेने वाले बच्चे जहां पर स्वच्छ पानी की उपलब्धता है वहां बच्चों की मृत्यु में खराब स्वच्छता वाले इलाकों के मुकाबले 12 फीसदी कमी भी देखी गई है।

❑ ❑ ❑

उत्तर-पूर्व भारत में उग्रवाद और मानवाधिकार

–डॉ. अभय राज सिंह
वरिष्ठ सहायक आचार्य,
रक्षा एवं स्ट्रैटेजिक अध्ययन विभाग
डी.ए-वी कालेज, कानपुर

भारत आजादी के बाद से उत्तर-पूर्व (255,000 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र) में, विशेष रूप से असम में, उग्रवादियों से लड़ने में लगा हुआ है, जो बड़े पैमाने पर उग्रवादी गतिविधियों में संलिप्त हैं, (मुख्य विद्रोही संगठनों में से एक, नेशनल डेमोक्रेटिक फ्रंट ऑफ बोडोलैंड हो सकता है जिसमें लगभग 1,500 लड़ाके हैं), नागालैंड, (जहाँ सशस्त्र उग्रवादियों की संख्या लगभग 5,000 हो सकती है), मणिपुर, (संभवतः 5,000 सशस्त्र उग्रवादी हो सकते हैं), त्रिपुरा, (विभिन्न आंदोलनों से लगभग 1,000 उग्रवादी हो सकते हैं।) और मेघालय के कुछ हिस्से इस समस्या से ग्रस्त हैं। मणिपुर में कुछ "मुक्त क्षेत्र" विद्रोहियों के नियंत्रण में हैं, 1970 के दशक के अंत में त्रिपुरा में, अप्रवासी बांग्लादेशियों सहित निजी सेनाओं ने जनजातीय विद्रोही समूहों के खिलाफ जवाबी कार्रवाई करने के लिए भूमिगत गतिविधियाँ शुरू कर दीं। हालांकि उत्तर-पूर्व भारत में कुछ वर्षों से शांति जरूर है परन्तु समस्या पूर्णतया समाप्त नहीं हुई है।

आजादी के बाद से ही पूर्वोत्तर राज्यों के लोग असंतुष्ट हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि ये राज्य प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध हैं, लेकिन इनमें औद्योगिक या आर्थिक विकास बहुत कम हुआ है। बेरोजगारी से युवाओं में निराशा है। जनसांख्यिकीय परिवर्तनों ने इन लोगों की विशेष जातीय पहचान और उनकी संस्कृति और परंपराओं की निरंतरता को खतरे में डाल दिया है। कई पड़ोसी देशों के साथ खुली सीमाओं

वाला यह जंगल से ढंका पहाड़ी इलाका उग्रवाद के विकास के लिए आदर्श माहौल प्रदान करता है। इसलिए आश्चर्य की बात नहीं है कि पिछले कुछ दशकों से पूर्वी कमान की संरचनाएँ और इकाइयाँ अत्यधिक प्रतिबद्ध हैं। उत्तर-पूर्व भारत में जारी उग्रवाद वर्षों से चली आ रही उग्रवाद विरोधी रणनीति की विफलता का संकेत देता है। इससे मानव, आर्थिक और राष्ट्रीय सुरक्षा को होने वाले खतरों को ध्यान में रखते हुए, इस रणनीति की पुनः जांच, इसमें अंतर्निहित धारणाएं, उनकी कमियां और एक वैकल्पिक उग्रवाद विरोधी योजना का निर्माण महत्वपूर्ण हो जाता है।

भारत में उग्रवाद का मुकाबला काफी हद तक सेना की तैनाती का पर्याय बन गया है। यह ज्ञात है कि सेना मुख्यालय में उग्रवाद को समाप्त करने के लिए रणनीति तैयार करने के लिए एक आतंकवाद विरोधी ब्यूरो है। नागरिक और सैन्य खुफिया एजेंसियों को अत्यधिक सक्रिय रखा गया है। उग्रवादियों से लड़ने में पुलिस पीछे रह जाती है। उनकी भूमिका गिरफ्तार विचाराधीन कैदियों को सेना या अर्धसैनिक बलों द्वारा उनकी 'गिरफ्तारी' के बाद हिरासत में रखने तक सीमित है। न्यायपालिका को निर्विवाद रूप से न्यायपूर्ण माना जाता है, हालांकि न्यायाधीशों की ईमानदारी और जवाबदेही की जांच करने के लिए कोई प्राधिकरण मौजूद नहीं है। विद्रोहियों को जो भी स्थानीय समर्थन प्राप्त है, उसे तलाशी अभियान चलाकर उग्रवादी गतिविधि वाले क्षेत्रों में नागरिक आबादी के साथ कठोर व्यवहार करके कम करने का प्रयास किया जाता है। अक्सर, विद्रोही समूहों को नागरिक समर्थन दिए जाने के रूप में लिया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप उनका व्यापक दमन होता है। उग्रवाद को विकास में बाधक माना जाता है, इससे सख्ती से निपटा जाना चाहिए। यह इस आधार पर आधारित है कि विकास उग्रवाद को रोक देगा, जो कि देर से एहसास हुआ कि विकास की कमी ही इन सबके मूल में है।

हमारे राजनीतिक विचारकों, शिक्षाविदों और मीडिया द्वारा उठाए जा रहे सभी कदमों की तर्कसंगत जांच करने के लिए कमर कसनी होगी ताकि यह देखा जा सके कि वे लोगों के मानवाधिकारों का किस हद तक उल्लंघन कर रहे हैं। सीमा पार से आतंकवाद को चुनौती देने के नाम पर हम अपने घर में किस हद तक सांप्रदायिकता को बढ़ावा दे रहे हैं। लोगों को एक या दूसरे धर्म के खिलाफ भड़का कर और लोगों को एक या दूसरे अल्पसंख्यक के खिलाफ सतर्क रहने का आह्वान करके हम किस हद तक असहिष्णुता का माहौल बना रहे हैं, यह एक ऐसा सवाल है जिस पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत है।

ए.एस. पन्नीरसेल्वन के शब्दों में मानवाधिकार की अवधारणा के दो मूल अर्थ हैं। पहला, मनुष्य को केवल उसके मनुष्य होने के आधार पर मिलने वाले अंतर्निहित और अहस्तांतरणीय अधिकारों से संबंधित है। दूसरा अर्थ राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों समाजों की कानून-निर्माण प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त 'कानूनी अधिकारों' को दर्शाता है। जब भी राज्य मानवाधिकारों का गारंटर और संरक्षक बनने के बजाय 'उल्लंघनकर्ता' बन जाता है तो मानवाधिकार कार्यकर्ता नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए 'हस्तक्षेपवादी भूमिका' निभाता है। इसी धारणा के तहत मानवाधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध विकसित किया गया था।

इसलिए, राज्य के उग्रवाद विरोधी प्रयासों को, किसी भी परिस्थिति में, कानून के शासन को कायम रखना चाहिए, मानवाधिकारों का पालन करना चाहिए और "उचित प्रक्रियाओं" का पालन करना चाहिए। राज्य की ओर से ऐसा करने में विफलता केवल आबादी के बड़े हिस्से को अलग-थलग कर देगी और अनजाने में आतंकवादियों की मदद करेगी। यह ध्यान रखना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि यह आतंकवादी और आतंकवादी समूह हैं, जो बिना किसी संदेह के, हमेशा घोर मानवाधिकारों के हनन के दोषी होते हैं, न कि सुरक्षा बल, जिन्हें अक्सर भोली-भाली मीडिया और प्रेरित कार्यकर्ताओं द्वारा बदनाम किया जाता है।

हालाँकि, आतंकवादियों द्वारा किए जाने वाले उल्लंघनों पर विशेषकर हिंसक प्रतिशोध और उत्पीड़न के घातक भय के कारण बहुत कम ध्यान दिया जाता है। पूर्व अमेरिकी सीनेटर, हेनरी जैक्सन ने लिखा है कि "यह शर्म की बात है कि लोकतंत्र के बहुमूल्य शब्द 'स्वतंत्रता' को आतंकवादियों के कृत्यों से जोड़ने की अनुमति देता है।" भारत की लोकतांत्रिक संरचना, लोकप्रिय संप्रभुता, व्यवस्था की पारदर्शिता और संविधान द्वारा गारंटीकृत नागरिक स्वतंत्रता की रूपरेखा पर प्रकाश डाला गया है। दुनिया भर में मानवाधिकारों के आंदोलन के प्रति भारत की अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धता और मानवाधिकारों के विभिन्न अंतरराष्ट्रीय अनुबंधों और चार्टरों में इसके पक्षकार होने पर भी जोर दिया गया है। इसलिए मानवाधिकारों के उल्लंघन पर संविधान में निहित लोकतांत्रिक सिद्धांतों के उल्लंघन के साथ-साथ मानवतावादी अंतरराष्ट्रीय कानून के प्रति भारत की अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धता के उल्लंघन पर भी जोर दिया जाता है। इस परिप्रेक्ष्य में मानवाधिकारों पर चर्चा के मूल मुद्दे प्रकृति और राज्य की भूमिका के इर्द-गिर्द घूमते हैं।

प्रस्तावित मुद्दे राज्य द्वारा नागरिक स्वतंत्रता के उल्लंघन, राज्य और उसकी

दमनकारी मशीनरी की दमनकारी प्रकृति, अर्ध-सैन्य बलों की भूमिका, निवारक हिरासत कानून, मुठभेड़ में मौत, हिरासत की स्थिति, यातना और हिरासत के दौरान मौत आदि से संबंधित हैं। नागरिक स्वतंत्रता की उपलब्धता का प्रश्न लोकतांत्रिक शासन की वैधता से जुड़ा हुआ है। नागरिक स्वतंत्रता की स्थिति इतनी पवित्र समझी जाती है कि उग्रवाद की असामान्य स्थिति और इसके परिणामस्वरूप राजनीतिक व्यवस्था, स्थिरता या यहां तक कि राष्ट्र-राज्य के अस्तित्व के लिए खतरा सहित कोई भी औचित्य इनके उल्लंघन के लिए पर्याप्त नहीं माना जा सकता है। राज्य को प्रभावी बनाने के लिए उग्रवाद-विरोधी, बहु-आयामी और अंतर-सरकारी होना चाहिए। सरकार के विभिन्न विकासात्मक मंत्रालयों को एक ठोस भूमिका निभानी होगी। विकास की कमी और गरीबी राज्य के प्रति असंतोष और विद्रोही आंदोलनों के बढ़ने के लिए जिम्मेदार हैं। आर्थिक प्रगति विद्रोह की प्रवृत्ति पर एक प्रभावशाली रोक हो सकती है। इस प्रकार उग्रवाद का मुकाबला करने में सरकार के विकासात्मक विभागों की प्रमुख भूमिका है। ईमानदारी, जवाबदेही, क्षमता और निष्ठा हासिल करने के लिए पुलिस प्रतिष्ठान में भी सुधार किया जाना चाहिए। पुलिस को राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त करने के उपाय किये जाने चाहिए। न्यायपालिका को जवाबदेह बनाना होगा. एक न्यायिक लोकपाल जिसके पास पीड़ित वादकारी अपील कर सकते हैं, एक अच्छी शुरुआत हो सकती है। आतंकवाद विरोधी अभियान में लगी सेना और अर्धसैनिक सुरक्षा बलों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जो मानवाधिकार शिक्षा, मानव और संवैधानिक अधिकारों के प्रति सम्मान और जातीय और सांप्रदायिक संवेदनाओं के सम्मान पर जोर दे। सुरक्षा बलों के भीतर आंतरिक मामलों के एक स्वतंत्र और शक्तिशाली ब्यूरो की स्थापना की भी तत्काल आवश्यकता है जो बिना किसी डर या पक्षपात के ज्यादती और अधिकार के दुरुपयोग की जांच कर सके और दोषियों को दंडित कर सके।

पूर्वोत्तर में दीर्घकालिक उग्रवाद अन्य कारकों के अलावा, कमजोर शासन व्यवस्था और मुख्य रूप से उग्रवाद-विरोधी सैन्य दृष्टिकोण का परिणाम है। अपने स्वभाव से, विद्रोह मौजूदा शासन व्यवस्था के लिए एक चुनौती है। यह अपर्याप्त शासन के खिलाफ विद्रोह है, जो विभिन्न समुदायों, विशेषकर परिधि पर रहने वाले लोगों की आर्थिक, सामाजिक-राजनीतिक, जातीय-सांस्कृतिक और भौतिक सुरक्षा आवश्यकताओं को पूरा करने में विफल रहा है। इसलिए, उग्रवाद से निपटने की दिशा में पहला कदम प्रशासन को सुशासन प्रदान करना है। एक कुशल, प्रभावी और

जवाबदेह प्रशासन, जो ईमानदारी से और पर्याप्त रूप से लोगों की जरूरतों को पूरा करता है, सबसे व्यवहार्य आतंकवाद विरोधी तंत्र होगा।

भारतीय मीडिया शुरू से ही मानवाधिकार उल्लंघन के मुद्दे पर अपने रवैये में अस्पष्ट था। मानवाधिकार समूहों ने आरोप लगाया कि इस मुद्दे पर लोगों को जागरूक करने में सार्वजनिक सूचना स्रोतों के औसत दर्जे के रवैये ने सामाजिक और नैतिक विश्वसनीयता पर सवाल उठाया है। मानवाधिकार कार्यकर्ताओं की शिकायत है कि प्रेस अपनी रिपोर्टिंग में गैर–जिम्मेदार है और उत्तर–पूर्व में मानवाधिकार विरोधी तत्वों द्वारा की गई शत्रुता की खबरों के बारे में केवल आधी तस्वीर देता है। राज्य और उसके दमनकारी तंत्र द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन का बचाव आतंकवादियों द्वारा की जा रही हिंसा को इंगित करके नहीं किया जा सकता है। इस परिभाषा के अनुसार, राज्य का अर्थ कानून का सम्मान करना और लोगों को बुनियादी अधिकार और स्वतंत्रता प्रदान करना है। दूसरी ओर, कानून का उल्लंघन आतंकवाद का कारण है। इसलिए यह बेतुकी उम्मीद है कि आतंकवादी कानून का सम्मान करेंगे। इस दृष्टिकोण के अनुसार, राज्य द्वारा जारी उल्लंघन के मामलों की तुलना करना एक हास्यास्पद प्रस्ताव है।

मानवाधिकारों पर दूसरा परिप्रेक्ष्य राष्ट्रवाद, राष्ट्रीय अखंडता, एकता और स्थिरता का परिप्रेक्ष्य मुख्य रूप से रक्षात्मक है और भारतीय राष्ट्र के अस्तित्व पर दीर्घकालिक प्रभाव डालने वाली असामान्य स्थिति आतंकवादी हिंसा के संदर्भ में राज्य द्वारा दमनकारी उपायों के उपयोग को उचित ठहराता है। राज्य द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन को इंगित करने के बजाय, यह परिप्रेक्ष्य निर्दोष पीड़ितों के मानवाधिकारों पर आतंकवादी हिंसा के प्रभाव पर केंद्रित है। यह दो दृष्टिकोणों के बीच बातचीत में आतंकवादी अपहरण, बंधकों, आतंकवादी धमकियों, चयनित हत्याओं, नरसंहारों, राजनीतिक हत्याओं आदि के मामलों पर ध्यान केंद्रित करता है। पहले दृष्टिकोण को कायम रखने वालों पर आतंकवादी हिंसा की भीषण प्रकृति पर चुप्पी बनाए रखने के लिए हमला किया गया। अलगाववादी और आतंकवादी संगठनों के प्रति नरम रुख अपनाने और उनके हितों के प्रति सहानुभूति रखने के लिए भी उनकी आलोचना की गई।

उग्रवादी संगठनों द्वारा मानवीय कानून के उल्लंघन पर संज्ञान लिया जा रहा है। आतंकवाद के कृत्यों और प्रथाओं की निंदा की जा रही है। यह स्वीकार किया जा रहा है कि आतंकवाद मानवीय गरिमा पर हमला करता है और यातना, जबरन गायब कर

देना, राजनीतिक हत्याएं जैसी आतंकवादी गतिविधियां मानवता के खिलाफ जानबूझकर किए गए अपराध हैं। पहले परिप्रेक्ष्य में बदलाव प्रसिद्ध अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संगठनों के आतंकवाद के प्रति उभरते रवैये में परिलक्षित होता है। प्रत्येक कानून कुछ अधिकारों को प्रतिबंधित करता है। कुछ कानून संयुक्त राष्ट्र द्वारा परिभाषित मानवाधिकारों को भी प्रतिबंधित करते हैं। सच है कि कुछ प्रतिबंध अपरिहार्य हो सकते हैं। सर थॉमस ने कल्पना की थी जिसमें सब कुछ सही या आदर्शवादी है और सभी नागरिक निस्वार्थ हैं। पूंजीवाद की भावना, आज का प्रचलित दर्शन, मनुष्य के स्वार्थ से उत्पन्न होता है। निःस्वार्थ नागरिकों के समाज में पूंजीवाद विफल हो जाएगा। पूंजीवाद को व्यक्ति की स्वार्थी भावना की रक्षा के लिए कानून बनाने होंगे। इसे यूं ही व्यक्तिवाद नहीं कहा जाता। एक व्यक्ति के अधिकार वहीं समाप्त होते हैं जहां दूसरे व्यक्ति के अधिकार शुरू होते हैं। हमें स्पष्ट और सचेत रहना होगा। इसलिए, जब हम कोई कानून बनाते हैं और नागरिकों की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करते हैं, तो प्रतिबंध न्यूनतम अच्छी तरह से परिभाषित और औचित्य के लिए खुले होने चाहिए। स्पष्ट और मजबूत सुरक्षा गार्ड होने चाहिए और प्रतिबंध विशेष रूप से मानवाधिकारों के मामले में अस्थायी होने चाहिए।

अब ध्यान इस बात पर केंद्रित होना चाहिए कि शिक्षा द्वारा शांति को बढ़ावा देने वाली भूमिका संघर्ष के स्रोतों को समझ सकें, संघर्ष प्रबंधन को बढ़ावा दे सके और संघर्ष के बाद के समाधान और सुलह में योगदान दे सके। उत्तर पूर्वी राज्यों में प्राप्त साक्षरता की तुलनात्मक रूप से उच्च दर को देखते हुए, इस दृष्टिकोण पर गंभीरता से ध्यान देने की आवश्यकता है और पुरानी और घिसी-पिटी नीति को जारी रखने के बजाय इसे आजमाया जाना चाहिए।

आज के परिदृश्य में हमें यह भी देखना होगा कि हमारे कानून हमारे हित में हैं या नहीं। एक अल्प विकसित देश के हित विकसित देशों के हितों से टकरा सकते हैं, हालांकि उनके हित हमेशा अस्पष्ट रहेंगे। ऐसी स्थिति में निडर एवं ईमानदार नेतृत्व की आवश्यकता है। हमें सावधान रहना होगा कि वैश्वीकरण या 'आतंकवाद पर अंकुश लगाने की आवश्यकता' के कारण हम विकसित दुनिया के हितों की रक्षा नहीं कर पा रहे हैं। जिस तरह आतंकवाद अस्थायी है, उसी तरह मानवाधिकारों पर अंकुश भी अस्थायी होना चाहिए क्योंकि मानवाधिकार स्थायी हैं।

❑ ❑ ❑

युद्धकाल में मानवाधिकारों का संकट और मीडिया

–डॉ. संदीप भट्ट
वरिष्ठ सहा. प्राध्यापक, पत्रकारिता एवं जनसंचार
एमसीयू, रीवा परिसर, मध्यप्रदेश

मानवाधिकार

मानवाधिकार प्रत्येक समाज में उसके नागरिकों के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक हैं। एक किस्म से मानवाधिकार, बुनियादी अधिकार हैं। इनमें वे सभी अधिकार शामिल हैं जो विश्व में प्रत्येक मानव के लिए जरूरी समझे जाते हैं। अर्थात मानव समाज में मानवाधिकारों का होना अत्यावश्यक है। संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अंतरराष्ट्रीय विधेयक के अनुसार किसी भी व्यक्ति के लिए मानवाधिकार सार्वभौमिक अधिकार हैं। राष्ट्रीयता, लिंग, भाषा या धर्म तथा अन्य किसी तरह के भेदभाव के लिए ये अधिकार सभी मनुष्यों के जरूरी अधिकार हैं। यह साल विश्व में मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का 75 वां वर्ष है। लेकिन हम देखते हैं कि पूरे विश्व में मानवाधिकारों के लिए बेहतर परिस्थितियां नहीं हैं। यूरोपियन यूनियन ने इस वर्ष को मानावाधिकारों के चिंतन का वर्ष कहा है। ह्यूमन राइट वॉच की वर्ष 2023 की रिपोर्ट भी कमोबेश इसी तरह का इशारा करती है। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि दुनियाभर में मौजूदा समय में मानवाधिकारों के हालात बहुत अच्छे नहीं हैं। तमाम मुल्कों में वहां की राज्य व्यवस्थाएं नागरिक अधिकारों के लिए काम करने वाले लोगों, नेताओं और गैर–सरकारी संगठनों के प्रति कठोर रवैया अपना रहे हैं। इसके अलावा कई देशों में जारी सैन्य संघर्षों के चलते भी वैश्विक स्तर पर मानवाधिकारों को आघात पहुंच रहा है। इस रिपोर्ट में मानवाधिकारों की स्थापना के लिए युद्ध को एक बहुत बड़ा संकट माना है।

युद्ध की परिस्थितियां और मानवाधिकार

विश्व का इतिहास बताता है कि मानवाधिकारों की राह में कई किस्म की चुनौतियां होती हैं जिनमें युद्ध सबसे अहम है। युद्ध याने लड़ाई या संघर्ष। युद्ध हमेशा ही नागरिकों के लिए परेशानियों का सबब बनते हैं। लोगों को युद्ध के दौरान अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अनुभव बताते हैं कि किसी समाज में स्त्री–पुरूष, बच्चे और बुजुर्ग हर वर्ग युद्धकाल में स्वाभाविक तौर पर गंभीर परेशानियों के शिकार बनते हैं। बुजुर्गों तथा बीमार व्यक्तियों को भी कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। बच्चों की पढ़ाई लिखाई बंद होना, बीमार लोगों को इलाज न मिलना, खाद्यान्न संकट के चलते लोगों को भुखमरी के लिए विवश होना, महिलाओं और बच्चियों का शोषण के चक्र का शिकार होना आदि तमाम ऐसी अमानवीय परिस्थितियां हैं जो किसी भी युद्ध के कारण पैदा होती हैं। इसके चलते लोगों को बुनियादी अधिकार भी नहीं मिल पाते। युद्ध तो सत्ता तथा शासन व्यवस्था के लिए अस्थिरता और अराजक परिस्थितियों का निर्माण करता है। और जहां शासन व्यवस्था नहीं होगी वहां कानून काम नहीं करता। फिर वहां नागरिक और अधिकारों की उपलब्धता की बात कैसे की जा सकती है। तो इस तरह हम समझ सकते हैं कि कोई भी युद्ध सीधे तौर पर मानवाधिकारों के हनन की परिस्थितियों का निर्माण करता है। दूसरे शब्दों में कहें तो हर तरह के युद्ध के कालखंड में किसी भी समाज में अनगिनत नागरिकों के बुनियादी मानवाधिकारों का हनन होता है।

आम तौर पर जब कभी भी दुनिया में कहीं सैन्य या सशस्त्र संघर्ष चलता है तो वहां के नागरिक उससे सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। युद्धग्रस्त इलाकों में रहने वाले नागरिकों में शामिल महिलाएं, बच्चे, बुजुर्ग और बीमार लोगों को बुनियादी सुविधाएं नहीं मिल पाती हैं। युद्ध में हमलावर पक्ष अक्सर दूसरे पक्ष की महिलाओं और बच्चों के शोषण करते हैं। बच्चे स्कूल नहीं जा पाते। उन्हें पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाता है। महिलाओं को कामकाज आदि के लिए आने–जाने में समस्याएं आती हैं। सैन्यदल किसानों की फसलें नष्ट कर देती हैं। युद्ध से खाद्यान्न संकट और कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वास्तव में युद्ध से मानव कल्याण और मानवाधिकारों का विनाश ही होता है। विश्व के इतिहास के अध्ययन से अब तक ज्ञात होता है कि युद्ध भले ही किन्हीं दो या कुछ राष्ट्रों के बीच हो लेकिन यह हमेशा ही होता है कि उसका असर सीधे तौर पर दुनिया के अन्य देशों पर भी

पड़ता है।

युद्ध के चलते आर्थिक तौर पर पिछड़े या विकासशील देशों के नागरिकों को भी कई तरह की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। वहां विकास की कई परियोजनाएं बाधित होती हैं। ये परियोजनाएं विकासशील मुल्कों में नागरिकों के बुनियादी मानवाधिकारों का पोषण करने में सहायक होती हैं। तो युद्ध में सिर्फ भागीदार पक्षों के लोगों के मानवाधिकारों का ही उल्लंघन नहीं होता बल्कि पूरे विश्व में उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र का एक आकलन है कि विश्व की आधी आबादी ऐसे देशों में रहती है जो स्वास्थ्य देखभाल और शिक्षा में निवेश की तुलना में कर्ज की किश्त चुकाने में अधिक धनराशि खर्च करने के लिए मजबूर होते हैं। यह विकास के लिए एक बड़ी बाधा है। यदि अनेक कारणों से दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में जारी युद्ध या सैन्य संघर्षों के चलते आर्थिक तौर पर कमजोर मुल्कों पर उसका असर पड़ता है तो इन देशों के लोगों को भी युद्ध की विभीषिकाओं के चलते मानवाधिकारों से जुड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

मौजूदा समय में युद्ध और मानवाधिकारों का यथार्थ

किसी भी युद्ध से होने वाले मानव अधिकारों के हनन की गंभीरता को हम हाल में चल रहे रूस और यूक्रेन के बीच के टकराव से समझने का प्रयास कर सकते हैं। युद्ध के भागीदारों के अपने-अपने पक्ष और तर्क हो सकते हैं। उन पक्षों के साथ हमारी सहमति या असहमतियां हो सकती हैं। लेकिन इस बात से कतई इनकार नहीं किया जा सकता कि युद्ध से बहुत बड़ी तबाही आती है जिसका सीधा असर मानवाधिकारों पर पड़ता है। रूस और यूक्रेन के हालिया संकट के कारण दोनों ही मुल्कों में मानवाधिकारों के हालात बहुत अच्छे नहीं हैं। स्वाभाविक तौर पर कमजोर पक्ष की भूमि पर तो संकट और गहरा होता है। संयुक्त राष्ट्र के अवर महासचिव, (राजनीतिक एवं शांति निर्माण मामलों के प्रमुख) ने जनवरी 2023 में कहा कि यूक्रेन में जारी युद्ध से आमजन की पीड़ा का कोई अंत नजर नहीं आ रहा है। संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट बताती है कि साल 2022 के आखिर में रूसी बलों ने यूक्रेन के कई इलाकों को जबरदस्त तौर पर निशाना बनाया। जनवरी 2023 तक संयुक्त राष्ट्र के आंकड़ों के मुताबिक रूसी हमलों के बाद से यूक्रेन में 18 हजार से अधिक लोग हताहत हुए थे। तब तक वहां लगभग 952 से अधिक लोगों की मौतें भी हुईं। इस युद्ध से यूक्रेन के भीतर अनेक इलाकों में बड़े पैमाने पर विस्थापन भी हुआ है। लोग स्वाभाविक तौर पर सुरक्षित इलाकों की ओर रूख कर रहे हैं। युद्ध

की परिस्थितियों के कारण उत्पन्न विस्थापन से प्रत्यक्ष तौर पर वहां के लोगों को बुनियादी मानवाधिकारों से भी वंचित होना पड़ता है। अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों का अनुमान है कि इस साल के आरंभ तक वहां 59 लाख से अधिक महिलाओं और लड़कियों को देश के भीतर ही विस्थापन झेलना पड़ा है। अनेक स्वास्थ्य देखभाल केंद्र बंद हो गए हैं, 57 लाख विद्यार्थी सीधे तौर पर पढ़ाई से वंचित हुए।

युद्धकाल में मानवाधिकारों की स्थापना में मीडिया की भूमिका

किसी जगह चल रहे युद्ध की खबरें दुनिया तक पहुंचाने में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। संचार माध्यम अपने प्रतिनिधियों को युद्ध के कवरेज के लिए भेजते हैं। वे अपनी रिपोर्ट से युद्धकाल में वहां के हालात को दुनिया के सामने पेश करते हैं। ऐसे में युद्धग्रस्त इलाकों में मानवाधिकारों की स्थापना में मीडिया की भूमिका हो सकती है। वर्ष 1996 में संयुक्त राष्ट्र संघ की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि युद्ध का बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, शारीरिक और मानसिक विकास आदि पर बहुत ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस रिपोर्ट में विस्तार से बताया गया है कि युद्ध के चलते पैदा हुई अराजक परिस्थितियों में बच्चों को यौन शोषण का शिकार भी बनना पड़ता है। रिपोर्ट में 1995 के आसपास विश्व के अनेक क्षेत्रों में चल रहे तत्कालीन सशस्त्र संघर्षों के कारण बच्चों के यौन शोषण की दुखद कहानियों में बताया गया है कि किस तरह युगांडा और अन्य कई देशों में बच्चियों को अपहृत कर उनकी जबरदस्ती शादियां तक करवाई गईं। ग्वाटेमाला के एक उदाहरण में बताया गया कि वहां सशस्त्र संगठनों द्वारा छोटी बच्चियों को जबरन सैन्य बलों में भर्ती कर उनसे खाना बनवाने के साथ-साथ यौन संबंध बनाने के काम भी करवाये जाते थे।

इतिहास बताता है कि युद्ध झेल रहे इलाकों में बच्चों को बाल सैनिकों के रूप में भी लड़ाई का हिस्सा बनना पड़ता रहा है। इस तरह हम साफ समझ सकते हैं कि युद्ध की परिस्थितियों में बच्चों के मानवाधिकारों का पूरी तरह से हनन होता है। थॉमस डब्ल्यू स्मिथ ने अपनी पुस्तक ह्यूमन राइट एंड वार थ्रू सिविलियन में युद्ध की परिस्थितियों के चलते मानवाधिकारों पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों की चर्चा करते हुए बताया है कि किस तरह हाल के कुछ दशकों से मध्यपूर्व के अनेक देशों में चल रहे सैन्य संघर्षों के कारण वहां के लाखों बच्चों और महिलाओं के मानवाधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। उन्होंने लिखा है कि साल 2015 में मध्य पूर्व और उत्तरी अफ्रीका में युद्ध ग्रस्त इलाकों में 40 प्रतिशत विद्यार्थी स्कूलों में नहीं पढ़ पा रहे थे। सीरिया, यमन, लीबिया आदि देशों में लगभग 9 हजार से अधिक स्कूल तबाही के

कारण से बंद हो गए थे। स्मिथ ने एक भयावह आंकड़ा प्रस्तुत किया है जो युद्ध के चलते बच्चों के मानवाधिकारों के हनन की दुखद दास्तां बयान करता है। उन्होंने लिखा है कि युद्ध के हालात के चलते लेबनान, जॉर्डन और तुर्की आदि देशों में रह रहे लगभग रिफ्यूजी 7 लाख से अधिक बच्चे स्कूलों में नहीं पढ़ पा रहे हैं।

जस्टिस पी.बी सावंत ने अपनी पुस्तक मास मीडिया इन कंटेपररी सोसाइटी में लिखा है कि राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मीडिया जब सैन्य संघर्ष वाले इलाकों में रिपोर्टिंग करता है तो वह एक तरह से वहां कानूनों की स्थापना के लिए मददगार होता है। उन्होंने लिखा है कि इस तरह मीडिया युद्ध के हालात वाले इलाकों में शांति और मानवाधिकारों की स्थापना के लिए ही कार्य करता है। मानवाधिकारों के बारे में लोगों को जागरूक करने में मीडिया की अहम भूमिका होती है। युद्ध के इलाकों में जब मानवाधिकारों का हनन होता है तो वहां मीडिया के पत्रकार और संपादक जब खबरों को भेजते हैं तो पूरी दुनिया का समाज मानवाधिकारों के हनन के मामले को गंभीरता से देखते और समझते हैं। वास्तव में यदि मीडिया संवेदनशीलता से बहुत गहराई तक रिपोर्ट करें तो मानव अधिकारों से जुड़े हुए बहुत से सवाल सामने ला सकता है। मानव अधिकारों का दायरा बहुत व्यापक होता है इसलिए किसी भी प्रकार के युद्ध का कवरेज करने भेजे गए संवाददाताओं को मानवाधिकारों की जानकारी होना बहुत आवश्यक है। मानव अधिकारों संबंधी अंतरराष्ट्रीय कानून बच्चों, महिलाओं, बीमार व्यक्तियों, बुजुर्गों आदि के विशेष कानूनों के बारे में यदि मीडिया कर्मियों को जानकारी होगी तो वह अपनी युद्ध की रिपोर्ट में मानवाधिकारों के हनन के मामले भी खड़े कर सकेंगे। युद्ध की रिपोर्टिंग करने वाले पत्रकारों को हमेशा ही खतरों से भरे और जटिल माहौल में अपना काम करना पड़ता है। जिन इलाकों में भी सशस्त्र टकराव चलता है वहां पर कई बार यह देखने में आता है कि आम नागरिक दोनों पक्षों का शिकार बनते हैं। मीडिया के पेशेवर पत्रकारों को यह पता होना चाहिए।

सामाजिक परिवेश में जनसंचार माध्यमों के महत्व को लेकर डॉ. कृष्ण कुमार रत्तू ने अपनी पुस्तक दृश्य-श्रव्य एवं जनसंचार माध्यम में लिखा है कि सामाजिक परिवर्तन के नए अध्याय की शुरूआत माध्यमों के जरिये ही होगी। उन्होंने लिखा है कि भारत की पूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा गुट निरपेक्ष सम्मेलन में कहा था कि सूचना शक्ति विश्व शांति एवं सद्भाव के लिए एक प्रभावशाली माध्यम है। वास्तव में उनका यह कथन मानवाधिकारों की स्थापना में मीडिया की भूमिका को उल्लेखित करता है। डॉ. सुशील त्रिवेदी और डॉ. शशिकांत शुक्ल ने अपनी

पुस्तक विकास संचार और पत्रकारिता में लिखा है कि सिविल सोसाइटी में लोगों के अधिकारों को सुनिश्चित करने में मीडिया की अहम भूमिका होती है। आज दुनियाभर में सूचना और संचार के नए माध्यमों ने एक वैश्विक संवाद और संचार क्रांति ला दी है। साल 2001 में अमेरिका ने अफगानिस्तान पर आतंकी हमलों के प्रत्युत्तर में हमला किया। इसके बाद वहां लगभग दो दशकों तक आतंकी संगठनों और अमेरिकी सैन्यबलों के बीच जंग चलती रही। नतीजा अफगानिस्तान में मानवधिकारों के हालात बहुत खराब हो गए। आज जब वहां से अमेरिकी सेना जा चुकी है और वहां तालिबान सत्ता में है तब वहां मानवाधिकार का संकट जबरदस्त तरीके से छाया हुआ है। वैश्विक मीडिया ने अमेरिकी हमलों के दौरान वहां मानवाधिकारों के मुद्दों को प्रमुखता से उठाया। तालिबान के शासन के दौरान भी मीडिया वहां के नागरिकों के मानवाधिकारों की रिपोर्ट लगातार करता रहता है।

मौजूदा वक्त में जारी रूस-यूक्रेन के युद्ध के संदर्भों में भी देखें तो मीडिया ने वहां के हालात के बारे में विश्व समुदाय को विस्तार से बताया है। आज किसी भी घटना के घटते ही इंटरनेट और डिजिटल माध्यमों के जरिये वह पूरी दुनिया में वाइरल(प्रसारित) हो जाती है। उससे जुड़े हुए ऑडियो और वीडियो तत्काल विश्व पटल पर छा जाते हैं। यूक्रेन और रूस के सैन्य संघर्ष के अनगिनत वीडियो इंटरनेट के संसार में मौजूद हैं। तमाम देशों के मीडिया से जुड़े पत्रकारों ने यूक्रेन के ग्राउंड जीरो से रिपोर्टिंग कर वहां के सजीव हालातों से लोगों को अवगत करवाया। इसी का नतीजा है कि पूरा विश्व समुदाय वहां की परिस्थितियों पर विमर्श कर रहा है। अगर पूरी दुनिया आज युद्ध की समाप्ति चाहती है और रूस तथा यूक्रेन के नागरिकों के मानवाधिकारों के प्रति चिंतित है तो यह सब मीडिया की रिपोर्ट्स के कारण ही संभव हुआ है। कल्पना करें कि अगर मीडिया वहां के बच्चों, महिलाओं, बुजुर्गों, बेघर हुए परिवारों की दारूण कहानियों को अपनी रिपोर्ट के जरिये न दिखाता तो क्या होता। दरअसल टीवी, समाचार पत्र और पत्रिकाओं समेत इंटरनेट, डिजिटल माध्यमों ने जब यूक्रेन के टूटे मकानों, स्कूलों और अस्पतालों और बेकसूर नागरिकों के मरने की खबरें दिखाई तो पूरा विश्व वहां चल रहे युद्ध के कारण लोगों के मानवाधिकारों के प्रति अधिक संवेदनशील होकर मदद के लिए आगे आया। यह मीडिया की शक्ति है जो मानवाधिकारों के पक्ष में विश्वभर के लोगों की आवाज को मजबूत करती है। ह्यूमन राइट वाच ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि अनेक देशों में अभिव्यक्ति के माध्यमों पर भी संकट मंडरा रहे हैं। ऐसे में युद्धग्रस्त इलाकों तक पहुंचने में मीडिया

पर संकट छा सकता है। बहरहाल उम्मीद की जा सकती है कि जब तक विश्व समुदाय में मानवाधिकारों के समर्थक मौजूद हैं तब तक मीडिया युद्ध के संकटग्रस्त इलाकों में नागरिकों के मानवाधिकारों की स्थापना में अपनी सार्थक भूमिका का निर्वाह करता रहेगा।

संदर्भ

1. स्मिथ थॉमस डब्ल्यू,(2017), ह्यूमन राइट एंड वार थ्रू सिविलियन आईज, यूनिवर्सिटी आफ पेनसिल्वेनिया प्रेस, 26
2. सावंत जस्टिस पी.बी, (2018) मॉस मीडिया इन कंटेपररी सोसाइटी, आई जी प्रिंटर्स नई दिल्ली, पृ.168.
3. त्रिवेदी डॉ. सुशील, शुक्ल डॉ. शशिकांत,(2013) विकास संचार और पत्रकारिता, प्रिया पुस्तक सदन, नई दिल्ली पृ.296
4. रत्तू डॉ. कृष्ण कुमार (2010), दृश्य-श्रव्य एवं जनसंचार माध्यम राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, पृ.29
5. PROMOTION AND PROTECTION OF THE RIGHTS OF CHILDREN Impact of armed conflict on children Note by the Secretary-General, Accessed on 12/07/2023 https://sites.unicef.org/graca/a51-306_en.pdf
6. Accessed on 12/07/2023https://www.ohchr.org/sites/default/files/Documents/Publications/HR_in_armed_conflict.pdf
7. Accessed on 12/07/2023https://www.hrw.org/sites/default/files/media_2023/01/World_Report_2023_WEBSPREADS_0.pdf
8. Accessed on 12/07/2023https://www.ohchr.org/en/ohchr_homepage?gclid=CjwKCAjwh8mlBhB_EiwAsztdBEJaqEiMwaj5xeSo1w1phmKUfRENpvvpu_2BrMynQqU-7XbbGghsAxoCPVIQAvD_BwE

❑ ❑ ❑

राष्ट्रीय एकता में भाषा की भूमिका

–विनय कुमार शर्मा

भाषा मानव मन का परिधान है। भाषा के माध्यम से ही हम अपने भावों, विचारों, अनुभूतियों, आदर्शों, आकांक्षाओं को एक–दूसरे से व्यक्त करते हैं। भाषा के बिना मनुष्य गूंगा होता है। इस प्रकार पशुओं और मनुष्य को अलग करने का एकमात्र साधन भाषा है। ज्ञान, विज्ञान, कला, साहित्य, दर्शन–शास्त्र आदि की शाखा–प्रशाखाओं के रूप में मनुष्य आज तक जो कुछ भी प्राप्त कर सका है उन समस्त उपलब्धियों का आधार भाषा ही है। भाषा के सहारे ही दया, करुणा, सहानुभूति, सहिष्णुता आदि मानव की उदात्त भावनाएं विकसित और पल्लवित हुई हैं। मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास में भाषा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मनुष्य के मन में जो भी भावनाएं स्थित हैं उन सबको समझने के लिए भाषा का सहारा लेना पड़ता है। किसी भी व्यक्ति की आत्म–शक्ति, दृढ़ता, निर्बलता, विश्वास, धैर्य, क्षमा आदि का ज्ञान वाणी द्वारा ही विशेष रूप से हो पाता है। भाषा सोचने–विचारने का साधन है साथ – साथ विचार विनिमय का भी। भाषा द्वारा ही समस्त भावों एवं विचारों का विश्लेषण एवं उनकी अभिव्यक्ति की जाती है। संसार को एक सूत्र में बांधने की, परस्पर सहयोग की तथा विश्व–बंधुत्व भावना जगाने की क्षमता एक मातृभाषा में ही है। यह मनुष्य की समस्त उपलब्धियों, उनके विकास तथा संस्कृति एवं सभ्यता की आधार शिला है साथ ही समस्त उपलब्धियों में सर्वोत्कृष्ट भी।

भाषा संस्कृति की संवाहिका होती है। भाषा मात्र ध्वनियों, अक्षर और शब्द भंडार की व्यवस्था नहीं है अपितु यह अपने साथ अनेक विचार भी लाती है। दुनिया को देखने का एक दृष्टिकोण प्रदान करती है। उसी समाज, जाति अथवा राष्ट्र को

उन्नत समझा जाता है जिसका साहित्य उच्च कोटि का होगा। साहित्य को 'समाज का दर्पण' कहा गया है। समाज के जैसे विचार होंगे भावनाएं होंगी, उसी प्रकार का साहित्य भी होगा। बिना भाषा के माध्यम के हम उच्च कोटि के साहित्य का सृजन नहीं कर सकते हैं।

भारतीय भाषा के उन्नायक और उसका प्रचार करने वालों में भारतेंदु हरिश्चंद्र का नाम अत्यंत आदर से लिया जाता है। वह कहते हैं कि- कोई भी विदेशी भाषा यहाँ स्वामिनी बनकर नहीं रह सकती। विदेशी भाषा का अध्ययन केवल उपयोगिता की दृष्टि से तो सही है। हम इनके अध्ययन के विरोधी नहीं, अपनी संस्कृति के संरक्षण हेतु राष्ट्रीय एकता हेतु अपनी भाषाओं का अस्तित्व बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है।

यह सर्वविदित सत्य है कि एकता में ही शक्ति निहित होती है। हमारा भारत देश विभिन्नता में एकता की एक मिसाल है। राष्ट्रीय एकता ही वह भावना है जो भारत में विभिन्न धर्मों, जातियों, भाषा, सभ्यता व संस्कृति के अनुयायियों को एक सूत्र में पिरोए रखती है। समन्वयात्मक संस्कृति से आप्लावित भारतवर्ष को गुरुदेव रविंद्र नाथ टैगोर ने एक 'महामानव समुद्र' की संज्ञा प्रदान की है। समूचे विश्व को 'वसुधैव कुटुंबकम' का पाठ पढ़ाने वाले भारत ने नवीन परिवर्तनों के दौर से गुजरते हुए भी बाह्य प्रभावों को स्वयं में आत्मसात करके उसे अपने में ढाल लिया। भारतीय भाषाओं और सांस्कृतिक प्रतिमानों को जानने व सीखने की ललक विदेशों तक अपनी पैठ बना चुकी है। भारतीय योग समूचे विश्व में अपना परचम लहरा रहा है। सनातन सामाजिक मूल्यों व सांस्कृतिक विविधताओं की अभिव्यक्ति व भाव संप्रेषण का सशक्त माध्यम भाषा ही है।

संस्कृति का जन्म कब होता है जब कोई समाज एक ही रीति से कुछ कार्य करता है। एक समान विश्वास रखता है, समान आदर्श सामने रखता है तथा अपने पूर्वजों के कार्यों को करने में गौरवान्वित अनुभव करता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरण करता है। संस्कृति उतनी ही प्राचीन है जितनी की सभ्यता। संस्कृति आधारशिला है। स्वामी चिन्मयानंद का कथन है कि "सभ्यता है मनुष्य का अपनी बाह्य प्रकृति पर नियंत्रण, संस्कृति है मनुष्य का अपनी आंतरिक प्रकृति पर नियंत्रण। जब किसी भौगोलिक क्षेत्र में एक लंबे समय तक कुछ लोगों का समूह अपने विशिष्ट जीवन मूल्यों का निर्वाह करते हुए साथ-साथ रहता है। तब जो विशिष्टताएं, जो पहचान उस जनसमूह की बनती है, वह उस जन समाज की संस्कृति

होती है। संस्कृति को सिखाया नहीं जा सकता संस्कृति को ग्रहण ही किया जा सकता है बच्चे उसे ग्रहण करें।"

प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैकाइवर के अनुसार

"संस्कृति हमारी दैनिक व्यवहार में कला, साहित्य, धर्म, मनोरंजन और आनंद में पाई जाती है और रहन-सहन व विचार के तरीकों में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है।"

संस्कृति एक जटिल विचार है इसमें वे सभी बातें समाहित हैं जिनका अस्तित्व था और वर्तमान में भी है, साथ ही रहेगा जो मानव के लिए अर्थपूर्ण है।

विश्व में भाषाओं की संख्या अनगिनत है और भारत जैसे विशाल देश में भाषाओं की विविधता अधिक है। भारत की विशेषता है कि विविधता में भी एकता है। यूरोप महाद्वीप में भाषाओं के आधार पर राष्ट्रों का निर्माण हुआ है यहां प्रत्येक राष्ट्र की अपनी भाषा है। भारत में भाषाओं का स्वरूप क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक है। भारतीय संविधान में हिंदी को राष्ट्रभाषा का गौरवपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। देशवासियों में परस्पर संपर्क व विचारों का आदान-प्रदान एक राष्ट्रभाषा के माध्यम से ही होता है। मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और बिहार हिंदी भाषा-भाषी प्रदेश हैं। परंतु पंजाब, हिमाचल प्रदेश, गुजरात के कुछ भागों में भी हिंदी का उपयोग निरंतर किया जाता है।

राष्ट्र निर्माण और राष्ट्रीय एकता के निर्माण में राष्ट्रभाषा की भूमिका होती है। भारत जैसे विशाल राष्ट्र में भाषाओं की विविधतापूर्ण संस्कृति होने के कारण सभी भाषाओं का आदर व सम्मान तथा विकास किया जाना चाहिए। आधुनिक विश्व के समस्त देशों को एक-दूसरे के साथ सहयोग देना चाहिए। अतः विश्व के अन्य देशों से संपर्क, विचारों का आदान-प्रदान भी वर्तमान युग की आवश्यकता है। अंतरराष्ट्रीय भाषा के माध्यम से एक-दूसरे के विचारों का आदान-प्रदान करने में सक्षम होते हैं। भारत की बहुभाषिकता के बावजूद एकता और अखंडता को कोई खतरा नहीं है। क्योंकि भारत में परस्पर शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व रहा है। मातृभाषा व प्रादेशिक भाषा में शिक्षा प्रदान की जाती है। साहित्य सृजन किया जाता है परंतु हम सब की परंपराएं व संस्कृति के स्रोत एक ही हैं। भारतीय भाषाओं में परस्पर द्वेष व कटुता नहीं है।

श्री पी. बी. पंडित ने अपनी पुस्तक "इंडिया एज ए सोशियो-लिंगविस्टिक एरिया" में वर्णन करते हुए लिखा है कि- "यूरोप अथवा अमेरिका में दूसरी पीढ़ी

प्रभुत्वशाली वर्ग की भाषा के पक्ष में अपनी भाषा को त्याग देती है। भाषा विस्थापन वहां का प्रतिमान है और भाषा अनुरक्षण एक अपवाद। भारतीय संदर्भ में भाषा अनुरक्षण एक प्रतिमान है और भाषा विस्थापन एक अपवाद। भाषाओं का अनुरक्षण क्यों होता है इस बात से अमेरिकी समाज भाषा-शास्त्री अपनी जिज्ञासा शुरू करते हैं। जबकि भारतीय समाज भाषा- शास्त्री इस बात से अपना अध्ययन शुरू करते हैं, लोग अपनी भाषा को क्यों त्याग देते हैं?"

भ्रातृत्व की भावना सदियों से भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है जो आज तक अक्षुण्ण है। वेदों में भी कहा गया है –

"माता भूमि पुत्रो अहम पृथिव्यां"

ऐसी उदात्त भावना भारतीय संस्कृति के सिवाय और कहां पाई जा सकती है। वहीं "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" की भावना भी भारतीय संस्कृति की भावना है। जन्मभूमि पर संकट आने पर किस प्रकार पूर्व से लेकर पश्चिम तक उत्तर से लेकर दक्षिण तक हर भारतीय देश की रक्षा हेतु उठ खड़ा होता है। राष्ट्रीय एकता प्रत्येक भारतवासी का सबसे बड़ा धर्म है।

राष्ट्रीय एकीकरण परिषद (1961) ने राष्ट्रीय एकता को परिभाषित करते हुए लिखा–

"यह एक मनोवैज्ञानिक और शैक्षिक प्रक्रिया है जिसमें लोगों के हृदय में सामंजस्य और सुसंजन की भावना तथा सामान्य नागरिकता और राष्ट्र के प्रति निष्ठा का भाव निहित है।"

डॉ. जे. एस. वेदी के अनुसार,

"राष्ट्रीय एकता का अर्थ है देश के विभिन्न राज्यों के व्यक्तियों की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तथा भाषा विषयक विभिन्नताओं को वांछनीय सीमा के अंतर्गत रखना और उनमें भारत की एकता का समावेश करना।"

भारत एक अखंड प्रभुसत्ता संपन्न राष्ट्र है। जिसमें विभिन्न प्राकृतिक परिवेश वाले नाना प्रांत है। इन विभिन्न असमानताओं में अवगुंठित एकत्त्व का भाव ही हमारी राष्ट्रीय एकता है –

"रंग-रंग के रूप हमारे, अलग-अलग है क्यारी-क्यारी
लेकिन हम सब से मिलकर ही, इस उपवन की शोभा सारी।"

राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता पर बल देते हुए भारत के प्रथम प्रधानमंत्री स्व. पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था– "हमें संकीर्ण एवं संकुचित विचारधारा वाला, प्रांतवादिता, संप्रदायवादिता एवं जात-पात की भावना से ओतप्रोत नहीं होना चाहिए क्योंकि अभी हमें बहुत कुछ प्राप्त करना है। हम सभी जो भारतीय गणतंत्र के नागरिक हैं उन्हें भारतीय नागरिकों के मध्य एकता स्थापित करनी है और इस देश को शक्तिशाली बनाना है, शक्ति सामान्य अर्थ में नहीं, बल्कि विचारों में, क्रिया में, संस्कृति में एवं मानवता की शांति हेतु उन्हें शक्तिशाली बनाना है।"

राष्ट्रीय एकता बनाए रखने हेतु व्यापक राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का विकास करना परम आवश्यक है। प्रांतीयता, भाषावाद, क्षेत्रवाद की भावना से ऊपर उठकर राष्ट्रवाद की भावना विकसित करनी चाहिए। हमारे देश में भाषाओं के आधार पर राज्यों का गठन हुआ है परंतु फिर भी लोगों को एकता के सूत्र में बांधने का सबसे सशक्त साधन भी भाषा ही होती है। हमारे देश के विद्यार्थियों को भी इतना सक्षम बनाना है कि वह विभिन्नता में एकता की खोज कर सकें तथा अपने देश की सांस्कृतिक विरासत को समझकर उसका पुनर्मूल्यांकन कर सके, क्योंकि विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर भी समाज और संस्कृति का प्रभाव पड़ता है। वह किस प्रकार समाज के साधनों का उचित प्रयोग करके देश के सांस्कृतिक संरक्षण में अपना योगदान प्रदान कर सकते हैं, यह भी चिंतन के प्रमुख बिंदु है।

भावात्मक एकता समिति के अध्यक्ष डॉ. संपूर्णानंद के विचार अनुसार, "राष्ट्रीय एकता को उत्पन्न करने में शिक्षा महत्वपूर्ण कार्य कर सकती है।" उनका सुझाव था कि क्षेत्रीय भाषा के साथ एक आधुनिक भारतीय भाषा अनिवार्य रूप से पढ़ाई जानी चाहिए तथा शिक्षा द्वारा बालकों में उचित अभिरुचियों, दृष्टिकोण और संवेगों का विकास किया जाए, ताकि वह अपनी सांस्कृतिक विरासत की विशेषताओं और परंपराओं को समझ सके। शिक्षा आयोग (1964- 66) ने नई शिक्षा प्रणाली का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकीकरण निर्धारित किया। शिक्षा नीति की अनुशंसाओं में भाषा नीति पर ध्यान केंद्रित किया गया।

भाषा नीति के अनुसार

- एक समुचित भाषा नीति के विकास से सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकीकरण में महत्वपूर्ण सहायता मिलेगी।

- विद्यालयों व महाविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो और उच्चतर शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषा बनाई जाए।
- प्रादेशिक भाषा में पुस्तकें और साहित्य तैयार किए जाएं।
- हिंदी के अतिरिक्त सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं को अंतर्राज्यीय आदान-प्रदान का साधन बनाया जाए।
- भारत की भाषा और साहित्य, दर्शन, धर्म और इतिहास के अध्ययन को सुनियोजित ढंग से प्रोत्साहित किया जाए।
- भारत के भविष्य में आस्था उत्पन्न करने के लिए नागरिकता संबंधी पाठ्यक्रमों में संविधान के सिद्धांतों उसकी प्रस्तावना में उल्लिखित महान मूल्यों को स्थान प्रदान किया जाए।
- स्कूलों व कॉलेजों संबंधी शिक्षा का कार्यक्रम लोकतांत्रिक मूल्यों को मन में बैठाने की दृष्टि से अपनाया जाए।

राष्ट्रीय एकता की भावना से अपने देश की संस्कृति की रक्षा और सामाजिक उत्थान में भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। वहीं भाषा देश को एक सूत्र में पिरोने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

इस दृष्टिकोण से निम्नांकित साधनों व उपायों द्वारा भाषा समाज और संस्कृति का समन्वय स्थापित किया जा सकता है:-

विद्यार्थियों में भारतीय जीवन के मूल्यों समान नागरिकता, विविधता में एकता, लोकतंत्र, धर्म निरपेक्षता, समाजवाद न्याय, स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व में आस्था विकसित की जाए। भारतीय भाषाओं में ऐसी पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण किया जाए जिससे राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायता मिले। राष्ट्रीय एकीकरण के विकास हेतु सभी जातियों, संप्रदाय, भाषा और राज्यों में अधिक मेल उत्पन्न करने हेतु विद्यालयों में विभिन्न उत्सवों और त्यौहारों का समय-समय पर आयोजन किया जाए।

- देश की ऐतिहासिक धरोहर से परिचित कराने हेतु इतिहास शिक्षण अनिवार्य है।
- विभिन्न क्षेत्रों के महान व्यक्तियों के जीवन से परिचित कराया जाए।
- पाठ्यक्रम में विभिन्न बोलियों के लोकगीतों और कहानियों को स्थान दिया जाए।

- विद्यार्थियों को विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृतियों और भाषाओं से परिचित कराया जाए।
- भाषाई संकीर्णता दूर करने में भारत के जन- जन में राष्ट्रीयता की भावना भरने हेतु प्रचार-प्रसार माध्यमों का समुचित प्रयोग किया जाए।
- राष्ट्रीय एकता से संबंधित अध्ययन गोष्ठियों व कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए।
- पुस्तकालयों में संस्कृत व प्रादेशिक भाषा के समाचार पत्रों को स्थान दिया जाए।
- इंटरनेट जैसी आधुनिक तकनीकी के माध्यम से विभिन्न भारतीय भाषाओं के प्रचुर साहित्य संबंधी जानकारियां खोजने हेतु प्रेरित किया जाए।
- अहिंदी भाषी राज्यों में भी हिंदी व संस्कृत का व्यापक प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए।
- युवा उत्सव तथा अन्य कार्यक्रम पूरे देश में आयोजित करना चाहिए।
- सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास करना।
- एक भाषा के साहित्य का दूसरी भाषा में अनूदित साहित्य उपलब्ध कराना।

परिवार समाज का लघुकृत रूप है प्रत्येक परिवार का यह दायित्व है कि वह अपने पारिवारिक वातावरण में अपने समाज की संस्कृति को सन्निहित करें और संस्कृति का हस्तांतरण भावी पीढ़ी में करें। परिवार का उत्तरदायित्व है कि वह बच्चों के अंदर सामाजिक गुणों को विकसित करें।

एक ओर जहां राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में भाषा, समाज और संस्कृति की भूमिका निर्विवाद रुप से महत्वपूर्ण है वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय एकता की भावना से ही देशवासी अपनी संस्कृति की समन्वयात्मकता व विशेषताओं से अन्य देशों पर भी अपनी छाप छोड़ेंगे। भाषाई एकता राष्ट्र के नागरिकों की सबसे बड़ी एकता है जिसके द्वारा सामाजिक व सांस्कृतिक विरासत का हस्तांतरण किया जा सकता है। संस्कृति प्रकृति प्रदत्त नहीं होती वरन यह सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा अर्जित होती है। सामाजीकरण के माध्यम से ही वह अपनी संस्कृति को आत्मसात् करता है। इस प्रकार संस्कृति संस्कारों से संबंधित होती है जो वंश परंपरा व सामाजिक विरासत के संरक्षण के साधन है। सभ्यता व संस्कृति में असंतुलन की स्थिति सामाजिक विघटन को जन्म देती है। अतः आवश्यक है कि राष्ट्रीय एकता के लिए भाषा संबंधी वाद-विवाद का

अंत कर के संपूर्ण राष्ट्र की भाषाओं का सम्मान करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। विविध भाषा–भाषी लोगों की सांस्कृतिक विरासत और मूल्य तभी अक्षुण्ण रह सकेंगे जब भारतवासी राष्ट्रीय ऐक्य से ओतप्रोत रहेंगे और अपने सामूहिक प्रयत्नों से देश के शाश्वत मूल्यों और सांस्कृतिक धरोहर से अखिल विश्व को परिचित कराते रहेंगे।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारतीय संस्कृति व राष्ट्रीय एकता का शंखनाद संपूर्ण विश्व में करते हुए अभिव्यक्त किया–

"मनुज जीवन है अनमोल, साधना है वह एक महान।
सभी निज संस्कृति के अनुकूल, एक हों रचें राष्ट्र उत्थान।

इसलिए नहीं कि करें सशक्त, निर्बलों को अपने में लीन।
इसलिए कि हो राष्ट्र हित हेतु समुन्नति पथ पर सब स्वाधीन।"

प्रधान संपादक
शोध सरिता
द्विभाषिक
त्रैमासिक शोध पत्रिका
लखनऊ, उ.प्र.

❑ ❑ ❑

स्वच्छ पेयजल : मानवाधिकार का सवाल

–डॉ. विकास यादव
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान,
लाल बहादुर शास्त्री राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटपूतली (जयपुर)

'जल है तो जीवन है' यह बात सिर्फ स्लोगन के लिये नहीं है अपितु इसके गहरे निहितार्थ हैं। मनुष्य का शरीर जिन पांच तत्वों से मिलकर बना है उसमें जल भी अहम अवयव है। यही वजह है कि शुद्ध और पर्याप्त मात्रा में पानी तक पहुंच हर मनुष्य का अविभाज्य मानव अधिकार है। जुलाई, 2010 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने स्वच्छ जल की उपलब्धता को एक मानव अधिकार बनाने का प्रस्ताव पारित किया। प्रस्ताव में कहा गया कि स्वच्छ जल के अभाव में तो मनुष्य का जीवन ही संभव नहीं है, गरिमामय जीवन तो आगे की बात है। महासभा के प्रस्ताव के कुछ समय बाद सितंबर, 2010 में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद ने भी आम सहमति से प्रस्ताव पारित किया कि स्वच्छ जल व्यक्तियों के लिये मौलिक अधिकार है और इस अधिकार को सुनिश्चित कराया जाना सबका दायित्व है।[1] जब बात अधिकार की है तो इसमें पेयजल की पर्याप्तता, शुद्धता, सुलभता, निकटता की व्यवस्था बहुत अहम हो जाती है। प्रत्येक व्यक्ति के लिये जल की आपूर्ति निजी और घरेलू उपयोग के लिये पर्याप्त और निरंतर होनी चाहिये। पेयजल सुरक्षित होना चाहिये अर्थात यह सूक्ष्म जीवों, रासायनिक पदार्थों एवं रेडियोलॉजिकल खतरों से मुक्त हो। पेयजल शुद्धता के उन मानकों पर खरा उतरना चाहिये जो विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित किये गये हैं। पानी सहज सुलभ भी होना चाहिये अर्थात घर या कार्यस्थल से जल की उपलब्धता निकट की होनी चाहिये। पेयजल की आपूर्ति निःशुल्क भी होनी चाहिये ताकि आम जन इस अधिकार से वंचित नहीं रहे। भारतीय न्यायपालिका ने भी स्वच्छ पेयजल

को अनुच्छेद-21 के अन्तर्गत जीवन के अधिकार का हिस्सा माना है। अलग-अलग समय पर न्यायालय ने केन्द्र और प्रान्तों को इस निमित्त दिशा-निर्देश भी दिये हैं किंतु स्वच्छ पेयजल का हक अभी भी बड़ी आबादी को नहीं मिल पा रहा है।

भारतीय चिंतन परंपरा में प्रकृति प्रेम पर विशेष बल दिया गया है। गौरव ग्रंथों में पर्यावरण संरक्षण का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद का भूमि सूक्त पर्यावरण चेतना पर लिखा गया संभवतया पहला लिखित दस्तावेज है। आज भी नदियों को पूजनीय माना गया है। जनमानस में यह धारणा है कि गंगा नदी पवित्र है इसमें स्नान करने से व्यक्ति के सभी पाप धुल जाते हैं। केवल नदियों को ही पूजनीय नहीं माना गया है अपितु लोक परंपरा में स्थानीय जलाशयों, तालाबों, बावड़ियों के साथ भी पवित्रता और आत्मीयता का रिश्ता रहा है। धार्मिक अनुष्ठानों में अक्सर गांव के आस-पास के कुएं, तालाब या नदी के पानी का उपयोग होता है। गाँव के मंदिर के देवता को स्थानीय जलाशय से प्रतिदिन जल चढ़ाना भी एक आम परंपरा रही है। बहुत पहले, भारत के लोग वर्षा जल संचयन को एक 'पुण्य' कार्य के रूप में स्वीकारते थे। राजस्थान में आज भी सरोवर या तालाब बनाना पवित्र कार्य माना जाता है और लोग इस कार्य में श्रमदान करते हैं। ऐसा मानना है कि एक तालाब के निर्माण में योगदान 2-3 पीढ़ियों के लिए आशीर्वाद अर्जित करने के समान है। श्रावण मास में बरसात के मौसम में भगवान शिव के भक्त पैदल चल कर गंगा नदी से पानी लाते हैं जिसे कावड़ लाना कहते हैं और भगवान शिव का जलाभिषेक करते हैं। इसी तरह बिहार में प्रसिद्ध छठ पर्व नदी तट पर मनाया जाता है। इसमें डूबते सूर्य देव को प्रसाद, फल और जल चढाया जाता है। ऋग्वेद के अध्वर्यु सूक्त में राष्ट्र निर्माण की दस जिम्मेदारियां बताई गई हैं, जिसमें वर्षा जल संचयन को भी एक महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी बताया है। अतः जल के बिना भारतीय संस्कृति को परिभाषित करना कठिन है।

पेयजल संकट की भयावहता

'डे जीरो' किसी के लिये एक साधारण शब्द हो सकता है किंतु दक्षिण अफ्रीका के शहर केपटाऊन की जनता के लिये यह शब्द बहुत डरावना है। 'डे जीरो' का मतलब है- वह दिन जब नल से पानी आना बंद हो जाता है। पानी की किल्लत की स्थिति में किसी रिहायशी क्षेत्र को 'डे जीरो' घोषित किया जाता है। केपटाऊन शहर की जनता डे जीरो का सामना कर रही है। कई वर्षों से न्यून वर्षा के चलते सरकार ने लोगों को सप्ताह में दो बार नहाने और शौचालय में फ्लश की जगह टंकी के पानी के इस्तेमाल की हिदायत दी है।[3] केपटाऊन शहर का वर्तमान दुनिया के कई शहरों

का भविष्य है। विश्व के 200 शहर और 10 महानगर 'डे जीरो' की ओर बढ़ रहे हैं। विश्व के 80 से ज्यादा बड़े नगरों पर पिछले 20 साल में पानी की कमी ने विपरीत प्रभाव डाला है। इनमें बैंगलूरु, चेन्नई, लंदन, मियामी, बार्सिलोना, बीजिंग, टोक्यो, मेलबर्न, इस्तांबुल, काहिरा, मॉस्को, जकार्ता, सिडनी, साओ पाउलो, मैक्सिको सिटी और रोम शामिल हैं। वैसे तो पृथ्वी का दो तिहाई हिस्सा जलमग्न है किंतु पीने योग्य पानी सिर्फ एक से दो प्रतिशत के करीब है। अधिकांश पानी समुद्र में है जो खारा है। विश्व में समय-समय पर जल संकट पर अलग-अलग संस्थायें अध्ययन करती रही हैं और अपने प्रतिवेदनों से दुनिया को जलसंकट की भयावह तस्वीर से आगाह कराती रही हैं। ग्रामीण उप-सहारा में लाखों लोग अपने जलस्त्रोतों को मवेशियों को साझा कर रहे हैं। इससे आम जन हैजा, डायरिया आदि जल जनित रोगों की चपेट में आ रहे हैं। यूरोप के देशों में एक व्यक्ति प्रतिदिन औसत 200-300 लीटर पानी का उपभोग करता है वहीं मोजाम्बिक में एक व्यक्ति प्रतिदिन औसत 10 लीटर पानी का उपयोग करता है। उपर्युक्त तथ्य यह स्पष्ट करता है कि विकसित और अमीर देशों की विलासितापूर्ण जीवन शैली का खामियाजा गरीब और विकासशील देश भुगत रहे हैं। स्विमिंग पूल में नहाना, गाड़ी धोने के लिये घण्टों तक पानी बहाना, हर दिन नये-नये परिधान इस्तेमाल करना आदि प्रवृतियां जल संकट को जन्म देती हैं। विकसित और विकासशील देशों में जल संकट के साथ तकनीकी हस्तांतरण का मुद्दा करीब से जुड़ा है। विकसित देशों के पास जल के स्वच्छीकरण की तकनीकी है किंतु यह तकनीकी विकासशील और पिछड़े देशों को हस्तांतरित नहीं करना चाहते।

स्वच्छ जल के अधिकार में पेयजल की निकट उपलब्धता का प्रावधान है किंतु तीसरी दुनिया के देशों में आज भी पेयजल के लिये मीलों का सफर तय करना पड़ता है। एक रिपोर्ट के मुताबिक विश्व में 884 मिलियन लोग जलस्त्रोत से एक कि.मी. से अधिक दूरी पर रहते हैं। पेयजल संकट के असर से स्वास्थ्य का अधिकार, महिला एवं बाल अधिकार व्यापक रूप से प्रभावित हो रहा है। आज अधिकांश जगह पानी दूषित है पानी में अम्ल, वसा, क्षार, लवण आदि हानिकारक तत्व मिले होते हैं। प्रदूषित जल से हैजा, पेचिस, टाईफाईड, हेपिटाईटिस आदि रोग हो रहे हैं। प्रदूषित जल का ज्यादा दुष्प्रभाव बच्चों एवं गर्भवती महिलाओं पर पड़ा रहा है। यूनिसेफ की एक रिपोर्ट के मुताबिक पाँच साल से कम उम्र के बच्चों में लगभग आधी मौतें केवल पांच देश पाकिस्तान, भारत, चीन, कांगो, और नाइजीरिया में होती हैं। ये वो देश हैं जहाँ प्रदूषित जल सर्वाधिक है।[4] विश्व में करीब दो बिलियन लोगों के पास स्वच्छ पेयजल नहीं है, इससे जीवन का अधिकार संकट में है। जब पेयजल के लिये मीलों

का सफर तय करना पड़ता है तो इससे महिला एवं बाल अधिकार प्रभावित होते हैं। पानी की आपूर्ति एक घरेलू कार्य है और विकासशील देशों की सामाजिक संरचना में घरेलू कार्य को संभालने की जिम्मेदारी महिला की है। महिलाएं पेयजल के लिये मीलों का सफर तय करती हैं। अफ्रीका और एशिया में महिलाएं पानी एकत्रित करने के लिए औसतन छः किलोमीटर की दूरी तय करती हैं। इससे महिलाओं को आराम का वक्त नहीं मिल पाता है। काफी महिलाओं को गर्भपात की समस्या भी हो जाती है। महाराष्ट्र के एक सूखाग्रस्त गाँव में विवाह की एक नई प्रणाली ने जन्म लिया है। इसमें पानी एकत्रित करने के लिये एक से अधिक जीवनसाथी की व्यवस्था की गई है। इस व्यवस्था को 'वाटर-वाइफ' का नाम दिया गया है। निस्संदेह यह प्रतिगामी सोच का एक उदाहरण है, जहाँ स्त्रियों को पानी के पाइप या टैंकरों के विकल्प के रूप में देखा जा रहा है।[5] पेयजल संकट से बच्चों का स्वास्थ्य का अधिकार तो प्रभावित हो ही रहा है साथ में शिक्षा और मनोरंजन का अधिकार भी प्रभावित हो रहा है। दूरस्थ क्षेत्र से पेयजल आपूर्ति में महिलाएं अपने साथ बच्चों का सहारा लेती हैं जिससे बच्चे शिक्षा के अधिकार से वंचित हो जाते हैं। स्कूल से ड्रॉप आऊट दर पेयजल संकट ग्रस्त क्षेत्रों में अधिक है। संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार प्रसंविदा-1989 के अनुसार बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिये मनोरंजन एवं खेल-कूद की व्यवस्था बहुत अहम है किंतु पेयजल संकट के चलते दुनिया में करोड़ों बच्चे मनोरंजन के बुनियादी अधिकार से वंचित हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 47 के अंतर्गत स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराना राज्य का कर्त्तव्य है। इसके अतिरिक्त भारत में जल के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के मौलिक अधिकार का हिस्सा माना गया है। आंध्रप्रदेश पॉल्यूशन बोर्ड बनाम प्रोफेसर एम-वी नायडू केस में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि पीने का पानी जीवन के लिए एक मौलिक अधिकार है और राज्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने नागरिकों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराये।[6] इसके बावजूद भारत में पेयजल का गंभीर संकट है। उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़ और ओडिशा जैसे कुछ राज्यों में जलापूर्ति की स्थिति बेहद गंभीर है, जहाँ पाइपलाइन से आपूर्ति पाँच प्रतिशत से भी कम है। वर्तमान में सिक्किम भारत का एक ऐसा राज्य है जहाँ 99 फीसद घरों में नलों से पेय जल की आपूर्ति की जाती है। इसके बाद गुजरात का स्थान है जहाँ 75 फीसद लोगों को पाईपलाइन से पेयजल मिलता है। देश के ग्रामीण इलाकों में स्वच्छ पेयजल की स्थिति बेहद गंभीर है। सरकार द्वारा दिए गए आँकड़ों के अनुसार ग्रामीण भारत के 16.78 करोड़ घरों में से केवल 2.69

करोड़ घरों तक पाईप से पेयजल की आपूर्ति होती है। इसके अलावा 22 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों को पेयजल लाने के लिए आधा किलोमीटर और इससे अधिक दूर पैदल चलना पड़ता है। गाँवों में 15 फीसद परिवार बिना ढके कुंओं पर निर्भर हैं और कुछ अन्य लोग दूसरे अपरिष्कृत पेयजल संसाधनों जैसे- नदी, झरने, तालाबों आदि पर निर्भर हैं। नीति आयोग की रिपोर्ट के मुताबिक 2030 तक देश में पानी की माँग उपलब्ध जल वितरण की दोगुनी हो जायेगी। दिल्ली, बंगलुरु, चेन्नई और हैदराबाद समेत देश के 21 शहर गंभीर पेयजल संकट का सामना करेंगे। करीब 70 प्रतिशत प्रदूषित पानी के साथ भारत जल गुणवत्ता सूचकांक में 122 देशों में 120वें पायदान पर है। नीति आयोग ने कहा है कि देश में पानी की कमी नहीं है, बल्कि पानी के नियोजन की कमी है। राज्यों के बीच जल विवाद सुलझाना, पानी की बचत करना और बेहतर जल प्रबंधन कुछ ऐसे काम हैं जिनसे कृषि आमदनी बढ़ सकती है और गाँव छोड़कर शहर आये लोग वापस गाँव की ओर लौट सकते हैं।[7]

भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारों द्वारा हर नागरिक को स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता सुनिश्चित कराने के लिये कई कदम उठाये जा रहे हैं। केन्द्र सरकार के राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम के अंतर्गत सुरक्षित पानी सुलभ कराने का लक्ष्य रखा है। प्रत्येक ग्रामीण व्यक्ति को 70 लीटर स्वच्छ जल प्रति व्यक्ति प्रतिदिन उनके घरेलू परिसर के भीतर या 50 मीटर तक की दूरी तक प्रदान करना है। भारत सरकार का ध्येय सतही जल आधारित पाईप जलापूर्ति योजनाओं के माध्यम से 90 प्रतिशत ग्रामीण आबादी को एक दीर्घकालिक टिकाऊ समाधान के रूप में सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराना है। पीने के पानी में आर्सेनिक और फ्लोराइड संदूषण की समस्याओं को रोकने के लिए नीति आयोग ने सामुदायिक जलशोधन संयंत्रों को चालू रखने की सिफारिश की थी जिसके पश्चात् आर्सेनिक/फ्लोराइड प्रभावित ग्रामीण बस्तियों को सुरक्षित पेयजल उपलब्ध कराने के लिए 'राष्ट्रीय जल गुणवत्ता उपमिशन' शुरू किया। वर्ष 2018 में शुरू हुए 'स्वजल योजना' के माध्यम से ग्रामीण इलाकों में पाइपलाइन से जल आपूर्ति बढ़ाकर, देश के ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को सुरक्षित पीने के पानी की सुलभ सुविधा उपलब्ध करायी जा रही है। इस योजना को 28 राज्यों के उन 117 जिलों तक विस्तारित किया गया जिसमें राष्ट्रीय औसत के 44 प्रतिशत की तुलना में केवल 25 प्रतिशत पाइप्ड जलापूर्ति वाले आवास हैं।[8] राजस्थान सरकार 'जल मणि' योजना के माध्यम से 2024 तक हर घर को नल से जल उपलब्ध कराने के लिये प्रयासरत है।

कैसे सुनिश्चित हो स्वच्छ पेयजल की उपलब्धता

हर व्यक्ति तक पीने योग्य पानी की पहुंच सुनिश्चित करना आज दुनिया भर के देशों के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। इस चुनौती से कमोबेश सभी देश साझे और निजी स्तर पर निपटने का प्रयास कर रहे हैं। परंपरागत और नवीन तकनीक के सहारे पेयजल के अधिकार को सुनिश्चित करने के प्रयत्न चल रहे हैं किंतु अभी भी इस दिशा में कई महत्त्वपूर्ण कदम उठाने बाकी हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत हैं–

- नदी जोड़ो योजना पर गंभीरता से काम करना होगा। हमारे देश में सतह पर मौजूद पानी की कुल मात्रा 690 बिलियन क्यूबिक मीटर प्रतिवर्ष है, लेकिन इसका केवल 65 फीसदी पानी ही इस्तेमाल हो पाता है। शेष पानी बहकर समुद्र में चला जाता है।[9] प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के समय इस योजना पर काफी विचार विमर्श हुआ किंतु केन्द्र और राज्यों में तालमेल के अभाव के कारण यह योजना आगे नहीं बढ पायी है किंतु बढती आबादी को पेयजल की आपूर्ति के लिये हमें इस दिशा में गंभीर प्रयास करने होंगे।
- भारत में कुल उपलब्ध जल का करीब तीन–चौथाई जल का उपयोग सिर्फ सिंचाई के लिए होता है। अत: सिंचाई क्षेत्र में जल के किफायती उपयोग के लिये वर्षा आधारित खेती, प्राकृतिक खेती व सूखारोधी बीजों का चलन बढाना होगा। खेतों में सिंचाई के लिए बूंद–बूंद सिंचाई तथा फव्वारा पद्धति का प्रयोग करना चाहिए।
- वर्षा जल संचयन के लिये तालाब, चेकडैम, गेबियन स्ट्रक्चर, स्टॉप डैम, सोखता गड्ढा, अधोभूमि अवरोधक, रोक बांध, रिचार्ज शॉफ्रट, अस्थायी बांध, गली प्लग आदि विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिये।
- पृथ्वी पर उपलब्ध अधिकांश पानी खारा है। पृथ्वी पर मौजूद कुल पानी में से केवल 2.7 प्रतिशत ही मीठा है। शेष पानी पीने योग्य नहीं है। मीठे पानी का भी अधिकांश हिस्सा ध्रूवों पर बर्फ के रूप में स्थित है। ऐसे में यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि देश और विदेश में ऐसी तकनीकी पर काम हो जिससे समुद्र के लवणीय पानी को पीने योग्य बनाया जा सके।[10] विश्व के तकनीक रूप से समृद्ध देशों को एक साथ आकर पेयजल प्रोजेक्ट पर कार्य करना होगा।
- हमें अपनी परंपरागत जल संरक्षण प्रणाली को पुनर्जीवित करना होगा और इस प्रणाली को अमल में लाना होगा। राजस्थान में नाड़ी, वापी, टांका,

टोबा, खडीन, तालाब, झालरा, बेरी आदि परंपरागत जल संरक्षण प्रणाली हैं। सरकार और समाज को परंपरागत जल संरक्षण प्रणाली के उन्नयन की दिशा में गंभीर प्रयास करने होंगे। क्योंकि वर्षा जल का संरक्षण कर हम पेयजल की समस्या का बड़े स्तर पर हल कर सकते हैं।

- विश्व को पर्यावरण मित्र विकास की राह पर आगे बढ़ना होगा। अभी विकास की जिस राह पर हम आगे बढ़ रहे हैं वह पर्यावरण की कीमत पर हासिल किया जा रहा है। कल कारखानों की स्थापना एवं राजमार्गों के निर्माण के लिये जंगलों एवं चारागाहों को समाप्त किया जा रहा है। जिससे ग्लेशियर पिघल रहे हैं। ऐसे में सतत और पर्यावरण मित्र विकास की राह पर ही हम आगे बढ़ सकते हैं।
- जीवन शैली के स्तर पर बड़ा बदलाव करना होगा। नई पीढ़ी में सादगी का स्थान चकाचौंध भरा जीवन ले रहा है। भौतिकवादी जीवन का असर केवल स्वच्छ पेयजल के अधिकार पर ही नहीं पड़ रहा है अपितु संपूर्ण पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। अतः नई पीढ़ी में पर्यावरण संरक्षण के मूल्य को विकसित करना होगा। इस कार्य में परिवार, शिक्षण संस्थान, मीडिया, धार्मिक संस्थान और गैर सरकारी संगठनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

किसी समय स्वच्छ पानी का कोई संकट नहीं था। सीमित आबादी थी। जीवन शैली भी सादगी से परिपूर्ण थी। नदियों, कुओं, तालाबों, जोहड़ों, बावड़ियों आदि सार्वजनिक जलाशयों में स्वच्छ पानी होता था जिसका उपयोग सभी लोग पेयजल, सिंचाई एवं पशुपालन में करते थे। समय के साथ आबादी, शहरीकरण और नगरीकरण का विकास हुआ और विकास की इस तेज रफ्तार में शुद्ध पेयजल का हक कहीं पीछे छूट गया। आज चुनौती है कि सभी को पेयजल कैसे मुहैया कराया जाये। पेयजल के संकट को हल करने के लिये चौतरफा प्रयास करने होंगे। हमने अपने अनुभव के आधार पर कुछ सुझाव प्रस्तुत किये हैं जिन्हें अमल में लाकर स्वच्छ पेयजल के अधिकार को सुनिश्चित किया जा सकता है।

संदर्भ

1. सलमान रावी 'स्वच्छ जल बना मानवाधिकार, प्रस्ताव बाध्यकारी नहीं' 29 जुलाई, 2010, बीबीसी हिन्दी।

   https://www-bbc-com/storyworks/human/rights/innovators-of-tomorrow/this-is-water?

2. गुलाब कोठारी 'जल संरक्षण : पुनर्जीवित करनी होगी भारतीय संस्कृति' राजस्थान पत्रिका, 19 जनवरी, 2021, संपादकीय।

3. जूही मिश्रा 'जल संकट : केपटाऊन से क्या सीख सकता है भारत? नवभारत टाइम्स, 8 जुलाई, 2019, देश-विदेश, पृ.सं.-8

4. यूनिसेफ की रिपोर्ट-2021 पृ.सं.-141-142

5. प्रभात रैना 'वाईफ वाटर 'पानी की कमी से जूझ रहे भारत का नया कॉनसेप्ट' इंडिया टूडे मैगजीन, जून, 2022, पृ.सं.-37.

6. एम.लक्ष्मीकांत 'भारत का संविधान एवं राजव्यवस्था' टाटा मेग्राहिल प्रकाशन, नई दिल्ली, सातवां संस्करण-2022, पृ.सं.-44.

7. नीति आयोग का प्रतिवेदन-2022, पृ.सं.-23-24

8. रजा शास्त्री 'सात सौ करोड की स्वजल योजना को मंजूरी' संपादकीय, अमर उजाला, 5 फरवरी, 2019.

9. केन्द्रीय भू-जल बोर्ड की रिपोर्ट-2021, पृ.सं.-56

10. अवधेश मिश्र 'कैसे सुलभ हो स्वच्छ पेयजल' योजना अप्रेल-2023 ,अंक.11, पृ.सं-29

❑ ❑ ❑

जैविक हथियार विपदाः आधारभूत मानव अधिकारों के संरक्षण की आवश्यकता

–डॉ. राहुल तिवारी
सहायक आचार्य,
अटल बिहारी वाजपेयी स्कूल ऑफ लीगल स्टडीज,
सी.एस.जे.एम. विश्वविद्यालय (पूर्ववर्ती कानपुर विश्वविद्यालय),
कानपुर, उत्तर प्रदेश

बीज शब्दः जैविक हथियार विपदा, मानव अधिकार, संरक्षण, जीवाणुयुक्त हथियार, पर्यावरण प्रभाव, स्वास्थ्य प्रभाव, जैव-सुरक्षा, नियंत्रण।

सारांश

यह लेख जैविक हथियार विपदा के महत्व और आधारभूत मानव अधिकारों की संरक्षण की आवश्यकता पर ध्यान केंद्रित करता है। जैविक हथियारों के प्रयोग और उनके प्रभाव की बढ़ती चिंता दुनिया भर में विचारशीलता का कारण बन रही है। इस लेख में हम जैविक हथियारों के प्रकार, प्रभाव, नियंत्रण के पहल, और मानव अधिकारों के उल्लंघन के संबंध में विस्तृत विचार करेंगे। मानव अधिकारों की संरक्षा जैविक हथियार विपदा के खिलाफ सशक्त रणनीतियों का निर्माण करने में महत्वपूर्ण है। इस लेख में हम मानव अधिकार संगठनों के सहयोग की भूमिका, जैविक हथियारों से मानव अधिकारों की संरक्षा के लिए कार्रवाई की आवश्यकता, और संक्षेपण को भी समझने का प्रयास करेंगे। इस लेख का उद्देश्य जैविक हथियार विपदा के विषय में जागरूकता बढ़ाना है और मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए गतिशील समाधानों को प्रोत्साहित करना है।

प्रस्तावना

जैविक हथियार विपदा मानव सभ्यता के लिए एक विकट चुनौती है। इसका प्रभाव आधारभूत मानव अधिकारों की संरक्षण की आवश्यकता को जटिल बना रहा है। जैविक हथियारों का उपयोग अग्रणी वैज्ञानिक और संरक्षण संगठनों की चिंता का कारण बन रहा है, क्योंकि जैविक हथियारों के उपयोग करने से मानव अधिकारों की संरक्षा और सुरक्षा के लिए समस्याएं पैदा हो रही हैं।

इस लेख में हम जैविक हथियारों के प्रकार, प्रभाव, नियंत्रण की पहल, और मानव अधिकारों के उल्लंघन के संबंध में विचार करेंगे। हम देखेंगे कि मानव अधिकारों की संरक्षा जैविक हथियार विपदा के खिलाफ सशक्त रणनीतियों का निर्माण करने में क्यों महत्वपूर्ण है। हम इस लेख के माध्यम से मानव अधिकारों की संरक्षा के महत्व को प्रमुखता देंगे और संबंधित नीतिगत, कानूनी, और अंतरराष्ट्रीय पहलुओं के बारे में चर्चा करेंगे।

जैविक हथियार

जैविक हथियार एक चिंता का विषय है जो मानवता और पृथ्वी के लिए एक खतरा प्रतिष्ठित करता है। ये हथियार जीवाणु, कीटाणु, विषाणु और रोगाणु संक्रमणों के आधार पर विकसित होते हैं। इनका उपयोग संघर्ष करने या आक्रमण करने के लिए किया जाता है। जब ये हथियार मनुष्यों पर अपना प्रभाव डालते हैं, तो वे जीवांश और पर्यावरण के लिए विपरीत प्रभाव उत्पन्न कर सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप, जैविक हथियार विकसित करने और उपयोग करने की प्रयोगशाला, संस्थाओं और देशों के लिए एक महत्वपूर्ण सुरक्षा चुनौती है। यह नियंत्रित किया जाना चाहिए और अंतरराष्ट्रीय समझौतों के माध्यम से पूरी तरह से प्रतिबंधित होना चाहिए। जैविक हथियारों का उपयोग केवल वैज्ञानिक और तकनीकी विकास के बढ़ते हुए क्षेत्र में होना चाहिए।

जैविक हथियारों के प्रमुख प्रकार

जैविक हथियारों के कई प्रमुख प्रकार होते हैं, जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रकार निम्नलिखित हैं:

1. जैविक खतरे

जीवाणुयुक्त जैविक हथियार एक खतरनाक श्रेणी का हथियार होता है, जिसमें

विषाणुजन्य जीवाणुओं का उपयोग किया जाता है। इन हथियारों का उद्देश्य संक्रमण फैलाना और दुश्मन की सेना, जनसंख्या या प्रशासनिक ढांचे को कमजोर करना होता है।

2. जीवाणुयुक्त युद्धास्त्र

इनमें जीवाणुजन्य रोगाणुओं द्वारा उत्पन्न किए गए जीवाणु संक्रमण, जैसे कि आंत्रक रोग, प्लेग और अन्य रोगाणुजन्य संक्रमण होते हैं।

3. विषाणु युद्धास्त्र

इनमें विभिन्न प्रकार के विषाणु, जैसे कि इबोला घातक विषाणु, और अन्य संक्रमणात्मक विषाणु सम्मिलित होते हैं।

4. जैविक तत्व आक्रमण

इसमें विभिन्न तरीकों का उपयोग किया जाता है, जैसे कि विस्फोटकों और प्रक्षेपास्त्रों में संक्रमणात्मक तत्व डालकर आक्रमण करना।

जैविक हथियारों के प्रभाव

जैविक हथियारों के प्रभाव विशाल होते हैं और इन्हें उपयोग करने से व्यक्ति, समुदाय और देशों के लिए गंभीर परिणाम हो सकते हैं। इन हथियारों का उपयोग अत्यधिक नुकसानकारी हो सकता है। ये हथियार जीवाणुओं या जीवाणुजन्य तत्वों का उपयोग करके विपदाओं को उत्पन्न करने के लिए बनाए जाते हैं। इन हथियारों के कुछ विशेष प्रभाव निम्नलिखित हो सकते हैं:

1. स्वास्थ्य पर प्रभाव

जैविक हथियारों के प्रयोग से संक्रमण फैल सकता है जिससे व्यक्ति या जनसंख्या के स्वास्थ्य पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ सकता है। इनके प्रयोग करने से बीमारियों के प्रसार और मृत्यु का खतरा बढ़ सकता है।

2. सामरिक और राजनीतिक प्रभाव

जैविक हथियारों का उपयोग राष्ट्रीय सुरक्षा और युद्ध के क्षेत्र में राजनीतिक प्रभाव डालता है। इन्हें उपयोग करने वाले देशों का बल और भूमिका परिवर्तित हो सकती है और इससे गठबंधनों, संधि, संगठनों और समझौतों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ सकता है।

3. वातावरणीय प्रभाव

जीवाणुयुक्त जैविक हथियारों का उपयोग पर्यावरण पर भी भारी प्रभाव डाल सकता है। ये हथियार वनस्पति, पशु–पक्षी और पानी के संसाधनों को भी प्रभावित कर सकते हैं और प्राकृतिक संतुलन को बिगाड़ सकते हैं।

मानव अधिकारों के संरक्षण का महत्व

जैविक हथियारों के संबंध में मानव अधिकारों का संरक्षण एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। इन हथियारों का उपयोग मानवता पर नुकसानकारी प्रभाव डाल सकता है, जिससे विधिक अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार, जीवन का अधिकार, स्वास्थ्य, और मानवीय गरिमा के अधिकार को प्रभावित किया जा सकता है।

ये हथियार आतंकवादियों और अनाधिकृत तत्वों द्वारा अनुचित रूप से प्रयोग किए जा सकते हैं जो मानव अधिकारों को उल्लंघित करते हैं। जीवाणुयुक्त जैविक हथियारों के प्रयोग से सीधे और असीमित रूप से व्यक्तियों के जीवन, स्वास्थ्य और संपत्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

मानव अधिकारों की संरक्षा हमारी सामरिक सुरक्षा और सामरिक आदालतों की जिम्मेदारी है। संयुक्त राष्ट्र द्वारा बनाए गए अंतरराष्ट्रीय कानूनों और समझौतों के माध्यम से जैविक हथियारों के उपयोग को नियंत्रित किया जाता है, जिससे मानव अधिकारों के संरक्षण को सुनिश्चित किया जा सकता है। इसके अलावा, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जागरूकता अभियान, शिक्षा, और संवेदनशीलता को बढ़ावा देने की आवश्यकता होती है ताकि मानव अधिकारों के महत्व को समझा जा सके और इनकी सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।

मानव अधिकारों के संरक्षण की आवश्यकता

मानव अधिकारों के संरक्षण की आवश्यकता विश्वभर में मानवीय विकास, सामरिकता, न्याय और समानता के मूल्यों की प्रतिष्ठा करती है। निम्नलिखित कुछ कारण हैं जिनके कारण मानव अधिकारों के संरक्षण की आवश्यकता होती है:

- **मानव अधिकारों की गरिमा:** मानव अधिकारों का संरक्षण, हर व्यक्ति की गरिमा और महत्व की पहचान कराता है। हर व्यक्ति को समान मान्यता, सम्मान और जीवन की सुरक्षा की जरूरत होती है।
- **न्याय प्राप्ति:** मानव अधिकारों का संरक्षण सामान्यतः न्याय के मूल्यों को

प्रबल करता है। हर व्यक्ति को न्यायपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा होती है, जहां उनके अधिकारों को मान्यता प्राप्त होती है और उन्हें उचित संरक्षण मिलता है।

- **सामरिकता और समानता:** मानव अधिकारों का संरक्षण, सामरिकता और समानता के मूल्यों की प्रतिष्ठा करता है। सभी व्यक्तियों को निश्चित अधिकारों, सुविधाओं और अवसरों का उचित और बराबर दर्जा प्राप्त होना चाहिए, अन्यथा सामाजिक और आर्थिक असमानता बढ़ सकती है।
- **विकास और प्रगति:** मानव अधिकारों का संरक्षण व्यक्तियों को स्वतंत्रता, शिक्षा, स्वास्थ्य और विकास के लिए आवश्यक मार्ग प्रदान करता है। जब लोगों के अधिकार सुरक्षित होते हैं, तो उन्हें अपनी संपूर्ण क्षमता को विकसित करने का मौका मिलता है।
- **अधिकारों की प्रतिस्थापना:** मानव अधिकारों का संरक्षण एक समाज में उत्पन्न अनुचितताओं, अत्याचारों और अन्याय के खिलाफ लड़ाई के लिए महत्वपूर्ण है। इसके माध्यम से लोगों को अपने अधिकारों को प्रतिष्ठित करने, संघर्ष करने और अन्याय के विरुद्ध मुकाबला करने का सामर्थ्य मिलता है।

इन सभी कारणों से, मानव अधिकारों के संरक्षण की आवश्यक है ताकि समाज में न्याय, समानता और मानवीय विकास के मूल्यों की प्राथमिकता बनी रहे।

जैव-हथियारों पर अन्तरराष्ट्रीय अधिनियम और संगठन

जैव-हथियारों के बारे में अन्तरराष्ट्रीय कानून कई अनुबंधों, संधियों और संगठनों द्वारा निर्धारित किए गए हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण अधिनियम और संगठन निम्नलिखित हैं:

- **जैविक और विषाक्त हथियार अभिसमय:** यह अभिसमय 1972 में हुआ था और इसका उद्देश्य जैव-हथियारों के उपयोग, उनके विकास, उत्पादन, दुरूपयोग और रखरखाव को नियंत्रित करना है। यह संगठन जैव-हथियारों के उत्पादन और वाणिज्यिक क्रियाओं को प्रतिबंधित करता है।
- **रासायनिक युद्ध अभिसमय:** यह अभिसमय 1997 में हुआ था और इसका उद्देश्य रासायनिक हथियारों के विकास, उत्पादन, प्रयोग और

संचालन को प्रतिबंधित करना है। इसका लक्ष्य संयुक्त राष्ट्र सदस्य देशों को रासायनिक हथियारों के निरोधन और नष्टीकरण के लिए सहयोग करना है।

- **पारंपरिक हथियारों पर अभिसमय:** यह अभिसमय जैव-हथियारों के अलावा विभिन्न प्रकार के असामान्य युद्धिय हथियारों को नियंत्रित करने के लिए बनाया गया है। इसका उद्देश्य हथियारों के प्रयोग को सीमित करना, सिविल लोगों की रक्षा करना और युद्ध साधनों के मानवीय प्रभावों को कम करना है।
- **संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद:** संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद, रासायनिक और जैव-हथियारों के मसौदों के प्रतिबंधित उत्पादन, उत्पादन और प्रयोग पर प्रभावी संयुक्त कार्रवाई को संचालित करता है। यह संस्था जैव-हथियारों के निष्पादन और वाणिज्यिकीकरण से संबंधित प्रश्नों को नियंत्रित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र सदस्य देशों के बीच सहयोग करता है।

ये संगठन और संधियाँ जैव-हथियारों के विकास, उत्पादन, प्रयोग और वाणिज्यिकीकरण को नियंत्रित करने के लिए अपने सदस्य देशों के बीच सहयोग करती हैं। इन कानूनों और संगठनों का उद्देश्य मानवता की सुरक्षा को सुनिश्चित करना है और जैव-हथियारों के प्रयोग से होने वाले नुकसानों को रोकना है।

मानव अधिकार संगठनों की भूमिका

मानव अधिकार संगठन जैविक हथियारों एवं मानव अधिकारों के संबंध में विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मानव अधिकार संगठन इस मामले में एकाग्रता और सहयोग के प्रदाता हैं, जिससे सुरक्षा, अस्तित्व और मानवीयता को बढ़ावा मिलता है। मानव अधिकार संगठन, जैविक हथियारों एवं मानव अधिकारों के संबंध में निम्नलिखित भूमिकाओं का संपादन करते हैं:

- **शिक्षा और जागरूकता:** मानव अधिकार संगठन, मानव अधिकारों और जैविक हथियारों के बारे में जागरूकता बढ़ाने और शिक्षा को प्रोत्साहित करने का महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इसके माध्यम से, समुदायों को जैविक हथियारों के उपयोग के प्रभावों और मानव अधिकारों के महत्व के बारे में जागरूक बनाया जा सकता है। इसके लिए शिक्षा, संगठन, साझा जानकारी और संचार के माध्यम से जागरूकता को बढ़ाया जा सकता है।
- **नीति निर्माण में सहयोग:** मानव अधिकार संगठन, मानव अधिकारों और

जैविक हथियारों के संरक्षण के लिए नीति निर्माण में सहयोग करते हैं। यह संगठन, अंतरराष्ट्रीय संगठनों, सरकारों और नागरिक समुदायों के साथ मिलकर नीतियों और कानूनों को बनाने, प्रभावी नियंत्रण के उदाहरण साझा करने और अनुपालन को सुनिश्चित करने में मदद करते हैं।

- **अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर सहयोग:** मानव अधिकार संगठन, जैविक हथियारों और मानव अधिकारों के मुद्दों को अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उठाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह समुदाय अंतरराष्ट्रीय संगठनों जैसे कि संयुक्त राष्ट्र, विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व वातावरण संगठन आदि के साथ सहयोग करके जैविक हथियारों के प्रभाव और मानव अधिकारों के मुद्दों को अंतरराष्ट्रीय पटल पर प्रस्तुत करते हैं। इसके माध्यम से अधिकारों की संरक्षा और न्याय के मामलों में सुधार करने के लिए प्रयास किए जा सकते हैं।
- **जांच, प्रतिक्रिया और संगठन:** मानव अधिकार संगठन, जैविक हथियारों के प्रभाव और मानव अधिकारों के उल्लंघन के मामलों की जांच करने में मदद करते हैं। समुदाय संगठन और आपातकालीन संगठन जैसे कि अधिकार संरक्षण संगठन, लोकतांत्रिक संगठन आदि के माध्यम से जानकारी संकलन, सचेतता का प्रचार करने, उच्चाधिकार समिति बनाने और उल्लंघन की जांच करके मानवीयता की प्रतिष्ठा बनाए रखते हैं।
- **साझा संपदा का संरक्षण:** जैविक हथियारों और मानव अधिकारों की संरक्षा में मानव अधिकार संगठन द्वारा साझी संपदा के संरक्षण की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। जब हम जैविक हथियारों या जीवाणु हथियारों का उपयोग करते हैं, तो उनका प्रभाव अन्य देशों और समुदायों पर भी होता है। मानव अधिकार संगठन इसे समझते हैं और संरक्षण के लिए साझा प्रयासों को बढ़ावा देते हैं। इसके लिए, समुदायों के बीच जैविक संसाधनों, प्रौद्योगिकी और वैज्ञानिक ज्ञान के साझीकरण, तकनीकी सहयोग और संबंधित अनुसंधान का समर्थन किया जा सकता है।

इस तरह, मानव अधिकार संगठन जैविक हथियारों और मानव अधिकारों के संबंध में जागरूकता, नीति निर्माण, सहयोग, संगठन और साझा संपदा के संरक्षण में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह मानवीय सुरक्षा, न्याय, समानता और विकास को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है।

जैविक हथियारों से मानव अधिकारों के संरक्षण हेतु कार्रवाई की आवश्यकता

जैविक हथियारों से मानव अधिकारों के संरक्षण हेतु कार्रवाई करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस मामले में निम्नलिखित कुछ कार्यवाइयाँ संभव हैं:

- **नियंत्रण और प्रतिबंध:** जैविक हथियारों के व्यापार, उत्पादन और उपयोग पर नियंत्रण और प्रतिबंध लगाना मानव अधिकारों की संरक्षा के लिए अत्यंत आवश्यक है। अंतरराष्ट्रीय समुदायों और सरकारों को जैविक हथियारों के अनुसंधान, विकास और व्यापार के लिए संबंधित कानूनों और अन्तरराष्ट्रीय समझौतों का समर्थन करना चाहिए। इसके अलावा, मानव अधिकारों की संरक्षा के लिए अनुगमन, निगरानी और प्रतिबंध का पालन करने के लिए उच्चाधिकार संचालन करने की आवश्यकता है।
- **जागरूकता और शिक्षा:** जैविक हथियारों के प्रभाव और मानव अधिकारों के उल्लंघन के संबंध में जागरूकता और शिक्षा को बढ़ाना महत्वपूर्ण है। सामुदायिक संगठनों, सरकारों और अन्य संगठनों को जैविक हथियारों के उपयोग के प्रभावों, मानवीय दुष्प्रभावों और अधिकारों की संरक्षा के लिए जागरूकता अभियान चलाना चाहिए। जनता को जैविक हथियारों के प्रभावों के बारे में सचेत करने के लिए शिक्षा कार्यक्रम और जागरूकता प्रशिक्षण योजनाएं आयोजित की जानी चाहिए।
- **सामरिक और न्यायिक कार्रवाई:** जब जैविक हथियारों से मानव अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो सामरिक और न्यायिक कार्रवाई की आवश्यकता होती है। अपराधों के लिए शक्तिशाली कानूनी प्रणाली होनी चाहिए और दोषियों को सजा देने के लिए कानूनी प्रक्रियाओं का पालन किया जाना चाहिए। समर्थन के लिए न्यायिक संरचनाओं को मजबूत बनाना, गवाहों की सुरक्षा और साक्ष्यों की सुरक्षा को बढ़ावा देना आवश्यक है।
- **सहयोग और संगठन:** जैविक हथियारों से मानव अधिकारों की संरक्षा के लिए सामरिक संगठनों, सरकारों, गैर-सरकारी संगठनों, शैक्षणिक संस्थाओं और समुदायों के बीच सहयोग और संगठन की आवश्यकता होती है। संगठनों को जैविक हथियारों के व्यापार और उपयोग पर प्रतिबंधों की अधिसूचना और उनके प्रभावों के संबंध में विज्ञान, नीति, औद्योगिक अभियांत्रिकी और आपातकालीन प्रबंधन के विकास के लिए कार्य करना

चाहिए। सहयोग और संगठन द्वारा एकजुटता बढ़ाने से मानव अधिकारों की संरक्षा में सुधार हो सकता है।

इन सभी कार्रवाइयों के माध्यम से, जैविक हथियारों से मानव अधिकारों की संरक्षा में सकारात्मक परिवर्तन प्राप्त किए जा सकते हैं।

उपसंहार

जैविक हथियारों की विपदा मानव समाज के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण मुद्दा है और इसके संबंध में आधारभूत मानव अधिकारों की संरक्षा की आवश्यकता है। ये हथियार अपनी प्राकृतिक प्रभावशीलता के कारण अद्यतनीय और संक्रामकता में विशेष खतरा प्रस्तुत कर सकते हैं। इनका उपयोग अशांति, विरोध और नुकसान के कारण हमारी सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संरचनाओं को भी प्रभावित कर सकता है।

मानव अधिकारों की संरक्षा और जैविक हथियारों के प्रभावों के बीच एक संतुलन स्थापित करना महत्वपूर्ण है। नियंत्रण, प्रतिबंध, जागरूकता, शिक्षा, साझा संपदा की संरक्षण, सहयोग और न्यायिक कार्रवाई जैसे उपाय इस मामले में महत्वपूर्ण हैं।

अंततः, हमारा उत्तरदायित्व है कि हम जैविक हथियारों के उपयोग से पैदा होने वाले संक्रामकता, आर्थिक हानि, जीवाणु बंदिश, सामाजिक असंतोष और मानवीय अधिकारों के प्रति धार्मिक और नैतिक उल्लंघनों के प्रभावों को समझें और उनकी संरक्षा के लिए आवश्यक कार्रवाई करें। हमें सुनिश्चित करना होगा कि जैविक हथियारों के उपयोग में संतुलन और समान्यता हो, ताकि हम एक सुरक्षित, न्यायपूर्ण और स्थायी समाज की दिशा में अग्रसर रह सकें।

सहायक संदर्भ ग्रंथ

1. जाखड़ दिलीप, मानवाधिकार, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर, 2017।
2. अग्रवाल, एच0 ओ0, अंतरराष्ट्रीय विधि एवं मानव अधिकार, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2015।
3. चौधरी महेंद्र और परिहार हरिराम, मानव अधिकार और सामाजिक न्याय, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2020।
4. प्रो. दूगड बच्छराज एवं डॉ. कुण्डलिया बन्दना, मानवाधिकार, (एन. पी.), कल्पना प्रकाशन, 2022।

5. डॉ. कपूर, एस. के., मानव अधिकार एवं अंतरराष्ट्रीय विधि, सेंट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 2017।

6. डा. त्रिपाठी टी. पी., मानव अधिकार एवं अंतरराष्ट्रीय विधि, इलाहाबाद ला एजेन्सी, इलाहाबाद, 2015।

❑ ❑ ❑

मानवाधिकारों के संरक्षण में राजस्थान के संत समाज की भूमिका

–डॉ. सर्वेश कुमार
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान,
बी.एन.डी.राजकीय कला महाविद्यालय, चिमनपुरा(जयपुर)

राजस्थान भौगोलिक रूप से विकट प्रदेश अवश्य है किंतु यहाँ की संत परंपरा गौरवशाली रही है। संतों की शिक्षाएं आदिकाल से समाज का पथ प्रदर्शन करती रही हैं। यहाँ सामाजिक उत्थान एवं मानवीय विकास में संतों का योगदान इतिहास की किताबों से ज्यादा जनमानस में दर्ज है। संत समाज ने अपने कृत्य और उपदेश के जरिए हर उस कुरीति का विरोध किया है जो मानवीय गरिमा का हनन करती है। राजस्थान का संत समाज सदियों से सामंतशाही, पुरुषसत्तात्मक सोच और सामाजिक बुराइयों के खिलाफ खड़ा रहा है और पर्यावरण संरक्षण, स्त्री–पुरूष समानता एवं सामाजिक एकता के मूल्य का पोषण किया है। यों तो संत की कोई जाति या धर्म नहीं होती किंतु राजस्थान के संत समाज में राजस्थान की असली तस्वीर दिखती है। यहां संत केवल पुरूष नहीं हैं अपितु स्त्रियां भी हैं। संत मीराबाई, सहजो बाई, गवरी बाई, संत राना बाई आदि प्रसिद्ध महिला संत हुई हैं। यहाँ संत सिर्फ एक जाति से नहीं रहे हैं अपितु अलग–अलग जाति से आते हैं। मीरा बाई का जन्म राजपूत समुदाय में हुआ, संत जसनाथ जन्म से जाट थे, देवनारायण गुर्जर समुदाय से थे और संत रामदास मेघवाल जाति से थे। जाति की तरह ही संत समाज में धर्म की विविधता भी रही है। संत ख्वाजा मुईनुदीन चिश्ती, शेख हमीदुद्दीन नागौरी, हजरत शक्कर पीर, नरहड़ पीर, संत रज्जब, संत लालदास और ताज बेगम प्रमुख मुस्लिम संत हुए हैं।

राजस्थान के संत समाज में क्षेत्रीय व्यापकता भी है। मारवाड, मेवाड़, हाड़ौती, ढुढाड़, बागड़, शेखावाटी, बृज और मेवात क्षेत्र के अलग-अलग संत हुए हैं। संत समाज की इस विविधता और व्यापकता का असर यह रहा कि इनके उपदेशों और कृतित्व का लाभ समाज के सभी क्षेत्रों और सांस्कृतिक समूहों को मिला।

राजस्थान के संत समाज ने अपनी शिक्षाओं से केवल मरूप्रदेश का उत्थान नहीं किया अपितु भारत भर में उनके बताए रास्ते को अनुकरण मिला है। मीरा का जीवन केवल राजपरिवार से संघर्ष और कृष्ण प्रेम की कहानी नहीं है अपितु इनके जीवन से स्त्री विमर्श को ताकत मिली है। संत जांभोजी के काम को याद किये बिना पर्यावरण संरक्षण की हर बहस अधूरी है। संत मुइनुद्दीन चिश्ती उसी सूफी परंपरा के अग्र वाहक हैं जहाँ से भारत में कौमी एकता की मुहिम को आगाज मिलता है। प्रदेश से बाहर भी राजस्थान के संतों की स्मृति में मेले और त्योहार आयोजित होते हैं। थार के लोक देवता बाबा रामदेव की मान्यता तो सरहद पार पाकिस्तान तक है। सरहद पार के जातरू रामदेवरा आते हैं। राजस्थान का संत समाज अपने पीछे एक गौरवशाली विरासत छोड़ कर गया है, उसी विरासत में मानवाधिकार के संघर्ष की कहानी है जिसे हम बिंदुवार विश्लेषित कर रहे हैं:-

कौमी एकता का संदेश

मानवाधिकार की फसल कौमी एकता की भूमि पर उपजती है। भाईचारे के अभाव में समाज में हिंसा, घृणा, षड्यंत्र और अविश्वास फैलता है। संत समाज का प्राथमिक कार्य समाज को एकजुट करना रहा है। जाति, धर्म, भाषा, बोली आदि से जुड़ी विविधता हर समाज में होती है। संतों का प्रयास इन विविधताओं को साथ लेकर एक सतरंगी संस्कृति के निर्माण का रहा है। राजस्थान के संत समाज ने केवल कौमी एकता की बात नहीं की है अपितु इसे अपने जीवन में जी कर दिखाया है। मीरा ने संत रैदास को अपना गुरू माना जिनका जन्म दलित परिवार में हुआ था। मीरा बाई को समर्पित चितौड़ सहित राजस्थान के कई मंदिरों में मीरा के साथ संत रैदास को भी स्थान और सम्मान मिला है। इसी तरह का संदेश रामदेवरा में संत रामदेव ने ड़ालीबाई को अपना शिष्य बना कर दिया। ड़ाली बाई एक दलित बालिका थी। उसने लोकसंत रामदेव से दीक्षा ली। आज भी रूणेचा में रामदेव के साथ ड़ालीबाई का भी स्थान है। रामदेवजी के मेघवाल भक्तों को 'रीखिया' कहा जाता है। रामदेव जी हिंदू-मुस्लिम समन्वय के प्रतीक भी हैं क्योंकि रामदेव जी को मुस्लिम रामसापीर कहते हैं। मरूप्रदेश में कौमी एकता की मुहिम को आगे बढाने में मुस्लिम संतों का

भी अहम योगदान रहा है। संत मावजी ने भी जांत-पांत और अस्पृश्यता का विरोध किया। मावजी ने अछूतों को भी सम्मानजनक स्थान दिया और उन्हें 'साध' की संज्ञा दी। राजस्थान के गांवों में आज भी पीर बाबाओं की मजारें है। ऐसे भी गांवों में पीर बाबा की मजार हैं जहाँ एक भी मुस्लिम परिवार नहीं है। श्रद्धालु मजार पर चद्दर चढाते हैं। त्योहारों पर एकत्रित होते हैं। संत रज्जब जी जन्म से मुस्लिम थे और संत दादू दयाल के शिष्य थे। संत रज्जब ने रज्जबवाणी में लिखा है कि-

"हिंदू तुरक सुनो रे भाई, काहू से मत होहु दुख दाई।
बीज्या होहि उधारा देणा, किया न कांठे जाई।।"[1]

रज्जब जी हिंदू और मुसलमानों से कहते हैं कि हमारी बात सुनो तुम किसी के लिए भी दु:खदाई मत बनो। जैसे बोया हुआ उगता है, उधार दिया गया वापस आता है, वैसे ही अपने किए कर्म का फल अपने पास ही आता है, दूर नहीं जाता। निरंजनी संप्रदाय के प्रसिद्ध संत हरिदास जी ने भी 'हरिपुरुष की वाणी' में हिन्दू-मुस्लिम एकता की पैरवी और ऊँच-नीच का विरोध किया है। संत हरिदास कहते हैं-

"जाति बरन-कुल आस्रम मान बड़ाई खोय।
जब सतगुरू के पग लगै साँच शिष्य ह्वै सोय।।"[2]

जब जाति और कुल की पहचान को भूलकर गुरू के चरणों में बैठोगे तब सच्चा शिष्य कहलाओगे। राजस्थान में 'अणुव्रत' आंदोलन के प्रणेता आचार्य तुलसी कहते थे कि "मैं सबसे पहले मानव हूँ, फिर धार्मिक, उसके बाद जैन और धर्माचार्य।" संत धन्ना, संत पीपा, जाम्भोजी, जसनाथ जी, संत दादू दयाल, मीरा, संत रानाबाई आदि संतों ने भी सामाजिक समरसता का संदेश दिया है। राजस्थान के संतों ने कौमी एकता के विचार को अपने जीवन में जिया है। इस तरह राजस्थान के संतों ने सांस्कृतिक दूत की भूमिका निभाई।

महिला अधिकार का समर्थन

राजस्थानी संत काव्य में स्त्री विमर्श को प्रोत्साहन मिला है। महिला अधिकारों की पैरवी सिर्फ महिला संतों ने नहीं की है अपितु पुरूष संतों ने भी की है। संत जसनाथ जी ने अनुयायियों को आचरण के जो 36 नियम बताये हैं उनमें 12वीं प्रविष्टि में कन्या विक्रय निषेध की बात कही गई है अर्थात पिता अपनी पुत्री के विवाह के समय पैसे नहीं लेगा। 18वीं प्रविष्टि में स्त्री सम्मान और परस्त्रीगमन निषेध की

बात कही गई है। संत जांभोजी ने अपने अनुयायियों के लिये जिन 29 सिद्धान्तों का निरूपण किया है उसमें 15वें सिद्धान्त में प्रसूति काल में महिला को काम से आराम देने और देखभाल की बात कही गई है। गुरु गोविन्द गिरी जब जनजातीय समाज में कन्या वध, डाकण प्रथा, वधू मूल्य आदि प्रथाओं के निषेध की बात करते हैं तो महिला अधिकार का ही समर्थन करते हैं। संत पीपा ने सभी के लिए समान गरिमा को रेखांकित करते हुए लिखा है कि–

"ना को पुरिस नहीं को नारी, ना को दाता ना कोई भिखारी।
ना का रंक नहीं को राना, लघु दीरघ झूठ करि जाना।।"[3]

अर्थात स्त्री, पुरूष, दाता, भिखारी, राजा, रंक, छोटे, बड़े का कोई भेद नहीं है। सभी मनुष्य समान हैं। संत मीरा के काव्य में स्त्री विमर्श को जो धार मिली है वह कदाचित किसी अन्य संत काव्य में नहीं है। मीरा ने पितृसत्ता और सामंतशाही के खिलाफ मुखर हो कर लिखा है–

"हार सिंगार सभी ल्यौ अपना, चूड़ी कर दी पटकी।
मेरा सुहाग अब मोकूं दरसा, और न जानें घट की।
महल किला राणा मोहि न चाहिए, सारी रेशम पट की।
हुई दीवानी मीरा डोलें, केस लटा सब छिटकी।"[4]

उपर्युक्त पद में मीरा ने स्त्री चेतना का जो शंखनाद किया है मध्यकाल में ऐसा लिखना सहज नहीं था। स्त्री पर आरोपित लोक लाज के सब बंधन तोड़ देती है। पति की मृत्यु पर मीरा सती नहीं हुई। मीरा लिखती हैं कि–"भजन करस्यां सती न होस्यां मन मोह्यों धण नामी।" एक पद में मीरा विद्रोही स्वर में कहती हैं कि–

"चौरी करूं न मारगी, नहीं मैं करूं अकाज।
पुन्न के मारग चालता, झक मारो संसार।।"[5]

स्त्री चेतना पर मीरा ने मध्य युग में जो लिखा वह आज भी प्रासंगिक है। सामंती पृष्ठभूमि से निकलकर मीरा ने अपने काव्य और जीवन से स्त्री विमर्श को आधार दिया है। मीरा के काव्य में सामंती समाज और संस्कृति की जकड़न के बेचौन स्वर को मुखर अभिव्यक्ति मिली है। मीरा के काव्य में स्वतंत्रता की चेतना जितनी आध्यात्मिक है उतनी सामाजिक भी है।

नशा मुक्ति खिलाफ काम

संतों की शिक्षाओं और वाणियों में एक बात साझा मिलती है कि अधिकांश संतों ने अपने अनुयायियों को नशे के सेवन से बचने की सलाह दी है। सदाचार की नियमावली में नशा परित्याग की प्रविष्टि अवश्य मिलती है। संत जांभोजी ने सदाचार के जो 29 नियम बताये हैं उनमें तीन नियमों का संबंध नशा मुक्ति से ही है। 12वें नियम में कहते हैं 'तंबाकू का सेवन नहीं करना, 13वाँ नियम भांग नहीं पीने की हिदायत देता है तथा 15वें नियम में मद्यनिषेध की हिदायत दी गई है। 'संप सभा' के संस्थापक गोविन्द गिरी भी बागड़ के लोगों को मांस और मदिरा से दूर रहने की बात कहते हैं। संत दादू दयाल और रज्जबजी की शिक्षाओं में भी नशा मुक्ति का संदेश मिलता है। संत लालदास जी ने मेव समाज में भांग, शराब, तंबाकू के निषेध पर बल दिया। संत जसनाथ जी ने अपने ग्रंथ 'सिंभूधड़ा' में आचरण के 36 नियमों का विवरण दिया है। 17वीं प्रविष्टि में हुक्का, तम्बाकू, भांग और लहसून का त्याग करने की कहते हैं और 27वीं प्रविष्टि में शराब से दूर रहने की सलाह दी गई है। राजस्थानी समाज में तंबाकू, अफीम, टोडा का इस्तेमाल एक रस्म की तरह होता रहा है। हर पंचायत हुक्के की गुड़गुड़ाहट के साथ शुरू होती थी। शादी समारोह में जिस तरह पान खिलाकर किसी का सम्मान किया जाता है उसी तरह पश्चिमी राजस्थान में अतिथियों को अफीम की छोटी गोली या दाना दिया जाता है जिसे रियाण प्रथा कहा जाता है। रियाण केवल खुशी में ही नहीं दी जाती है अपितु गम के अवसर पर भी अतिथियों और मित्रों से अफीम की मनुहार की जाती है। आज यह प्रथा उतनी प्रभावी नहीं रही किंतु कुछ घटनायें अवश्य मिल जाती हैं। गौरतलब है कि राजस्थान सहित पूरे देश में नशे की समस्या है और इस समस्या के समाधान में आज के संत समाज की बड़ी भूमिका हो सकती है। इसलिये देश भर के संत समाज को आगे आ कर नशा के विरूद्ध अभियान को नेतृत्व देना होगा।

अंधविश्वास और कुरीतियों का विरोध

राजस्थान का संत काव्य मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन व सूफी मत से प्रभावित रहा है। भक्ति आंदोलन और सूफी मत, दोनों ही धार्मिक आडम्बर का विरोध करते हैं और कौमी एकता की बात करते हैं। मूर्तिपूजा, बलिप्रथा, अस्पृश्यता, गौ वध, धार्मिक अनुष्ठान आदि का विरोध किया। संत मावजी और गुरु गोविन्द गिरी ने जनजातीय समाज में व्याप्त कुरीतियों का विरोध किया। जनजातीय समाज कन्या वध, वधू मूल्य, मौताणा, डाकण प्रथा, छेड़ फाड़ना, मृत्यु भोज, भूत-प्रेत, झाड़-फूंक आदि बुराइयों

का शिकार रहा है। मूर्ति पूजा के विरोध में रामदेवजी कहते हैं कि-ष्पूजत पत्थर ऊमर सब खोई, सुपने अकल नहीं आया।" अर्थात् तमाम उम्र पत्थर पूजने पर भी ज्ञान नहीं आया। संत गवरी बाई कहती है कि-

"छापा तिलक बनाय के, परधन की करें आसा।
आत्म तत्व जान्या नहीं, इंद्री रस में माता।।"[6]

अर्थात् आत्म तत्व के ज्ञान अहम है। बाह्य आडम्बरों का कोई महत्त्व नहीं है। जो लोग माथे पर तिलक छाप लेते हैं और भौतिक जीवन में रचे-बसे होते हैं और दूसरों की संपत्ति प्राप्ति की आशा रखते हैं। ऐसे लोगों का कल्याण नहीं हो सकता। संत पीपा अंध विश्वास पर प्रहार करते हुए लिखते हैं कि-

"भूत दैत जौरा भैरूं, देवी तुम्हहि बतावै।
पीपा मेरे रिधी हैं, हरि बिन सिधी न पावै।।"[7]

अर्थात् सिद्धि प्राप्त करने के लिये ईश्वर का ध्यान करना होगा। ये भूत-प्रेत, दैत्य आदि सभी भ्रम है। सब कुछ ईश्वर की आराधन में है। संत दादू दयाल के शिष्य संत सुंदरदास भी धार्मिक आडम्बरों का विरोध करते हुए लिखते हैं कि वन में जाने से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती। वन में तो हिरण, नीलगाय, सियार आदि जानवर विचरण करते हैं। ईश्वर की प्राप्ति के लिये मन से स्मरण होना चाहिए।

"बन में गये हरि ना मिले, नरत करी नेहाल।
बन में तो भूंकते फिरे, मृग, रोझ, सियाल।।"[8]

रामस्नेही संप्रदाय के प्रवर्तक संत रामचरण ने भी मूर्तिपूजा और बहुदेववाद का विरोध किया। मूर्तिपूजकों द्वारा संत रामचरण को तंग किया गया जिसके चलते वे कुहाड़ा गाँव चले गये। संत धन्ना ने भी जाति-पांति और ऊँच-नीच का विरोध किया तथा सभी प्रकार की बुराई को छोड़कर प्रभु स्मरण पर बल दिया। सूफी संतों ने भी उपासना को सरल बनाने पर बल दिया है। धार्मिक आडंबरों का विरोध किया है। भक्ति आंदोलन और सूफी मत का प्रभाव मरूप्रदेश पर भी पड़ा है।

पर्यावरण संरक्षण का संदेश

राजस्थान का बड़ा भू-भाग थार का मरूस्थल है। यहाँ अकाल का साया हमेशा मंडराता रहा है। यही वजह है कि पर्यावरण चेतना का संदेश संत काव्य का हिस्सा बना। यहाँ लोक जीवन में एक कहावत प्रचलित है कि "सिर सांटै रुंख रहै, तो भी

सस्तो जांण।" अर्थात शीश कटाने से यदि पेड़ों की रक्षा होती है तो भी करनी चाहिए। इतिहास में वह वक्त भी आया जब 1730 में खेजड़ली में अमृता देवी विश्नोई के नेतृत्व में पेड़ों की कटाई को रोकने के लिये 363 लोगों ने शहादत दी थी। संतों ने अपनी शिक्षाओं में जीव जंतुओं और पर्यावरण को बचाने का संदेश दिया है। पर्यावरण चेतना के विस्तार में सबसे बड़ा योगदान संत जांभोजी का है। जांभोजी की शब्दबाणी और उनके द्वारा प्रदत्त 29 नियमों में प्रकृति के विभिन्न घटकों- वर्षा, जल, सूर्य, चंद्रमा, ऋतुओं का उल्लेख करने के साथ-साथ वन एवं वन्य जीवों की सुरक्षा का विशद विवरण मिलता है। जांभोजी ने आचरण के जो 29 नियम बताए हैं उनमें 11वीं प्रविष्टि में कहते हैं कि ईंधन को बीनकर तथा दूध को छानकर काम में लेना चाहिए। 12वीं प्रविष्टि में कहते हैं पानी छानकर पीना चाहिए। 18वीं प्रविष्टि में कहते हैं हरे वृक्ष नहीं काटना चाहिए। 19वीं प्रविष्टि में कहते हैं गाय, भेड़, बकरी आदि पशुओं का वध नहीं करना चाहिए। जांभोजी ने वन और वन्य जीवों के महत्त्व को रेखांकित करते हुए लिखते हैं कि-

"जीव न मारो, सिद्धि रहे हैं।
सब जीवन कूं ईश्वर निहारो।।

लीला रूख न काटो कोई।
अष्ट सिद्धि नौ निधि खड़ी रहे घर माही।।"[9]

संत पीपा की रचनाओं में भी प्रकृति चित्रण मिलता है। संत पीपा के दोहों में चंद्रमा, गिरीवर, अंबरीक, मोर, मंछा, चकोर, मृग आदि का विवरण मिलता है। प्राकृतिक घटनाओं का प्रतीक के तौर पर इस्तेमाल अवश्य हुआ है। परमात्मा और जीवात्मा का संबंध उजागर करने पीपा ने प्राकृतिक घटनाओं का विवरण दिया है-

"तू मेरा तरवर है जनपांखी है अंबरीश ध्रु नारद साषी।
जो तुम गिरीवर तो मैं भौंरा, जो तुम चंदाराम तो मैं चकोरा।।"[10]

जांभोजी के बाद संत वील्होजी ऐसे संत हुए हैं जिन्होंने जांभोजी के मानवतावादी और पर्यावरण संरक्षण के दायित्त्व को जारी रखा। संत वील्होजी ने जांभोजी के बाद विश्नोई समाज को सुदृढता दी और विश्नोई धर्म की पालनार्थ बत्तीस अखाड़ी लिखी हैं। जिसमें एक प्रसिद्ध अखाड़ी निम्नलिखित है-

"जीव दया नित राख, पाप नहीं कीजिए।
जांडी हिरण संहार, देख सिर दीजिये।।"[11]

रामस्नेही संप्रदाय में भी पर्यावरण संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। संत रामचरण कहते हैं कि पत्ते-पत्ते में पुरुषोत्तम का निवास है। माटी का महादेव बनाकर उस पर पत्ते तोड़कर चढ़ाना, परमात्मा को पीड़ा पहुंचाना है। इस प्रकार रामस्नेही संप्रदाय में जीवों की रक्षा का इतना अधिक ध्यान रखा जाता है कि रामस्नेही जन कपड़े से छानकर पानी का उपयोग करते हैं, सूर्यास्त के बाद भोजन नहीं करते, रात में दीपक नहीं जलाते और वर्षा ऋतु में चार मास एक स्थान पर व्यतीत करते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में संत समाज की अहम भूमिका रही।

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि राजस्थान के संत समाज ने संत होने के धर्म को बखुबी निभाया है। संत का कार्य अपने समय की चुनौतियों एवं समाधान से अनुयायियों को न केवल अवगत कराना अपितु एक कर्मयोगी की तरह उनका सामना भी करना। मरूप्रदेश के संत समाज ने कर्म को वाणी से ऊँचा रखा है। राजस्थान के संतों ने भव्य मंदिरों को कभी आरामगाह नहीं बनाया अपितु तपते रेगिस्तान में गांवों और ढाणियों में जाकर प्राणिमात्र से प्रेम और भाईचारे का संदेश दिया है।

संदर्भ

1. डॉ. हुकम चन्द जैन 'राजस्थान का इतिहास, संस्कृति, परंपरा एवं विरासत' राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 31वां संस्करण-2022, पृ.सं-376.
2. संत हरिदास के पद https://www.hindwi.org/poets/swami-haridas/pad
3. डॉ.पूरन सहगल 'संत पीपा और भक्ति आंदोलन' आर्यवृत संस्कृत संस्थान, प्रथम संस्करण-2013, पृ.सं.84.
4. डॉ.पूनम 'स्त्री चेतना और मीरा का काव्य' अनामिका प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृ.सं.-106.
5. उपर्युक्त ही।
6. गवरी बाई के दोहे https://www-hindwi-org/poets/gavri-bai.
7. डॉ.पूरन सहगल 'संत पीपा और भक्ति आंदोलन' आर्यवृत संस्कृत संस्थान, प्रथम संस्करण-2013, पृ.सं.85.
8. सुंदर दास जी के दोहे https://www.hindwi.org/poets/sundardas/dohe
9. डॉ.हरीश कुमार 'राजस्थान की संतवाणी में प्रकृति और पर्यावरण' पूर्वोत्तर प्रभा जर्नल, जनवरी-जून-2021.पृ.सं.-67.
10. उपर्युक्त ही। पृ.सं-68.
11. उपयुक्त ही।

❑ ❑ ❑

मानव अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय आयाम और भारत में लैंगिक रुढ़िवादः महिलाओं के विशेष सन्दर्भ में एक अध्ययन

–जितेन्द्र कुमार सरोज
शोध छात्र
मानवाधिकार विभाग
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर
(केंद्रीय) विश्वविद्यालय, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

सारांश

मानवाधिकारों की रक्षा हेतु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर "मानव अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय आयाम" तय किये गए सिर्फ इस आस में कि सभी प्रकार का विभेद मिटाया जा सके लैंगिक आधार पर असमानता खत्म की जा सके किन्तु सम्पूर्ण विश्व से प्राप्त सभी क्षेत्रों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व के आंकडे ने यह साबित कर दिया है कि सम्पूर्ण विश्व में लैंगिक भेदभाव अपने चरम पर है जिससे हमारा देश भी अछूता नहीं है। यद्यपि यह सुखद है कि राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अनेक संगठनों का निर्माण इस विभेद को मिटाने में लगा है। प्रस्तुत अध्ययन लैंगिक रुढ़िवाद के कारणों एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इन विभेद को रोकने के लिए किये गए प्रयासों पर केन्द्रित है।

बीज शब्द–लैंगिक रुढ़िवाद, आयाम, प्रतिनिधित्व, संघर्षशील, कर्तव्यनिष्ठ, कार्यकुशलता।

प्रस्तावना

विश्वस्तरीय समझौतों द्वारा निर्धारित एवं संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा स्वीकृति प्राप्त नियमों, मानकों, और सूचकांको का वह समूह जिनका उद्देश्य मानव अधिकारों की सुरक्षा, संरक्षण, और संवर्धन करना होता है मानव अधिकारों का अंतरराष्ट्रीय आयाम कहलाता है। इन मानकों का पालन देशों के लिए अनिवार्य होता है और उन्हें अपने राष्ट्रीय कानूनों और नीतियों में शामिल करना होता है। इन मानकों को संयुक्त राष्ट्र संघ की मानवाधिकार परिषद द्वारा संगठित किया गया है, जिनमें संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा स्वीकृत मानवाधिकारों के संकल्पों की घोषणा और सूची शामिल है। साथ ही, विश्व में एकीकृत न्याय प्रणाली की अवधारणा को आधार बनाकर इन मानकों का विकास किया गया है जो मानवीय समाज में सभी व्यक्तियों को समानता, न्याय, और अवसरों के अधिकार की गारंटी प्रदान करते हैं।

मानव अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय आयाम का मुख्य उद्देश्य एक सामान्य मानदंड की स्थापना करना है जिसे सभी देशों ने मान्यता दी है और जिसे वे अपने-अपने संविधान, कानून और नीतियों में शामिल करते हैं, जिससे एक समर्पित और सुरक्षित मानवीय दुनिया की संरचना की जा सके जिसमें मानव अधिकारों की प्रतिभूति, संरक्षण और संवर्धन किया जा सके, साथ ही इनकी प्रतिक्रिया और उनके उल्लंघन के मामले में दायित्वपूर्ण न्याय प्रणाली को सुनिश्चित किया जा सके। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इसका उद्देश्य एक न्यायपूर्ण और समर्पित मानवीय दुनिया की रचना करना है जिसमें एक न्यायसंगत, न्यायप्रिय, और विकासशील समाज की स्थापना हो सके।

इतना सब कुछ होने के बावजूद आज भी महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक भागीदारी के अवसर समान नहीं हैं। शैक्षिक उपलब्धियों, स्वास्थ्य और जीवन प्रत्याशा तथा राजनीतिक सशक्तीकरण के सूचकांकों में भी आधी आबादी का प्रतिनिधित्व उचित तरीके से नहीं हुआ है। विश्व की आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करने वाली महिलाएं विश्व के हर कोने में नेतृत्व के स्तर पर कम ही आंकी गई हैं या यूं कहें कि उनकी नेतृत्व क्षमता पहचानी ही नहीं गई है। इसके कुछ तथ्य इस प्रकार हैं –

अंतर संसदीय संघ (Inter&Parliamentary Union IPU) द्वारा संकलित आँकड़ों के अनुसार वर्ष 2023 में पहली बार विश्व की सभी संसदों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व हुआ है आईपीयूए के महासचिव मार्टिन चुनगौंग ने कहा कि बुरी खबर ये है कि प्रगति

की इस रफ्तार के साथ, संसदों में लैंगिक समता हासिल करने में 80 वर्ष लगेंगे।[1] वर्तनाम समय में हम देखते है कि 193 देशों में मात्र 22 देशों में सरकार की मुखिया या राष्ट्राध्यक्ष महिला हैं। केवल 13 देशों के कैबिनेट में 50 प्रतिशत महिला की भागीदारी है। केवल 3 देशों में 50 प्रतिशत महिला सांसद हैं। वैश्विक स्तर की बात करें तो केवल 24 प्रतिशत महिलाएं सांसद हैं। 31 राष्ट्रों में महिला सांसदों की संख्या एकल या निचले सदनों में 10 प्रतिशत से भी कम है, 4 ऐसे वाणिज्य मंडल हैं जिनमें कोई महिला नहीं है। इसी तरह, 2018 फॉर्च्यून 500 कंपनियों में से केवल 24-25 महिला सीईओ हैं और 12 कंपनियों के बोर्ड में एक भी महिला नहीं है।[2]

अंतर संसदीय संघ द्वारा संकलित आँकड़ों के अनुसार भारत में 17वीं लोकसभा में कुल सदस्यता में महिलाएँ मात्र 14.44% का प्रतिनिधित्व करती है। भारत निर्वाचन आयोग की नवीनतम उपलब्ध रिपोर्ट के अनुसार, महिलाएं संसद के सभी सदस्यों के मात्र 10.5% का प्रतिनिधित्व करती है (अक्टूबर 2021 तक की स्थिति के अनुसार) राज्य विधानसभाओं के मामले में महिला विधायकों (MLAs) का प्रतिनिधित्व औसतन 9% है। इस संबंध में भारत की रैंकिंग में पिछले कुछ वर्षों में गिरावट आई है। यह वर्तमान में पाकिस्तान, बांग्लादेश और नेपाल से भी पीछे है।[3] भारत में अभी तक 2 राष्ट्रपति, एक प्रधानमंत्री, 24 राज्यपाल, 5 उपराज्यपाल[4] और 16 मुख्यमंत्री ही महिलाएं बन पायी हैं।[5] जो कि आंकड़ों के हिसाब से बहुत कम हैं।

भारतीय प्रशासनिक सेवा (IAS) के आँकड़ों और वर्ष 2011 की केंद्र सरकार की रोजगार जनगणना के अनुसार इसके कुल कर्मियों में 11% से भी कम महिलाएं थीं, जिनकी संख्या वर्ष 2020 में 13% तक दर्ज की गई। इसके अलावा, वर्ष 2022 में IAS में सचिव स्तर पर केवल 14% महिलाएँ कार्यरत थी। सभी भारतीय राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों की साथ गणना करें तो भी केवल तीन महिलाएँ मुख्य सचिव के रूप में कार्यरत हैं। भारत में कभी कोई महिला कैबिनेट सचिव नहीं बनी। गृह, वित्त, रक्षा और कार्मिक मंत्रालय में भी कभी कोई महिला सचिव नहीं रही है।[6]

1. Available at: https://news.un.org/hi/story/2023/03/1066592#:~:text= visited on 06/07/2023 at 21:29
2. Available at: https://www.amarujala.com/columns/blog/international-women-s-day-2022-social-economic-and-political-participation-important-for-women-empowerment?pageId=1 visited on 07/07/2023 at 21:29pm
3. Available at: https://prepp.in/news/e-1552-in-politics-and-bureaucracy-women-are-severely-under-represented-global-gender-gap-index-2022-upsc-current-affairs visited on 07/07/2023 at 22:00 pm
4. Available at: https://en.wikipedia.org/wiki/List_of_female_governors_and_lieutenant_governors_in_India visited on 08/07/2023 at 22:39 pm
5. Available at: https://www.bbc.com/hindi/india-46525578 visited on 08/07/2023 at 22:49 pm
6. Available at: https://www.nextias.com/editorial-analysis/13-03-2023/women-under-represented-in-politics-and-bureaucracy visited on 08/07/2023 at 12:49 pm

सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम (MSMEs) के स्वामियों में केवल 20.37% महिलाएँ हैं, मात्र 10% स्टार्ट–अप महिलाओं द्वारा स्थापित किये गए हैं और श्रम बल में महिलाओं की हिस्सेदारी मात्र 23.3% है।[1]

वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम द्वारा प्रकाशित लैंगिक समानता के मामले में भारत 146 देशों में 127वें स्थान पर पहुंच गया है। विश्व आर्थिक मंच (डब्ल्यूईएफ) की वार्षिक लैंगिक अंतराल रिपोर्ट, 2023 के अनुसार भारत की स्थिति में पिछले साल की तुलना में आठ स्थान का सुधार हुआ है। डब्ल्यूईएफ ने 2022 की अपनी रिपोर्ट में वैश्विक लैंगिक अंतराल सूचकांक में भारत को 146 में 135 वें स्थान पर रखा था, प्रगति के बावजूद, भारत अभी भी आर्थिक भागीदारी और अवसर में पीछे है। इस क्षेत्र में लैंगिक समानता केवल 36.7% है। इस अंतर को पाटने और कार्यबल में महिलाओं के लिए अधिक अवसर प्रदान करने के प्रयासों की आवश्यकता है।[2]

भारत में केवल 16.6% महिलाएं ही विज्ञान के क्षेत्र में शोध कर रही हैं[3] इंटरनेशनल सोसाइटी ऑफ वुमन एयरलाइन पायलट के अनुसार भारत में कुल पायलट्स का 12.4% महिलाएं हैं यद्यपि यह विश्व में सर्वाधिक है।[4] भारत के पुलिस बल में महिलाओं का प्रतिशत 11.7% हैं।[5]

उपरोक्त आंकड़े बता रहे हैं कि महिलाओं की स्थिति संतोषजनक नहीं है हमारे देश में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा कमतर माना गया जबकि आज सम्पूर्ण विश्व में प्राप्त संघर्षशील, कर्तव्यनिष्ठ, साहसिक महिलाओं के उदाहरणों ने यह सिद्ध कर दिया है कि वे किसी भी मामले में पुरुषों से कमतर नहीं हैं।[6]

लैंगिक रुढ़िवाद

लैंगिक रुढ़िवाद (Gender Stereo–type) किसी व्यक्ति के बारे में उसके लिंग

1. Available at: https://timesofindia.indiatimes.com/business/india-business/women-participation-in-msme-sector-at-24-higher-than-in-other-industries-study/articleshow/94180386.cms visited on 08/07/2023 at 02:39 p
2. Available at: https://hindicurrentaffairs.adda247.com/india-moves-up-8-places-to-127-in-wef-global-gender-gap-report/ visited on 10/07/2023 at 15:49 pm
3. Available at: https://hindi.theprint.in/india/indian-science-researchers-women-researchers-ra-jya-sabha-scholarship-women-scientist/495148/#:~:text= visited on 11/07/2023 at 16:00 p
4. Available at: https://navbharattimes.indiatimes.com/business/business-news/women-account-for-12-4-percent-of-all-pilots-in-india-more-than-us-and-uk/articleshow/93468122.cms visited on 10/07/2023 at 17:49 p
5. Available at: https://timesofindia.indiatimes.com/india/women-form-less-than-12-of-indias-police-force-centre/articleshow/97750778.cms visited on 12/07/2023 at 15:49 p
6. जनसत्ता, 4 मई 2020

के आधार पर बनाई गई धारणा है, जो समाज में उसकी विशेषताओं, व्यवहारों और जिम्मेदारियों को लिंग के अनुसार परिभाषित करती है।[1] ये धारणाएं पूरी तरह पर लिंग आधारित है। इसके अनुसार काम निर्धारित करने में किसी इंसान की इच्छा, कौशलता, कार्यकुशलता, आदि मानक न होकर उनका व्यक्तिगत लिंग ही मानक होता है।[2]

लैंगिक रुढ़िवाद महिलाओं के साथ भेदभाव के प्रमुख कारण हैं यह महिलाओं के अधिकारों का हनन करती है इसके कारण महिलाएं परंपरागत रूप से संबंधित कार्यों के लिए ही सीमित रहती हैं और उन्हें विभिन्न क्षेत्रों में पहुंचने के लिए समान अवसर नहीं मिलते हैं। जब महिलाओं को समाज में पुरुषों के साथ तुलना में निम्न स्थान प्राप्त होता है और उन्हें पुरुषों के बनाए गए नियमों में बाध्य किया जाता है, तो वहाँ उनके अधिकारों का हनन होता है।

भारत में महिलाओं से लैंगिक भेदभाव का कारण

1. पुरानी सोच सामाजिक और सांस्कृतिक मान्यताओं का प्रभाव

पुरानी सोच और सामाजिक एवं सांस्कृतिक मान्यताएं जिन्हें समाज में स्थापित किया गया हैं, महिलाओं को प्रतिनिधित्व में बाधा बना सकती हैं। सामान्यतः, पुरुषों को ही नेतृत्व, अधिकार और प्रतिनिधित्व का हक माना जाता है, जबकि महिलाओं की आवाज और सहभागिता को कम महत्त्व दिया जाता है।

2. शिक्षा और साक्षरता के अभाव

शिक्षा और ज्ञान महिलाओं के लिए मार्गदर्शन और सशक्तिकरण का महत्त्वपूर्ण स्रोत होता है। अक्सर महिलाओं को शिक्षा में संकट से गुजरना पड़ता है या उन्हें प्राथमिकताएं नहीं दी जाती हैं जो उनके विकास और प्रगति को प्रतिबंधित करती हैं। शिक्षा और साक्षरता का अभाव महिलाओं को आर्थिक, सामाजिक, और राजनीतिक मामलों में कमजोर कर सकता है।

3. स्त्री हिंसा और शोषण

स्त्री हिंसा और शोषण महिलाओं को शारीरिक, मानसिक, या आर्थिक रूप से क्षति पहुँचाता है। परिवार के सदस्य जो अपनी बहू और बेटी को पढ़ाना चाहते हैं उनके मन में स्त्रियों के प्रति होने वाली हिंसा और शोषण बना रहता है यही कारण

1. Available at: https://targetnotes.com/what-do-you-understand-by-gender-stereo-type/ visited on 15/07/2023 at 11:29 am
2. नसरीन तस्लीमाः दूसरा पक्ष पृष्ठ 42 संस्करण 2020

है कि हमारे समाज में महिलाओं को अधिक उच्च शिक्षा या बाहर जाकर पढ़ने में परिवार का सहयोग बहुत कम मिल पाता है।

4. कानूनी और संस्थागत प्राधिकारों की कमी

कानूनी और संस्थागत प्राधिकारों की कमी भी महिलाओं के साथ भेदभाव का कारण होती है। प्राचीन काल से ही हम देखते चले आ रहे हैं कि महिलाओं को संपत्ति, संपत्ति अधिकार, और विरासत में समान अधिकार नहीं मिलते हैं यही कारण है कि वह आत्मनिर्भर नहीं बन पाती हैं और पूरी तरफ पुरुषों पर निर्भर रहती हैं जो उनके शोषण का कारण बन जाता है

5. पुरुषवादी मानसिकता

पुरुषवादी मानसिकता एक धारणा है जो कहती है कि पुरुषों की महत्वाकांक्षा, सशक्तिकरण, और उनकी आधिकारिकता महिलाओं से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस मानसिकता में, पुरुष को समाज में सर्वोच्चता की स्थिति में देखा जाता है और महिलाओं को उनकी इच्छाओं और आवश्यकताओं की अवहेलना करने का अधिकार नहीं होता है। यह मानसिकता अन्यायपूर्ण, स्थानिक, और समाजिक विचारधाराओं का परिणाम है जो पुरुषों को महिलाओं से ऊपर मान्यता देते हैं।

6. सामाजिक प्रतिबंध

कुछ क्षेत्रों में, कानूनी और सामाजिक प्रतिबंधों के कारण महिलाओं को प्रतिनिधित्व नहीं मिलता है। ये प्रतिबंध सामाजिक परंपराओं, धार्मिक आदेशों, परंपरागत नियमों और निरंतर रचित विषमताओं के आधार पर होते हैं।

7. सामाजिक संगठनों अथवा पंचायतों का प्रभाव

हमारे समाज की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह औपचारिक विधिक नियमों की अपेक्षा संगठनों अथवा पंचायतों के रूढ़िगत नियमों से नियंत्रित होता है जो महिलाओं से विभेद का एक महत्त्वपूर्ण कारण है।

लैंगिक रुढ़िवाद के विरुद्ध अंतरराष्ट्रीय प्रयास

1. मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (UDHR 1948)

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में 30 अधिकार संकलित किए गए हैं, जिनमें समानता, अवसरों की समानता, जीवन, स्वतंत्रता, यात्रा, भोजन, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, धार्मिक और मानवीय स्वतंत्रता, और न्याय आदि शामिल हैं।[1]

1. डॉ एच. ओ. अग्रवाल अंतरराष्ट्रीय विधि एवं मानव अधिकार पृष्ठ 653-654

2. सिविल तथा राजनैतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा (ICCPR 1966)

इसमें कुल 53 अनुच्छेद हैं जो 6 भागों में विभक्त हैं भाग एक दो और तीन में विभिन्न अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उल्लेख किया गया है जो किसी न किसी माध्यम से महिलाओं के अधिकारों की रक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

3. आर्थिक,सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा (ICESCR 1966)

इस प्रसंविदा में कुल 31 अनुच्छेद हैं जिन्हें 5 भागों में बांटा गया है जिसमें अनुच्छेद 10 मातृत्व तथा बाल्यावस्था, विवाह तथा कुटुम्ब से सम्बन्धित अधिकार प्रदान करता है।[1]

4. महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय 1979

यह सार्वभौमिक अंतरराष्ट्रीय समझौता है जिसे 18 दिसम्बर 1979 को महासभा द्वारा अंगीकार किया जो महिलाओं के अधिकारों को संरक्षित कर समानता के लिए उच्चतम मानकों की स्थापना करता है।

5. वियना सम्मेलन

वर्ष 1993 में वियना सम्मेलन के माध्यम से राज्यों से यह आग्रह किया गया है कि वे महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को दण्डनीय अपराध घोषित करें तथा इसकी समाप्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं से बचने के लिए किसी भी रीति रिवाज, परम्परा या धार्मिक विश्वासों के आगे नहीं झुकें।[2]

6. सभी रूपों में भेदभाव की समाप्ति लिए अभिसमय पर ऐच्छिक नयाचार

7 अक्टूबर 1999 को महिलाओं के विरुद्ध सभी रूपों में भेदभाव की समाप्ति लिए अभिसमय पर ऐच्छिक नयाचार को अंगीकार किया जिसके माध्यम से लैंगिक भेदभाव, यौन-शोषण एवं अन्य दुरुपयोग से पीड़ित महिलाओं की स्थिति को मजबूती प्रदान करने का प्रयास किया गया।[3]

7. बीजिंग सम्मेलन

बीजिंग सम्मेलन में किसी भी ऐसे संघर्ष की समाप्ति की अपेक्षा की गयी है जो महिलाओं के अधिकारों एवं कतिपय परम्परागत या रूढ़िगत प्रचलन, सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों एवं धार्मिक अतिवादियों के बीच उत्पन्न होते हैं।[4]

1. वही पृष्ठ 663-664
2. मावाधिकार, जेंडर एवं पर्यावरण : तपन विसवाल पृष्ट 280
3. डॉ एच. ओ. अग्रवाल, अंतरराष्ट्रीय विधि एवं मानवाधिकार सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन 10वां सं 2008 पृष्ठ 706
4. महिला अधिकार : ममता मेहरोत्रा पृष्ठ 31

8. मापुटो प्रोटोकॉल

महिला अधिकारों के क्षेत्र में मापुटो प्रोटोकॉल का महत्त्वपूर्ण योगदान है इस प्रोटोकॉल को 11 जुलाई 2003 में अंगीकृत किया गया था यह प्रोटोकॉल एक महिला अधिकार संधि है।

9. संधारणीय विकास लक्ष्य

संधारणीय विकास लक्ष्य को अपनाने का फैसला संयुक्त राष्ट्र शिखर सम्मेलन में लिया गया था। इस बैठक में 193 देशों ने भाग लिया था। 17 लक्ष्यों में 5वां लक्ष्य लैंगिक समानता स्थापित करने का लिया गया है इसमें पूरी दुनिया में महिलाओं के प्रति किसी भी प्रकार की लैंगिक असमानता को दूर करने का प्रण लिया गया है।

लैंगिक रुढ़िवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय विधियों द्वारा प्रयास

भारतीय संविधान

हमारे संविधान के भाग 3 के माध्यम से विधि के समक्ष समता एवं विधियों के समान संरक्षण,[1] और धर्म, मूल, जाति लिंग या जन्म स्थान के आधार पर किसी भी प्रकार के विभेद[2] का निषेध, व महिलाओं और बच्चों के लिए विशेष प्रावधान,[3] के साथ ही सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता,[4] जैसे उपबंध किए गए हैं जिसके द्वारा महिला अधिकारों की रक्षा की गयी है तथा संविधान के भाग 4क में वर्णित उपबंध के माध्यम से यह अपील की गयी है कि भारत के सभी लोगों में समरसता और सामान भातृत्व की भावना का निर्माण हो जो धर्म भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, हम ऐसी[5] प्रथाओं का त्याग करें जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है। पंचायतों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने हेतु एक तिहाई आरक्षण की व्यवस्था भी की गई है[6]

लैंगिक समानता स्थापित करने हेतु प्रमुख भारतीय अधिनयम

भारत में महिलाओं के साथ हो रहे लैंगिक भेदभाव को समाप्त करने हेतु

---

1. भारत का संविधान अनुच्छेद 14
2. वही अनुच्छेद 15
3. वही अनुच्छेद 15(3)
4. वही अनुच्छेद 16(1),(2)
5. वही अनुच्छेद 51(क)(ङ)
6. वही अनुच्छेद 243(घ) (3)

अनेक अधिनियम पारित किये गए उनमें से कुछ प्रमुख अधिनियम जैसे बाल विवाह (निषेध) अधिनियम 2006, हिन्दू विवाह अधिनियम, अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम 1956, दहेज (प्रतिषेध) अधिनियम 1961, राष्ट्रीय महिला आयोग 1990, गर्भ धारण पूर्व प्रसूति पूर्व निदान तकनीक (लिंग चयन प्रतिषेध) अधिनियम 1994, घरेलू हिंसा (निवारण) अधिनियम 2005, कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन उत्पीड़न (रोकथाम, निषेध और निवारण) अधिनियम, 2013 आदि के द्वारा महिलाओं विरुद्ध हो रहे दुर्व्यवहार को रोकने का प्रयास किया गया

न्यायपालिका द्वारा लैंगिक भेदभाव से रक्षा

उच्चतम न्यायलय ने अपने अनेक वादों के माध्यम से लैंगिक भेदभाव समाप्त करने का प्रयास किया उनमें कुछ प्रमुख वाद इस प्रकार है औंकार सिंह ब. स्टेट ऑफ राजस्थान[1] दिल्ली डोमेस्टिक वर्किंग विमेन्स फोरम ब. यूनियन[2] ऑफ इण्डिया विशाखा ब. स्टेट ऑफ राजस्थान[3] चंद्रा राजकुमारी ब. पुलिस[4] आयुक्त हैदराबाद बी. डी. भनोत ब. सविता भनोत[5] श्रीमती जय लक्ष्मी शर्मा ब. श्रीमती[6] द्रोपती देवी टी. शिव कुमार ब. इंस्पेक्टर ऑफ पुलिस तिरुवेलूर[7] इत्यादि

निष्कर्ष

प्राचीन काल में आधी आबादी असहयोग, अपमान एवं अत्याचार का कडुआ घूँट पीती रही और कभी अपने शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस नहीं कर सकी। जरा कल्पना कीजिये अन्याय, अनीति, शोषण एवं उपेक्षा का सामना करते हुए अपने अस्तित्व को बचा कर समाज के अग्रिम पंक्ति में अपना स्थान स्थापित करने वाली अत्यधिक संवेदनशील, रचनात्मक एवं धैर्यशाली आदि तमाम नैसर्गिक गुणों से परिपूर्ण नारीयों को प्राचीन काल से ही पुरुषों की भाँती समान प्रतिनिधित्व, अवसर एवं बराबरी का दर्जा दिया गया होता तो निश्चित तौर पर हम दोगुने रफ्तार से सफलता की बुलन्दियों पर पहुँचकर विकास के नए कीर्तिमान स्थापित कर रहे होते। दुनिया की यह आधी आबादी असहयोग, अपमान एवं अत्याचार का कडुआ घूँट पीती रही

1. 1988 राजस्थान विधि पत्रिका 1
2. (1995) 1 SCC. 14
3. AIR 1997 SC 3011
4. AIR 1998 आंध्रप्रदेश 302
5. AIR 2012 SC 965
6. AIR 2010 दिल्ली 37
7. AIR 2012 मद्रास 62

और कभी अपने शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस नहीं कर सकी महिलाओं के विरुद्ध विश्व भर में व्याप्त लैंगिक रुढ़िवाद ने न सिर्फ महिला मानवाधिकारों का हनन कर उनके जीवन को नर्क बना के गरिमापूर्ण जीवन जीने से वंचित कर दिया बल्कि उनकी स्थिति इतनी दयनीय बना दिया कि उन्हें अपना अस्तित्व बचाने में ही संघर्ष करना पड़ा।

किन्तु वर्तमान में समय में जिस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ और उसके सहयोगी अन्तरराष्ट्रीय संगठनों, राष्ट्रीय स्तर पर विभन्न देशों की विधायिका, न्यायपालिका, कार्यपालिका व सामाजिक संगठनों और नारीवादी चिंतकों इत्यादि द्वारा प्रयास किया जा रहा है, इनके द्वारा किये गए इन्हीं प्रयासों में हम सभी भी शिक्षा, जन जागरूकता, संवेदनशीलता, सामाजिक समरसता के माध्यम से रूढ़िवादी मानसिकता में परिवर्तन लाएं और समाज से अस्वस्थ परम्पराओं का परित्याग करके अपना सहयोग दें तो शीघ्र ही इस क्षेत्र में सुखद परिणाम देखने को मिलेंगे।

❑ ❑ ❑

यातना गृह बन रही दुनिया और मनुष्य की अस्मिता के प्रश्न

–भवेश दिलशाद

सेडनाया, रूह कंपा और ख़ून सुखा देने वाली जगह. लगभग नामुमकिन है कि यहां से आप बच निकलें। कहते हैं दोजख़ भी इससे बुरा क्या होगा! नमक में पड़ी लाशों और कंकालों के बीच आप फेंक दिये जाते हैं। आप यानी नागरिक, बोलने वाले या लड़ने वाले, फिर जिसके ख़िलाफ आप आवाज उठा रहे होते हैं या जिससे डर रहे होते हैं, वो जुल्म इंतेहा की हद तक यहां आपके साथ होते हैं। अकल्पनीय, सेडनाया एक कारागार की आड़ में यातना गृह है, जहां लगातार हजारों चीखों का एक समवेत आर्तनाद गूंजता है। पानी और जीवन वाला ग्रह जिस तरह युद्ध की लपटों में घिरा है, क्या इस सीरियाई यातना गृह का रूपक नहीं है? इन हालात में हम मानवता को बचाने का स्वप्न किस तरह संजो सकते हैं? प्रश्न यह भी है कि क्या संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुसार मनुष्य को उसके अस्तित्व की गरिमा मिल सकेगी?

लाशों की होती है खरीद-फरोख्त
अब तो मौतों की भी है जीडीपी
जाइका ख़ून में भी आने लगा
ख़ुशबू बारूद से भी आने लगी
जंग इक मसअला कहां साहिर
जंग अब शौक हो चुकी है यहां
हो चुकी ये जमीन जहरीली
जिन्दगी मौत बो चुकी है यहां

इस समय में लगभग आधी दुनिया युद्ध की स्थिति में है, शेष युद्धपूर्व या युद्धेतर. विश्वयुद्ध की किसी मुनादी के बगैर. अब 'युद्ध' बहुस्तरीय अर्थ वाला शब्द है। क्रूरता बहुआयामी है। गरिमाविहीन, अर्थहीन और घायल मनुष्यता का सबसे बड़ा कारण युद्ध है। विडंबना है कि मानवाधिकारों के आदर्श/विचार को जैसी स्वीकार्यता इस समय में मिल रही है, पहले कभी नहीं मिली। विचार अलग, व्यवहार अलग! आदर्श गढ़े तभी जाते हैं जब यथार्थ प्रतिकूल हो।

स्थितियां मानवता के अनुकूल कैसे हों? मध्य पूर्व से कोरिया तक और अमेरिका से रूस तक संघर्षों का सिलसिला जारी है। अमेरिका, चीन, रूस और यूरोप आदि सभी शक्तियां युद्ध में हैं, युद्ध का कारण हैं और युद्ध के दुष्प्रभाव से ग्रसित भी. सिर्फ सेडनाया ही नहीं, कई युद्धग्रस्त क्षेत्रों में यातना गृहों की भरमार है। कई वॉर–जोन्स में अमेरिकी टॉर्चर कैंपों की आशंका है। सूडान से लेकर चीन, कोरिया तक ऐसे कैंप हैं। यूक्रेनी युद्धबंदियों के साथ रूसी यातना कैंप अमानवीयता कर रहे हैं। चुटकियों में बंदियों को नपुंसक किया जा रहा है। मानसिकता पूरी की पूरी नस्ल को नेस्तनाबूद कर दिये जाने की है। यह हिटलरोत्तर युग है।

युद्ध के अंतरराष्ट्रीय आयाम और संकट

किसी क़ौम का सफाया, जमीनों पर कब्जा, अर्थव्यवस्था व सत्ता के वर्चस्व, संसाधनों की लूट जैसे मक़सदों से होने वाले युद्धों के मूल में पूंजीवादी और तानाशाही प्रवृत्ति कारण रूप में दिखती है। युद्ध का दायरा कितना बड़ा है! अब सिर्फ दो देशों या सेनाओं के बीच सशस्त्र संघर्ष ही युद्ध नहीं है; देशों के बीच अघोषित द्वंद्व, नागरिक युद्ध, आर्थिक युद्ध, नस्लीय सफाया, आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध, एक देश के सियासी या शक्ति गुटों के बीच जंग; और तो और किसी सरकार द्वारा अपने ही लोगों का दमन; छद्म, अप्रत्यक्ष और भीतरी युद्धों जैसे संकट अनेक शक्तिसंपन्न व्यवस्थाओं के लिए बड़ी चुनौती बन चुके हैं। इन स्थितियों के परिणाम भुगत कौन रहा है? यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ने कहा था 'शांतिकाल में बेटे अपने बाप का क्रियाकर्म करते हैं और युद्धकाल में बाप अपने बेटों का'। युवा और आम नागरिकों की बड़ी आबादी इन युद्धों में क़त्ल की जा रही है।

संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद (यूएनएससी) की बैठक में जाहिर की गयी चिंता

चौंकाती है: दूसरे विश्वयुद्ध के बाद से दुनिया इस समय सबसे अधिक हिंसक संघर्ष देख रही है और कम से कम एक चौथाई आबादी यानी 2 अरब लोग इन हिंसाग्रस्त क्षेत्रों में रह रहे हैं। भयानक नतीजा यह है कि दुनिया भर में हर 7 में 6 लोग असुरक्षा की भावना से पीड़ित हैं। विस्थापित और शोषित लगातार बढ़ रहे हैं। यूएनएचसीआर के मुताबिक 2023 में अपनी जड़ों से जबरन खदेड़ दिये जाने वाले लोगों को आंकड़ा तकरीबन 12 करोड़ होगा. दुनिया में गुलामों की तादाद लगातार बढ़ रही है और कम से कम 5 करोड़ का आंकड़ा तो सर्वे व एजेंसियां दर्ज कर पा रही हैं।

अर्थव्यवस्था पर असर, अनाज व पानी का संकट, महिला व बाल उत्पीड़न, स्वास्थ्य सेवाओं की बदहाली, पर्यावरण को नुकसान; हिंसा और संघर्षों के ऐसे अनेक दुष्परिणामों को लेकर यूएनएससी में महत्वपूर्ण बात कही गयी – "दुनिया इतिहास के एक बेहद अहम मोड़ पर खड़ी है... अब ऐसी शांति हासिल करने की कोशिशों पर विचार करना होगा, जो क्षणभंगुर न हो।" चुनौती अब क़ायम रह सकने वाली शांति की है। दूसरे शब्दों में, मानव अधिकारों को इस तरह सौंपने की है कि उनका हनन न हो।

शक्ति यथार्थ है, अधिकार भ्रम! यथार्थ का अर्थ जब मानवाधिकार का उल्लंघन है, तो हम मानवाधिकार का पक्ष क्यों लेते हैं? यथार्थ का क्यों नहीं? यह प्रश्न हमेशा से विचार का केंद्र रहा है। थ्यूसीडाइड्स जैसे यूनानी इतिहासकारों से लेकर भारतीय दार्शनिकों एवं लोक मान्यताओं तक 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' या 'समरथ को नाहिं दोष गोसाईं' जैसे सूत्र मिलते हैं। यूनानी दार्शनिक 'न्याय के सिद्धांत' में मानवाधिकारों की वकालत करते दिखते हैं। यह विचार कालांतर में, अनेक सभ्यताओं में 'अंतिम व्यक्ति को न्याय' तक पहुंचता है, जिसकी पैरवी गांधीवादी तक करते दिखे. अंतिम व्यक्ति अर्थात शोषित, वंचित की बात कार्ल मार्क्स भी करते हैं, लेकिन वह मानवाधिकारों को लेकर अलग दृष्टि देते हैं। लैंगमैन और अल्बानीज के शोधपत्र में कहा गया, "मार्क्स मानवीय गरिमा के उस विचार को तरजीह नहीं देते, जो स्वत्व को आंख मूंदकर मान्यता दे दे और जिसका राजनीतिक अर्थव्यवस्था प्रणाली से कोई लेना देना ही न हो।" दूसरी ओर, प्राचीन भारतीय दर्शन 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' और 'वसुधैव कुटुंबकम' जैसे सूत्रों से वैश्विक समरसता की अवधारणा प्रस्तुत करता है।

बाजार की हवस में कभी शौक़-ए-जंग में
आजाद दहशतों से कराया नहीं गया
घर इसलिए बनाते रहे लोग टूट कर
दुनिया को घर किसी से बनाया नहीं गया

तीन स्पष्ट प्रवेश मार्ग हैं : दुनिया को मैदान मानकर इसे जीतने के लिए जंग जारी रहे; दुनिया को बाजार कहकर मुनाफा कमाने के लिए अपरोक्ष संघर्ष चलता रहे; या फिर दुनिया को एक घर, एक समाज के तौर पर विकसित करने के उद्यम किये जाएं. निश्चित रूप से, वैश्वीकरण के पोषक पहले दो विचार संस्कृतियों और अर्थव्यवस्थाओं के सीधे टकराव से होने वाले विनाश को ही लक्ष्य करते हैं, भले ही यह विनाश प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष, त्वरित हो या दीर्घकालिक, कुछ वर्गों का हो या बहुसंख्यकों का. तीसरा विचार, आदर्श या नैतिक मूल्य अधिक प्रतीत होता है। इस विचार से साहित्य रचा जा सकता है, कलाकृतियां निर्मित की जा सकती हैं परंतु इसे व्यवहार में लाये जाने पर प्रश्नचिह्न हैं। यह विचार मानव की अस्मिता की ध्वनि जरूर है, पर सत्ताप्रेमी व्यवस्था के अनुकूल नहीं. फिर भी यह सिद्धांत स्तर पर किसी हद तक जीवित रहने का माद्दा रखता है। माइकल फ्रीमैन लिखते हैं कि अनेक अकादमिक विद्वान मानवाधिकार को क़ानूनी और तकनीकी विषय मानते हैं और वकीलों को इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण. यह बहस यहां तक भी पहुंचती है कि मानवाधिकार के नाम पर चेष्टा एक समानांतर क़ानून प्रणाली बनाये जाने की है। इस पूरी बहस के बीच क्या 'सर्वजन हिताय' की मूल भावना को बीज रूप में क़ानून और न्याय के सिद्धांतों में नहीं रखा जा सकता?

मानवाधिकार : चिंतन, राजनीति और आरोप

इस विषय पर बहस थमी नहीं है कि मानवतावादी क़ानून अन्य विधि सम्मत क़ानूनों से किस तरह अलग हैं या हो सकते हैं। वास्तव में, मनुष्य होने की न्यूनतम या अनिवार्य अस्मिता सुरक्षित करने के लिए ही क़ायदे-क़ानून बनाये जाने के आधारों को नया सूत्रपात नहीं कहा जा सकता. राजतंत्र, जंगलराज और अराजकता से होते हुए लोकतंत्र की विचारणा की स्थापना के पीछे कहीं न कहीं जो नैतिकता रही है, वह काफी हद तक मानवाधिकार और मानवतावादी क़ानूनों की पूर्वपीठिका तैयार

करती है। यह नैतिकता जब तक सार्वभौमिकता और सार्वकालिकता की कसौटी पर सिद्ध नहीं होगी, तब तक मानवाधिकारों के वैश्विक मसौदे का रूप ले कैसे सकेगी! उदाहरण के तौर पर, संयुक्त राष्ट्र के मसौदे में है कि सभी मनुष्यों को समान अधिकार प्राप्त हैं। दूसरा वाक्य है कि सभी को अपने धर्म में आस्था या विश्वास रखने का अधिकार है। ऐसे में, एक परिकल्पनात्मक प्रश्न उठता है कि किसी धर्म में अगर सभी को समान मानने की मान्यता नहीं है, तो इस स्थिति में मानवाधिकार को किस तरह सुनिश्चित किया जा सकेगा?

अनेक विचारक संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों पर भी कई बार प्रश्न उठाते हैं। यही नहीं, मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणापत्र के वादों और वास्तविकताओं के बीच चौड़ी होती जाती खाई के लिए भी आरोप लगे हैं। 'ह्यूमन राइट्स' शीर्षक वाली किताब में यह तथ्य पुरजोर ढंग से उठाया गया कि संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देश मानवाधिकारों पर अपनी वचनबद्धता के मोर्चे पर किस तरह नाकाम साबित हुए हैं। पूर्व राजदूत दिलीप सिन्हा ने अपने लेख में संयुक्त राष्ट्र की भूमिका को संदेह के दायरे में इस तरह रखा, "2006 में संस्थागत सुधारों के बाद भी, मानवाधिकार निकाय विवादों में हैं और इनकी निगरानी या क्रियान्वयन करने वाली अंतरराष्ट्रीय मशीनरी का राजनीतिकरण बेहद हो चुका है... ओएचसीएचआर के 1000 से कुछ ज्यादा के स्टाफ में पश्चिमी देशों के लोगों की बहुलता है। लगभग 20 करोड़ डॉलर के बजट का केवल 40% संयुक्त राष्ट्र से मिलता है, शेष पश्चिमी देशों की सरकारों और दानदाताओं से. यह समझने के लिए कितनी प्रतिभा चाहिए कि पश्चिमी देश किस तरह ओएचसीएचआर की कार्यप्रणाली और एजेंडे तय करते हैं."

तानाशाही, फिर लोकतंत्र और दुनिया में अब सत्तावादी लोकलुभावनवाद व्यवस्था के सदंर्भ में, डॉनेली एंड व्हेलन की किताब में स्पष्ट निष्कर्ष है कि तमाम स्थितियों के बावजूद, यथार्थवाद अब भी मानवाधिकारों की राह में कड़ी चुनौती बना हुआ है। यथार्थ यह है कि मानवाधिकारों की पैतृक संस्थाएं ही विवादास्पद हो चुकी हैं। दो साल पहले संयुक्त राष्ट्र की संस्थाओं के एकाधिक पदाधिकारियों ने इस्तीफे देते हुए महासचिव एंटोनियो गुटेरेज पर स्पष्ट आरोप मढ़े कि शक्तिसंपन्न देशों के हितों के लिए संयुक्त राष्ट्र के मूल सिद्धांतों को ही उन्होंने ताक पर रखकर इस महान ऐतिहासिक वैश्विक संस्था को शर्मसार किया. गौर किया जाये तो यह पूरा

राजनीतिकरण उस आंतरिक और छद्मयुद्ध का ही प्रतिफल है, जो महाशक्तियों के बीच वर्चस्व के लिए अनवरत है।

शक्तिशाली देशों ने युद्ध की नयी परिभाषाएं गढ़ते हुए 'शांति के लिए युद्ध' एवं 'युद्ध के ख़िलाफ युद्ध' जैसी शब्दावली भी प्रस्तुत की. लेकिन इस शब्दावली के मूल में भी हिंसा है, जिसे क़ानूनी या नैतिक तौर पर जायज ठहराने की कवायद की जाती है। कहते हैं कि शांति के लिए आप जितना अधिक पसीना बहाएंगे, युद्ध में ख़ून उतना कम बहेगा. इस विचार के आगे शांति के लिए ख़ून बहाने का विचार धराशाई हो जाता है। 9/11 के हमले के बाद से अमेरिका ने आतंकवाद के खिलाफ जो कथित युद्ध छेड़ा, उसमें 45 लाख मौतें अब तक हो चुकी हैं।

और कितनी मौतें सर लिखवाओगे
कब तक अपनी लाश ढोते जाओगे
वहशतों से तुम मुकर जाओगे आज
कल मगर क़ातिल ही लिक्खे जाओगे

यह यक़ीन नहीं किया जा सकता कि यह संख्या मात्र आतंकवादियों की है। हालिया सर्वे रिपोर्ट का कहना है अफगानिस्तान, पाकिस्तान, इराक, लीबिया, सीरिया, सोमालिया और यमन जैसे इलाक़ों में जो वॉर-जोन बने, कम से कम 35 लाख लोग वहां अप्रत्यक्ष ढंग से मारे गये. इसका अर्थ यह है कि आतंकवाद के सफाये के लिए अमेरिकी दमन से अर्थव्यवस्था, नागरिक सेवाएं और पर्यावरण जिस तरह नष्ट हुआ, ये मौतें इन वजहों से हुईं. इन्हें 'कॉलैटरल डैमैज' कहकर न्यायसंगत ठहराया जाता है!

भविष्य के युद्ध और मानवाधिकारों के लिए चुनौतियां

तकनीक और महत्वाकांक्षाओं के उत्तर आधुनिक युग में युद्ध और मानवाधिकारों के अंतरराष्ट्रीय आयाम तरह-तरह के भयावह अनुमानों से बहस और चिंतन में हैं। राज्य के राज्य चुटकियों में तबाह कर देने वाले हथियारों के बाद, वह समय दूर नहीं, जब रोबोट सोल्जरों की फौजें युद्ध करेंगी. सैनिकों को ब्रेनवॉश कर रोबोट बना दिया जाएगा. अर्थ यह है कि ये हथियारबंद फौजें दूर से मिल रहे निर्देशों का पालन भर करेंगी. किसी तरह की सहानुभूति, संवेदनशीलता, भावकुता, स्थिति के अनुरूप निर्णय लेने की क्षमता और बौद्धिकता के गुणों से इनका वास्ता नहीं होगा. क्षण विशेष में

जाग जाने वाली रही-सही मानवीयता का भी खात्मा किये जाने की ये योजनाएं क्रूरता की प्रयोगशालाओं में हैं। युद्ध की एक आभासी दुनिया भी है।

वर्चुअल वर्ल्ड. साइबर वॉर के नाम से जाने जा रहे इस युद्ध के हथियारों को लेकर बहस जारी है। इस युद्ध के लिए गुप्त सूचनाओं की चोरी और बिक्री, प्रौपगैंडा के जरिये हमले या मॉब लिंचिंग और स्टॉक मार्केट या वित्तीय संस्थानों में हैकिंग/चोरी/नेटवर्क पर हमले के माध्यम से आर्थिक तबाही जैसे हथियारों के बारे में अब तक चर्चा हुई है। चुनौती यह है कि अंतरराष्ट्रीय मानवतावादी क़ानूनों में इस तरह के युद्धों के संदर्भ में सटीक और पर्याप्त प्रावधान अब तक इसलिए नहीं हो सके हैं क्योंकि इस युद्ध की सीमाओं, विस्तार, परिणामों और प्रकृति को लेकर ही पर्याप्त समझ तय नहीं हो सकी है।

कहावत के रूप में यह वाक्य प्रचलित हो चुका है कि 'मानवाधिकारों की सबसे ज्यादा जरूरत वहां और तब होती है, जहां और जब इनका सबसे ज्यादा उल्लंघन होता है'. शांतिकाल में मानवाधिकार न तो विमर्श का हिस्सा हैं, न ही नागरिकों की मांग या आवश्यकता का. स्थितियां जब भयावह होंगी, व्यवस्था जब बर्बर होगी और मनुष्य के भीतर जब शैतान हावी होगा; यानी हमारा परिवेश जब किसी यातना गृह का रूपक होगा, मानवाधिकार की चर्चा यह याद दिलाने के लिए होगी कि मानवीयता का अर्थ क्या है, न्यूनतम मनुष्यता कितनी है और मनुष्य होने की गरिमा क्यों किसी से छीनी नहीं जा सकती. युद्धकाल (व्यापक अर्थ में अनेक प्रकार के संघर्ष/संकट) के दौरान सामान्य नागरिकों (महिलाएं, बच्चे व अन्य जेंडर सहित), सामाजिक/राजनीतिक कार्यकर्ताओं, बुद्धिजीवियों/कलाकारों के साथ ही युद्धबंदियों के साथ किस तरह बर्ताव हो कि इंसानियत शर्मसार न हो, इतनी नैतिकता, संवेदनशीलता और समझ स्थापित करने के मिशन का नाम मानवाधिकार है, जिसे संयुक्त राष्ट्र के सार्वभौमिक घोषणा पत्र (यूडीएचआर) में 'सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र एवं अपने अधिकारों व गरिमा के संदर्भ में समान हैं, कहा गया है।

तू और करता रहेगा तरह-तरह की जंग
मैं वहशतों से सौ फीसद निकल भी जाऊंगा
तू सरहदों को वतन मानता रहेगा दोस्त
इधर मैं प्यार में बेहद निकल भी जाऊंगा

अमेरिकी शिक्षाविद हेनरी गिरॉक्स के शब्दों में, "अपने जीवन की गाथा लिखने, सत्ता को जवाबदेह बनाने और मानवीय गरिमा के विराट् विचार को आत्मसात करने के लिए बुनियादी स्थितियां सामूहिक स्वतंत्रता से ही मिलती हैं." यह उस समाज में व्यवहार नहीं आदर्श लक्ष्य है, जो अपने आप को सभ्य और सुसंस्कृत कहता है, गर्व और दंभ के लाख कारण देखता है परंतु अस्तित्व की गरिमा, शील और न्यूनतम मनुष्यवत अस्मिता को बचाये रखने के समय में पशुवत हो जाता है। निष्कर्षत: मानवाधिकार की कुंजी प्रेम, परोपकार, शिक्षा, जागरूकता और न्याय के हाथ में ही है। स्थितियों की भयावहता, मानवाधिकारों पर तर्क-वितर्क, वाद-विवाद सब अपनी जगह, आखिरकार ऐसी दुनिया की कल्पना ही रोंगटे खड़े कर सकती है, जहां मानवाधिकार सुनिश्चित और सुरक्षित न हों।

-भवेश दिलशाद
'प्रणाम', 161, शिक्षक कांग्रेस नगर
फेज 2, बाग मुगलिया, भोपाल 462043
संपर्क : 9560092330

❑ ❑ ❑

अफगानिस्तान में तालिबान शासन के अंतर्गत महिलाओं के अधिकारः एक विश्लेषण

–डॉ रमेश कुमार*
–अनु**

सारांश

अफगानिस्तान में धर्म और पितृसत्तात्मक समाज की रूढ़िवादी मानसिकता का महिलाओं के सामान्य जीवन पर काफी नकारात्मक प्रभाव पड़ा है। तालिबान शासन से अफगान महिलाओं के भाग्य और उनके अधिकारों पर एक बड़ा सवालिया निशान खड़ा हो गया है। इस लेख में तालिबान शासन के अंतर्गत महिलाओं से संबंधित अनेक जटिल मुद्दों जैसे लैंगिक समानता, स्वास्थ्य और शिक्षा आदि को व्यापक रूप से प्रस्तुत किया गया है। यह विषय इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें अफगानिस्तान में लोकतांत्रिक और तालिबान शासन के अंतर्गत महिला अधिकारों में विद्यमान विभिन्नताओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। अंत में, वर्तमान परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कुछ सुझाव दिए गए है।

बीज शब्द

तालिबान शासन, महिलाएं, पितृसत्तात्मक, अधिकार, रूढ़िवादी, इस्लाम धर्म।

प्रस्तावना

अफगानिस्तान में 15 अगस्त 2023 को तालिबान के शासन 'इस्लामिक अमीरात

* विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़, हरियाणा।
** शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़, हरियाणा।

ऑफ अफगानिस्तान' की फिर से स्थापना की दूसरी वर्षगांठ पर शासन परिवर्तन की प्राथमिक शिकार 'महिलाओं' के अधिकारों की स्थिति का मानव अधिकारों के सन्दर्भ में चिंतन करना महत्वपूर्ण है। अफगानिस्तान के प्रारंभिक इतिहास से पता चलता है कि महिलाओं को समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त था और महिलाएं वर्तमान की तुलना में अधिक स्वतंत्र थी, परंतु 80-90 के दशक में पश्चिमी सभ्यता के खिलाफ व इस्लामी सभ्यता और संस्कृति के बचाव में आवाजें उठने लगी। अफगान पुरुषों की नजर में महिलाओं के अधिकारों की मांग अफगानिस्तान को पश्चिमीकरण की ओर धकेल रही है। यहाँ पर पश्चिमीकरण को एक आक्रामक और अत्यंत खतरनाक सांस्कृतिक प्रवृत्ति माना जाता है। धर्म और पितृसत्तात्मक समाज की जड़ें इतनी गहरी हैं कि महिलाओं को पुरुषों के समान स्वीकार नहीं किया जाता है। अफगानिस्तान में तालिबान द्वारा शरीयत के अनुसार शासन चलाने के नाम पर महिलाओं के प्रति हिंसा के साथ ही उन्हें उनके मूल अधिकारों से वंचित कर दिया गया है। जबकि शरिया कानून[1] अपनाने वाले अन्य इस्लामिक देशों जैसे संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब, तुर्की, इंडोनेशिया आदि ने भी बदलते परिदृश्य के साथ महिलाओं को, अफगानिस्तान की तालिबान सरकार की अपेक्षा कुछ अधिकार प्रदान किए हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इस्लाम महिलाओं पर क्रूरता की आजादी नहीं देता है, जबकि भ्रष्ट सरकार, कुरान की गलत व्याख्या, गरीब एवं उत्पीड़ित जीवन और पितृसत्तात्मक नियंत्रण इस्लाम की तुलना में महिलाओं की दुर्दशा के लिए अधिक जिम्मेदार हैं।

अफगानिस्तान में महिलाओं के अधिकारों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अफगानिस्तान में महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष का एक इतिहास है। अफगान महिलाएं अब जिस अनिश्चित स्थिति का सामना कर रही हैं, वह केवल हाल के अधिग्रहण का परिणाम नहीं है। इससे पूर्व भी अफगान महिलाओं के अधिकारों का एक काला और अत्याचारी इतिहास रहा है। महिलाओं की वर्तमान स्थिति को समझने के लिए इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझना आवश्यक है। जिसका वर्णन निम्न प्रकार से है :-

तालिबान शासन के दौरान महिलाओं के अधिकार (1995-2001)

1994 में 'पश्तून आदिवासी समुदाय' के मुल्ला मोहम्मद उमर ने छात्र संगठन के रूप में उभरे तालिबान की स्थापना की। अफगानिस्तान को मुजाहिदीन

1. शरिया कानून इस्लाम की कानूनी व्यवस्था है जिसे कुरान, हदीस और इस्लामी विद्वानों द्वारा जारी फतवों को मिलाकर तैयार किया गया है।

के अत्याचार, अपराध, अस्थिरता और भ्रष्टाचार से मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से 1995 में तालिबान ने हेरात और 1996 में काबुल, कंधार पर कब्जा कर लिया। शुरुआत में तालिबान को अफगानिस्तान की जनता का समर्थन मिला परन्तु धीरे-धीरे जनता पर इस्लामिक रूढ़िवादी नियम थोपे जाने लगे। इससे सबसे ज्यादा प्रभावित महिलाएं हुई। महिलाओं को शिक्षा, सुरक्षा और स्वास्थ्य जैसी मूलभूत सुविधाएं भी प्राप्त नहीं थी। महिलाओं की प्रत्येक गतिविधि पर बारीकी से नजर रखी जाती थी। महिलाएं न केवल अपना शरीर बल्कि अपना नाम छिपाने के लिए भी मजबूर थी। 15 साल से अधिक उम्र की लड़कियों की तालिबान लड़ाकों से जबरन शादी करा दी जाती थी (Sobat, 2022)। दशकों के संघर्ष, गरीबी, स्वास्थ्य सेवाओं की कमी और डॉक्टरों या दाइयों के बिना जन्म के साथ ही 2000 के दशक की शुरुआत में अफगानिस्तान में दुनिया की दूसरी सबसे ज्यादा मातृ मृत्यु दर थी (Barakat & Wardell, 2002)। इससे महिलाओं की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

11 सितंबर 2001 को वर्ल्ड ट्रेड सेंटर के आतंकी हमले के सरगना ओसामा बिन लादेन की तलाश के चलते अमेरिका ने सैन्य कार्रवाई करते हुए अफगानिस्तान में तालिबान नेता मुल्ला उमर की सरकार गिरा दी। अमेरिका ने हामिद करजई को अंतरिम सरकार के नेतृत्व के लिए नियुक्त किया और उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन ने अपने अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा सहायता बल को अफगानिस्तान में तैनात किया। इस दौरान महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए अनेक प्रयास किये गए।

तालिबान शासन के पतन के बाद लोकतांत्रिक शासन में महिलाओं के अधिकार (2001-2021)

2001 में तालिबान शासन के पतन के बाद से, अफगानिस्तान की सरकार ने मानवाधिकारों और विशेष रूप से महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए कई विधायी उपबंध किए। कुछ प्रमुख उपबंधों में राष्ट्रीय मानवाधिकार संस्थान के रूप में स्वतंत्र मानवाधिकार आयोग की स्थापना, महिला मामलों के मंत्रालय, विभिन्न मंत्रालयों में मानवाधिकार इकाइयां और महिलाओं के खिलाफ हिंसा के उन्मूलन पर कानून पारित करना शामिल है। ह्यूमन राइट्स वॉच की रिपोर्ट के अनुसार, "2002 से जो इलाके अफगान सरकार के नियंत्रण में थे, वहां लाखों की संख्या में लड़कियां स्कूली शिक्षा ले रही थी, जो 2001 के बाद एक बड़े बदलाव को दर्शाता है"। 2003 में महिलाओं को अफगानिस्तान की ग्रैंड काउंसिल "लोया जिरगा" के प्रतिनिधियों के रूप में चुना गया था (Smith, 2019)।

2004 में हुए आम चुनाव में हामिद करजई को 55% वोट मिले व अफगानिस्तान में लोकतांत्रिक सरकार का गठन हुआ (Ahmed&Ghosh, 2006)। संविधान के अनुसार, 2004 में महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किए गए। संसद में 2004 से 2021 तक 27% सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित थी (Allen – Felbab&Brown, 2020)। देश की संसद में अफगानिस्तान की महिलाओं का 27% प्रतिनिधित्व अन्य देशों (ताजिकिस्तान का 24%, संयुक्त राज्य अमेरिका का 23%, पाकिस्तान का 20%, भारत का 14% और ईरान का 6%) की तुलना में तुलनात्मक रूप से अधिक था (Tariq et al., 2021)। 2004 के चुनावों में, संसद के निचले सदन में 249 में से 69 सीटों और उच्च सदन की 102 में से 17 सीटों पर महिला सांसद थी। इस दौरान, तीन महिलाओं को मंत्रियों के रूप में, 11 महिलाओं को उप मंत्रियों के रूप में और पांच महिलाओं को राजदूतों के रूप में नियुक्त किया गया था। इससे महिलाओं के जीवन में प्रगतिशील बदलाव देखने को मिले। महिलाओं को हर क्षेत्र जैसे पुलिस, सेना, एयरफोर्स, जज, डॉक्टर, शिक्षक आदि के रूप में कार्य करते हुए देखा गया। बड़े पैमाने पर धोखाधड़ी, कम मतदान और तालिबान के हमलों से प्रभावित चुनावों में हामिद करजई 20 अगस्त 2009 को फिर से राष्ट्रपति चुने गए। 2009 में, तत्कालीन राष्ट्रपति हामिद करजई ने महिलाओं के खिलाफ हिंसा के उन्मूलन (EVAW& Eradication of Violence Against Women) कानून पर हस्ताक्षर किए (Alvi, 2011)। हालांकि, महिलाओं के खिलाफ हिंसा के उन्मूलन (EVAW) कानून से महिलाओं के वास्तविक जीवन में विशेष बदलाव नहीं आया और उन्हें तब भी बलात्कार, एसिड हमले और जबरन वेश्यावृत्ति जैसे अपराधों का सामना करना पड़ा।

2014 के चुनावों के दौरान महिलाओं की सक्रिय राजनीतिक भागीदारी रही। जो अब तक के इतिहास में सर्वाधिक थी, जिसमें चुनाव में डाले गए कुल मतों का 37.6 प्रतिशत महिला मतदाता थीं और प्रांतीय परिषद पदों के चुनाव के लिए तीन सौ महिला उम्मीदवार थी (Calfs, 2015)। जून 2014 में अशरफ गनी राष्ट्रपति चुने गए। महिलाओं के खिलाफ हिंसा के प्रति "जीरो टॉलरेंस" की नीति अपनाने का वादा करने के बावजूद, तत्कालीन राष्ट्रपति अशरफ गनी ने ऐसा नहीं किया। यह बात 2015 में तब स्पष्ट हुई जब काबुल में कुरान जलाने का झूठा आरोप लगाकर एक युवती 'फरखंदा मलिकजादा' को भीड़ ने पीट-पीट कर मार डाला (Barr, 2018)। गनी की सरकार ने न केवल उसके अधिकांश हत्यारों को न्याय से बचने दिया बल्कि महिलाओं के खिलाफ हिंसा से निपटने के लिए कार्रवाई की सार्वजनिक मांगों को भी नजरअंदाज कर दिया।

फरवरी 2020 में अशरफ गनी दूसरे कार्यकाल के लिए राष्ट्रपति चुने गए। परंतु 15 अगस्त, 2021 को तालिबान आक्रमण से डरकर अशरफ गनी अफगानिस्तान छोड़कर ताजिकिस्तान भाग गए और तालिबान संगठन ने अफगानिस्तान की राजधानी काबुल पर कब्जा करते हुए संपूर्ण अफगानिस्तान को अपने कब्जे में ले लिया। महिलाओं की वर्तमान स्थिति को देखते हुए कहा जा सकता है कि पिछले 20 वर्षों में महिलाओं और लड़कियों द्वारा संघर्षों से हासिल किए गए अधिकार और स्वतंत्रता एक बार फिर खत्म हो गए हैं।

वर्तमान में तालिबान शासन के अंतर्गत महिला अधिकारों की स्थिति

अफगानिस्तान की लगभग आधी आबादी महिलाओं की है, परंतु महिलाओं को उस अनुपात में अधिकार प्राप्त नहीं है। देश के अधिकांश बच्चों विशेषकर लड़कियों के लिए स्कूली शिक्षा पूरी करना भी महज एक सपना है। महिलाओं के लिए स्कूल और कॉलेज बंद कर दिए हैं। 'सद्गुण का प्रचार और बुराई की रोकथाम' मंत्रालय के तालिबान प्रवक्ता सादिक अकिफ मुहाजिर ने कहा, "72 किमी (45 मील) से अधिक की यात्रा करने वाली महिलाओं को सवारी की पेशकश नहीं की जानी चाहिए, अगर उनके साथ परिवार का कोई पुरुष सदस्य नहीं है।" तालिबान का यह आदेश आवागमन की स्वतंत्रता पर संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार सम्मेलन के अनुच्छेद 13 (जिसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक देश की सीमाओं के अंदर स्वतन्त्रतापूर्वक आने, जाने और बसने का अधिकार है) का उल्लंघन करता है। मुहाजिर ने कहा कि परिवहन चाहने वाली महिलाओं के लिए हिजाब की आवश्यकता होगी। मंत्रालय ने "हिजाब"[1] की परिभाषा में एक परिधान का वर्णन किया है कि "बहुत छोटा या बहुत तंग नहीं होना चाहिए," इसका इरादा एक महिला के शरीर की रूपरेखा को अस्पष्ट करना है। (Akbari & True, 2022)

अफगानिस्तान में महिलाओं को पुरुष चिकित्सकों के पास जाने की मनाही है। महिला चिकित्सकों की संख्या बहुत कम है। जिसके कारण 90% महिलाओं का प्रसव घर पर ही अप्रशिक्षित नर्सों द्वारा किया जाता है, जबकि 10% महिलाएं प्रसव के लिए प्रशिक्षित नर्सों के पास जाती हैं। तालिबान शासन के बाद स्थिति और भी खराब हो गई है। महिलाओं में हमेशा असुरक्षा का डर बना रहता है। महिलाओं की जबरदस्ती शादी, बलात्कार जैसी घटनाएं इसी असुरक्षा की भावना को और बढ़ावा देती हैं।

1. तालिबान की हिजाब की परिभाषा – जो बालों को ढंकने से लेकर चेहरे पर घूंघट या पूरे शरीर को ढकने तक हो सकती है,अस्पष्ट है। क्योंकि अधिकांश अफगान महिलाएं पहले से ही हेडस्कार्फ (हिजाब) पहनती हैं।

महिलाओं को बेरंग जीवन जीने के लिए मजबूर किया जा रहा है। इसके खिलाफ कई महिलाओं ने आवाज उठाते हुए लिखा है कि "अफगान संस्कृति खूबसूरत रंगों उत्सव है। जिसमें बुर्का और महिला दमन कभी नहीं रहा।" परंतु तालिबान ने शासन संभालते ही बुर्का अनिवार्य कर दिया है। इससे स्पष्ट है कि संस्कृति, परंपरा और धर्म के नाम पर महिलाओं को उनके मूल अधिकारों से वंचित किया जा रहा है।

अफगानिस्तान में महिलाओं का राजनीतिक जीवन में प्रवेश पूर्णतः प्रतिबंधित कर दिया गया है। महिलाओं को राजनीति में भाग लेने से हतोत्साहित करने के लिए हिंसा का प्रयोग किया गया। सत्ता पर काबिज होने के बाद तालिबान ने आश्वासन दिया था कि वे महिलाओं को समान अधिकार देंगे लेकिन कैबिनेट गठन में एक भी महिला को जगह नहीं दी गई। तालिबान प्रवक्ता सैयद जकीरुल्लाह हाशमी ने कहा कि "एक महिला मंत्री नहीं बन सकती है। महिलाओं के लिए कैबिनेट में होना जरूरी नहीं है। उन्हें बच्चे पैदा करना चाहिए। उनका यही काम है।" जबकि अपवाद के तौर पर इस्लामिक राज्यों जैसे पाकिस्तान में महिला प्रधानमंत्री रह चुकी है व अन्य इस्लामिक राज्यों जैसे सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, तुर्की, इंडोनेशिया में महिलाओं को शासन कार्यों में भाग लेने की पूर्ण स्वतंत्रता है। (Meera & Yekta, 2021)

अफगानिस्तान में महिलाओं को शिक्षा ग्रहण करने और आजीविका कमाने की मनाही है (Telesetsky, 1998)। तालिबान के आतंक के साये में जीने के लिए मजबूर महिलाएं गृह कार्यों व बच्चों के पालन- पोषण तक ही सीमित है (Ruttig, 2021)। महिलाओं को अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ता है। जिसके चलते महिलाएं गरीबी व उत्पीड़ित जीवन जीने के लिए मजबूर हैं। महिलाओं की वर्तमान स्थिति देश की गरीबी को और बढ़ा सकती है, जिससे सभी समुदायों और विशेष रूप से देश के कमजोर वर्गों पर प्रभाव पड़ेगा।

महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए सुझाव

अफगान महिलाओं की एक स्वतंत्र पहचान के लिए, उन्हें वित्तीय, सामाजिक और भावनात्मक स्वतंत्रता की आवश्यकता है। महिलाओं की सुरक्षा की गारंटी के लिए उनके साथ होने वाले किसी भी प्रकार के लैंगिक भेदभाव को रोका जाना चाहिए। तालिबान नेताओं को अन्य देशों, विशेष रूप से इस्लामी देशों जैसे सऊदी अरब, इंडोनेशिया, मलेशिया, मिस्र और तुर्की की यात्रा करनी चाहिए। जहां महिलाओं

को पूर्ण स्वतंत्रता मिलती है। जिससे तालिबान को पता चल सके कि महिलाओं के अधिकार शरीयत के अनुरूप कैसे हो सकते हैं तथा कौन से कानून और शासन प्रणाली इस संभावना को बढ़ा सकते हैं। बेहतर जीवन की हकदार अफगान महिलाओं को भी शासन प्रक्रिया में शामिल किया जाना चाहिए। अंतरराष्ट्रीय समुदाय द्वारा महिलाओं के अधिकारों को उच्च प्राथमिकता देनी चाहिए एवं एकजुट होकर देश में महिलाओं और लड़कियों के अधिकारों की वकालत करनी चाहिए। अंतरराष्ट्रीय संगठनों को महिलाओं की स्थिति में सुधार के अधिक प्रभावी परिणाम देखने के लिए, एक ऐसा दृष्टिकोण अपनाना होगा जो स्थानीय आबादी के सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्शों के अनुरूप हो।

निष्कर्ष

अफगानिस्तान में 1996 की तुलना में, अब महिलाएं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ चुकी हैं व अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं। ऐसी स्थिति में, महिलाओं को लंबे समय तक उनके अधिकारों से वंचित नहीं रखा जा सकता है। अफगानिस्तान में वर्तमान परिस्थितियां महिलाओं के पक्ष में नहीं हैं, परंतु महिलाएं लगातार अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही हैं। महिलाओं पर राइफल बटों, आंसू गैस और पत्थर से हमला करने के बावजूद अफगान महिलाओं ने कई बार उन पर लगाए जाने वाले प्रतिबंधों का विरोध किया है। परन्तु अब यह केवल महिलाओं का संघर्ष नहीं है; यह अकेले देश का संघर्ष नहीं है, बल्कि यह एक वैश्विक एवं साझी जिम्मेदारी है। यह लोकतंत्र की लड़ाई उन मूल्यों के लिए है, जिनकी वैश्विक प्रासंगिकता है। अब वैश्विक एकजुटता का समय है, क्योंकि यह केवल मानवीय अनिवार्यता नहीं, बल्कि महिलाओं की स्वतंत्रता और मानवाधिकार को सुरक्षित करने के लिए भी आवश्यक कदम है।

संदर्भ ग्रंथ

- Ahmed-Ghosh, H. (2006). Voices of Afghan women: Human rights and economic development. International Feminist Journal of Politics, 8(1), 110–128.
- Akbari, F., & True, J. (2022). One year on from the Taliban takeover of Afghanistan: Re-instituting gender apartheid. Australian Journal of International Affairs, 76(6), 624–633.

- Allen, J. R., & Felbab-Brown, V. (2020, September 16). The fate of women's rights in Afghanistan. Brookings. https://www.brookings.edu/essay/the-fate-of-womens-rights-in-afghanistan/
- Alvi, H. (2011). Women in Afghanistan: A Human Rights Tragedy Ten Years after 9/11. Human Rights and Human Welfare Working Papers, 66.
- Barakat, S., & Wardell, G. (2002). Exploited by whom? An alternative perspective on humanitarian assistance to Afghan women. Third World Quarterly, 23(5), 909–930.
- Barr, H. (2018, May 30). Afghan Government Ignoring Violence Against Women. Human Rights Watch. https://www.hrw.org/news/2018/05/30/afghan-government-ignoring-violence-against-women
- Calfas, A. (2015). Supporting Afghan women in the 2014 transition.
- Meera, M., & Yekta, K. (2021). The Challenges to Political Participation of Women in Afghanistan: Historical and Cultural Perspectives. Asian Studies, 9(1), 65–91. https://doi.org/10.4312/as.2021.9.1.65-91
- Ruttig, T. (2021). Have the Taliban Changed? Combating Terrorism Center U.S. Military Academy, 14(3), 1–15.
- Smith, S. S. (2019). Loya Jirgas and Political Crisis Management in Afghanistan: Drawing on the Bank of Tradition. US Institute of Peace. https://www.jstor.org/stable/resrep20254
- Sobat, T. (2022). No Peace for Afghanistan: A Case-Study of the Failure of Peace-Building Process in Afghanistan from a Transnational Feminist Standpoint [PhD Thesis]. Minnesota State University, Mankato.
- Tariq, D. M., Ali, A., Khan, D. A., Ahmad, D. M., Ayaz, D. M., Saeed, D. S., & Ahmad, D. R. (2021). Political Participation of Women in Afghanistan in the Present Set-up. International Journal of Innovation, 15(7), 14.
- Telesetsky, A. (1998). In the shadows and behind the veil: Women in Afghanistan under the Taliban rule. HeinOnline.

❑ ❑ ❑

युद्ध, संघर्ष एवं स्त्री मानवाधिकार के प्रश्न : वैश्विक नारावादी दृष्टिकोण

–डॉ. सुप्रिया पाठक
एसोसिएट प्रोफेसर, स्त्री अध्ययन विभाग
क्षेत्रीय केंद्र, प्रयागराज
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय-वर्धा, महाराष्ट्र

सारांश

युद्ध शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा किया गया एक राजनीतिक कृत्य है जो वैचारिक-रणनीतिक संतुलन और प्रभुत्व कायम रखने के लिए अंजाम दिया जाता है। इसके माध्यम से युद्धरत देश एवं समुदाय लाखों लोगों के जीवन को प्रभावित करते हैं। ऐतिहासिक रूप से युद्ध की रणनीति के रूप में महिलाओं और लड़कियों को यौन हिंसा का शिकार बनाया जाता है एवं इसे व्यापक एवं आम घटना के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है। युद्ध के दौरान और उसके बाद महिलाओं पर पड़ने वाला प्रभाव अत्यंत महत्वपूर्ण एवं विचारणीय प्रश्न हैं। इस संदर्भ में वर्ष 2000 में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने महिलाओं की शांति और सुरक्षा पर प्रस्ताव पारित किया, जो संघर्ष के दौरान महिलाओं की सुरक्षा और शांति-निर्माण में उनकी भागीदारी को औपचारिक बनाने का एक प्रयास था। युद्ध के नारीवादी विश्लेषण से हमें यह पता चलता है कि हिंसा की ये सभी प्रणालियाँ आपस में कैसे जुड़ी हुई हैं। हिंसक संघर्ष के संदर्भ में, समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति और पारिवारिक संरचनाओं के भीतर प्रकट होने वाली हिंसा के रूप में लिंग को किस प्रकार चिन्हित किया जाता है। प्रस्तुत आलेख इन समस्त बिंदूओं को विश्लेषित करने का प्रयास मात्र है।

बीज शब्द: युद्ध, संघर्ष,स्त्रियों के विरुद्ध हिंसा, स्त्री मानवाधिकार, संघर्ष समाधान।

> आज के अधिकांश संघर्ष राज्यों के भीतर होते हैं। उनके मूल कारणों में अक्सर गरीबी, दुर्लभ संसाधनों के लिए संघर्ष और मानव अधिकारों का उल्लंघन शामिल हैं। उनकी एक और दु:खद विशेषता यह है कि महिलाओं को जनसंख्या-बमबारी, अकाल, महामारी, सामूहिक हत्या, यातना, जबरन प्रवासन एवं कारावास जातीय संघर्ष और धमकियों के साथ-साथ विशिष्ट प्रकार की हिंसा, यौन दुर्व्यवहार हिंसा और शोषण की पीड़ा झेलनी पड़ती है जो उनपर असंगत रूप से असमान प्रभाव डालती है।
>
> **कोफी अन्नान (महासचिव, संयुक्त राष्ट्र संघ 1997-2006)**

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में सत्ता संबंधों को बनाए रखने एवं अपने राजनीतिक वर्चस्व को कायम करने के लिए युद्ध अनिवार्य है। युद्ध के कई चेहरे होते है। यह शतरंज का एक राजनीतिक खेल है जो किसी भी स्थिति में जीतने में यकीन करता है, लेकिन यह अलगाव की व्यक्तिगत पीड़ा भी है, वह भय भी है जो गोलीबारी की अराजकता के साथ जुड़ा होता है। इसमें गहरे घाव भी हैं जो संघर्ष से टूटे हुए परिवारों और समुदायों को झेलने पड़ते हैं। एक माँ है, जो अपने बच्चों के लिए एक स्थिर दुनिया का स्वप्न देखती है और एक महिला सुरक्षित रूप से काम पर जाने की उम्मीद करती है। द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत कई राष्ट्रों ने युद्ध के दु:खद परिणामों को भुगता बावजूद इसके, मानवता विरोधी शक्तियों के लिए युद्ध आज भी आवश्यक बना हुआ है।

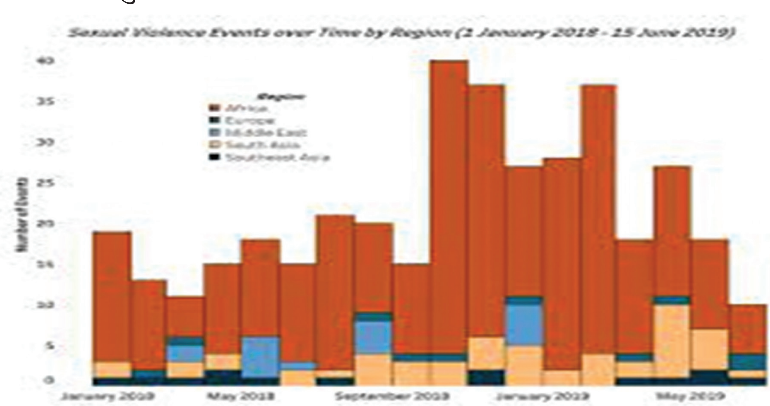

चित्र-1 वैश्विक स्तर पर युद्ध एवं संघर्ष के दौरान स्त्रियों की स्थिति, द गार्जियन

युद्ध में शामिल किसी भी देश के पुरुष जहां सीधे तौर पर उससे प्रभावित होते हैं, वहीं महिलाएं भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में युद्ध की विभीषिका की शिकार होती हैं। युद्ध के दौरान और उसके उपरांत होने वाली यौन हिंसाओं, बलात्कार, गरीबी, परिवार के देखभाल की एकल जिम्मेदारी, बेरोजगारी, भुखमरी तथा बेघर एवं विस्थापित होने की समस्याओं से वे लगातार जूझती रहती हैं। अर्थात युद्धजन्य दुष्प्रभावों का सबसे व्यापक और गंभीर परिणाम स्त्रियों को ही झेलना पड़ता है। यह पुरुष वर्चस्व की मानसिकता पर आधारित कृत्य है जो विध्वंस को बढ़ाता है। साथ ही, सामाजिक एवं राजनीतिक दृष्टि से पुरुष तंत्र को मजबूत बनाता है। युद्ध का सबसे नकारात्मक एवं विचारणीय पक्ष यह है कि यह स्त्रियों को दोयम दर्जे का नागरिक मानता है। युद्ध संबंधी सभी गतिविधियों में स्त्रियों की हिस्सेदारी प्रत्यक्ष रूप में न के बराबर है पर युद्ध में लड़ने वाले पुरुष किसी-न-किसी के पुत्र, पति, पिता अथवा भाई ही होते हैं अर्थात् परोक्ष रूप से इस युद्ध में स्त्रियों के योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इन सबके बावजूद युद्ध की त्रासदी की दोहरी मार स्त्रियों की पीठ पर ही पड़ती है। परिवार समाज की इकाई है तथा स्त्री उस परिवार का केंद्र है। युद्ध के समय व्यापक स्तर पर सामाजिक एवं पारिवारिक क्षति होती है अर्थात् इस पूरे नुकसान का खामियाजा स्त्रियों को ही उठाना पड़ता है।

विएना घोषणापत्र एवं कार्यक्रम, 1993 (अनुच्छेद 38)

सशस्त्र संघर्ष की स्थितियों में महिलाओं के मानवाधिकारों का उल्लंघन अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकारों और मानवीय कानून के मौलिक सिद्धांतों का उल्लंघन है। इस प्रकार के सभी उल्लंघन, जिनमें विशेष रूप से हत्या, व्यवस्थित बलात्कार, यौन दासता और जबरन गर्भावस्था शामिल है, के लिए वैधानिक प्रावधानों की आवश्यकता है।

युद्ध एवं संघर्ष के दौरान यौन हिंसा (Sexual violence and humiliation during war and conflict)[1]

उत्पीड़न की प्रमुख पदानुक्रमित प्रणालियाँ समाज में पितृसत्तात्मक शक्ति संबंधों को इस तरह बनाए रखती हैं कि लैंगिक भूमिकाएँ न केवल यथावत बनी रहती हैं, बल्कि महिलाओं और पुरुषों के बीच की विभाजक रेखा और मजबूत होती है। 'यौन हिंसा' (Señual violence) शब्द बलात्कार, यौन विकृति, यौन अपमान, जबरन वेश्यावृत्ति और जबरन गर्भधारण सहित कई अलग-अलग अपराधों को संदर्भित करता है। ये अपराध असंख्य कारकों से प्रेरित होते हैं। उदाहरण के लिए, पूरे इतिहास में आम तौर पर यह धारणा रही है कि महिलाएं युद्ध की "लूट" का हिस्सा हैं जिसके

1. Conflict drives global rise in sexual violence against women, Sexual violence , *The Guardian*

हकदार युद्धरत सैनिक हैं। इस धारणा में यह विचार गहराई से निहित है कि महिलाएं विजयी योद्धाओं की संपत्ति हैं। यौन हिंसा को सैन्य उत्पीड़न के एक साधन के रूप में भी देखा जा सकता है जहां महिलाओं को यौन गुलामी के लिए मजबूर किया जाता है। युद्ध के दौरान एवं उपरांत महिलाओं के प्रति यौन हिंसा होने का एक प्रमुख कारण पुरुष समुदाय के गौरव को नष्ट करना है। जो पुरुष अपनी महिलाओं की रक्षा करने में विफल रहे हैं उन्हें अपमानित और कमजोर माना जाता है। यौन हिंसा को मनोवैज्ञानिक तौर पर किसी राष्ट्र या समुदाय की आबादी को बड़े पैमाने पर आतंक फैलाने के साधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यौन हिंसा भी जनसंहार रणनीति का अहम हिस्सा होती है। अंतरराष्ट्रीय संबंध विश्व राजनीति का एक प्रमुख अंग है जो प्रारंभ से ही पुरुष मानसिकता से संचालित होता रहा है। इस राजनीतिक प्रक्रिया में न तो प्रत्यक्षतः स्त्रियों की भागीदारी सुनिश्चित की गई और न ही युद्ध से उत्पन्न दुष्परिणामों का स्त्रियों के संदर्भ में कोई मूल्यांकन ही किया गया। युद्ध के बाद युद्धग्रस्त क्षेत्रों की स्त्रियों के देह पर युद्ध के भीषण निशान बचे रहते हैं। 1992 से 1995 के दौरान चले क्रोएशिया-सर्बिया के युद्धों पर केंद्रित गरिमा श्रीवास्तव की कृति क्रोएशियाई प्रवास-डायरी 'देह ही देश' के मुख्य पृष्ठ पर लेखिका उद्धृत करती हैं कि :

'उन हजारों लाखों औरतों के नाम जिनकी देह पर ही लड़े जाते हैं सारे युद्ध दुनियाभर के युद्धों का न सिर्फ भाष्य प्रस्तुत करता है बल्कि युद्धग्रस्त क्षेत्रों को आधी आबादी के नजरिये से देखने की समझ भी पैदा करता है। युद्ध भले पृथ्वी के किसी खास भूभाग पर लड़ा जाए लेकिन अंततः वह घटित होता है स्त्री की देह पर।[1]

पहले विश्व युद्ध के दौरान नारीवादी कार्यकर्ता **एस्टेले सिल्विया पंकहर्स्ट** ने खुलकर युद्ध का विरोध किया जिसकी वजह से उन पर सार्वजनिक रूप से हमला भी किया गया। वह न केवल युद्ध के खिलाफ बनी रहीं, बल्कि महिलाओं के मतदान के अधिकार के लिए भी महत्वपूर्ण काम किया।[2] युद्ध के दौरान विधवा हो चुकी या घर पर रह रही महिलाओं की आर्थिक सुरक्षा और बच्चों के लिए भी उन्होंने काम किया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान यौन हिंसा की घटनाओं के संबंध में एक रहस्यमयी चुप्पी कायम है। इस संबंध में ऐतिहासिक दस्तावेजों में भी पुख्ता तौर पर कोई दावा नहीं किया गया। ऐसा इसलिए नहीं है कि यौन हिंसा नहीं हुई, बल्कि इसके कई

---

1. श्रीवास्तव, गरिमा. (2018), *देह ही देश*, नयी दिल्ली: राजपाल एण्ड सन्स.
2. धर, मालविका. युद्ध और महिलाएं: महिलाओं को शांति प्रक्रियाओं में शामिल करना क्यों है जरूरी? *फेमिनिस्ज इन इंडिया*, 23 मार्च 2022.

अन्य कारण हैं। मूल कारण यह है कि इस युद्ध के दौरान सभी पक्षों द्वारा यौन हिंसा की गई थी। नतीजतन, युद्ध के समापन के उपरांत सभी पक्ष एक दूसरे के खिलाफ आरोप लगा पाने में नाकाम रहे। हालांकि, हाल के वर्षों में ही नारीवादी लेखकों एवं सामाजिक समूहों ने द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुई यौन हिंसाओं के मुद्दे पर पुनर्विचार करना शुरू किया है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जापानी सेना द्वारा हजारों एशियाई महिलाओं और लड़कियों को **यौन दासता (Sex slavery)** में मजबूर किया गया था।

1992 में, जापानी सरकार ने इन महिलाओं से इस आपराधिक कृत्य के लिए आधिकारिक तौर पर माफी मांगी। महिलाओं के खिलाफ हिंसा पर संयुक्त राष्ट्र के विशेष प्रतिवेदन में जाहिर किया कि इन महिलाओं और लड़कियों ने इस दौरान किस प्रकार की यातनाएं झेलीं। 1994 में रवांडा में हुए जनसंहार के दौरान 100 दिनों के अंदर लाखों लोगों की हत्या की गई और 250,000 से 5,00000 के बीच महिलाओं के साथ यौन हिंसा एवं बलात्कार की घटनाएं दर्ज की गईं। इस घटनाक्रम में ***'व्यवस्थित रूप से बलात्कार को एक हथियार के रूप में अपनाया गया'।***[1] महिलाओं और लड़कियों को अक्सर ***'संस्कृति की वाहक*** **(Cultural agent)**' और दुश्मन देश या समुदाय की **'*पुनरुत्पादक* (Reproducer)**' के रूप में देखा जाता है जिसके कारण वे युद्ध के दौरान प्रमुख लक्ष्य बन जाती हैं। जिनेवा कन्वेंशन और अन्य प्रावधानों के साथ एक और समस्या यह है कि वे बलात्कार और यौन हिंसा के अन्य रूपों को महिलाओं के "सम्मान" के खिलाफ हमले के रूप में या अधिक से अधिक व्यक्तिगत गरिमा पर अपमान के रूप में दर्शाते हैं। निहितार्थ यह है कि "सम्मान" (या गरिमा) पुरुषों द्वारा महिलाओं को दी गई चीज है, और इस प्रकार बलात्कार से पीड़ित महिला का अपमान किया जाता है। यौन हिंसा को शारीरिक अखंडता का उल्लंघन करने वाले हिंसक अपराध के रूप में वर्गीकृत करने में इन उपकरणों की विफलता, महिलाओं के खिलाफ यौन हिंसा के अपराधों को संबोधित करने में एक गंभीर बाधा उत्पन्न करती है।

कुछ प्रमुख नारीवादी विद्वान **'युद्ध के लैंगिक विभाजन' (Sexual division of war)** की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं जिसमें पुरुषत्व हिंसा का चालक तत्व है जबकि नारीवादी आंदोलन हमेशा युद्ध-विरोधी आंदोलनों से जुड़े रहे हैं। **मैरी कैप्रियोली**[2] अपने शोध में इस तथ्य को उजागर करती हैं कि लैंगिक समानता

1. Shriram, Akash. Women and wars: How conflict affects women, Deccan Herald, 8 March 2021.
2. **Caprioli, Mary Gendered Conflict. Journal of Peace Research, Vol. 37, No. 1 (Jan., 2000), pp. 51-68 Sage Publications.**

अंतरराष्ट्रीय और घरेलू दोनों स्तरों पर अधिक शांतिपूर्ण राज्य व्यवहार से जुड़ी है। ***वैलेरी हडसन***[1] भी शांति के इसी सिद्धांत को यह तर्क देते हुए कि ***जिन समाजों में घरों के भीतर लिंग-आधारित हिंसा के उच्च स्तर का अनुभव होता है, उनके हिंसक समूह में शामिल होने की अधिक संभावना होती है,*** आगे बढ़ती हैं। वे मानती हैं कि युद्धों के दौरान समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था, संस्कृति और पारिवारिक संरचनाओं के भीतर प्रकट होने वाली हिंसा को वृहद रूप में प्रकट किया जाता है। ***क्रिस्टीन हेगन*** अपने अध्ययन ***द नेचर एंड साइकोलॉजिकल कंस्क्विेंसेस ऑफ वार*** में युद्धकालीन बलात्कार की गहन की पाँच विशेषताएँ स्पष्ट करती हैं: व्यापकता, सार्वजनिक घटनाक्रम, बर्बरता, दासता, नैतिकता। उन्होंने यह तथ्य उजागर किया कि:

"द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान लगभग 19 लाख महिलाओं के साथ बलात्कार हुआ। पाकिस्तानी सैनिकों ने बांग्लादेश की लगभग 2 लाख महिलाओं के साथ सामूहिक बलात्कार किया। क्रोएशिया, बोस्निया तथा हर्जेगोविना में युद्ध के दौरान लगभग 60 हजार बलात्कार के मामले सामने आए। एक अनुमान के अनुसार युद्ध के दौरान 91 प्रतिशत बलात्कार सामूहिक होते हैं।"[2]

लॉरा सोजबर्ग वैश्विक संघर्ष और युद्ध में लैंगिक अधीनता को प्रमुख कारकों के रूप में देखती हैं। वह लैंगिक संरचनाओं के परिप्रेक्ष्य में युद्ध के अर्थ, कारणों, प्रथाओं में जेंडरगत अनुभवों की जांच करती हैं और राज्यों के बीच हिंसक संघर्ष के विश्लेषण के लिए समावेशी दृष्टिकोण का निर्माण करती हैं। अंतरराष्ट्रीय, राज्य, उपराज्य और व्यक्तिगत स्तरों पर हुए युद्ध पर विचार करते हुए सोजबर्ग का नारीवादी दृष्टिकोण युद्ध के चरों की तलाश करती हैं। उनके अनुसार संरचनात्मक लैंगिक असमानता, हिंसा, राज्य की पौरुषपूर्ण भाव भंगिमा, राजनीतिक वार्ताओं में स्त्रियों की अनदेखी, सत्ता की लैंगिक समझ शामिल है। **जेंडरिंग ग्लोबल कॉन्फ्लिक्ट**[3] उन स्थानों पर भी ध्यान आकर्षित करता है जो युद्ध के संभावित स्थल हो सकते हैं। उनके निष्कर्षों से पता चलता है कि हिंसक संघर्ष में सबसे कठिन और प्रतीत होने वाले निर्णयों में भी लिंग महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

1. Hudson,Valerie M.; Matfess, Hilary (2017-07-01) In Plain Sight: The Neglected Linkage between Bride price and Violent Conflict, International Security , ISSN 0162-2889
2. Kristen, Hagen & Yohani, Sophie. (2010). the Nature and Psychosocial Consequences of War Rape for Individuals and Communities. International Journal of Psychological Studies.
3. Sjoberg, Laura. (2013), Gendering Global Conflict: Toward a Feminist Theory of War, Columbia: Columbia University Press

युद्ध के दौरान महिलाओं के प्रति होने वाली यौन हिंसाओं पर प्रमुख मानवाधिकार

- 1969 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने सर्वप्रथम युद्ध एवं संघर्ष के दौरान महिलाओं एवं बच्चों के साथ होने वाली हिंसाओं से उन्हें सुरक्षा प्रदान करने की अनिवार्य आवश्यकता पर बल दिया। वर्ष 2000 में पुनः संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद ने सर्वसम्मति से महिलाओं और शांति और सुरक्षा पर इस संकल्प को अपनाया था और महिलाओं और लड़कियों पर सशस्त्र संघर्ष के असमान और विशिष्ट प्रभाव को स्वीकार किया था।
- 1985 में, ***नैरोबी फॉरवर्ड-लुकिंग स्ट्रैटेजीज*** ने महिलाओं के खिलाफ हिंसा की समस्या को स्वीकार किया था और सरकारों से प्रतिक्रिया देने का आग्रह किया था, लेकिन इस बात की कोई स्पष्ट राय नहीं बन पायी थी कि महिलाओं के खिलाफ हिंसा मानवाधिकार का मुद्दा है। नैरोबी के बाद के वर्षों में, महिलाओं के खिलाफ हिंसा के मुद्दे पर ईसीओएसओसी (ECOSOC) के भीतर विचार किया गया।
- 1992 में महिला सम्मेलन की निगरानी के लिए बनाई गई संस्था, महिलाओं के खिलाफ भेदभाव उन्मूलन समिति **(CEDAW)** ने महिलाओं के खिलाफ हिंसा पर सिफारिश को अपनाया।

भारत वह भूमि है जहां महात्मा गांधी और उनके अहिंसा के विचारों का जन्म हुआ था। शांति को बढ़ावा देकर पुरुषत्व प्रधान समाज में पुरुषों और लड़कों को दी जाने वाली एक सामाजिक परिभाषा जो मजबूत, शक्तिशाली, बहादुर और मर्दाना विशेषताओं से जुड़ी है, को सीमित किया जा सकता है। अंतरराष्ट्रीय संबंधों में सुरक्षा की समझ कई वर्षों से सीमित है और इसलिए एक सुरक्षित राज्य की समझ एक ऐसे नेता से जुड़ी है जिसके पास सुरक्षा को संभालने में सक्षम मर्दाना विशेषताएं हो। नारीवादियों का मानना है कि युद्ध और सेना अक्सर महिलाओं और अन्य कमजोर समूहों की सुरक्षा के लिए खतरा होते हैं क्योंकि वे युद्ध के दौरान और बाद में दुर्लभ संसाधनों के लिए प्रतिस्पर्धी होते हैं, जिस पर सैन्य शक्ति को राज्य की रक्षा के हिस्से के रूप में देखने के बजाय महिलाएं पुरुषों की तुलना में अधिक निर्भर हो सकती हैं।

महिलाओं के लिए एक सुरक्षित समाज बनाने या अन्य आवश्यक संसाधनों पर वित्तीय संसाधन व्यय करने की बजाय सैनिकों और सैन्य हथियारों पर बड़ा रक्षा खर्च

युद्ध के प्रति मर्दाना दृष्टिकोण का उदाहरण है।[1] नारीवादी विद्वानों के लिए, सुरक्षा राजनीतिक, आर्थिक और पारिस्थितिक पहलुओं के साथ वैश्विक और बहुआयामी है। यह इसके सैन्य आयामों के समान ही महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय सुरक्षा में घरेलू हिंसा, बलात्कार, गरीबी, लिंग अधीनता और पारिस्थितिक विनाश के साथ-साथ युद्ध जैसे खतरों को शामिल करना चाहिए। उदाहरण के लिए, स्वीडन में नारीवादी विदेश नीति है, जिसका अर्थ है कि सुरक्षा की समझ लिंग आधारित लेंस के माध्यम से पैदा होती है, नारीवादी विदेश नीति न केवल सुरक्षा का अर्थ व्यापक करती है बल्कि यह भी बताती है कि दुनिया में सुरक्षा की आवश्यकता सही मायने में किसे है।

सशस्त्र संघर्षों के अप्रत्यक्ष नकारात्मक परिणाम भी होते हैं जो कृषि, आजीविका, बुनियादी ढांचे, सार्वजनिक स्वास्थ्य और कल्याण प्रावधान को प्रभावित करते हैं और सामाजिक व्यवस्था को गंभीर रूप से बाधित करते हैं। यह प्रभाव पुरुषों की तुलना में महिलाओं पर अधिक प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। महिलाएं आमतौर पर शांतिकाल में पुरुषों की तुलना में अधिक समय तक जीवित रहती हैं, सशस्त्र संघर्ष से महिला और पुरुष की जीवन प्रत्याशा के बीच का अंतर कम हो जाता है।

महिलाएं और लड़कियाँ अक्सर संघर्ष से पहले, उसके दौरान और बाद में शांति प्रक्रियाओं में भी सक्रिय रहती हैं। कई महिलाएं शांति प्रक्रियाओं के महत्व को जानती हैं और अपने समाज के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ढांचे के पुनर्निर्माण के उद्देश्य से विभिन्न जमीनी स्तर के शांति-निर्माण प्रयासों में शामिल होती हैं। 1991 में, जब बाल्कन में युद्ध गति पकड़ रहा था, महिलाओं ने बाल्कन में एक युद्ध-विरोधी अभियान चलाया। फिजी में, जब इंडो-फिजियन और स्वदेशी लोगों के बीच तनाव बदतर हो रहा था, जिसके कारण 2000 में तख्तापलट हुआ, दोनों जातीय समूहों की महिलाओं ने **ब्लू रिबन अभियान शांति आंदोलन** बनाया। कहने का तात्पर्य यह कि विश्व को विनाश की तरफ ले जाने वाली युद्ध प्रक्रिया में स्त्रियां सिर्फ भुक्तभोगी होती हैं जबकि एक सौहार्द्रपूर्ण, शांतिपूर्ण एवं समरस समाज के निर्माण में स्त्रियां केंद्रीय भूमिका निभाती हैं।

❑ ❑ ❑

1. Ishita dutta, Feminist perspective of the war, Peace and Politics in International Relations, Modern Diplomacy, 15 May 2021.

स्वच्छता का मानवाधिकार: जल संकट, ग्रामीण समुदाय एवं जेंडर के प्रश्न

–डॉ. वरुण कुमार
पीडीएफ फेलो
भारतीय सामाजिक अनुसंधान परिषद
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

सारांश: *स्वच्छता एक मानवाधिकार है जो मानव समाज के लिए स्वस्थ और सुरक्षित वातावरण के अधिकार को सुनिश्चित करता है। यूनाइटेड नेशंस ने 2010 में स्वच्छता को जलवायु परिवर्तन और मानवाधिकारों के साथ जोड़कर स्वच्छता के मानक को अपनाया है। जल और स्वच्छता के मानवाधिकारों की पहचान और महत्वपूर्णता नये-पुराने समय से रही है। मानव समाजों ने हजारों वर्षों से जलसंबंधी अधिकारों की आवश्यकता को समझा है और इसे संरक्षण के लिए प्रयास किया है। प्राचीन सभ्यताओं ने भी जल और स्वच्छता के मामले में नियम, नीति और अधिकारों के विकास की कोशिश की। उन्होंने नदियों की सुरक्षा, जल संचयन, स्वच्छता और शौचालय को महत्व दिया। ग्रामीण समुदायों में जलसंकट की वर्तमान स्थिति बहुत चिंताजनक है। प्रस्तुत आलेख स्वच्छता के अधिकार, जल संकट का ग्रामीण परिदृश्य तथा उसमें अंतर्निहित जेंडर प्रश्नों की तरफ ध्यान आकर्षित करने का विनम्र प्रयास किया गया है।*

बीज शब्द: *स्वच्छता, मानवाधिकार, ग्रामीण समुदाय, जेंडरगत समस्याएं, संसाधनों की उपलब्धता, उपयोग।*

भारत में स्वच्छता सबसे जटिल समस्याओं में से एक है, सरकार के कई प्रयासों के बावजूद भी अनसुलझी है। सार्वजनिक/निजी शौचालयों, उचित जल निकासी का अभाव, ठोस अपशिष्ट प्रबंधन और सार्वजनिक स्वच्छता चिंता के प्रमुख क्षेत्र हैं। समुचित साफ–सफाई के अभाव के कारण स्वास्थ्य क्षेत्र में सार्वजनिक व्यय पर लगातार वृद्धि हुई है। भारत की बड़ी आबादी के अंदर स्वच्छता के प्रति जागरूकता की कमी और उदासीनता के रवैये ने इस समस्या को पिछले कुछ वर्षो में और जटिल बनाया है।[1] हालांकि भारत में स्वच्छता को हमेशा प्रधानता दी गई है। सिंधु घाटी सभ्यता की खुदाई से पता चलता है कि उस समय भी अपशिष्ट जल के प्रबंधन के लिए भूमिगत नालों की व्यवस्था थी। भारत में स्वच्छता संबंधी अभियांत्रिकी आज से लगभग 5000 वर्ष पूर्व ही विकसित हो चुकी थी तथा समय के साथ–साथ उसमें और सुधार होता गया। पतंजलि दर्शन से लेकर विवेकानंद तथा महात्मा गांधी ने स्वच्छता के महत्व को सर्वाधिक प्रतिपादित किया है।

आजाद भारत में 1986 में पहली बार सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर ग्रामीण स्वच्छता अभियान **(CRSP)** की घोषणा की गई। इसके बाद एक एक करके निर्मल भारत अभियान, (छठ।) सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान (TSC), स्वच्छ भारत मिशन (SBM) जैसे कई सारे कार्यक्रम चलाये गए,परंतु उसका कोई खास प्रभाव नहीं पडा। आज भी लगभग 48% लोग खुले में शौच करने जाते हैं। एक अनुमान के मुताबिक,महिलाओं के साथ होने वाली अपराधों में से 70% अपराध तब घटित हुए जब वो शौच के लिए खुले में गई थी। अधिकांश ग्रामीण समुदायों में, जहां कोई इनडोर शौचालय नहीं है, महिलाओं को प्रतिदिन शौच के लिए एकांत स्थान की तलाश में मीलों की यात्रा करनी पड़ती है। सूसन ई. चौपलिन ने 2011 में भारत में स्वच्छता की स्थिति का अध्ययन करने के लिए किए गए अपने शोध में इस बात की चर्चा की है कि :

“स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर अब तक राज्य सरकार ने इस मामले में उपेक्षापूर्ण रवैया अपनाया है। औपनिवेशिक काल में जब भारत अंग्रेजों का गुलाम था और अंग्रेज भारत में नए–नए शहरों का निर्माण कर रहे थे तब उन्होंने स्वच्छता को नजरअंदाज किया। भारत के कई शहर आज भी पर्यावरणीय समस्याओं की मार झेल रहे हैं। लाखों लोग दुर्दशापूर्ण जीवन जीने को मजबूर है। सरकारी प्रयास में इच्छाशक्ति की कमी का अभाव तथा जागरूकता की कमी की वजह से सरकार आज भी लोगों को बेहतर स्वास्थ्य एवं स्वच्छता का माहौल देने में पूर्णत: असफल रही है। आजाद

1. UN Water,Human Rights to Water and Sanitation, UNITED NATIONS ,Available at: https://www.unwater.org/water-facts/human-rights

भारत में आजादी के 65 वर्षों के बाद भी मात्र 40% लोगो के पास ही स्वच्छता की सुविधा है। राजनीति में सीधी दखल होने के बावजूद स्वास्थ्य संबंधी एवं स्वच्छता संबंधी सुविधाओ पर केवल मध्य वर्ग का ही आधिपत्य है"।[1]

1989 के आसपास, डेविड स्ट्रेचन ने ब्रिटिश मेडिकल जर्नल में "स्वच्छता की परिकल्पना" **(Concept of Sanitation)** को आगे बढ़ाया।[2] जिसमें उन्होंने बताया कि पर्यावरणीय रोगाणु रोग प्रतिरोधक क्षमता को विकसित करने में एक उपयोगी भूमिका निभाते हैं। किसी भी समाज, गांव, समुदाय की स्वच्छता का मूल्यांकन, स्वच्छता के लिए आवश्यकताओं से परे सामुदायिक रूप से सामाजिक और सांस्कृतिक व्यावहारों एवं उद्देश्यों के विविध आयामों से जुड़ा है।[3]

भारत ने जल संबंधी अधिकारों को विस्तार से संरक्षित करने के लिए विभिन्न कानूनी,नीतिगत और संगठनात्मक उपाय अपनाए हैं। जल संरक्षण, जलाशयों का प्रबंधन, जल संचयन, जलमार्ग, गरीबों के पेयजल के लिए उपलब्धि, ग्रामीण क्षेत्रों के जल संबंधी अधिकार, नदी गंगा की सुरक्षा और सफाई, स्वच्छ भारत अभियान का केंद्र बिंदू रहा है। भारत के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छ जल का इतिहास एक संघर्षपूर्ण यात्रा है, जिसमें सामान्य जनता, सरकारी और गैर-सरकारी संगठन और अन्य संगठनों का महत्वपूर्ण सहयोग रहा है।

स्वच्छता का मानवाधिकारः जल संकट एवं ग्रामीण समुदाय

जल संकट एक महत्वपूर्ण मुद्दा है जो दुनिया भर में ग्रामीण समुदायों को प्रभावित कर रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में जल संकट सतत जल की कमी, जल संचयन की समस्या, बाढ़, जलवायु परिवर्तन, और जल संबंधी संकटों के कारण बढ़ रहा है। ये समस्याएं भूमि, पेयजल, स्वच्छता और स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा, और आर्थिक विकास को प्रभावित करती हैं, और अधिकांश मामलों में असमानताओं को बढ़ाती हैं। जल संकट के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों को अधिक प्रभावित होना पड़ता है, क्योंकि उन्हें जल की आपूर्ति के लिए लंबे दूरी तय करनी पड़ती है। स्वच्छता और बीमारी के बीच संबंध को समझने के लिए एक उल्लेखनीय घटना लंदन में 1854 में फैली हैजे की महामारी थी। उस समय, डॉ. जॉन स्नो[4] और हेनरी

1. Chaplin, (2011).The politics of sanitation in India. Delhi: orient black swan
2. https://www.ekal.org/pdf/swachh-bharat-abhiyan-project.pdf
3. https://www.ekal.org/pdf/swachh-bharat-abhiyan-project.pdf
4. *1854 में, डॉ जॉन स्नो ने लंदन में एक कॉलेरा महामारी की जांच शुरू की जिसमें एक ही इलाके में 500 से अधिक लोगों की 10 दिनों के भीतर मृत्यु हो गई थी। स्नो का प्रारंभिक अनुमान कि कॉलेरा पानी से होता है, अनिवार्य रूप से सही साबित हुआ।

व्हाइटहेड[1] ने मैपिंग के माध्यम से पता लगाया कि कैसे वहाँ दूषित पानी की वजह से हैजा फैल गया था क्योंकि लगभग सभी बीमार पड़ने वाले लोग पीने के पानी के लिए एक विशिष्ट पंप का उपयोग करते थे। उस समय लंदन में पानी की अधिकांश आपूर्ति मानव मल से दूषित थी।[2] स्वच्छता और बीमारी के बीच संबंध से संबंधित एक और प्रमुख मील का पत्थर 1958 में आया, जब इंजीनियर एडमंड वैगनर और जे.एन. लानिक्स ने विश्व स्वास्थ्य संगठन के लिए एक मोनोग्राफ प्रकाशित किया जिसका शीर्षक "**ग्रामीण क्षेत्रों** और छोटी समुदायों के लिए उत्सर्जन प्रस्ताव" था जिसमें व्यापक रूप से ज्ञात एफ आरेख (F diagram) शामिल था।[3]

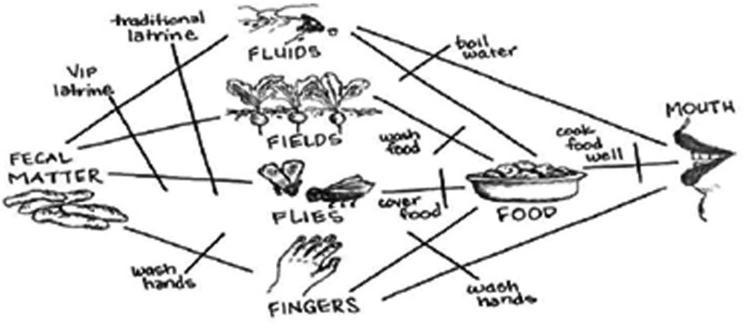

विगत कुछ वर्षों में वैश्विक स्तर पर सभी विकासशील देशों को विकास संबंधी दी जाने वाली सहायता राशियों में सर्वाधिक ध्यान पेयजल, स्वच्छता एवं शौचालयों को दिया गया है। सुरक्षित स्वास्थ एवं साफ-सफाई के लक्ष्य तक पहुंचना एक महत्वपूर्ण चुनौती है। **सतत विकास लक्ष्यों (Sustainable Development Goals)** ने इसे व्यापक संदर्भों में देखने का प्रयास किया तथा जल प्रबंधन एवं पारिस्थितिकी संरक्षण को एक साथ जोड़ कर इसे अपनी प्राथमिकताओं में शामिल किया।

स्वच्छ पेयजल एवं शौचालय का अधिकार एवं जेंडर विमर्श (Right to Sanitation and Gender Discourse)

स्वच्छ पेयजल एवं शौचालय की समुचित व्यवस्था किसी व्यक्ति विशेष के लिए ही नहीं, बल्कि **जेंडर समानता** जैसे मुद्दों के लिए भी जरूरी है। जिस समाज में स्त्री और पुरुष साथ- साथ रहते हों वहाँ स्वच्छता के विमर्श को जेंडरीकृत

1. *Henry Whitehead is remembered as a devoted pastor and as an enlightened worker for social improvement
2. Johnson, S. (2006). The Ghost Map: The Story of London's Most Terrifying Epidemic and How it Changed Science, Cities, and the Modern World. (Books, R., ed.).
3. Mihelcic, J.R., Fry, L.M., Myre, E.A., Phillips, L.D. and Barkdoll, B.D. (2009). Field Guide to Environmental Engineering for Development Workers: Water, Sanitation, and Indoor Air. American Society of Civil Engineers. American Society of Civil Engineers. Reston, VA.

किए जाने की आवश्यकता है। जेंडर समानता समेकित विकास तथा गरीबी उन्मूलन के लिए आवश्यक कदम है। सन 2010 में संयुक्त राष्ट्र की असेंबली में समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वच्छ पेयजल एवं सुलभ शौचालय की व्यवस्था को आवश्यक आधारभूत संरचना के रूप में चिन्हित किया गया। हमारे समाज में शुद्ध पेयजल, स्वच्छ शौचालय तथा स्वस्थ वातावरण के अभाव का सबसे अधिक शिकार महिलाएं होती हैं। यह वह महिलाएं ही हैं, जो इन अभावों के बीच समुचित प्रबंधन भी कायम करती हैं। अपने लिए, परिवार के लिए और समुदाय के लिए। स्वच्छ वातावरण एवं शौचालय की समुचित व्यवस्था ना होने का दुष्परिणाम पूरे समाज एवं महिलाओं पर भिन्न–भिन्न प्रकार से होता है। खराब स्वास्थ्य तथा सकारात्मक ऊर्जा की कमी महिलाओं को उनकी आजीविका, प्रबंधन क्षमता परिवार संभालने की उनकी शक्ति तथा अन्य कई प्रकार से प्रभावित करती है।

अगर हम बालिकाओं की दृष्टि से इस स्थिति की विवेचना करें तो पाते हैं कि शौचालयों की कमी सार्वजनिक स्थानों पर उनकी शारीरिक प्रताड़ना एवं हिंसा का कारण बनती है। यह स्थिति उनके मानवीय गरिमा के विरुद्ध है। जब उन्हें परिवार और समुदाय द्वारा दिन के कुछ निश्चित समय में कुछ समय में ही शौच आदि कार्य निष्पादित करने को कहा जाता है। दरअसल यह स्थिति समाज के जातीय, वर्गीय, नस्लीय, सामुदायिक एवं सांप्रदायिक पहचान से जुड़ा हुआ मसला है जो समाज की कुछ खास तबके की महिलाओं को खुले में शौच एवं **मासिक चक्र** के दौरान उनकी स्वच्छता संबंधी क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिए मजबूर विवश करता है।[1] दुनिया के अधिकतर समाजों खास तौर पर हिंदुस्तान में महिलाएं किसी भी पारिवारिक संरचना का प्रमुख केंद्र बिंदु होती हैं, जो स्वच्छता संबंधी शिक्षा तथा उसे अपने व्यवहार में शामिल करने का निर्देश परिवार एवं समुदाय को संप्रेषित करती हैं।[2] बावजूद इसके नीति निर्माताओं एवं योजनाकर्ताओं द्वारा शायद ही कभी उनकी दृष्टि से स्वच्छता एवं शौचालय के समुचित प्रबंधन की व्यवस्था को देखने का प्रयास किया गया हो। स्त्री एवं पुरुष के बीच विभेद की सबसे स्पष्ट रेखा हमें समाज में उपलब्ध संसाधनों के वितरण एवं उपभोग के संदर्भ में देखने को मिलती है। संसाधनों तक पहुंच का सीधा संबंध महिलाओं का संपत्ति एवं घर पर मालिकाना हक ना होना है। जिस पर घर के पुरुषों का अधिकार होता है एवं घर के मुखिया होने के कारण संपत्ति तथा आर्थिक गतिविधियों संबंधी समस्त निर्णय घर के पुरुष लिया करते हैं।

1. Rasna Warah 2005a; UN-HABITAT 2003a; Hardoy,et al. 2001; Mukherjee 2001.
2. (1998) Gender Guidelines in Water Supply and Sanitation Checklist. Asian Development Bank, Manila, Philippines www.adb.org/Documents/Manuals/Gender Checklists/Water/

इस संबंध में हुए कई शोध यह दर्शाते हैं कि शहरी इलाकों में स्वच्छता एवं एवं शौचालय संबंधी समस्त निर्णय जेंडर के आधार पर लिए गए।[1]

अपनी किशोरावस्था के उपरांत समस्त बालिकाएं अपने पूरे जीवन चक्र में लगभग 3000 दिन मासिक चक्र की प्रक्रिया से गुजरती हैं। मासिक धर्म मल एवं मूत्र विसर्जन की तरह एक सामान्य शारिरीक प्रक्रिया है। लेकिन,आज भी बहुत सारे समाजों और संस्कृतियों में इसे **नकारात्मकता (negativity)**, सामाजिक वर्जना **(Social taboo)** तथा अत्यंत **गोपनीयता (Secrecy)** के साथ देखा जाता है। इसके कारण किशोरावस्था से ही बालिकाओं एवं महिलाओं के अंदर मासिक धर्म को लेकर अलग–अलग तरह की भ्रांतियां व्याप्त होती हैं एवं अस्वच्छता संबंधी कई उदाहरण देखने को मिलते हैं। मासिक धर्म का सीधा संबंध महिलाओं के शारीरिक स्वास्थ्य से है। उसके संबंध में भ्रांतिपूर्ण जानकारी उन्हें कई बीमारियों के साथ जीवन गुजारने के लिए विवश करती है। भारत के कई इलाकों में मासिक चक्र को अशुद्धता अपवित्रता तथा शर्म के साथ जोड़कर भी देखा जाता है जिसके मासिक चक्र से गुजरती हुई बालिकाएं स्वयं को असुरक्षित महसूस करती हैं एवं हमेशा इसे छुपाने का प्रयास करती हैं। विशेष तौर पर ग्रामीण इलाकों में जल की समुचित व्यवस्था ना होना, सुरक्षित शौचालय की संख्या कम होना तथा सेनेटरी नैपकिन की उपलब्धता न होने के कारण बालिकाएं एवं महिलाएं रक्त स्त्राव को रोकने के लिए असुरक्षित तरीके अपनाती हैं। मासिक चक्र के दौरान स्वयं को स्वस्थ रखने तथा इस्तेमाल की गई वस्तुओं को सुरक्षित ढंग से निष्पादित करने का अधिकार स्त्री की **गोपनीयता के अधिकार (Right to Privacy)** से जुड़ा हुआ मसला है। परंतु, विपरीत परिस्थितियों में महिलाएं एवं बालिकाएं कई प्रकार की मानसिक, शारीरिक एवं संक्रामक बीमारियों का शिकार होती हैं। विशेषतौर पर जल की अनुपलब्धता के कारण यौन अंगों को ठीक से साफ न कर पाने की स्थिति में महिलाएं **यूरिनरी ट्रांसमिटेड इनफेक्शंस (UTI) तथा प्रजनन संक्रामक बीमारियों (Reproductive infectious disease)** का शिकार हो जाती हैं। जिसके कारण उनमें **यूरिनरी कैंसर (Urinary Cancer)** एवं **सर्वाइकल कैंसर (Cervical Cancer)** जैसे गंभीर लक्षण भी पाए गए।। मासिक चक्र के प्रति सामाजिक तौर पर विद्यमान पूर्वाग्रहों, शुद्धता संबंधी अवधारणाओं एवं इसे शर्म के रूप में देखे जाने वाली प्रवृत्ति के कारण महिलाएं एक व्यापक सामाजिक दायरे (Public Sphere) का हिस्सा नहीं बन पातीं। जिसके कारण उनका सम्मान, उनकी गरिमा एवं उनके गतिशीलता सामाजिक तौर पर

1. Right to Sanitation: A Gender Perspective, March 2015, Mamta Kapoor

प्रभावित होती है जो उन्हें सदैव दोयम दर्जे का नागरिक बनाए रखती है। सामाजिक तौर पर भी उन्हें इस शारीरिक प्रक्रिया के कारण सदैव मनोवैज्ञानिक तौर पर कमतर एवं हीन साबित किया जाता है और उन्हें अनेक सामाजिक गतिविधियों में सहभागिता के लिए लगातार हतोत्साहित किया जाता है। परिणामस्वरूप महिलाएं एवं बच्चियां स्वयं एक अपराधबोध और हीनता बोध का शिकार होती चली जाती हैं। भारत के कई इलाकों में रजस्वला होने की प्रक्रिया को शर्म, प्रदूषण एवं और पवित्रता के साथ जोड़कर देखा जाता है। मासिक चक्र की इस प्रक्रिया को एक बच्ची द्वारा अपने भावों में कुछ इस तरह व्याख्यान किया गया है:

मुझे है पता क्योंकि जाती स्कूल मैं, कल शौचालय की जरूरत होगी। मैं क्या करूंगी जब वहां एक भी शौचालय नहीं होगा? कैसे छुपाउंगी अपने अंदर की इस गंदगी,दाग-धब्बे और अपनी जांघों से बहते हुए लाल रंग के हुए रक्त को? कई बार मैं बेहद घबराहट, बेचौनी और झुंझलाहट महसूस करती हूँ। मन छटपटा जाता है एक औरत होने की पीड़ा के कारण और मेरा ध्यान अपनी पढ़ाई पर नहीं रह जाता।"[1]

महिलाओं एवं बालिकाओं के लिए शौचालय का प्रयोग तब और जटिल हो जाता है, जब शौचालयों का निर्माण घरों के बाहर किया जाता है। हमारे समाज में परंपरागत तौर पर यह धारणा है कि मनुष्य के शरीर से निकलने वाले मल का उत्सर्जन घर के अंदर नहीं किया जाना चाहिए। इससे घर के अंदर अशांति और पवित्रता आती है। इस सोच के कारण शौचालयों का निर्माण खासतौर पर ग्रामीण इलाकों में, घर से बाहर दूर किसी कोने में किया जाता है। जहां दिन के समय घर की बेटियों और बहूओं का जाना निषिद्ध होता है। वे इन शौचालयों का प्रयोग सिर्फ सुबह एवं रात्रि के समय ही कर सकती हैं। जब महिलाएं मासिक चक्र की प्रक्रिया से गुजर रही होती हैं, तब उन्हें शौचालयों की अतिरिक्त आवश्यकता होती है परंतु उसकी उपलब्धता की जटिलता के कारण महिलाएं दिन में एक या दो बार ही शौचालयों का प्रयोग कर पाती हैं एवं कई संक्रामक बीमारियों से ग्रसित होती हैं।

औसतन लगभग 3.30 करोड़ महिलाएं मासिक चक्र की इस प्रक्रिया से गुजरती हैं, जिसके लिए उन्हें प्रति महिला लगभग 7000 सेनेटरी नैपकिनों की आवश्यकता अपनी रजोनिवृत्ति की स्थिति में पहुंचने तक होती है। परंतु, यह अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण है कि 12% बालिकाओं और महिलाओं को ही सेनेटरी नैपकिन का प्रयोग करने की सुविधा उपलब्ध हो पाती है। इसके अतिरिक्त, लाखों महिलाएं राख, सूखे

1. Right to Sanitation: A Gender Perspective, March 2015, Mamta Kapoor

पत्तों, सीमेंट, बालू तथा अन्य असुरक्षित पदार्थों का प्रयोग रक्त स्राव को रोकने के लिए करती हैं।[1] एक बड़ी समस्या मासिक चक्र के दौरान प्रयोग की गई नैपकिनों के समुचित निष्पादन की भी है। हालांकि, शहरों में इसके लिए पर्याप्त व्यवस्था दिखती है परंतु ग्रामीण इलाकों के लिए अब भी यह एक दुरूह कार्य है। मासिक चक्र की इस प्रक्रिया के कारण एवं उनके साथ निष्पादन की व्यवस्था ना हो पाने के कारण ग्रामीण इलाकों में बहुत बड़ी संख्या में बच्चियां अपनी पढ़ाई के बीच में ही स्कूल छोड़ देने को विवश होती हैं। जिसके कारण हमें शिक्षा में लड़कियों के ड्रॉपआउट रेट अत्यधिक दृष्टिगोचर होते हैं। अतः यह आवश्यक है कि स्कूल का प्रबंधन एवं सरकारी योजनाओं में लड़कियों के लिए विशेष तौर पर शौचालयों की व्यवस्था सुनिश्चित की जाए ताकि शिक्षा में उनके घटते अनुपात के दर को रोका जा सके।

सुरक्षित एवं व्यक्तिगत शौचालय की व्यवस्था द्वारा ग्रामीण इलाकों में महिलाओं में प्रसव के दौरान होने वाली मृत्यु तथा बाल मृत्यु दर पर भी नियंत्रण पाया जा सकता है। इस संबंध में किए गए तमाम शोध एवं नीति निर्धारकों द्वारा स्वच्छता के मुद्दे को जेंडर के आधार पर देखने की कोशिश की गई। विकास की नवउदारवादी अवधारणा, गरीबी तथा जेंडर के मध्य अंतर्संबंध तलाशने का प्रयास किया गया। हालांकि, नारीवादी अवधारणा **(Feminist Discourse)** स्वच्छता तथा जेंडर के मसले को सत्ता-संबंधों के संदर्भ में देखने की पैरवी करती रही हैं तथा स्त्री एवं पुरुष के मध्य लैंगिक विभाजन को भी संसाधनों तक पहुंच तथा निर्णायक भूमिकाओं में उनके दोयम होने के जिम्मेदार कारक के रूप में चिन्हित किया है। निजी तथा सार्वजनिक स्थानों पर स्वच्छता हेतु उपलब्ध कराए गए शौचालयों एवं अन्य संसाधनों के उपभोग के संदर्भ में भी एक नई जेंडर दृष्टि तथा नए जेंडर प्रबंधन की आवश्यकता है। स्वच्छता के अधिकार अभियान के अंतर्गत कुछ महत्वपूर्ण बिंदु जो विशेष तौर पर महिलाओं की स्वच्छता से संबंधित थे जिन्हें नीतिगत स्तर पर शामिल किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया गया। जैसे:

1. जेंडर को स्वच्छता संबंधी समस्त व्यवस्थाओं में यथा नीति निर्णय तथा क्रियान्वयन सभी स्तरों पर केंद्रीय बिंदु के रूप में चिन्हित किया जाए।
2. स्वच्छता संबंधी नीति निर्धारित करते समय समाज में विद्यमान वर्ग, जाति एवं जेंडर के अंतरसंबंधों पर विद्यमान सत्ता संबंधों को नजरअंदाज करके स्वच्छता संबंधी नीतियों का निर्माण न किया जाए।

1. Right to Sanitation: A Gender Perspective, March 2015, Mamta Kapoor

3. स्त्रियों की उपस्थिति को स्वच्छता अभियान की निर्धारक, उपयोगकर्ता तथा संचालक तीनों स्तरों पर सक्रिय भूमिकाओं के रूप में स्वीकार की जाए।
4. सार्वजनिक शौचालयों की जगह प्रबंधन द्वारा निजी शौचालय की संकल्पना को पुनर्स्थापित किया जाए जिससे महिलाएं शौचालयों का बेहतर उपयोग कर सकें।
5. निश्चित तौर पर तकनीक महत्वपूर्ण है, परंतु सामाजिक सांस्कृतिक व्यवहारों एवं प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर ही नीतियों का निर्माण किया जाए।
6. महिलाओं को पुरूषों के समान ही संसाधनों पर नियंत्रण एवं निर्णायक भूमिकाओं में रखा जाए।
7. सार्वजनिक स्थलों पर स्त्रियों की दृष्टि से उपयुक्त शौचालय के निर्माण किया जाए।

भारत को आजाद हुए आज 73 वर्ष हो चुके हैं। फिर भी, हमारा देश आज भी स्वच्छता जैसी मूलभूत आवश्यकता से जूझ रहा है। यहां सभी को बुनियादी स्वास्थ्य, साफ पानी, स्वच्छता एवं कचरा प्रबंधन की सुविधा प्रदान करना एक बड़ी चुनौती है।

❑ ❑ ❑

मानव अधिकारों में संत काव्य की भूमिका

–रजनी गोसाईं

भारत की दार्शनिक आध्यात्मिक व साहित्यिक धरोहर अपने आप में एक बहुत समृद्ध विरासत है। इसी समृद्ध विचारधारा का ही वर्चस्व था कि सम्पूर्ण विश्व में भारत की छवि विश्व गुरु के रूप में बनी। भारतीय संस्कृति में मानव धर्म मानव अधिकारों का ही एक रूप हैं। भारत भूमि के आधार में सबके कल्याण का विचार है जो सभी जीवो और प्रकृति से प्रेम करने का समर्थन करता है।

संतकाव्य और मानव अधिकारः इस धरती पर कई संतों ने जन्म लिया जिन्होंने अपनी बोलियों तथा काव्य रचना द्वारा विश्व को ज्ञान मार्ग का रास्ता दिखाया। संतो द्वारा रचा गया यह काव्य मानवीय मूल्यों का पुरजोर समर्थन करता था। हिंदी साहित्य में भक्ति काल को साहित्य का स्वर्णिम युग माना जाता हैं क्योंकि इस काल में जो काव्य रचा गया वह साधारण कवितायेँ न होकर संतो द्वारा रची गयी रचना थी जिसमें मानवीय मूल्यों व हितो को सर्वोपरि माना गया। इस काव्य में संगीतात्मक संयोजन था, आध्यात्मिकता थी, मानवीय संवेदना थी, समाज की रूढ़ियों पर प्रहार था। संत काव्य में जहाँ ईश्वर को प्राप्त करने का भक्ति का मार्ग है वहीं इसमें आम जनजीवन की अनुभूतियाँ को भी जोड़ने की क्षमता है। संत काव्य की व्याख्या में इससे यह निष्कर्ष भी निकल कर आता है कि इसमें सभी धर्मो के प्रभाव को आत्मसात किया गया है, बिना किसी सांप्रदायिक भेदभाव के। लेकिन फिर भी इसमें किसी भी धर्म या साधना पदत्ति की कोई व्याख्या नहीं हैं तथा जनजीवन के सत्य की अभिव्यक्ति सीधी सादी भाषा में हुई है। संत साहित्य को मानव अधिकारों का पक्षधर प्रबल रूप से माना जा सकता है। अपने दोहों में सामाजिक आडम्बरों का

विरोध किया है तो समाज में धर्म या जाति के नाम पर उत्पन्न विद्वेष की भावना को शांत करने तथा एकता की स्थापना के लिए एकेश्वरवाद का सन्देश सुनाया है!

संत कवि समाज में व्याप्त जाति पाँति नियमों के कट्टर विरोधी थे! इनका मानना था ईश्वर ने सभी को समान बनाया है तथा ईश्वर की भक्ति करने का सभी को एक समान अधिकार हैं! संत काव्य में समानता का अधिकार भी देखने को मिलता है! सामाजिक अन्याय का विरोध करते हुए छुआछूत, भेदभाव, धार्मिक विद्वेष की संत कवियों ने खुलकर निंदा की है और सम्पूर्ण मानवजाति को एक समान मानने की बात कही है! मानवीय मूल्यों के प्रति उनमें संवेदनशीलता थी और समाज के प्रति उनका उदार दृष्टिकोण था! इसी कारण वह जन भावनाओं की सहज प्रवृतियों तथा विडम्बनाओं आदि को अपने साहित्य में विशाल स्थान दे सके! इस काल का प्रमुख उद्देश्य ही यही था त्रस्त, उपेक्षित, संतप्त, उत्पीड़ित, मनुष्य को परमात्मा का ज्ञान प्रदान करना, वो ईश्वर जो सबका है! इसमें जीवन के स्वरुप की व्याख्या तथा विवेचना होती है! हिंदी साहित्य में भक्तिकाल में रचे गए संतकाव्य को दो मार्गो में बांटा गया है! निर्गुण व सगुन धारा! दोनों ही संत काव्य मानवीय समाज में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं! दोनों ही निर्गुण और सगुन शाखाओं के कवियों ने प्रेम और अहिंसा शांति के मार्ग को प्रमुखता से बताया है!

निर्गुण ज्ञानमार्गी शाखाः निर्गुण का तात्पर्य यहाँ ईश्वर के निराकार स्वरुप को मानने वाले ज्ञानमार्गी संतों द्वारा रचा गया काव्य है! समाज ने इन कवियों को संत ही माना क्योंकि इनके काव्य में मानव के हित को सर्वोपरि माना गया! यह काव्य शांत सहज व सरल रूप में था, तो वहीं समाज की कुरीतियों, रूढ़िवादिताओं, आडम्बरों, शोषण के खिलाफ आक्रामक था! अगर मानव अधिकारों के सन्दर्भ में इस काव्य की बात करें तो इस काव्य की अधिकांश रचनाओं में आडम्बरों, हिंसा, युद्ध क्रूरता का प्रखर विरोध है! अपने दोहों, छंदों, में इन संतों ने कहीं व्यंगात्मक तो कहीं आध्यात्मिक भाषा का प्रयोग कर अपने सामाजिक हितों के सन्देश को आम जन तक पहुंचाया हैं! संत काव्य में लोक में प्रचलित भाषा और मुहावरों का प्रयोग किया गया हैं! मानव समाज में शिक्षा या कहें ज्ञान को ग्रहण करने को अनिवार्य माना है क्योंकि बिना ज्ञान के मनुष्य पशु के ही समान हैं, और गुरु के बिना ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता, इसको प्रमुखता से कहा हैं! ज्ञान ही एक ऐसा मार्ग है जिससे हम ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं, साथ ही हमारी बुद्धि भी विवेकवान हो जाती है जो अच्छे या बुरे में हमें भेद करना सिखाती हैं! उन्होंने सामाजिक विषमताओं, जाति–पाँति, ऊंच–नीच अमीरी–गरीबी के भेदभाव लड़ाई–झगडे को मानवीय जीवन के लिए खतरनाक माना

है क्योंकि यह विषमताएं किसी भी मनुष्य के मानव के अधिकारों के अस्तित्व को ठेस पहुँचाती है! निर्गुण संत काव्य की दृष्टि में ईश्वर ने सभी को एक समान बनाया है और सम्पूर्ण मानव जाति का ईश्वर या प्रकृति से मिले संसाधनों पर सामान हक है! कोई भी बलशाली व्यक्ति किसी भी कमजोर, दुर्बल व्यक्ति को उसके इन अधिकारों से वंचित नहीं कर सकता है!

इस काल के सभी संतों ने प्रमुख रूप से समाज को सुधारने का काम किया है! जिन संतों ने ईश्वर की भक्ति को निराकार रूप में मानकर अपने काव्य की रचना की, उन्हें निर्गुण भक्ति काल में रखा गया जिनमें प्रमुखता से कबीरदास, रैदास, दादूदयाल आदि हैं! कबीरदास जी का नाम इन संतों में प्रमुख रूप से लिया जाता है, क्योंकि कबीरदास जी ने अपने दोहों में समाज को सुधारने के लिए व सामाजिक समरसता स्थापित करने के लिए कई सन्देश दिए हैं! कबीरदास जी ने अपने दोहों में राम-नाम को ही आत्मसात किया है, लेकिन यहाँ उनके राम वह हैं जो घट घट में बस रहे हैं! जो हर प्राणी में हैं जो किसी भी मनुष्य में किसी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं करते! जो लोक जीवन के कल्याण के लिए हैं! आडम्बरों और सामाजिक कुरीतियों से दूर हैं! उनकी अनुभूति में ईश्वर, निर्गुण और निराकार और विराट हैं तथा ईश्वर घट-घट व्यापी हैं जिसके द्वार सभी वर्णो और जातियों के लिए खुले है! फिर भी सगुन उपासकों की तरह उन्होंने परमात्मा को राम कृष्ण गोविन्द आदि नामों से पुकारा है!

सगुन भक्ति काल: जिन संतों ने ईश्वर की भक्ति को अवतार मानकर (सगुन) उनकी उपासना की तथा अपने काव्य की रचना की, उनको सगुन भक्ति काल उपासक माना गया! उन्होंने ईश्वर को साकार रूप में स्वीकार कर उनकी भक्ति में जो काव्य सृजन किया, उसे ही सगुन भक्ति काल का काव्य कहा गया! सगुन संतकाव्य के रचियता में तुलसीदास, मीराबाई, सूरदास, रसखान, रहीम आदि संतों का नाम प्रमुखता से लिया जाता है!

तुलसीदास द्वारा रचित रामचरित मानस में प्रकृति और मानव के सम्बन्ध को बहुत ही सूक्ष्मता के साथ लिखा गया है! रामायण एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें प्रकृति व उसमें रहने वाले जीव जन्तुओं को साथ लेकर चलने की गाथा लिखी गई है! मानव यदि बल बुद्धि से श्रेष्ठ है तो इस पृथ्वी पर रहने वाले छोटे से छोटे जीव की भी अपनी महत्ता है! राम कभी रावण से युद्ध जीत पाते यदि उनको वनों में रहने वाले जीवों का साथ न मिला होता! जल, जंगल, पर्यावरण यह सभी मानवजाति के अस्तित्व के लिए जरूरी हैं! और इनकी रक्षा करना हर मनुष्य का कर्तव्य हैं! मानव अधिकारों में पर्यावरण की सुरक्षा व प्रकृति को सहेजने की भी व्याख्या की

गई है, क्योंकि साफ-स्वच्छ पर्यावरण के बिना मानव जाति की भी कल्पना नहीं की जा सकती! प्रकृति और मानव यह दोनों परस्पर एक-दूसरे पर निर्भर हैं! वनों की अंधाधुंध कटाई और उनमें रहने वाले जीवों की उपेक्षा करना मानव जाति के अस्तित्व को भी खतरा पैदा कर सकती है!

इसी कड़ी में मीरा बाई, रसखान, रहीमदास ने कृष्ण भक्ति में प्रेम और अहिंसा के मार्ग पर चलकर शांति से ईश्वर को आत्मसात करने का मार्ग बताया! इनकी कृष्ण भक्ति में डूबी काव्य रचनाओं में किसी प्रकार का कोई आडम्बर सामाजिक विषमता पाखंड नहीं था बल्कि संगीत व भक्ति में सरोबार दोहों में जीवन को प्रभु भक्ति में निस्वार्थ भाव से अर्पित करने का सन्देश मिलता है! इस काल में कुछ मुस्लिम संतो ने भी कृष्ण भक्ति में काव्य रचना की, जिनमें रसखान व रहीमदास प्रमुख थे ! सामाजिक समरसता का यह एक उदाहरण है! यहाँ साम्प्रदायिकता या धार्मिक विद्वेष के लिए कोई स्थान नहीं था! ब्रज अवधि भाषा में लिखे गए यह काव्य जन जन में लोकप्रिय हुए इनकी भाषा उदारवादी थी! यह काव्य आम जन की भावनाओं और भक्ति को एक साथ समाहित करने में सफल हुआ! सगुन संतकाव्य ईश्वर को साकार रूप में मानता था लेकिन इन संतों का भी यही मानना था कि ईश्वर सभी के लिए है और ईश्वर की आरधना करना सभी का अधिकार है। ऊंच नीच जाति पाँति के आधार पर हम किसी मानव को प्रभु की आराधना करने से नहीं रोक सकते! इसीलिए भी इसे संतों का काव्य कहा गया है!

निष्कर्ष: संतकाव्य शांति और सामाजिक समानता की ही बात करता है! चाहे वह सगुन हो या निर्गुण। दोनों ही आज के दौर में भी प्रासंगिक हैं! एक प्रकार से संतकाव्य मानव अधिकारों का ही उल्लेख करता है, क्योंकि उसके काव्य में सामाजिक ताने-बाने को सुदृढ़ रूप से बनाने के लिए सभी मनुष्यों के लिए ज्ञान समानता प्रेम शांति व आध्यात्मिक रूप से जीवन जीने पर बल दिया गया, जिससे प्रत्येक मानव के अधिकारों की रक्षा हो सकें। किसी भी व्यक्ति का किसी भी प्रकार से शोषण न हो तथा सभी को समान अधिकार मिले! भक्ति काल के संतकाव्य में मानव मूल्य परिलक्षित होते हैं! मानवता की रक्षा तथा विश्वकल्याण के लिए अहिंसा, ज्ञान, समानता समस्त जीवों और प्रकृति की परस्पर निर्भरता यही मुख्य आधारशिला है, और यहीं से ब्रम्हा प्राप्ति का मार्ग व अमृत्व प्राप्त होता है! संत काव्य में भक्ति की सच्ची भावना को समाज के व्यापक हित की कामना तथा मानव प्रेम से ओत प्रोत दर्शाया गया है! आज भी भक्ति काल के यह काव्य समाज के उत्थान तथा कल्याण के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है!

❑ ❑ ❑

स्त्री शिक्षा की राह में कट्टरता के रोड़े

–भुवन्या रंजन

अरस्तू व प्लेटो की सदी से ही मानव अधिकारों को लेकर जागरुकता की बात होती चली आ रही है। पहले ये अधिकार केवल पुरोहित वर्ग और राजा–महाराजाओं तक सीमित थे। धीरे–धीरे इनका दायरा विस्तृत होता गया। 1789 की फ्रांसीसी क्रांति ने इन अधिकारों की ओर दुनिया का ध्यान आकर्षित किया। 1945 में स्थापित संयुक्त राष्ट्र संघ ने आज की सदी में मानव अधिकारों को बनाए रखने, उनकी हिफाजत का जिम्मा संभाला हुआ है। संयुक्त राष्ट्र ने इन्हीं अधिकारों की सूची में एक नाम शिक्षा का भी जोड़ा है। संरा का एक लक्ष्य: "गुणवत्तापूर्ण शिक्षा" व "लैंगिक समानता" है। 1948 में अपनाया गया मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा, पहला अंतरराष्ट्रीय कानूनी दस्तावेज है जो शिक्षा को मानव अधिकार के रूप में मान्यता देता है। अनुच्छेद 26 में कहा गया है: 'प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है।' संरा महासभा ने 2015 में एक प्रस्ताव पारित किया था, जिसमें संयुक्त राष्ट्र की सभी संस्थाओं को शांति, मानवाधिकार और लोकतंत्र को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया गया था। संकल्प का उद्देश्य सदस्य राज्यों को लोकतंत्र के लिए शिक्षा को उनके शिक्षा मानकों में एकीकृत करने के लिए प्रोत्साहित करना था। इसके बाद 18 जनवरी 2023 को फिर से संरा महासभा ने सभी को शिक्षा प्रदान करने के लिए "लोकतंत्र के लिए शिक्षा" नामक एक संकल्प अपनाया है। खास बात ये है कि यह प्रस्ताव भारत द्वारा सहप्रायोजित है।

भारत के प्रथम प्रधानमंत्री प.जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि "आप किसी राष्ट्र में महिलाओं की स्थिति देखकर उस राष्ट्र के हालात बता सकते हैं।" भारत में वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार, देश में महिला साक्षरता दर मात्र 64–46

फीसदी है, जबकि पुरुष साक्षरता दर 82.14 फीसदी है। भारत की महिला साक्षरता दर विश्व के औसत 79.7 प्रतिशत से काफी कम है, लेकिन फिर भी आजादी के बाद से आजादी के अमृतकाल तक महिला शिक्षा के क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रगति ही हो रही है। बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ और कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजनाओं के जरिए सरकारों ने महिला शिक्षा को बढ़ावा देने की कोशिश की है। शाला प्रवेश में लड़कियों को प्राथमिकता देना, किसी राज्य में लड़कियों के शिक्षा शुल्क में रियायत तो किसी राज्य में साइकिल बांटने से लेकर कॉपी-पुस्तकें, स्कूल यूनिफार्म, जूते बांटने जैसी योजनाएं अलग-अलग सरकारों ने चलाई हैं। लड़कियों को छात्रवृत्ति भी कई तरह से दी जाती है। इन सबका उद्देश्य स्त्री शिक्षा का प्रतिशत बढ़ाना है। देश और समाज में महिला साक्षरता और शिक्षा को लेकर काफी जागरुकता आई है। हालांकि कट्टरता से भरी सोच आज भी बहुत सी लड़कियों, महिलाओं के पैरों में बेड़ियां डालना चाहती है। इन हालात को बदलने के लिए सरकारी योजनाएं पर्याप्त नहीं होंगी, समाज को भी इसमें सहयोग करना होगा।

भारत में जहां सरकार शिक्षा को बढ़ावा दे रही है, वहीं पड़ोसी राज्य अफगानिस्तान में स्त्री शिक्षा को लेकर जैसा माहौल बना हुआ है, वह संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों ही नहीं, समूची मानवता के लिए चुनौती है। अगस्त 2021 में अफगानिस्तान में तालिबान राज पुनः स्थापित हुआ। इस घटना ने वहां प्रगतिशील और उदार समाज की बची-खुची गुंजाइश भी खत्म कर दी। क्योंकि आज दो सालों के शासन में तालिबान अफगानिस्तान को 20 साल पीछे ले जा चुका है। तालिबान शासन का मुख्य निशाना हमेशा से महिलाएं और उनकी प्रगति रही है। शासन सँभालते ही तालिबान ने महिलाओं पर कई प्रकार के बंधन और पाबंदियां लगा दी। महिलाओं का पार्क या जिम जाना, विदेशी कपड़े पहनना, पुरुषों के साथ एक ही दफ्तर में काम करना, कॉलेज में लड़के-लड़कियों का एक साथ पढ़ना, ये सब हक तो उनसे पहले ही छीने जा चुके थे, किन्तु तालिबानियों ने अब खुले आम महिलाओं से शिक्षा का हक भी छीन लिया। सत्ता के दो साल बीतते न बीतते तालिबान के महिलाविरोधी चेहरे का सच पूरी तरह सामने आ गया। तालिबानी फरमान के कारण अफगानिस्तान में लड़कियों के लिए माध्यमिक विद्यालय एक साल से अधिक समय से बंद हैं। लड़कियां अब उच्च शिक्षा के लिए यूनिवर्सिटी, कॉलेज भी नहीं जा सकतीं। तालिबान ने एनजीओ की महिला कर्मचारियों को भी काम पर आने से रोकने का आदेश दिया। यानी तालिबान हर वो कदम उठा रहा है, जिससे महिलाओं का सार्वजनिक जीवन बाधित हो जाए। जबकि दुनिया के सामने अपनी पहली प्रेस कॉन्फ्रेंस में तालिबान ने

सरकार में महिलाओं को जगह देने की बात कही थी। जाहिर है तालिबान इस्लाम की आड़ में मध्ययुगीन बर्बरता को 21वीं सदी में थोप रहा है। जबकि कोई भी धर्म इंसान को उसकी गरिमा से वंचित करने की पैरवी नहीं करता।

धर्म इंसान को हिम्मत देता है, उसे उसके अधिकारों के लिए आवाज उठाने की सीख देता है। तालिबानी शासन में अफगानिस्तान में भी यही हो रहा है। तालिबान राज को युवाओं के विरोध का सामना करना पड़ा, क्योंकि स्त्री शिक्षा के हक के लिए केवल अफगान लड़कियों ने ही नहीं, लड़कों ने भी आवाज उठाई। दिसंबर 2022 में स्त्री शिक्षा पर रोक लगाने के कट्टर फैसले के जवाब में अफगान लड़के-लड़कियां तरह-तरह से सरकार के फैसले का बहिष्कार करने उतरे। जहाँ अफगानी लड़कियां सड़क पर विरोध प्रदर्शन करने उतरीं, वहीँ पुरुषों ने परीक्षा का बहिष्कार करके इस अन्यायपूर्ण फैसले का विरोध किया। एक प्रोफेसर ने तो टीवी पर चर्चा के दौरान ये कहते हुए अपने डिप्लोमा फाड़ दिए कि- आज से मुझे इन डिप्लोमा की जरूरत नहीं है क्योंकि इस देश में शिक्षा के लिए कोई जगह नहीं है। अगर मेरी बहन और मेरी माँ पढ़ नहीं सकती हैं, तो मैं इस शिक्षा को स्वीकार नहीं करता। वहीं एक 18-19 बरस की लड़की मारवा का वीडियो भी इसी दौरान सोशल मीडिया पर देखा गया, जिसमें वह अकेली ही पढ़ाई के अपने हक को लेकर तालिबानी सैनिकों के सामने डटकर खड़ी है। इस वीडियो में मारवा क्रिसमस के दौरान काबुल यूनिवर्सिटी के सामने "इकरा" यानि "पढ़ो" लिखा हुआ एक पोस्टर लेकर प्रदर्शन करती दिखाई दी। मारवा ने कहा मैं एक अकेली अफगान लड़की की ताकत उन्हें दिखाना चाहती थी। यह बताना चाह रही थी कि एक अकेला शख्स भी उत्पीड़न के खिलाफ खड़ा हो सकता है। जब मेरी अन्य बहनें देखेंगी कि एक अकेली लड़की तालिबान के खिलाफ खड़ी हो गई है, तो इससे उन्हें तालिबान को हराने में और मदद मिलेगी। इससे पहले भी प्रदर्शन करती हुई छात्राओं को रोकने के लिए पुलिस व तालिबानी सत्ता ने कई प्रयास किए हैं, किन्तु महिलाओं का साहस कम नहीं हुआ।

आज से एक दशक पहले भी दुनिया ने लड़कियों को शिक्षा के अधिकार के लिए लड़ते हुए देखा। नोबल शांति पुरस्कार विजेता, मलाला युसुफजई की कहानी भी शिक्षा अधिकार से ही शुरू होती है। मलाला ने 2012 में संयुक्त राष्ट्र में दिए गए भाषण में कहा था: "वो डरते हैं एक शिक्षित महिला से..... खौफ है उन्हें हमसे। "आज 10 साल बाद तालिबान राज मलाला की टिपण्णी को सिद्ध कर रहा है। तालिबान के पास सैन्य और सत्ता दोनों तरह की शक्तियां हैं, लेकिन जो लड़कियों

के आगे बढ़ने और पढ़ने से खौफजदा हो, वह भीतर से कितना कमजोर होगा, ये समझना कठिन नहीं है।

कमजोरी और डर का यह सिद्धांत केवल तालिबान ही नहीं हर तरह के कट्टरपंथियों पर लागू होता है। महिलाओं की प्रगति में कई तरह से बाधायें डाली जा रही हैं। चाहे वो पढाई पर रोक हो, चाहे ईरानी महिलाओं पर हिजाब थोपने की कोशिश। धर्म के नाम पर उन्माद और कट्टरता फैला कर हुकूमत की चाह रखने वाले दरअसल हर तरह की प्रगतिशीलता से घबराते हैं। वे डरते हैं कि समाज के जिन तबकों को सदियों तक हाशिए पर रखा गया, उन्हें उनके अधिकारों से वंचित किया गया, अगर वो तबका शिक्षा की शक्ति हासिल करेगा, तो फिर अपने लिए बराबरी और सम्मान की मांग करेगा और तब डर की नींव पर खड़ी सत्ता कमजोर पड़ जाएगी।

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का कहना था कि एक आदमी को पढ़ाओगे तो एक व्यक्ति शिक्षित होगा। एक स्त्री को पढ़ाओगे तो पूरा परिवार शिक्षित होगा। गांधीजी के अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो लड़के-लड़कियों को स्वयं के प्रति अधिक उत्तरदायी बना सके और एक-दूसरे के प्रति अधिक सम्मान की भावना पैदा कर सके। गांधीजी सामाजिक प्रगति के लिए शिक्षा को जरूरी मानते थे, और खासकर महिला मुक्ति के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण औजार समझते थे। बापू के स्त्री शिक्षा संबंधी ये विचार केवल भारत नहीं बल्कि समूची दुनिया के लिए मार्गदर्शन का काम करते हैं। विश्व में यदि अरस्तु, रूसो, प्लेटो, लॉक, व गांधी-आंबेडकर जैसे महान व्यक्तित्वों के सिद्धांतों को जीवित रखना है, तो और कई मलाला और मारवा को जागना होगा, और अपने हक की लड़ाई लड़नी होगी। इस दुनिया को कट्टरता की नहीं, बल्कि प्रगतिशील व उदार समाज की जरुरत है। इस रास्ते चल कर ही हम संयुक्त राष्ट्र के लक्ष्यों की प्राप्ति कर पाएंगे और एक शांतिपूर्ण समाज का विकास भी।

(बीए थर्ड इयर पॉलिटिकल साइंस आनर्स, मैत्रेयी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय).

❑ ❑ ❑

मानवता की रक्षा का सन्देश : संत कबीर का साहित्य

–डॉ. सुनील कुमार सुधांशु
असिस्टेंट प्रोफेसर
इलाहबाद विश्वविद्यालय
प्रयागराज

भारतीय साहित्य, समाज, धर्म, संस्कृति के विकास में संत साहित्य ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मध्यकालीन जड़ता के दौर में एक स्वच्छ और अपनेपन से भरे समाज के लिए संत कवियों ने संघर्ष किया. सामने आने वाली चुनौतियों का सामना किया। दरअसल संत युगीन समाज में चहुँ ओर विषमता का जाल बिछा हुआ था. वर्ण व्यवस्था की विकृतियों ने मानवता को शर्मसार करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ रखी थी. ऐसे में इन कवियों ने तमाम अर्थहीन बंधनों को तोड़ कृत्रिम भेदभाव को मिटाकर समाज की प्रगति का पथ प्रशस्त किया. 14वीं, 15वीं सदी में उठने वाले आंदोलनों को शायद इसीलिए लोकजागरण का नाम दिया गया. संतों ने मानव हितार्थ साहित्य का सृजन किया। उनके वचन हमारे समाज के लिए आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। नकली मनुष्यता के इस दौर में उनका साहित्य हमारे लिए अमूल्य निधि है।

लोग अक्सर यह सवाल पूछते हैं कि हमें साहित्य क्यों पढ़ना पढ़ाना चाहिए, जबकि हम 21वीं सदी में पहुंच चुके हैं और सब कुछ बाजार तय कर रहा है। भौतिक संसाधनों की प्राप्ति के लिए लोग बेतहाशा दौड़ रहे हैं। ऐसे में यही कहा जा सकता है कि विज्ञान और अभियांत्रिकी मनुष्य के लिए महज उत्पाद बना सकते हैं परंतु व्यक्ति को मनुष्य बनाने का काम साहित्य करता है। वह मानवीय मूल्यों का संरक्षक है। जानवर से इंसान बनाने की प्रक्रिया में साहित्य का बड़ा योग है।

हमारे समाज में आज चारों ओर जाति, धर्म, मंदिर, मस्जिद, पंथ, संप्रदाय को आधार बनाकर दृष्टि अंधता की शिकार जनता को गुमराह करने और राजनीतिक रोटियां सेकने वालों की भरमार है। लोगों की दिन प्रतिदिन बढ़ती उग्रता, कट्टरता से यह समाज निरंतर अंधकारमय गर्त की ओर जा रहा है। आश्चर्य होता है कि पढ़े-लिखे समझदार लोग भी तात्कालिक निजी लाभ हेतु कल्याणकारी तत्वों को समृद्ध करने के स्थान पर असामाजिक तत्वों को बढ़ावा देने की प्रक्रिया में जुटे हुए हैं। आखिर क्या कारण है कि झुग्गियों, बस्तियों में रहने वाले लोग तथाकथित सभ्रांत लोगों को अपना नहीं समझते, आखिर कमी किसमें है। सोचने का विषय है।

कबीर ने मध्यकाल में ही धार्मिक पाखंडों को नजदीक से देखा और उसका कारण खोजने की भी कोशिश की। वे जानते थे कि वर्तमान को ठीक करने के लिए अतीत को ठीक से समझना होगा. अतीत में बहुत कुछ ऐसा था जो रूढ़ हो चुका था. छुआछूत, धार्मिक पाखंड आदि पर प्रहार करने वाली कबीर की कविता इन्हीं परिस्थितियों की उपज है। वे वास्तव में मनुष्य होने का अर्थ बताते हैं। ऊँच, नीच, जात, पात, असमानता को प्रेम और सद्भाव से भरना चाहते हैं। मानवता को तमाम बंधनों से मुक्त कर अखंड आनंद की ओर ले जाना कबीर का संकल्प था। इसके लिए वे आजीवन प्रयत्न करते रहे लोगों को जाति, धर्म, संप्रदाय, आदि का घेरा तोड़ने की हिम्मत प्रदान करने की कोशिश करते रहे। आत्मिक शुद्धता, हृदय की निष्कलुषता और आचरण की सात्विकता पर बल देते रहे. इनकी बानियों में समाज में तरह-तरह के भेद पर टिकी व्यवस्था की जगह मनुष्यत्व पर आधारित समता की कामना है, जिससे आज भी शोषित पीड़ित जनता प्रेरणा और शक्ति पाती है।

कबीर ही नहीं बल्कि यों कहें कि समस्त संतों ने सामंती व्यवस्था से समाज को मुक्ति दिलाकर एक वर्ण विहीन, जाति विहीन, शोषण मुक्त समाज की स्थापना का सपना देखा. उनकी लोकजागरण की भावना का ही परिणाम था कि मध्यकाल में सदियों से दमित निम्न वर्ग अपनी अस्मिता के प्रति जागरूक हुआ। उनकी बानियों ने धार्मिक कर्मकांड, पाखंड, बाह्याचार, सामाजिक विषमता, आर्थिक असमानता, भेदभाव की दीवारों को गिरा कर एक ऐसे समाज की नींव रखी जो इन सभी विकारों से मुक्त था। संतो ने तत्कालीन समाज में व्याप्त तमाम अनाचारों पर तीखा प्रहार किया। इसी का प्रतिरूप हमें नवजागरण कालीन विचारकों के विचारों में देखने को मिलता है। नवीन चेतना ने लोगों की चिंतन शक्ति को जागृत कर जड़ मान्यताओं के विरोध हेतु तत्पर किया. पद दलित मानव समाज में उठने का विश्वास पैदा किया।

जब जब हमारा समाज धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संक्रमण से गुजरता है तब-तब हमें कबीर की आवश्यकता महसूस होती है। संतों की काव्य चेतना मनुष्यत्व की तलाश है। कबीर का संपूर्ण जीवन मनुष्यता की खोज में बीता. भारतीय समाज की मानसिकता को बल देने वाली इन कविताओं में स्वयं उनके भी हृदय के उद्गार छिपे हुए हैं। उनका भी जीवन संघर्ष कविता में निहित है। कबीर की कविता लोगों के हृदय पर चोट करती है। उनकी संवेदना को जागृत करने की कोशिश करती है। उनके तर्क, उनके आत्म संघर्ष को उनकी वाणी में महसूस किया जा सकता है। कबीर के हृदय से निकलने वाले भावों और उनके अखंड, अविचलित विश्वास ने उनकी कविताओं में असाधारण शक्ति भरी. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उचित ही लिखते हैं "ऐसे थे कबीर. सिर से पैर तक मस्त मौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्खड़, भक्त के सामने निरीह, भेषधारी के आगे प्रचंड, दिल के साफ, दिमाग के दुरुस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वंदनीय। वे जो कुछ कहते थे अनुभव के आधार पर कहते थे, इसीलिए उनकी उक्तियाँ बेधने वाली और व्यंग्य चोट करने वाले होते थे.[1]

मानव की दुर्वृत्तियों से आज भी कुंठित समाज में विसंगतियां मौजूद हैं। अनीति, अधर्म, दिखावापन, ढोंग, पाखंड, लालच आदि से लड़ने के लिए कबीर का साहित्य हमें आत्मिक बल प्रदान करता है। समाज के संकटों की पहचान करने में मदद करता है। बाजार व्यवस्था की क्षुद्रता ने विवेक नष्ट कर सामाजिक बोध से भी लोगों को दूर कर दिया है। ऐसे समय में सूचना तंत्र की निस्सारता, मूल्य चिंता की अनुपस्थिति को कबीर साहित्य रेखांकित करता है। कबीर युग दृष्टा कवि थे. उन्होंने भविष्य की चिरंतन समस्याओं को पहचाना और परिवर्तन हेतु बड़े संघर्ष की आवश्यकता महसूस की. अपने जीवनानुभवों से अथक दृढ़ता, अदम्य साहस अर्जित कर समाज कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने हेतु सदैव तत्पर रहे. कबीर ही नहीं बल्कि सभी संतो ने विभाजित समाज और भेदभाव की शिनाख्त की. मनुष्य को उसके आचरण तथा कर्मों से पहचाना.

किसी विषय पर तटस्थ होकर अपनी राय देना आज भी कोई सहज बात नहीं है। जबकि कबीर ने उन विकट परिस्थितियों में भी जिस तरीके से हिंदू मुसलमानों और तमाम विसंगतियों पर प्रश्नचिन्ह उठाया वह हमारे वर्तमान आधुनिक समय में भी असंभव सा प्रतीत होता है। राजनैतिक खेमे ने ऐसा माहौल बना दिया है कि रूढ़िवादिता के खिलाफ बोलना खतरा लेने जैसा लगता है। कबीर ने जाति, धर्म,

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन,1971 पृष्ठ सं.- 134

भेदभाव पर कुठाराघात करते हुए विशुद्ध मनुष्यता की प्रतिष्ठा की. उनकी वैचारिक संघर्ष चेतना समानता, विश्वबंधुत्व की भावना ने जन समाज के समक्ष संघर्ष का मार्ग प्रशस्त किया. मानव मात्र की समानता का प्रचार प्रसार कर कर्मकांड, अंधविश्वास को बुद्धि तथा तर्क के द्वारा उन्होंने निर्मूल सिद्ध किया. इनके व्यंग्य इस व्यवस्था और लोगों की मानसिकता पर तीखी चोट करते हैं। भेदभाव पैदा करने वाले तंगदिल गुमराह लोगों से उन्होंने स्पष्ट सवाल किया – 'दुई जगदीश कहां से आए, कहु कोने भरमाया./ अल्लाह, राम करीम, केशव, हरी हजरत नाम धराया.'

जिस साहस और शक्ति से तमाम रूढ़ियों पर कबीर ने प्रहार किया वह आज भी स्मरणीय है, अनुकरणीय है। मतभेदों को दूर कर आमजन का मनोबल बढ़ाने हेतु वे आजीवन संघर्ष करते रहे. समाज को एक सूत्र में पिरोने के लिए आज भी कबीर साहित्य हमारा मार्गदर्शन करता है, नैतिक मूल्य प्रस्तुत करता है। लोगों को गलत राह पर चलते देख उन्होंने फटकार लगाई – 'ना जाने तेरा साहिब कैसा है,/ मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे,/ क्या साहब तेरा बहिरा है,/ पंडित होय के आसन मारे,/ लंबी माला जपता है./ अंतर तेरे कपट कतरनी,/ सो भी साहब लखता है.'

गरीबी से अधिक अपमानजनक होती है सामाजिक उपेक्षा. जाति-पांति के आधार पर विभाजित समाज में उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के बीच पारस्परिक संबंधों में कटुता और तिक्तता बहुत अधिक बढ़ गई थी. वर्ण व्यवस्था की विकृतियां नितांत अमानवीय अवस्था में पहुंच चुकी थी. हिंदू बनाम मुसलमान, उच्च वर्ण बनाम निम्नवर्ण आदि के पारस्परिक संघर्षों में मानवता कराह रही थी. कबीर का संवेदनशील मन इस क्रूर स्थिति से अत्यधिक बेचैन था. उन्होंने धर्म संप्रदाय और जातियों में विभाजित मानवता को समन्वित करने का यत्न किया. वे जीवन पर्यंत अपने युग की इस जटिलतम समस्या से लोहा लेते रहे. उन्होंने ऐसे-ऐसे तर्कों से जाति-पांति की दीवारों पर धक्का मारा कि उनकी वाणी से धर्म और राजनीति के ठेकेदार बेचैन हो उठे. कबीर का यह पद दृष्टव्य है–

> "जे तूं बाभन बभनी जाया, तो आन बाट ह्वे काहे न आया,
> जे तूं तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतरि खतनी क्यूँ न कराया।"[1]

धर्म के आवेश में काजियों, मुल्लाओं और मौलवियों की सलाह से धर्म प्रसार के नाम पर बड़े बड़े नरसंहार हो रहे थे। कबीर जो बार-बार हिंसा के विरोध में ऊंचे स्वर में चीखते हैं वह अकारण नहीं है। एक सशक्त रचनाकार के रूप में कबीर ने

1. शर्मा, रामकिशोर, कबीर ग्रन्थावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2010, पृष्ठ सं.-18

अपने युग के यथार्थ को अच्छी तरह से पहचाना था. वे हर प्रकार की हिंसा का विरोध करते हैं, विशेषता या धर्म और स्वाद से संबंधित हिंसा का. स्वाद के वशीभूत होकर मनुष्य प्रबल अत्याचार करता है और निर्दोष का खून करके ईश्वर के समक्ष न्याय की याचना करता है–

"जोरी कियां जुलम है, मांगे न्याय खुदाइ.
खालिक दरि खूनी खड़ा, मार मुहे सुहिं खाइ."[1]

ब्राह्मणों द्वारा किए जाने वाले बलि कर्म की ओर संकेत करते हुए कबीर कहते हैं–

"जीव बधत अरु धर्म कहत हौ, अधरम कहां है भाई,
आपन तो मुनि जन ह्वे बैठे, कासनि कहों कसाई." [2]

कबीर की वाणी में तत्कालीन मानवीय संवेदना बड़ी व्यापकता और समग्रता से ध्वनित है। उनका संकल्प राजा महाराजाओं की लड़ाइयों का ब्यौरा तथा उनके मिथ्या गुणवाद को प्रस्तुत करना नहीं है, किंतु किसी भी सशक्त इतिहासकार से भी अधिक वे अपने समसामयिक, सांस्कृतिक जीवन को अभिव्यंजित करते हैं। वे एक जागरूक रचनाकार की तरह अपने संपूर्ण अनुभवों को अपनी रचना में पुनर्सृजित करते हैं। उनका साहित्य सही मायने में मनुष्य को तमाम सीमाओं से ऊपर उठा हर तरह की सत्ता के भय से मुक्त करता है।

आज की भाग दौड़ भरी जिंदगी में मनुष्य मशीन की तरह संवेदनहीन हो गया है। सुख भोग की लालसा ने उसे अकेला कर दिया है। अपनी भौतिकतावादी सोच के वशीभूत होकर वह अमानवीय कृत्य करने से भी पीछे नहीं हट रहा। धर्म और राष्ट्र की आड़ लेकर अपने वीभत्स चेहरे को छिपाने का प्रयत्न करता है। कबीर ने जीवन की क्षण भंगुरता को पहचान लिया था। वे श्राद्ध जैसे लोकाचारों का भी विरोध करते हैं। उनका मानना था कि जीवित लोगों की देखभाल करनी चाहिए मृत्योपरांत श्राद्ध व्यर्थ है। 'जीवत पितर न मानै कोऊ, मुए सराद्ध कराही./ पितर भी बपुरे कहू क्यों पावहिं, कौवा कुकुर खाहीं.' सामाजिक उपयोगिता के आधार पर धन का मूल्य वे आंकते हैं। परमार्थ ही उनके लिए महत्वपूर्ण है।

तकनीकी विकास, आज की समृद्धि, शिक्षा प्रणाली ने संवेदनहीनता से लबरेज मानव रूपी मशीनों की पूरी फौज तैयार कर रखी है। हमारे समाज में दिखावा बाह्याचारों

---

1. शर्मा, रामकिशोर, कबीर ग्रन्थावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2010, पृष्ठ सं.–15
2. शर्मा, रामकिशोर, कबीर ग्रन्थावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद,2010, पृष्ठ सं.–15

की प्रदर्शनी ने अराजकता को बढ़ावा दिया है। कबीर ने इसे वर्षों पहले पहचान लिया था. वे सभी प्रकार की संकीर्णताओं से ऊपर उठकर मानवता का संदेश देते हैं। भक्ति में प्रेम की महत्ता को रेखांकित करते हैं। वेशभूषा, कर्मकांड, छापा, तिलक, मंत्र के स्थान पर सरलता, सच्चाई से ईश्वर के स्मरण को उन्होंने उचित बताया. क्योंकि प्रेम के अभाव में भक्ति निरर्थक है। पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा जीवनानुभव और प्रेम की महत्ता स्थापित करते हुए वे कहते हैं – 'ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय.'

आज भी हम समाज के वर्तमान परिदृश्य को देख कर सिहर जाते हैं। सामाजिक विसंगतियां, उत्पीड़न, असमानता, जातिवाद, धार्मिक उन्माद, कूप मंडूकता, अमानवीयता का तांडव बदस्तूर जारी है। बल्कि यूं कहें कि इनका स्तर बढ़ता ही जा रहा. चिंता का विषय है कि समाज की दिशा और दशा को समझने और बदलने में निर्णायक भूमिका निभाने वाले रचनाकार, चिंतक कबीर की संपूर्ण विरासत की मौजूदगी में भी हम इन झंझावतों से मुक्त क्यों नहीं हो पा रहे हैं। जबकि इन सब मुद्दों पर वर्षों पहले दृष्टिपात किया गया था. यह चिंता का विषय है। कबीर कालीन विकृतियां आज भी हमारे समाज में मौजूद हैं। झूठ, फरेब, लूट, नैतिक पतन जैसी तमाम समस्याएं जड़ जमाए बैठी हैं। वे जिन वर्जनाओं, कुरीतियों, विसंगतियों के विरुद्ध आजीवन संघर्षरत रहे वह आज भी बनी हुई हैं। ऐसे भयानक समय में नैतिकता की बहाली हेतु पुनः पुनः कबीर याद आते हैं। जरूरत है उनकी रचनाओं को अकादमिक चौखटे से बाहर निकाल अधिक से अधिक जनता के बीच पहुंचाने की. क्योंकि उनका चिंतन समाज में सक्रिय हस्तक्षेप की ताकत रखता है। कबीर के चिंतन को आम जन की भाषा में वृहत्तर समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जाए, तभी जिन समस्याओं की चिंता उन्होंने मध्यकाल में ही की थी, वह घटती हुई नजर आ पाएंगी।

भौतिक सुविधाओं के लिए विज्ञान ने हर क्षेत्र में आविष्कारों का ढेर लगा दिया है। लेकिन इसके साथ ही हमारे जीवन में एक खोखलापन भी उत्पन्न हुआ है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में बहुत कुछ छूटता जा रहा है। मानव मूल्यों और श्रेष्ठ भावनाओं की लगभग तिलांजलि दी जा चुकी है। जबकि हम सभी जानते हैं कि नैतिक मूल्य व्यक्ति के जीवन को ही नहीं बल्कि समाज को भी उत्कृष्टता की ओर अग्रसर करता है। कबीर आज भी हमारे लिए प्रेरणा स्वरूप हैं। उनका साहित्य अध्यात्म, ज्ञान, दर्शन के प्रसार के साथ-साथ समाज में व्याप्त तमाम बुराइयों पर कुठाराघात है। विकृत मानसिकता को समूल नष्ट करने का शंखनाद है।

❑ ❑ ❑

मानव अधिकारों के अंतरर्राष्ट्रीय आयाम

–ज्ञानवती धाकड़

मानव अधिकारों के अंतरराष्ट्रीय आयाम– जब इस विषय पर नजर डालते है तो यह सोचने को मजबूर कर देता है कि क्या आज दुनिया में मानवाधिकार सुरक्षित है। क्योंकि आए दिन दुनियाँ में किसी न किसी क्षेत्र में दंगे, लड़ाइयाँ, मारघाट या लूटखसोट होती ही रहती है और चारों तरफ मानवाधिकारों का हनन दिखाई देता है लेकिन उन्हें मजबूती से रोकने वाला कोई नहीं है। वर्तमान में ही रूस एवं यूक्रेन युद्ध सारी सीमाएँ पार कर 500 दिन से भी अधिक समय से चलता ही जा रहा है और कोई इसे बलपूर्वक रोक नहीं सका। बल्कि अगर देखा जाये तो कुछ देश अप्रत्यक्ष रूप से आग में घी डालने का ही काम कर रहे हैं। और जब तक युद्ध चलता रहेगा तब तक मानवाधिकारों के बारे में सोचना ही बेमानी है। मानव इतना क्रूर होता जा रहा है कि हर छोटी सी बात पर मारघाट करने पर उतारू हो जाता है जैसा कि अभी फ्रांस में हो रहा है कि 17 वर्षीय नाहेल एम की हत्या को लेकर हिंसक विरोध शुरू हो गया और कई दिनों तक चलता रहा, जिसमें साधारण जनता पिसती रही। इजरायल और फिलीस्तीन के बीच लगातार तनाव बढ़ रहा है, इजरायली सेना ने 4 जुलाई को सुबह वेस्ट बैंक के जेनिन में आतंकी ठिकानों पर ड्रोन हमले किए जिनमें कई फिलीस्तीनी मारे गये। इसी प्रकार भारत में भी कई वीभत्स घटनायें बार बार होती रहती है जिनमें मानवाधिकारों का अस्तित्व ही खत्म हो जाता है। क्योंकि जब मानवाधिकार की परिभाषा देखते है तो स्पष्ट होता है कि जहाँ व्यक्ति गरिमामय जीवन, आजादी, बराबरी, सम्मान, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सभी अधिकारों से सम्पन्न होता है और ये बिना किसी राष्ट्रीयता, निवास स्थान, लिंग, जाति, मूल, रंग, धर्म, भाषा के भेदभाव के सभी को प्राप्त होते हैं, तो कहा जा सकता

है कि वहाँ मानवाधिकार हैं। हाँ किसी पर किसी कारणवश कोई कानूनी बाध्यता हो तो वह कुछ अधिकारों से वंचित हो सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अपनाए गये मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणापत्र में भी कहा गया है कि मानव के बुनियादी अधिकार जाति, धर्म, लिंग, समुदाय, भाषा, समाज आदि से इतर होते हैं। भारत के संविधान में मौलिक अधिकारों को उल्लिखित किया गया है, जो देश के नागरिकों को और किन्हीं परिस्थितियों में देश में निवास कर रहे सभी लोगों को प्राप्त होते हैं। ये ऐसे अधिकार हैं, जो एक मनुष्य के अस्तित्व, स्वतंत्रता, गरिमापूर्ण, सुखपूर्वक, शान्तिपूर्ण, सन्तुष्टिदायक एवं सम्मानपूर्वक जीवन जीने के लिए आवश्यक हैं। जब मनुष्य अपनी गरिमा छोड़ने के लिए मजबूर हो, गरीबी के कारण महिला अपना शरीर बेचने को मजबूर हो, एक माँ भीख मांगने और पिता चोरी करने को मजबूर हो, कचरे ढ़ेर में से भोजन की तलाश कर रहे व्यक्ति, ट्रैफिक सिग्नलों पर भीख मांग रहे बच्चे हों, फलाईओवरों के नीचे बेघर लोग अपना बसेरा बनाकर बैठे हों, सर्दियों में गर्म जगह की तलाश में भटक रहे हों, तो कैसे कोई देश मानवाधिकारों का संरक्षक होने का दावा कर सकता है।

मानवाधिकारों की शुरूआत हम वहीं से मान सकते हैं, जब से इन्सान ने अपने बारे में सोचना शुरू किया होगा कि उसे भी एक सम्मानजनक जीवनयापन करने का अधिकार है। जिसे प्राप्त करने के लिए एक व्यवस्था अपनाई जानी चाहिए। प्लेटो और ग्रीस तथा रोमन दार्शनिकों के ग्रन्थों में भी मानवाधिकारों के संरक्षण के बारे में पाया जाता है। ज्ञात तथ्यों के अनुसार ईसा पूर्व 539 में फारस के राजा साइरस महान ने जब बैबीलोन पर विजय प्राप्त की तब उन्होंने दास बनाए गये सभी व्यक्तियों को अपने घर लौटने दिया और सभी व्यक्तियों को अपना धर्म चुनने की स्वतंत्रता भी दे दी, इसको मानवाधिकारों के पहले चार्टर के रूप में जाना जाता है। इनका संयुक्त राष्ट्रसंघ ने भी सभी भाषाओं में अनुवाद कराया और ये मानवाधिकारों के सार्वभौम घोषणापत्र के प्रथम चार अनुच्छेद में सम्मलित भी किए गये हैं। कुछ का मानना है कि इन्हें प्राचीन ग्रीस में भी मान्यता प्राप्त थी वैसे हिन्दू वेदों, बेबीलोन कोड, बाइबल, कुरान और कन्फ्यूशियन्स में लिखित सूत्र सबसे पुराने हो सकते हैं, जिनमें लोगों के अधिकारों और कर्तव्यों आदि के बारे में बहुत कुछ लिखा हुआ है। परन्तु 1650 में डच दार्शनिक ग्रोशस, जिसे राष्ट्रों की विधि का जनक माना जाता है, ने मानवाधिकार को एक विश्व व्यवस्था के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि जब एक शासक लगातार अपनी प्रजा के मूलभूत अधिकारों को कुचलता रहता है तो फिर वह उस राज्य का प्रश्न नहीं रह

जाता है बल्कि एक अंतरराष्ट्रीय प्रश्न बन जाता है। थॉमस पेन, जॉन स्टूअर्ट मिल, हेनरी डेविड थोरो, टाल्स्टॉय, महात्मा गाँधी, मार्टिन लूथर किंग, नेल्सन मंडेला आदि ऐसे व्यक्तित्व है जिन्होंने मानवाधिकार के लिए काफी कार्य किया। अमेरीकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट के द्वारा 6 जनवरी 1941 में की गई घोषणा, जिसमें वाक् स्वतंत्रता, धर्म की स्वतंत्रता, अभाव से मुक्ति और भय से मुक्ति इन चार स्वतंत्रताओं का उल्लेख था, को ध्यान में रखते हुए 14 अगस्त 1941 को अमेरीकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट और इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री विन्सटन चर्चिल ने एक संयुक्त घोषणा 'अटलांटिक चार्टर' में की थी जिसमें शान्ति को सुनिशिचत किया गया।

द्वितीय विश्व युद्ध में जिस तरह मानवता कुचली गई उससे सारी दुनिया बुरी तरीके से हिल गई और सबका ध्यान शान्ति व्यवस्था की ओर आकर्षित हुआ और चारों तरफ से एक ही मांग उठने लगी कि अब कभी इस तरह का नरसंहार नहीं होना चाहिए और इसी को ध्यान में रखते हुए 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिकारपत्र पर 50 देशों ने हस्ताक्षर करके यह तय किया कि अंतरराष्ट्रीय संघर्ष में यह संस्था हस्तक्षेप करेगी और जहाँ तक हो सकेगा युद्ध को होने ही नहीं दिया जायगा। फिर 1948 में 48 देशों के समूह ने समूची मानव-जाति के मूलभूत अधिकारों की व्याख्या के एक चार्टर पर हस्ताक्षर किए जिसमें यह माना कि व्यक्ति के मानवाधिकारों की रक्षा हर कीमत पर की जानी चाहिए, भारत ने भी इस चार्टर पर हस्ताक्षर किए। लेकिन फिर भी यदाकदा दुनियाँ के किसी न किसी क्षेत्र में मानवाधिकारों का हनन दिखाई देता रहता है इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि मानवाधिकार से जुड़े आयामों पर चर्चा हो और उन पर मजबूत निर्णय लेकर इस अन्तरराष्ट्रीय संस्था को महत्वपूर्ण कार्यवाही करने की क्षमता प्रदान करे, ताकि आवश्यकता होने पर यह प्रभावी कार्यवाही कर सके। 16 फरवरी 1946 को संयुक्त राष्ट्र संघ में श्रीमति फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट की अध्यक्षता में एक मानवाधिकार आयोग की स्थापना कर दी गई जिसने जनवरी 1947 से अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। आखिरकार अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ का अंतरराष्ट्रीय घोषणा पत्र अस्तित्व में आया।

संयुक्त राष्ट्र संघ में मानवाधिकारों के बारे में निर्णय-

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संघर्ष को रोकने तथा शान्ति स्थापित करने के लिए के लिए सारी दुनिया एकजुट हो गई और यह तय किया गया कि अब कभी युद्ध नहीं होना चाहिए और मानवता का विनाश किसी भी हालत में नहीं किया जाना चाहिए।

24 अक्टूबर 1945 में जब संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई तब ही इसके लिए एक चार्टर तैयार किया गया था जिसके अनुच्छेद 68 में मानवाधिकारों के संरक्षण के लिये प्ररूप तैयार करने के लिए सन् 1946 में एलोनोर रूजवेल्ट की अध्यक्षता में एक मानवाधिकार आयोग का गठन कर दिया गया था, जिसने जून 1948 में मानवाधिकारों के एक विश्वव्यापी घोषणा का प्रारूप तैयार किया, जिसमें 30 अनुच्छेद है और इसे संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के द्वारा 10 दिसम्बर 1948 को घोषित एवं अंगीकृत किया। यही कारण है कि 10 दिसम्बर का दिन सम्पूर्ण विश्व में "मानवाधिकार दिवस" के रूप में मनाया जाता है। इस घोषणा पत्र में निहित सभी अधिकारों को किसी न किसी रूप में भारत के संविधान के भाग तीन एवं चार में मौलिक अधिकारों एवं राज्य की नीति के निर्देशक तत्वों के रूप में समाहित किया गया है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग मानवाधिकारों के उल्लंघन के संरक्षण में एक प्रहरी के साथ-साथ पथ प्रदर्शक के रूप में भी कार्य करता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के सैक्रेटरी जनरल डॉ. हेमरस्कजोल्ड के अनुसार-

"The United Nations was not created in order to bring us to heaven] but in order to save us from hell"

मानवाधिकारों को विधिक स्वरूप प्रदान करने तथा व्यवहार में इन्हें प्रभावी रूप से लागू करने के लिये 4 नवम्बर, 1950 में यूरोपीय देशों द्वारा की गई संधि का भी अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस संधि के अंतर्गत 22 यूरोपीय देशों की परिषद् द्वारा एक कमीशन की स्थापना की गई, जो मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा को कार्यान्वित करने का एक महत्वपूर्ण प्रयास था। जिसमें (1) जीने का अधिकार (2) स्वतंत्रता का एवं सुरक्षा का अधिकार (3) अमानवीय व्यवहार से संरक्षण का अधिकार (4) दासता से मुक्ति का अधिकार (5) बलात्श्रम से मुक्ति का अधिकार (6) विचारों की अभिव्यक्ति, अन्तर्चेतना और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार (7) शान्तिपूर्ण सभा एवं समारोह आयोजित करने का अधिकार (8) विवाह करने और परिवार बसाने का अधिकार (9) सम्पत्ति पर शान्तिपूर्ण कब्जा बनाए रखने का अधिकार (10) शिक्षा का अधिकार (11) निष्पक्ष चुनाव कराने तथा गुप्त मतदान का अधिकार (12) मृत्यु दण्ड की समाप्ति (13) दोषसिद्ध के विरूद्ध पुनर्विचार का अधिकार (14) राज्य से निष्कासन के विरूद्ध अधिकार आदि अधिकारों और स्वतंत्रताओं को समाहित किया गया तथा इनके उल्लंघन होने पर उनके संरक्षण के लिए 'मानवाधिकारों का यूरोपीय न्यायालय' की भी स्थापना की गई जो 3 सितम्बर 1958 से कार्यरत है।

भारत में भी मानवाधिकारों को संरक्षित करने के लिए 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की गई जो लगातार अपनी सक्रिय कार्यप्रणाली से सरकार को अनेक महत्वपूर्ण योजनाओं के बारे में सलाह देती रहती है। लेकिन इनको मानने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारें बाध्य नहीं है। राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग भी केन्द्र से सिर्फ रिपोर्ट मांग सकता है। गवाहों को बुला नहीं सकता है उनसे पूछताछ तक नहीं कर सकता है, वह सिर्फ मुआवजा दिला सकता है लेकिन आरोपियों को पकड़ नहीं सकता है। अगर कोई शिकायत आयोग के पास एक साल बाद आती है तो वह जांच नहीं कर सकता है। फिर आयोगों में लम्बे समय तक पद खाली पड़े रहते है जिससे भी इनकी कार्यशैली प्रभावित होती है। फिर भी भारत में कार्यरत मानवाधिकार आयोगों ने देश में आम नागरिकों, बच्चों, महिलाओं, वृद्धजनों के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए समय-समय पर अपनी सिफारिशें सरकार तक पहुँचाई है और सरकार ने कई सिफारिशों पर अमल करते हुए संविधान में उपयुक्त संशोधन भी किए हैं। इसके अलावा अंतरराष्ट्रीय संधियों या अन्य सम्बन्धित अभिसमयों और दस्तावेजों का अध्ययन तथा उनके प्रभावी अनुपालन की सिफारिश भी करता है। भारत में मानवाधिकारों की स्थिति बहुत जटिल समस्या है क्योंकि देश का विशाल आकार, विविधता, विकासशील तथा संप्रभुता सम्पन्न धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक गणतंत्र के रूप में इसकी प्रतिष्ठा तथा पूर्व में औपनिवेशिक राष्ट्र के रूप में इसके इतिहास के परिणामस्वरूप भारत में मानवाधिकारों की परिस्थिति एक प्रकार से जटिल हो गई है।

अगर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर दृष्टि डाली जाय तो यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सिर्फ अंतरराष्ट्रीय संगठन या सरकारों ने ही नहीं बल्कि अनेक गैर सरकारी संगठन भी इसमें बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं और कहीं कहीं तो ऐसे प्रभावी कार्य कर रहे है कि वो मानवता के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हो रहे हैं।

फिर भी अनेक अंतरराष्ट्रीय संकट दुनिया में ऐसी विकट स्थिति पैदा कर देते हैं कि उनसे उबरना भी एक गम्भीर समस्या है, जैसे वर्तमान में रूस और यूक्रेन के युद्ध ने दुनिया के सामने एक नया शरणार्थी संकट पैदा कर दिया है अभी हम सीरिया, अफगानिस्तान और अफ्रीकी देशों के शरणार्थी संकट से निकले भी नहीं थे कि ये नया संकट आ गया। जो लोग यूक्रेन से भाग रहे हैं उन्हें पनाह कौन देगा और कितने दिन देगा। अब तक लाखों लोग यूक्रेन छोड़कर भाग चुके है। पड़ोसी देशों के बोर्डर पर लम्बी लम्बी कतारें लगी हुई हैं। मानवता के नाते स्लोवाकिया और

पोलेंड ने इन शरणार्थियों को बिना वैध दस्तावेजों के भी अपने देश में घुसने की इजाजत दे दी है। यूक्रेन से ब्रिटेन भागे डाक्टर कोई रेस्तराँ में डिश धोने का काम कर रहे है, तो कोई ट्रकों से सामान उतारने का काम कर रहे है, कोई अस्पतालों में क्लीनर का काम कर रहे है। हमारे यहाँ तो पहले ही बांगलादेश, म्यांमार, पाकिस्तान, चीन आदि कई पड़ोसी देशों से आए शरणार्थियों की समस्या हल नहीं हो पा रही है। इससे आर्थिक बोझ बढ़ जाता है। इसके अलावा रूस-यूक्रेन युद्ध का यह असर हुआ कि यूक्रेन पूरी तरह बर्बाद हो चुका है, उसे संवारना भी एक चुनौती होगा। जब कि रूस और यूक्रेन युद्ध को 193 में से 141 सदस्यों ने रूस के आक्रमण को गलत बताया, जो सीधा सीधा चार्टर के अनुच्छेद 2 के प्रावधानों का उल्लंघन है। लेकिन फिर भी रूस यूक्रेन युद्ध को 500 दिन से भी ज्यादा हो गये हैं; लेकिन वहाँ लाशें बिछना अभी भी जारी है ऐसे में कौनसे मानवाधिकार सुरक्षित रह सकते हैं, लाखों लोगों का जीवन अस्तव्यस्त हो रहा है। रूस, यूक्रेन, सीरिया, फिलीस्तीन, सूडान, अफगानिस्तान और अन्य कई देश शान्ति के लिए तरस रहे हैं, मानव जाति के लिए एक शान्तिपूर्ण विश्व से बड़ी राहत और कुछ नहीं हो सकती है। 2015 में हुए सीरिया में युद्ध के वक्त यूरोप ने शरणार्थी संकट देखा था। तालिबान की वापसी के बाद 35 लाख लोग बेघर हो चुके है उनके कब्जे को काफी समय हो गया है इस दौरान वहाँ लगातार महिलाओं के अधिकारों का दमन किया जा रहा है। उनका स्कूल कॉलेज बन्द करा दिया, घर से बाहर काम पर रोक लगा दी, ब्यूटी पार्लर, पार्क, सिनेमा और मनोरंजन वाली जगहों पर महिलाओं के जाने पर रोक लगा रखी है। अब ऐसे में कैसे मानवाधिकारों के बारे में सोचा जा सकता है। ताइवान अमेरिकी मदद से चीन से लड़ने को तैयार है जो उसे युद्ध की ओर ही अग्रसर करता है। इधर अमेरिका जापान और नीदरलैण्ड को निर्यात का अपना नया केन्द्र बनाने की कोशिश में है। उधर खालिस्तानी समर्थक अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन आदि देशों में भारत विरोधी माहौल बना रहे हैं। इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से यह तो स्पष्ट है कि विश्व के परिप्रेक्ष्य में जब हम मानवाधिकारों की बात करते हैं तो आज चारों तरफ जो माहौल है, वह इतना भयानक है कि कब कहाँ कोई और बड़ा विस्फोट हो जाये कुछ कहा नहीं जा सकता है। तो स्वतः एक प्रश्न दिमाग में घूमता है कि आखिर इस स्थिति से कैसे निपटा जा सकता है। तो एक ही समाधन दिखता है कि हमें सिर्फ मानवाधिकारों को प्राप्त करने की ही बात करने से तो कुछ प्राप्त नहीं होगा बल्कि हमें यह भी स्पष्ट रूप से समझ लेना होगा कि कभी भी हम सिर्फ अपने अधिकार ही प्राप्त नहीं कर सकते हैं अधिकारों के साथ हमारी जिम्मेदरियाँ भी हमें

ही निभानी होंगी। अगर दुनिया का प्रत्येक देश अपने कर्तव्य के प्रति सचेत रहे और सभी शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की भावना से व्यवहार करें तो कोई कारण नहीं कि मानवाधिकार सुरक्षित नहीं रह सके। हम इसको ऐसे भी समझ सकते हैं कि अगर हम अपने घर में सिर्फ अपने अधिकारों को ही प्राप्त करने की कोशिश करते रहे और कतर्व्यों पर धयान नहीं दें, तो वह परिवार किसी हाल में खुश नहीं रह सकता है उसी प्रकार आवश्यक है कि सभी देश यह समझे कि सबको सुख शान्ति से रहने का अधिकार है जिसके लिए दूसरे के अधिकारों का सम्मान करना होगा तभी दुनिया में सभी इनसानों के मानवाधिकार सुरक्षित रह सकते हैं।

❑ ❑ ❑

मानव अधिकारों के संरक्षण में संत रविदास की काव्य की भूमिका : मानव अधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा के उद्देश्य के परिपेक्ष्य में एक अवलोकन

–प्रो. सुदर्शन वर्मा*

मानवाधिकारों की संकल्पना का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना की मानव अस्तित्व। मानव अधिकारों के संरक्षण की मांग सदैव से ही मनुष्य द्वारा हर काल एवं समय में की जाती रही है। तथा उनके संरक्षण के लिए समय-समय पर राज्य-स्तर एवं विश्व-स्तर पर अनेक प्रयास किये गए हैं, तथापि विश्वस्तर पर मानवाधिकारों के संरक्षण का प्रयास द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् सन 1948 में मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा फलीभूत हुआ।

दो विश्व युद्धों का विनाश देखने के पश्चात पूरा विश्व शांति, भाईचारे की मांग कर रहा था। जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के पश्चात् मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा, 1948 के माध्यम से स्थापित करने का प्रथम प्रयास किया, जो सफल ही नहीं रहा अपितु संपूर्ण विश्व के द्वारा इस उद्घोषणा को सर्वसम्मति से स्वीकार कर अपने राज्यों में क्रियान्वित करने के लिए भी वचनबद्धता दर्शायी गयी।

मानव अधिकारों के उद्देश्य इतने विस्तृत हैं कि उन्हें कुछ पंक्तियों में वर्णित करना संभव नहीं है। परंतु मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की प्रस्तावना में मानवाधिकारों के उद्देश्यों को संक्षिप्त रूप में वर्णन करने का प्रयास किया हो। संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के द्वारा बहुत ही सुंदरता से वर्णित किया है। मानवाधिकारों

* पूर्व-विभागाध्यक्ष विधि विभाग, पूर्व-संकायाध्यक्ष, विधि अध्ययन विद्यापीठ, बी.बी.ए.यू., लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

की प्रस्तावना के अनुसार परिवार के सभी सदस्यों को अंतर्निहित गरिमा एवं सामान तथा अविच्छिक अधिकार की स्वीकृति स्वतंत्रता, न्याय एवं विश्वशांति की नींव है।

चूँकि मानवाधिकारों की उपेक्षा एवं घृणा के फलस्वरूप ही ऐसे बर्बर कृत्य हुए है; जिनसे मानव जाति की अंतरात्मा को ठेस पहुंची है। इसलिए एक ऐसी विश्व व्यवस्था की, जिसमें लोगों को भाषण और धर्म की आजादी तथा भय एवं अभाव से मुक्ति मिलेगी, की स्थापना के लिए सर्वसाधारण के लिए सर्वोच्च आकांक्षा घोषित किया गया है। क्योंकि अगर अन्याय युक्त शासन और जुल्म के विरुद्ध लोगों का विद्रोह करने के लिए उसे ही अंतिम उपाय समझकर मजबूर ना होना पड़े तो विधि द्वारा नियम बनाकर मानवाधिकारों की रक्षा करना अनिवार्य है।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उदघोषणा, 1948 का मुख्य उद्देश्य सभी मनुष्यों की अंतर्निहित गरिमा एवं सम्मान के अविच्छिन्न अधिकार का संरक्षण एवं अभाव से मुक्ति, भेदभाव रहित समाज की स्थापना, सभी व्यक्तियों को समानता का अधिकार, जाति एवं धर्म के आधार पर भेदभाव, अत्याचार का निषेध, परस्पर भाईचारे का व्यवहार, व्यापक स्वतंत्रता के अंतर्गत सामाजिक प्रगति एवं जीवनस्तर को ऊंचा करना है।

अन्य वर्णित अधिकार इन उपर्युक्त उक्त वर्णित मानवाधिकारों के अनुषंगी है, जो इन अधिकारों की प्राप्ति के साथ स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं। संत रविदास जी ने इन मानवाधिकारों की परिकल्पना 15वीं शताब्दी में ही कर ली थी, तथा उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से समाज को यह संदेश दिया था कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही स्वतंत्र एवं समान है उनके बीच किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिए।

भारत एक ऐसा राष्ट्र है, जहां मानवाधिकारों की स्थापना मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के उपरांत नहीं, अपितु भारत राष्ट्र की स्थापना के साथ हुई। वैदिक काल से ही सर्वधर्म समभाव और बहुजन हिताय बहुजन सुखाय का सिद्धांत भारतीय संस्कृति एवं परंपरा का एक हिस्सा रहा है। मानव अधिकारों के संरक्षण की भारतीय संस्कृति एवं परंपरा के विकास में भारत के संत, कवियों, महात्माओं एवं ऋषि मुनियों का विशेष योगदान रहा है।

भारतवर्ष ऋषि–मुनि संत एवं महात्माओं की भूमि है। इनके साहित्य एवं काव्य से भारतीय समाज को एक नवीन विचारधारा प्राप्त हुई। जिसने समाज के व्यक्तियों को प्रेरणा देकर उनका मार्ग प्रशस्त किया तथा एक ऐसे समाज के निर्माण पर बल

दिया जिसमें बिना किसी भेदभाव के सभी व्यक्तियों के उनके समस्त आवश्यक मानवाधिकार प्राप्त हों, जिससे वे अपने व्यक्तित्व का विकास कर समाज के विकास में सहायक भूमिका निभा सकें। विशेष रूप से संत कवियों ने प्रगतिशील समाज की स्थापना, जिसमें भाईचारा हो समानता और भ्रातृत्व का भाव हो, में महती भूमिका निभाई है। इन्हीं संतो में से एक प्रमुख नाम संत रविदास जी का भी है।

इस लेख में लेखिका संत रविदास जी की उन काव्य रचनाओं का वर्णन करने का प्रयास करेगी, जिनके माध्यम से संत रविदास जी, ने मानव कल्याण एवं मानव अधिकारों के संरक्षण का पुरजोर समर्थन किया तथा समाज की ऐसी प्रथा और कुरीतियों का विरोध किया जो व्यक्तियों के मानवाधिकारों का उल्लंघन करती थी। संत रविदास जी की काव्य रचनाओं में मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु कही गई बातें आज भी उतनी ही सार्थक जितनी उनके जीवन काल में थी।

संत रविदास जी का जन्म काशी नगरी में हुआ था, परंतु उनके जन्म के समय के बारे में एकमत नहीं है। परंतु लेखकों के मध्य इस बात पर मतभेद नहीं है, कि संत रविदास के द्वारा अपनी काव्य रचना के माध्यम से मानव कल्याण लोक कल्याण तथा परिष्कृत समाज जहां प्रत्येक मनुष्य को उसके मानवाधिकार बिना किसी भेदभाव के समान रूप से प्राप्त होने की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उन्होंने समाज में जाति प्रथा, भेदभाव, छुआछूत, वैमनस्य आदि कुरीतियों एवं मानवीय दुर्गुणों के विरुद्ध जनजागरण का कार्य किया तथा एक समतावादी समाज की स्थापना करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मानवीय गुणों का महत्व

मानव अधिकारों का संरक्षण एवं प्राप्ति तभी संभव है जब प्रत्येक मनुष्य में मनुष्यता का गुण हो। मानवीय गुणों के आधार पर ही व्यक्ति अपने मानव अधिकारों एवं कर्तव्यों का सही दिशा में पालन कर अपने अधिकारों के साथ दूसरों के अधिकारों का संरक्षण कर सकता है तथा मानवीय गुणों से रहित व्यक्ति सदैव अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहता है। परंतु कर्तव्यों का पालन ना करके दूसरों के अधिकारों का उल्लंघन करने का कारक बन जाता है। अतः रविदास जी ने इस बात पर बल दिया कि मनुष्य गुणों के आधार पर ही श्रेष्ठ होता है। गुणहीन व्यक्ति चाहे कितना भी ऊंचा हो वह श्रेष्ठ नहीं हो सकता है, अतः हमें मनुष्य के गुणों के आधार पर उसका आकलन करना चाहिए उसकी जाति-धर्म के आधार पर नहीं। उन्होंने कहा–

ब्राह्मण (अर्थात उच्च कुल में जन्मा व्यक्ति) मत पुजिये जो होवे गुणहीन।
पूजिए चरण चंडाल को जो होवें गुण प्रवीण॥

अर्थात कोई भी व्यक्ति जाति एवं धर्म के आधार पर श्रेष्ठ एवं आचरण करने योग्य नहीं होता उसके गुण उसे श्रेष्ठ एवं आचरण करने योग्य बनते है। उन्होंने आगे कहा है–

देता रहे हजार बरस मुल्ला चाहे अजान।
रविदास सुख नहीं मिल सके जों लों मन शैतान।

उन्होंने समाज को यह संदेश देने का प्रयास किया कि चाहे कोई व्यक्ति कई वर्षों तक मस्जिद में नमाज पढ़ता है अर्थात पूजा पाठ करता रहे परन्तु जब तक दुर्भावना एवं ईर्ष्या रूपी शैतानी अवगुण उसके मन से समाप्त नहीं होते हैं, तब तक उसे सुख नहीं मिलेगा रविदास जी का यही मानसिक सुख तथा अवगुणों का नष्ट होना है, मानव अधिकारों के संरक्षण की नींव है, जो स्वयं भी जियो और दूसरों को भी जीने दो के सूत्र पर आधारित है। रविदास जी ने आगे कहा है कि–

जात पात के फेर में उरझि रहें सब लोग।
मनुष्यता को खात है रविदास जात का रोग॥

रविदास जी ने कहा कि सभी मनुष्य जात पात के फेर में पड़ गए हैं, इस जाति की बीमारी ने मनुष्य के अंदर से मनुष्यता के गुणों को ही समाप्त कर दिया है, यह कहना आवश्यक है, कि मनुष्यता का गुण ही मानव अधिकारों के संरक्षण का आधारशिला है।

सामाजिक समरसता एकता एवं बंधुता का संदेश

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का मुख्य उद्देश्य स्वतंत्रता, न्याय एवं विश्व शांति की स्थापना करना है। स्वतंत्रता, न्याय एवं विश्वशांति की स्थापना के लिए आवश्यक है कि व्यक्तियों के बीच बंधुता, एकता एवं समरसता हो। समरसता एवं बंधुता विहीन समाज में व्यक्ति की स्वतंत्रता न्याय एवं शांति स्थापित नहीं की जा सकती है। (मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा का अनुच्छेद भी इसे मानवाधिकारों के रूप में उद्घोषित करता है) सार्वभौमिक उद्घोषणा के अनुच्छेद 1 में भी यही उपबन्ध किया गया है कि सभी मनुष्यों को गौरव एवं अधिकारों के मामले में जन्मजात स्वतंत्रता और समानता प्राप्त है, उन्हें बुद्धि एवं अंतरात्मा की देन प्राप्त है और परस्पर भाईचारे के साथ व्यवहार करना चाहिए।

संत रविदास इस तथ्य से बहुत ही भलीभांति परिचित थे उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से संदेश दिया कि समाज में समरसता एवं बंधुता होनी चाहिए। रविदास जी संदेश देते हैं कि हमें एक दूसरे के साथ भ्रातृत्व बंधुता के साथ रहना चाहिए सभी हमारे प्रिय हैं, उन्होंने कहा कि-

एकै माटी के सभै भाड़े सब का एकै सिरजनहार।
रैदास व्यायों एकौं घट भीतर सभ को एकै घ कुम्हार॥

रविदास जी ने इन पंक्तियों में यह बताने का प्रयास किया है, कि सभी मनुष्य एक ही मिट्टी से बने हुए अर्थात सभी का जन्म एक ही प्रकार से हुआ सब और सबको बनाने वाला या सृजनकर्ता एक है, सभी मनुष्यों के भीतर एक ही घट अर्थात सबको एक ही कुम्हार (ईश्वर) ने बनाया है।

मुसलमान से दोस्ती, हिंदुअन सो कर प्रीत।
रैदास जाति सभी राम की सभी हैं अपने मीत॥

इस दोहे में रविदास जी बताते हैं कि, हमें सभी धर्मों के लोगों के साथ प्यार से व्यवहार करना चाहिए क्योंकि सभी व्यक्ति राम अर्थात ईश्वर के द्वारा बनाए गए हैं, तथा सब अपने प्रिय हैं। अपने इस काव्य के माध्यम से रविदास जी सामाजिक समरसता एवं बंधुता तथा धार्मिक सद्भाव की शिक्षा देते हैं इस प्रकार से संत रविदास जी, सामाजिक शक्ति के अग्रदूत तथा सामाजिक समरसता व बंधुता के प्रणेता थे। संत रविदास ने अपने जीवन काल में समाज में मानव अधिकारों के संरक्षण की मुख्य आधारशिला सामाजिक समरसता, एकता एवं समता के स्थापित करने का प्रयास किया।

धर्मनिरपेक्षता तथा सर्वधर्म समभाव की शिक्षा

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948 की प्रस्तावना तथा अनुच्छेद-2 में उदघोषणा की गयी है कि सभी देशों के समस्त व्यक्ति समान हैं तथा उनके मध्य धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा। भारत के संविधान में पंथनिरपेक्ष राज्य की स्थापना करना है, जिसमें सभी धर्मो के लोंगो के समान अधिकार एवं संरक्षण प्राप्त हो। संत रविदास जी भी धर्म निरपेक्षता एवं सर्वधर्म समभाव के पक्षधर थे उन्होंने कहा–

कृष्ण, करीम, राम, हरी, राघव जब लगे एक न पेखा।
वेद, कतेब, कुरान, पुराण सहज एक नहीं देखा॥

अर्थात राम, कृष्ण, करीम, हरि, राघव सब एक ही ईश्वर के नाम वेद, पुराण आदि में एक ही ईश्वर का गुणगान किया गया और सभी ईश्वर की भक्ति के लिए सदाचार का पाठ पढ़ते हैं।

इस प्रकार संत रविदास जी धर्म के आधार पर भेदभाव के घोर विरोधी थे, क्योंकि जिस समाज में भेदभाव नहीं होगा वही सभी मनुष्यों के उनके मानवाधिकार प्राप्त हो सकते हैं, भेदभाव सदैव मानव अधिकारों के उल्लंघन का कारक रहा है।

समानता के अधिकार के पुरोधा तथा भेदभाव जाति प्रथा के घोर विरोधी

संत रविदास जी समानता के अधिकार के पुरोधा थे, उन्होंने धर्म जाति के आधार पर किए जाने वाले भेदभाव पर कुठाराघात करते हुए कहा–

रैदास कनक और कंगन माहि जिम अंतर कुछ नाही।
तैसे ही अंतर नहीं हिंदूअन तुरकन माही।

इस दोहे के माध्यम से उन्होंने शिक्षा दी कि जिस प्रकार सोने और सोने के बने आभूषण में कोई अंतर नहीं होता वह सोना ही रहता है, उसी प्रकार हिंदुओं-मुसलमानों में अर्थात विभिन्न धर्म के लोगों में कोई अंतर नहीं होता है। वे सभी एक समान ही मनुष्य है उन्होंने आगे कहा-

रविदास एक ही नूर ते जिमि उपज्यो संसार।
ऊंच-नीच कि विध भयें ब्राह्मण और चमार।।

अर्थात एक ही ईश्वर के द्वारा बनाया गया संसार है। समाज के द्वारा बनाए गए नियमों के आधार पर मनुष्यों को अलग में बाँट दिया है अलग जातियों में कोई ब्राहमण और कोई चमार है। समाज में इस प्रकार का भेदभाव मानवाधिकारों के उल्लंघन का मूल कारण है। अतः समाज में सभी मनुष्यों को बिना किसी भेदभाव के समानता को अधिकार मिलना है। रैदास जी जात-पात के आधार पर होने वाले सामाजिक भेदभाव को नकारते थे तथा समानता पर बल देते हुए संत रविदास जी ने कहा था कि–

जन्मजात मत पूछिये का जात और पात।
रैदास पूत सम प्रभ को कोई नहीं जात कुजात।।

रविदास जी कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति की उसके जन्म की जाति अर्थात किस जाति में जन्मा है नहीं पूछना चाहिए। जात पात कुछ नहीं होता है, सभी व्यक्ति

एक प्रभु की संतान है, कोई भी जाति छोटी अथवा खराब नहीं होती है इस प्रकार रविदास जी ने समानता को मानव जीवन का आधार बताया है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति एक ही ईश्वर की संतान है, और उसी के द्वारा बनाया गया है इसलिए इसके लिए जाति के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं करना चाहिये।

छोट बड़ो सब सम रैदास रहे प्रसन्न।

रविदास जी कहते कि छोटे बड़े बिना भेदभाव के सभी सामान रूप से प्रसन्न रहें जो कि जीवन के अधिकार का अभिन्न अंग हैं।

छुआछूत अथवा अस्पृश्यता को समाप्त करने का प्रयास

भारत के प्राचीन इतिहास से ज्ञात होता है, कि प्राचीन समय में भारत में जाति निर्धारण का आधार व्यक्ति के द्वारा किये जाने वाले कार्य थे। कार्यों के आधार पर ही उसकी जात का निर्धारण होता था। जन्म से व्यक्ति की जाति का निर्धारण नहीं होता था, परंतु कालांतर में जाति का निर्धारण जन्म के आधार पर होने लगा तथा उनकी श्रेष्ठता एवं नीचता का निर्धारण वर्ण एवं जाति के आधार पर ही किया जाने लगा। समाज की इस व्यवस्था ने समाज में जाति प्रथा और जाति के आधार पर भेदभाव ऊँच-नीच तथा अन्य असामाजिक कृत्य को जन्म दिया। जिसके कारण मनुष्यों का एक बहुत बड़ा वर्ग न केवल आवश्यक सुविधाओं से वंचित हो गया अपितु मानव गरिमा तथा अन्य मूल मानव अधिकारों से भी वंचित हो गया।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948 का अनुच्छेद 2 सभी को इस घोषणा में सन्निहित सभी अधिकारों को प्राप्त करने का अधिकार देता है और इस मामले में जाति, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीति या अन्य विचार प्रणाली किसी देश अथवा समाज विशेष रूप में जन्म समाहित या किसी भी प्रकार के अन्य मर्यादा आदि के कारण भेदभाव का विचार ना किया जायेगा। इसके अतिरिक्त चाहे कोई देश या प्रदेश स्वतंत्र हो या स्वशासन रहित हो या परिमित प्रभुसत्ता वाला हो उस देश का या प्रदेश की राजनैतिक, क्षेत्रीय या अंतरराष्ट्रीय स्थिति के आधार पर वहाँ के निवासियों के प्रति कोई भेदभाव जायेगा। संत रविदास जी जो स्वयं एक अछूत (तत्समय प्रचलित शब्द) जाति में जन्मे थे समाज के इस व्यवस्था से खिन्न थे, तथा इसका विरोध करते थे क्योंकि जातिगत भेदभाव के कारण ऐसे व्यक्ति समस्त मानव अधिकारों से वंचित थे उन्होंने कहा–

रविदास जन्म के कारने होत ना कोउ नीच।
नर कूँ नीच करी डारि है ओछे करम कीच॥

जातिवाद पर कुठाराघात करते हुए उन्होंने कहा कि जन्म से कोई भी व्यक्ति ऊंचा या नीचा नहीं होता है। मनुष्य अपने बुरे कर्मों के कारण नीच होता है, अतः किसी जाति में जन्म लेने के आधार पर कोई व्यक्ति श्रेष्ठ अथवा नीच नहीं हो जाता है उन्होंने कहा

रविदास सुकरमन कर नसों नीच ऊँच हो जाय।
कोई कुकरम ऊँच भी तो महा नीचं कहलाए॥

रविदास जी ने कहा है–

जो देखि घिन उपजे नरक कुंड के वास।
प्रेम भगति सौ ऊधरों प्रगटत जन रैदास॥

उन्होंने समाज को संदेश दिया जो व्यक्ति किसी छोटी जाति के व्यक्ति को देखकर घृणा करते हैं अछूत समझते हैं जिनके रहने का स्थान नरक के सामान था। क्योंकि यदि कोई व्यक्ति प्रेम पूर्वक भक्ति करता है, तो उसे भी ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है, अर्थात जब ईश्वर अपने भक्तों को भक्ति के आधार पर उनको दर्शन देते हैं ना की जाति के आधार पर तो मनुष्य ये छुआछूत क्यों करता है।

संत रविदास जी का विचार था कि जात-पात, ऊंच-नीच, अस्पृश्यता आज हमें हमारे मानवीय गुणों से दूर कर देते हैं तथा समाज की समरसता तथा बंधुत्व की स्थापना में बाधा उत्पन्न करते हैं जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कि मानवाधिकारों का संरक्षण बंधुता पर आधारित एक समरस समाज में ही संभव है। उन्होंने कहा–

जाति जाति में जाति हैं, जो केतन के पात।
रैदास मनुष्य न जुड़ सकें, जब तक जाति न जात॥

रविदास जी ने कहा हैं कि हमारे समाज में केले के पत्तों की भांति जातियां हैं। जिस प्रकार एक केले के पत्ते की परत को निकालने के पश्चात दूसरी परत निकल जाती है, उसी प्रकार जाति में से जाति निकल जाती है। जब तक यह जाति प्रथा समाप्त नहीं होगी, समाज में मनुष्यों के बीच भाईचारा उत्पन्न नहीं हो सकता है। जो मानव अधिकारों की उद्घोषणा एवं भारतीय संविधान का उद्देश्य है। जिसके

बिना सभी मनुष्यों को मानवाधिकारों का प्राप्त होना संभव नहीं है। उन्होंने कहा कि, जाति की रोग ने मनुष्यता को समाप्त कर दिया उन्होंने कहा–

जात पात के फेर में उरझि रहई सब लोग।
मानुषता को खात हैं रैदास जात को रोग॥

शिक्षा का अधिकार

मनुष्य का सर्वप्रथम संरक्षित मानवाधिकार है, जीवन का अधिकार जो अन्य मानवाधिकारों के उपयोग एवं संरक्षण का मूल आधार है। अत: जीवन का अधिकार न केवल मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अंतर्गत संरक्षित है, अपितु अन्य समस्त अंतरराष्ट्रीय व राष्ट्रीय विधिक दस्तावेजों के द्वारा संरक्षित किया गया है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा अनुच्छेद 3 कहता है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीवन स्वाधीनता और व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को संरक्षण किया गया है, परंतु जीवन के अधिकार का तात्पर्य मात्र जीवित रहना ही नहीं अपितु गरिमामय जीवन जीने से है। एक मनुष्य की गरिमामयी जीवन की आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में शिक्षा महत्वपूर्ण योगदान देती है। अत: गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार उपलब्ध हो क्योंकि, शिक्षा न केवल मनुष्य का ज्ञान वर्धन करती है अपितु जीवन को गरिमामय बनाने में संसाधनों का उपयोगी प्रयोग करके अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करने तथा समाज में प्रतिष्ठा के साथ जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करती है, शिक्षा सही और गलत अच्छे और बुरे का भेद बता कर मनुष्य का मार्गदर्शन करती है।

इसलिए शिक्षा का अधिकार मानवाधिकार के रूप में संरक्षित किया गया है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक उद्घोषणा के अनुच्छेद 26 के अनुसार सभी व्यक्तियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। प्रारंभिक शिक्षा अनिवार्य और निशुल्क होगी भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21-A भी 6 से 14 वर्ष की आयु के बच्चों को अनिवार्य एवं प्रारंभिक शिक्षा प्रदान करने का अधिकार देता है, रविदास जी का भी यह मत था कि, प्रत्येक व्यक्ति का शिक्षा का महत्व समझ कर शिक्षा अवश्य ग्रहण करना चाहिए उन्होंने कहा कि–

अविंदय अहित कीन ताते विवेक दीप मलिन।
ज्ञान काहू की संपत्ति नहीं ज्ञानी भरमत है जग माही॥

रविदास जी कहते हैं, कि सही शिक्षा को पढ़ कर सदैव ज्ञान प्राप्त करो बिना ज्ञान के व्यक्ति का जीवन निर्जीव है। अविद्या व्यक्ति का अहित करती है, तथा उसके विवेक रूपी प्रकाश को कम कर देती है इसलिए सभी को शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए क्योंकि शिक्षा अथवा ज्ञान किसी की संपत्ति नहीं है। ज्ञानी व्यक्ति की सब जगह पूछ होती है, अतः जाति धर्म का भेदभाव छोड़कर सभी को शिक्षा का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 10 दिसंबर 1948 को मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की। संयुक्त राष्ट्र ने घोषणा के साथ-साथ सभी सदस्य देशों से आग्रह किया कि उनके शासन का रूप चाहे कैसा भी क्यों ना हो वह इन अधिकारों को मान्यता प्रदान करें तथा इन का व्यापक रूप से प्रचार करके जनसाधारण को इनके प्रतिजागरूक बनाएं।

"ऐसा चाहू राज में जहां मिले सबन को अन्य।
छूट बड़ों सब सम बसें रैदास रहे प्रसन्न।"

संत रविदास जी ने अपनी कविता के माध्यम से ऐसे कल्याणकारी राज्य की स्थापना पर बल दिया जो सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय तथा जीवन के कल्याण मात्र के लिए स्थापित किए जाएं। जहां बिना किसी भेदभाव के समस्त मानव जाति को उनके मानव अधिकार प्राप्त हों, जहां मिले सभी को अन्न के माध्यम से सभी मानव जातियों के जीवन के अधिकार, जो बिना अन्न के संभव नहीं है, के संरक्षण की बात कही। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि संत रविदास जो स्वयं एक अनुसूचित जाति के थे, समाज में जाति धर्म के भेदभाव के कारण जो अधिकारों की वंचना थी उसको समाप्त कर समाज में सभी व्यक्तियों को समान अधिकार प्राप्त करने का संदेश दिया था। उनकी रचनाएं आज भी उतनी ही सार्थक हैं, जितनी उनके जीवन काल के समय में थी। सही अर्थों में रविदास जी ने प्रत्येक व्यक्ति के मानव अधिकारों के संरक्षण का मार्ग अपनी काव्य धारा से प्रशस्त किया जिन्हें आज के समय में अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकारों के रूप में मान्यता प्राप्त हुई है।

इस प्रकार मानवाधिकारों के संरक्षण का दायित्व राष्ट्र की सरकार का है। कल्याणकारी राज्य में सरकार का दायित्व है कि राज्य में रहने वाले सभी मनुष्यों को उसके समस्त मानव अधिकार प्राप्त हो तथा खुशहाली हो। अधिकारों के संरक्षण में राज्य धर्म, जाति, रंग, इत्यादि के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव न करे।

सन्दर्भ-सूची

1. स्त्रोत https://legal.un.org/avl/ha/udhr/udhr.html पर उपलब्ध है।
2. स्त्रोत https://gyanforever.com/human-rights-meaning-universal-declaration-hindi/ पर उपलब्ध है।
3. स्त्रोत https://thesimplehelp.com/ravidas-ke-dohe-hindi/ पर उपलब्ध है।
4. स्त्रोत https://www.gyanipandit.com/ravidas-ke-dohe/ पर उपलब्ध है।
5. स्त्रोत https://www.hindwi.org/poets/raidas/dohe पर उपलब्ध है।

❑ ❑ ❑

संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार तथा अपराध से बच्चों का संरक्षण और बाल अधिकारः एक अवलोकन

–उर्मिला

परिचय

दुनिया भर की सभ्यताओं में, बचपन को मासूमियत, स्वतंत्रता, आनंद और खेल से जोड़ा गया है। यह एक ऐसा समय है जब विकास की कठोरता से बचते हुए दायित्व या प्रतिबद्धता की भावना नहीं होती है। बच्चे नाजुक होते हैं जिन्हें जीवन की कठोर वास्तविकताओं से बचाना चाहिए। नतीजतन, वयस्क बाल संबंध, विशेष रूप से माता–पिता–बाल संबंध को 'देखभाल और सुरक्षा' प्रदान करने के लिए कहा जाता है, यह बच्चे के 'सर्वोत्तम हितों' की सेवा करता है, और दैनिक 'अस्तित्व और विकास की जरूरतों' का समर्थन करता है। वयस्क को अभिभावक (गार्जियन) के रूप में माना जाता है जो बच्चे की देखभाल और विकास के लिए जिम्मेदार होते है।

पृष्ठभूमि

धर्म, रंग, लिंग, अंतरराष्ट्रीय बाल दिवस सबसे पहले सन 1954 में 20 नवंबर को मनाया गया था। इस दिवस की परिकल्पना एक भारतीय नागरिक वीके कृष्ण मेनन ने की थी। 20 नवंबर का बाल दिवस के रूप में महत्त्व इसलिए और बढ़ जाता है क्योंकि आज ही के दिन 1959 में संयुक्त राष्ट्र की आम सभा ने बाल अधिकारों की घोषणा की थी। वर्ष 1989 में 20 नवंबर को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने बाल अभिसमय (Convention) को अपनाया। यह अभिसमय सितम्बर, 1990 में प्रभाव में आया। इस समझौते पर विश्व के 196 राष्ट्रों ने हस्ताक्षर करते हुए अपने

देश में सभी बच्चों को जाति,भाषा, संपत्ति, योग्यता आदि के आधार पर बिना किसी भेदभाव के संरक्षण देने का वचन दिया है। केवल अमेरिका ने अब तक इस पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। इस बाल अधिकार समझौता पर भारत ने 1992 में हस्ताक्षर कर अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की थी।

संयुक्त राष्ट्र बाल अधिकार

इस संधि के जरिए पहली बार सरकारों ने माना कि बच्चों के पास भी वयस्कों की तरह ही मानवाधिकार हैं। इस में 54 अनुच्छेद हैं। इसमें अनेक प्रकार के प्रावधानों को सम्मिलित किया गया है, जिनमें कुछ इस प्रकार हैं–जीवन का अधिकार, राष्ट्रीयता और नाम पाने का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार, विवेक और धर्म का अधिकार, गोपनीयता, परिवार, घर या पत्राचार में गैर–कानूनी और निरंकुश हस्तक्षेप से सुरक्षा पाने का अधिकार तथा उच्चतम स्वास्थ्य स्तर का उपभोग करने का अधिकार।

सदस्य देशों को बच्चों की सभी प्रकार की शारीरिक और मानसिक यातनाओं तथा आर्थिक शोषण और मादक द्रव्यों के अवैध प्रयोग से रक्षा करने के लिये सभी उपयुक्त कदम उठाने पड़ते हैं। सदस्य देशों से सशस्त्र विद्रोहों में बच्चों से संबंधित सभी अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानूनों का आदर करने की भी अपेक्षा की जाती है। शरणार्थी और दिव्यांग बच्चों के संबंध में विशिष्ट प्रावधानों की भी व्यवस्था की गई है।

दस स्वतंत्र सदस्यों वाली एक बाल अधिकार समिति के गठन का भी प्रावधान है। यह समिति अभिसमय में निर्दिष्ट बाल अधिकारों को प्रभावशाली बनाने की दिशा में उठाये गये कदमों और उन अधिकारों का उपयोग करने की दिशा में हुई प्रगति के संबंध में तथा सदस्य देशों द्वारा जारी की गयी रिपोर्टों की समीक्षा करने के लिये अधिकृत है। समिति पर यह समीक्षा करने की जिम्मेदारी है कि सरकारें संधि में तय मानकों का किस तरह पालन कर रही हैं। इस प्रक्रिया के तहत संधि को स्वीकृति मिलने के दो साल के भीतर और उसके बाद हर पाँच साल पर प्रत्येक सदस्य देश एक रिपोर्ट साझा करता है जिसके बाद चिह्नित देश को बेहतरी के लिए अनुशंसाओं के बारे में बताया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र महासभा के 74वें सत्र के दौरान आयोजित इस उच्च स्तरीय बैठक में संधि के जरिए स्वस्थ जीवन और टिकाऊ आजीविका की दिशा में हुई प्रगति को रेखांकित किया गया। लेकिन 26 करोड़ से ज्यादा बच्चे और युवा अब भी स्कूलों में

पढ़ाई नहीं कर पा रहे हैं, 65 करोड़ से ज्यादा लड़कियों और महिलाओं की शादी 18 वर्ष की उम्र से पहले ही कर दी जाती है और हर चार में से एक बच्चा ऐसे इलाकों में रहने को मजबूर हैं जहाँ वर्ष 2040 तक सीमित जल संसाधन होंगे। ऐसे में सदस्य देशों से अपील की गई है कि नई चुनौतियों को देखते हुए सदस्य देशों को अपने संकल्पों और मजबूत बनाने होंगे। अमेरिका को छोड़कर अब तक 196 देश इस संधि पर मुहर लगा चुके हैं हालांकि उसने भी इसे स्वीकृति देने की मंशा जाहिर की है। बाल अधिकार संधि के पारित होने के बाद, पहले से कहीं ज्यादा बच्चों को जरूरी संरक्षण और सहारा मिल रहा है और पाँच से कम उम्र के बच्चों की मौतों के मामले में पचास फीसदी की कमी आई है। साथ ही कुपोषण से पीड़ित बच्चों की संख्या में भी गिरावट दर्ज की गई है। आधुनिक दुनिया में बच्चों और युवाओं को पेश आने वाली चुनौतियों से निपटने के लिए उनके अनुरूप कार्रवाई में बदलाव के प्रयास किये जा रहे हैं।

एन.एच.आर.सी. ने अक्टूबर 1993 में अपनी स्थापना से बच्चों के अधिकारों पर लगातार ध्यान केंद्रित करने का प्रयास किया है। बच्चों के उत्तर-जीवन, विकास और सुरक्षा के लिए **भारतीय संविधान** में पर्याप्त प्रावधानों के साथ-साथ उनकी रक्षा के लिए बनाए गए विनियमों जो उनके हितों के बचाव के लिए है, और साथ ही भारत सरकार द्वारा **बाल अधिकारों पर कन्वेंशन** की पुष्टि करने के बावजूद, पूरे देश में बच्चे, विशेष रूप से समाज के गरीब वर्ग के बच्चे कमजोर थे, और उनके मानवाधिकारों का नियमित रूप से उल्लंघन किया गया था।

बाल अधिकार– एक अवलोकन

एक बच्चा, **भारतीय जनगणना** के अनुसार, चौदह वर्ष से कम आयु का कोई व्यक्ति है। **बाल अधिकारों की सार्वभौम घोषणा** एक बच्चे को "अठारह वर्ष से कम उम्र का कोई भी इंसान, जब तक कि बच्चे पर लागू कानून से पहले ही वह व्यसक्ता हासिल नहीं कर लेता है" के रूप में परिभाषित करती है। यह घोषणा प्रत्येक राष्ट्र को अपने कानूनों के आधार पर बच्चों के लिए आयु सीमा निर्धारित करने की अनुमति देती है। हालांकि, हमारे देश में, बच्चों से संबंधित कई नियम, विभिन्न स्तरों पर आयु प्रतिबंध की समीक्षा करते हैं।

1. उदाहरण के लिए, भारतीय दंड संहिता (आई.पी.सी.) 1860, सात साल से कम उम्र के नाबालिगों और बारह साल से कम उम्र के मानसिक विकलांग बच्चों के बारे में बात करता है (धारा 83 आई.पी.सी.)।

2. भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21A छह से चौदह वर्ष की आयु के बच्चों के बारे में बात करता है,
3. बाल श्रम (निषेध और विनियमन अधिनियम, 1986, चौदह वर्ष के बच्चो के बारे में बात करता है, और
4. किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000, अठारह वर्ष आदि की आयु के बच्चो के बारे में बताता है।

एक बच्चे के अधिकार

हमारा संविधान रंग, जाति या पंथ की परवाह किए बिना सभी बच्चों को गरिमा और विशिष्टता के साथ जीने और अपने समाज और राष्ट्र की सेवा करने के अधिकार की रक्षा करता है और इस पर जोर देता है। बच्चे के कुछ मूल अधिकार निम्नलिखित हैं:

1. **उत्तरजीविता अधिकार:** इसमें बच्चे के भोजन, आवास और चिकित्सा उपचार के अधिकार सहित अन्य चीजें शामिल हैं।
2. **विकासात्मक अधिकार:** यह एक बच्चे के अपनी क्षमताओं और शक्तियों को विकसित करने और अधिकतम करने के अधिकार को संदर्भित करता है। उन्हें खेलने, आराम करने, शिक्षा हासिल करने और जानकारी हासिल करने का अधिकार है।
3. **भागीदारी के अधिकार:** इसमें स्वयं को व्यक्त करने और समाज के अन्य सदस्यों के साथ अपने समुदाय में जीवन के सभी हिस्सों में संलग्न होने की क्षमता शामिल है।
4. **संरक्षण अधिकार:** यह सुनिश्चित करता है कि बच्चा असामाजिक व्यवहार जैसे बाल शोषण, बाल श्रम और मानसिक और यौन उत्पीड़न से सुरक्षित है।

बच्चों के अधिकारों की रक्षा के लिए उपकरण

बच्चों के अधिकारों की रक्षा के लिए, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर कई सम्मेलन, संधियाँ, कानून और चार्टर स्थापित किए गए हैं। निम्नलिखित कुछ कानून है जो लागू हैं:

1. भारत का संविधान

भारतीय संविधान में बच्चों की भेद्यता और सुरक्षा के अधिकार को मान्यता दी गई है। सुरक्षात्मक भेदभाव की अवधारणा का पालन करते हुए, यह बच्चों के अधिकारों की रक्षा करने वाले महत्वपूर्ण और विशिष्ट कानूनों और नीतियों के माध्यम से अनुच्छेद 15 पर विशेष ध्यान देने का आश्वासन देता है। संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 15(3), 19(1)(a), 21, 21A, 23, 24, 39 (e), 39 (f), और 45 बच्चों सहित अपने सभी नागरिकों की सुरक्षा, संरक्षण और भलाई के लिए भारत की प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हैं।

2. बाल अधिकार संरक्षण आयोग (बाल अधिकार अधिनियम, 2005)

इस अधिनियम में प्रत्येक राज्य और केंद्र शासित प्रदेश को बाल अधिकार संरक्षण के लिए राष्ट्रीय और राज्य आयोग (एन.सी.पी.सी.आर. और एस.सी.पी.सी. आर.) स्थापित करने की आवश्यकता है। राष्ट्रीय और राज्य आयोगों के कार्य और शक्तियां निम्नलिखित हैं:

- किसी भी कानून द्वारा या उसके तहत प्रदान किए गए बच्चों के अधिकारों के लिए कानूनी सुरक्षा उपायों की जांच और आकलन करना और उनके प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सुझाव प्रदान करना।
- इन सुरक्षा उपायों की प्रभावशीलता पर रिपोर्ट तैयार करना और केंद्र सरकार के समक्ष प्रस्तुत करना।
- बच्चों के अधिकारों के उल्लंघन की जांच करना और यदि आवश्यक हो तो कानूनी कार्रवाई का सुझाव करना।
- संधियों और अन्य अंतरराष्ट्रीय उपकरणों के आलोक में बच्चों के अधिकारों को प्रभावित करने वाली नीतियों, कार्यक्रमों और अन्य कार्यों की नियमित रूप से समीक्षा करना।
- समाज के विभिन्न वर्गों के बीच बच्चों के अधिकारों के बारे में जागरूकता पैदा करना।
- बच्चों के खिलाफ अपराधों या उनके अधिकारों के उल्लंघन के मुकदमे की सुनवाई में तेजी लाने के लिए बाल न्यायालय बनाना।
- प्रत्येक बाल न्यायालय के लिए एक विशेष लोक अभियोजक नामित करने के लिए राज्य और स्थानीय सरकारों को प्रोत्साहित करना।

3. किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2015

किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम 2015, जो किशोर न्याय (बच्चों की देखभाल और संरक्षण) अधिनियम 2000 की जगह लेता है, कानून का एक व्यापक हिस्सा है। यह देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चों और कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चों, दोनों के लिए उनकी विकासात्मक जरूरतों को संबोधित करके और बच्चों के सर्वोत्तम हित में मामलों के न्याय और निपटान के लिए एक बाल-अनुकूल दृष्टिकोण अपनाने के साथ-साथ अधिनियम के तहत स्थापित विभिन्न संस्थानों के माध्यम से उनके पुनर्वास के प्रावधानों को बेहतर करता है। इस अधिनियम में विभिन्न प्रकार के नए बच्चों से संबंधित अपराध शामिल हैं जिन्हें मौजूदा कानून द्वारा प्रभावी ढंग से संबोधित नहीं किया गया है। अवैध रूप से गोद लेना, बाल देखभाल सुविधाओं में शारीरिक दंड, बाल आतंकवादी संगठन, विकलांग बच्चों के खिलाफ अपराध, और बाल व्यपहरण और अपहरण इसके कुछ उदाहरण हैं।

किशोर न्याय बोर्ड और बाल कल्याण समिति के पास अधिनियम के तहत विशिष्ट प्राधिकरण, कार्य और जिम्मेदारियां हैं। यह निर्धारित करने के लिए कि क्या उन पर वयस्कों के रूप में मुकदमा चलाया जाना चाहिए, प्रारंभिक समीक्षा करने के बाद, किशोर न्याय बोर्ड बच्चों द्वारा किए गए गंभीर अपराधों को बाल न्यायालय में स्थानांतरित कर सकता है।

4. यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण (पॉक्सो) अधिनियम, 2012)

2012 का पॉक्सो अधिनियम बच्चों के लिए यौन शोषण और दुर्व्यवहार के खिलाफ कानूनी सुरक्षा को बेहतर करता है। बच्चों के खिलाफ यौन हमलों को संबोधित करने वाला एक अलग विधेयक पहली बार अपनाया गया है। आई.पी.सी. के कई हिस्से वर्तमान में यौन अपराधों से संबंधित हैं। आई.पी.सी. बच्चों पर सभी प्रकार के यौन हमलों को कवर नहीं करती है और वयस्क और बाल पीड़ितों के बीच अंतर नहीं करती है।

यह अधिनियम बच्चों के यौन शोषण की पांच अलग-अलग श्रेणियों को परिभाषित करता है। यह अधिनियम पेनेट्रेटिव यौन हमले, बढ़े हुए पेनेट्रेटिव यौन हमले, यौन हमले, गंभीर यौन हमले, यौन उत्पीड़न और किशोर का अश्लील उद्देश्यों के लिए उपयोग करने को अपराध मानता है। अधिनियम के तहत, इन कार्यों को करने में सहायता करना या मदद करने का प्रयास करना भी निषिद्ध है।

5. बच्चों का मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आर.टी.ई. अधिनियम), 2009

संविधान (86वाँ संशोधन) अधिनियम, 2002 ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21A को पेश किया, जिससे छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को राज्य द्वारा निर्धारित तरीके से मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का मौलिक अधिकार मिला है। बच्चों के निः शुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम 2009 के अनुसार प्रत्येक बच्चे को एक औपचारिक स्कूल में संतोषजनक और समान गुणवत्ता की पूर्णकालिक प्रारंभिक शिक्षा का अधिकार है जो कुछ आवश्यक मानदंडों और मानकों को पूरा करता है, यह अधिनियम अनुच्छेद 21। के तहत परिकल्पित परिणामी कानून का प्रतिनिधित्व करता है।

6. बाल और किशोर श्रम (निषेध और विनियमन) संशोधन अधिनियम, 2016

जुलाई 2016 में, संसद ने बाल श्रम (निषेध और विनियमन) संशोधन अधिनियम पारित किया था। यह अधिनियम 1986 के बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम में संशोधन करता है, यह बाल श्रम पर कानून के निषेध की सीमा को बढ़ाता है और अपराधियों के लिए दंड को और ज्यादा कठोर बनाता है। इस अधिनियम के सभी प्रावधानों को शामिल करने के लिए बाल और किशोर श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986 को 2017 में संशोधित किया गया था। यह अधिनियम बच्चों को पारिवारिक व्यवसाय या दृश्य-श्रव्य मनोरंजन क्षेत्र में एक कलाकार के रूप में कार्य करने को छोड़कर किसी भी गतिविधि में काम करने से रोकता है, और यह किशोरों को खतरनाक नौकरियों और प्रक्रियाओं में काम करने से भी रोकता है। इसने नाबालिगों को काम पर रखने के जुर्माने को और ज्यादा अधिक किया है और बाल श्रम को एक आपराधिक कार्य बना दिया है।

7. बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (यू.एन.सी.आर.सी.)

बाल अधिकारों पर सम्मेलन (सी.आर.सी.) को 1989 में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अनुमोदित किया गया था, और भारत सहित अधिकांश विकसित और विकासशील देशों ने इसकी पुष्टि की थी। यह सम्मेलन बच्चों के सर्वोत्तम हितों की रक्षा के लिए सभी राज्यों के पक्षों के लिए आवश्यकताओं को स्थापित करता है और बच्चों के मौलिक अधिकारों को निर्दिष्ट करता है। अनुसमर्थन करने वाले देश सम्मेलन की शर्तों से कानूनी रूप से बाध्य होने के लिए सहमत हैं।

ये बाल अधिकारों पर एक विशेषज्ञ समिति को नियमित रूप से सम्मेलन की आवश्यकताओं का पालन करने के अपने प्रयासों की रिपोर्ट करते हैं। यू.एन.सी. आर.सी. के अनुसार, बाल अधिकार, मूल अधिकार और स्वतंत्रता हैं जो 18 वर्ष से कम उम्र के सभी व्यक्तियों को जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राय, मूल, धन, जन्म स्थिति, योग्यता, आदि की परवाह किए बिना प्रदान की जानी चाहिए और हर जगह सभी पर लागू होता है।

सम्मेलन के अनुच्छेद 16 में लिखा है, "किसी भी बच्चे को, उसकी निजता, परिवार या संचार के साथ मनमाने या गैरकानूनी हस्तक्षेप के अधीन नहीं किया जाना चाहिए, न ही उसके सम्मान और चरित्र पर गैरकानूनी हमला किया जाना चाहिए।" यह माना जाता है कि बच्चो के पास इस तरह के हस्तक्षेप या हमलों से बचने का कानूनी अधिकार है।

सम्मेलन के अनुच्छेद 40 के अनुसार, कानून के उल्लंघन के आरोपी, बच्चे की निजता को प्रक्रियाओं के सभी चरणों में संरक्षित किया जाना चाहिए। 2005 में, भारत सरकार ने सशस्त्र संघर्ष में किशोरों की भागीदारी और बच्चों की बिक्री, वेश्यावृत्ति और अश्लील साहित्य पर यू.एन.सी.आर.सी. के दो वैकल्पिक प्रोटोकॉल को स्वीकार किया था। भारत सरकार बच्चों को दुर्व्यवहार और शोषण के इन खतरनाक रूपों से बचाने के लिए अपनी राष्ट्रीय नीतियों और प्रक्रियाओं को मजबूत कर रही है।

8. राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एन.सी.पी.सी.आर.)

बाल अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम, 2005, दिसंबर 2005 में पारित किया गया था, यह एक संसदीय अधिनियम है जिसने मार्च 2007 में एक वैधानिक निकाय के रूप में राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एन.सी.पी.सी.आर.) की स्थापना की थी। एन.सी.पी.सी.आर. का मुख्य उद्देश्य, देश भर में बच्चों के अधिकारों की रक्षा करना, उनको बढ़ावा देना, और उनको बचाए रखना है। आयोग का उद्देश्य यह गारंटी देना है कि सभी कानून, नीतियां, कार्यक्रम और प्रशासनिक प्रक्रियाएं भारतीय संविधान और बाल अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के अनुरूप हैं। आयोग राष्ट्रीय नीतियों और कार्यक्रमों के साथ-साथ राज्य, जिला और ब्लॉक स्तरों पर स्मार्ट प्रतिक्रियाओं के लिए एक अधिकार-आधारित दृष्टिकोण की कल्पना करता है जो प्रत्येक क्षेत्र के विशिष्ट गुणों और क्षमताओं को ध्यान में रखता है।

एन.सी.पी.सी.आर. की भूमिका

एन.सी.पी.सी.आर. का मानना है कि बाल अधिकारों को संबोधित करने के लिए बाल भागीदारी की आवश्यकता है। नतीजतन, आयोग बच्चों को उनके अधिकारों और विशेषाधिकारों का आनंद लेने के लिए संलग्न करने के लिए प्रोत्साहित करता है। आयोग द्वारा उठाए गए हर कदम बच्चों को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। उदाहरण के लिए, अपनी राजकीय यात्राओं के दौरान, आयोग जन सुनवाई में बच्चों की बात सुनने की आवश्यकता पर बल देता है। जब बच्चे बेचैन या परेशान होते हैं और अधिक निजता की मांग करते हैं, तो आयोग ने एक जगह रखी है जहां वे स्वतंत्र रूप से और आराम से बोल सकते हैं। ऐसे बच्चों से संपर्क करने पर, एक प्रतिक्रिया दी जाती है, और जांच के बाद बच्चे के सर्वोत्तम हित में समस्या का समाधान किया जाता है, जबकि संस्थानों से सख्ती से निपटा जाता है।

आयोग के पास शिकायतों की जांच करने और कुछ मामलों में जैसे बच्चों के अधिकारों के उल्लंघन और उनकी सुरक्षा और विकास के लिए कानून को लागू न करने वाले मामलों में स्वयं कार्रवाई करने का अधिकार है। आयोग बच्चों के अधिकारों की रक्षा के लिए विधायी उपायों की जांच और मूल्यांकन करता है, साथ ही उनके सफल कार्यान्वयन के लिए सुझाव भी देता है। यदि आवश्यक हो, तो यह संशोधनों का सुझाव देगा, शिकायतों की जांच करेगा, या बच्चों के लिए संवैधानिक और कानूनी अधिकारों के हनन (एब्यूज) से जुड़े मामलों का स्वतः संज्ञान लेगा।

आयोग का उद्देश्य, बाल अधिकारों को उचित रूप से लागू करना और बच्चों को प्रभावित करने वाले कानूनों और कार्यक्रमों के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करना है।

एन.सी.पी.सी.आर. के कार्य

एन.सी.पी.सी.आर. के कार्य अधिनियम की धारा 13 के तहत निम्नानुसार प्रदान किए गए हैं:

1. बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए किसी मौजूदा कानून द्वारा या उसके तहत प्रदान किए गए सुरक्षा उपायों की जांच और मूल्यांकन करना और प्रभावी कार्यान्वयन के लिए सुझाव देना।
2. उन सुरक्षा उपायों के संचालन पर केंद्र सरकार को वार्षिक आधार पर और ऐसे अन्य अंतराल पर रिपोर्ट करना जो आयोग उचित समझे।

3. बच्चों के अधिकारों के उल्लंघन की जांच करना और आग्रह करना कि ऐसी परिस्थितियों में कानूनी कार्रवाई की जाए।

4. आतंकवाद, सांप्रदायिक (कम्यूनल) हिंसा, दंगों, प्राकृतिक आपदाओं, घरेलू हिंसा, एच.आई.वी./एड्स, तस्करी, दुर्व्यवहार, यातना और शोषण, अश्लील साहित्य और वेश्यावृत्ति के परिणामस्वरूप बच्चों को अपने अधिकारों का प्रयोग करने से रोकने वाले सभी कारकों की जांच करना और उचित उपाय के लिए सुझाव देना।

5. संकटग्रस्त बच्चों, हाशिए और गरीब बच्चों, कानून का उल्लंघन करने वाले बच्चों, किशोरों, रिश्तेदारों के बिना बच्चों और कैदियों के बच्चों, जिन्हें विशेष देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता होती है, के लिए उचित उपचारात्मक कार्रवाई की जांच करना और सुझाव देना।

6. बच्चों के अधिकारों के साथ-साथ संधियों और अन्य अंतरराष्ट्रीय उपकरणों से संबंधित मौजूदा नीतियों, कार्यक्रमों और अन्य गतिविधियों की जांच करना और बच्चों के सर्वोत्तम हित में उनके सफल कार्यान्वयन के लिए सुझाव देना।

7. बच्चों के अधिकारों पर शोध करना और दूसरों को भी ऐसा करने के लिए प्रोत्साहित करना।

8. समाज के विभिन्न क्षेत्रों में बाल अधिकार साक्षरता को बढ़ावा देना और प्रकाशनों, मीडिया, संगोष्ठियों और अन्य सुलभ तकनीकों के माध्यम से इन अधिकारों की रक्षा के लिए उपलब्ध सुरक्षा उपायों की समझ को बढ़ाना।

9. शिकायतों की जांच करना और कुछ मुद्दों पर ध्यान देना जैसे
   - बच्चों को अधिकारों से वंचित करना और उनका उल्लंघन।
   - बच्चों की सुरक्षा और विकास के उद्देश्य से कानूनों को बनाए रखने में विफलता।
   - बच्चों के कल्याण के लिए कठिनाइयों को कम करने और उनकी सुरक्षा के साथ-साथ ऐसे बच्चों को राहत देने या उपयुक्त अधिकारियों को चिंताओं की रिपोर्ट करने के उद्देश्य से नीति विकल्पों, नियमों या निर्देशों का पालन करने में विफलता। बच्चों के अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक समझे जाने वाले किसी भी अतिरिक्त कार्य के साथ-साथ उपरोक्त कार्य से संबंधित कोई अन्य मामले।

❑ ❑ ❑

यूएन-यूडीएचआर के अमृत पर्व पर मनुष्यता को मानवाधिकारों का प्रदेय

–प्रो. कन्हैया त्रिपाठी

यूएन-मानव अधिकारों के सार्वभौम घोषणा-पत्र की मूल संवेदना

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्थापित किए गए संयुक्त राष्ट्र के समक्ष अनेक चुनौतियाँ थीं. खासकर विश्वव्यापी मनुष्यता और मानव अधिकारों की रक्षा. इसके लिए सुश्री एलीनर रूजवेल्ट की अध्यक्षता में संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकारों के सार्वभौम घोषणा-पत्र बनाने हेतु एक कमिटी बनायीं गई ताकि एक ऐसा दस्तावेज तैयार किया जा सके जिससे दुनिया भर में व्याप्त तनाव को कम करके सबके हितों को सर्वोपरि रखते हुए मानव अधिकारों को एड्रेस किया जाये और सबकी गरिमा, स्वतंत्रता और जीवनोत्कर्ष प्रदान हो सके।

मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा जिसे संक्षेप में यूडीएचआर के नाम से जाना जाता है 10 दिसंबर, 1948 को अंगीकार किया गया. यह इस घोषणा पत्र का अमृत-पर्व है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को व्यापक रूप से शामिल किया गया है। ये सभी अधिकार इस घोषणा की प्रस्तावना और 30 अनुच्छेदों में निहित हैं। जिसमें समानता का अधिकार, भेदभाव से सुरक्षा का अधिकार, जीवन, स्वतंत्रता, व्यक्तिगत सुरक्षा, गुलामी से मुक्ति और प्रताड़ना से स्वतंत्रता, नागरिकता तथा अन्य अधिकार शामिल हैं।

इसके प्रथम तीन अनुच्छेद को आत्मसात करके कोई भी राष्ट्र अपने नागरिकों से भेदभाव नहीं करेगा और न ही किसी भी प्रकार से अतिक्रमण करेगा बस शर्त इतनी है कि वह निरपेक्ष होकर बिना किसी पूर्वाग्रह के न्यायपूर्ण व्यवस्था का संचालक हो।

यदि इस घोषणा-पत्र के इन अनुच्छेदों को देखें तो यह पता चलता है कि इसमें न केवल नागरिकों के अधिकारों को बताते हुए सभी मनुष्यों के अधिकारों की प्रतिष्ठा है बल्कि उनके कर्त्तव्यों को भी रेखांकित किया गया है। अनुच्छेद 28, 29 व 30 ऐसे अनुच्छेद हैं जो व्यक्ति-मनुष्य के अंतरराष्ट्रीय महत्व को प्रतिबिंबित करते हैं साथ ही राज्यों के कर्त्तव्यों को व्यापक पैमाने पर स्पष्ट करते हैं और आग्रह भी एक प्रकार से करते हैं कि राज्य अपने उत्तरदायित्वों को समझें और उन्हें अपने नागरिकों के हित में अपनाएं. यह संपूर्ण मानव जाति के लिए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। जिसका पाठ का 500 से अधिक भाषाओं में आज उपलब्ध है। मानवाधिकारों के संदर्भ में इतिहास में सबसे अधिक अनुवादित दस्तावेज यह सावभौम घोषणा-पत्र है। भारत के लिए यह सबसे ज्यादा गर्व की बात है कि इस दस्तावेज के निर्माण में उसका भी अवदान रहा है।[1]

यूडीएचआर की सशक्त हस्ताक्षर हंसा मेहता

विदुषी हंसा मेहता ने मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा-पत्र के अनुच्छेद-1 में मूल रूप से लिखे गए वाक्य – "सभी पुरुष स्वतंत्र व समान पैदा होते हैं" में बदलाव प्रस्तावित करके – "सभी मनुष्य स्वतंत्र व समान पैदा होते हैं" करवाया था। दुनिया के लैंगिक आधार को नए विमर्श के रूप में शामिल करना हंसा मेहता से कोई भी सीख सकता है और यह भी सीख सकता है कि किसी भी शब्द की भी सार्वभौमीकरण की प्रक्रिया क्या होती है। महिला आर्थिक सशक्तिकरण और समावेशी वैश्विक आर्थिक विकास: कोविड-19 और उससे आगे विषय पर अर्थशास्त्री गीता गोपीनाथ ने डॉ. हंसा मेहता व्याख्यानमाला में हंसा मेहता के बारे में कहा था कि लगभग 100 साल पहले यह भारत के एक छोटे से शहर की एक महिला का सपना था जिसका हम आज सम्मान कर रहे हैं। मुझे उम्मीद है कि इस पीढ़ी के नेता और नीति निर्माता अधिक लैंगिक समानता के लिए तत्काल और दृढ़ कार्रवाई के माध्यम से डॉ. हंसा मेहता की विरासत का सम्मान करके मिलने वाले हर अवसर का लाभ उठाएंगे,[2] यह हंसा मेहता का कद था जिन्होंने अपने समय को प्रभावित किया और अब भी अपनी पीढ़ी की संभावनाओं के साथ खड़ी मिलती हैं, हमें मार्ग प्रशस्त कर रही हैं। संयुक्त राष्ट्र में भारत के निवर्तमान स्थायी प्रतिनिधि उन्हीं के बारे में राजदूत टी एस तिरुमूर्ति ने कहा था वह इस बात का एक शानदार उदाहरण हैं कि जब महिलाएं अपने दृष्टिकोण के प्रति प्रतिबद्ध हों तो नेतृत्व में वे क्या अंतर हासिल कर सकती हैं।

राज्यों की दृष्टि में यूएन-यूडीएचआर

सन 1948 में, मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (यूडीएचआर) ने उस शासन–व्यवस्था को मान्यता दी जो मानवाधिकारों को बढ़ावा देने और उनकी रक्षा करने की ओर उन्मुख हो। इसे ही स्वतंत्रता की नींव है माना गया। यह दुनिया में न्याय और शांति, सार्वभौमिक और अविभाज्य मौलिक मूल्यों पर आधारित है जो प्रत्येक संस्कृति, धर्म और महाद्वीप तक फैला हुआ है। संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार उच्चायुक्त ने इसे मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा एक चमत्कारी पाठ बताया और कहा कि ऐसे समय में जब दुनिया प्रलयकारी घटनाओं से उभरी, घोषणा–पत्र ने सार्वभौमिक अधिकारों को निर्धारित किया और प्रत्येक व्यक्ति के समान मूल्य को मान्यता दी।.. घोषणा–पत्र, जिसे दुनिया भर के प्रतिनिधियों द्वारा तैयार किया गया था– हमारी साझा मानवता की एक आम भाषा का प्रतीक है, एक एकीकृत शक्ति जिसके दिल में मानवीय गरिमा और देखभाल का कर्तव्य निहित है जो हम एक दूसरे के लिए मनुष्य के रूप में देना चाहते हैं... यह अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय और स्थानीय कानूनों और नीतियों का वैश्विक खाका है। यह घोषणा सतत विकास के लिए 2030 एजेंडा की नींव भी है, जो एक ऐसी अर्थव्यवस्था को बढ़ावा देती है जो मानवाधिकारों में निवेश करती है और सभी के लिए काम करती है.[4] वस्तुत: इस महान दस्तावेज का उद्देश्य तो यही था कि समस्त मानवता का मनुष्यों द्वारा ही एक सिविलाइज्ड सिस्टम विकसित हो जो अपने अधिकारों के प्रति सजग हो, दूसरों के अधिकारों का ख्याल रखे।

यूडीएचआर के अमृत पर्व की थीम है–सभी के लिए गरिमा, स्वतंत्रता और न्याय. समस्त देश इसके तहत दुनिया भर में एकजुट हो रहे हैं। अभीष्ट धरती पर मनुष्य मनुष्यों के लिए जिएं और जिससे जीवन है यानी प्रकृति, पर्यावरण और टिकाऊ विकास उसका संरक्षण और परिमार्जन करें. एंटून डी बेट्स ने 2009 में एक आलेख लिखा था 'इतिहास के अध्ययन पर मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा का प्रभाव', इसमें उन्होंने बहुत ही सुंदर ढंग से इसके असर को रेखांकित किया। एंटून डी बेट्स ने लिखा है कि अब मैं इतिहासकारों के अध्ययन के विषयों पर यूडीएचआर के प्रभाव पर बात करूंगा, जो पहले ही स्पष्ट हो चुका है, यूडीएचआर में ईमेंट दर्शन के कई सूक्ष्म संदर्भ शामिल हैं।" इसकी प्रस्तावना की पहली पंक्ति से, यह सह–मानव गरिमा को केंद्रीय अवधारणा के रूप में प्रस्तुत करता है।[5] इसके बाद एंटून डी बेट्स के अध्ययन में कांट के उस स्थापना की आलोचना की गयी है जिसके तहत कांट जीवित व्यक्तियों की गरिमा की बात करते हैं और मृत हुए मनुष्य के अधिकारों के

बारे में उन्होंने कुछ नहीं कहा। कांट मानता है कि तर्कसंगत मनुष्यों के पास एक स्वायत्त इच्छाशक्ति होती है या, दूसरे शब्दों में कहें तो, वह कार्य करने के लिए स्वतंत्र होती है, जिसका अर्थ है कि वे या तो नैतिक रूप से कार्य करते हैं या नहीं। इसके अनुसार जब वे पहला विकल्प चुनते हैं, तो वे स्पष्ट अनिवार्यता का पालन करते हैं...ऐसा करने में, वे उन्हें मानवीय गरिमा प्रदान करते हैं। मैं स्वतंत्र, नैतिक रूप से सूचित मनुष्य गरिमा का स्रोत हूं। क्योंकि गरिमा उन मनुष्यों की विशेषता थी जो तर्कसंगत, स्वायत्त और नैतिक रूप से कार्य करने के लिए स्वतंत्र थे, जिसका अर्थ है कि उन्होंने मृतकों को बाहर रखा। इतिहासकारों के लिए यह एक गंभीर समस्या है: इसका अर्थ है मानव की अवधारणा यूडीएचआर में प्रयुक्त गरिमा मृतकों पर लागू नहीं होती है– जो इतिहासकारों के अध्ययन के विषयों की अब तक की सबसे बड़ी श्रेणी है। ऐसा इसलिए है क्योंकि मृत इंसान नहीं बल्कि अतीत के इंसान हैं।[6]

मृत व्यक्तियों के मानव अधिकार मरणोपरांत गरिमाहीनता का तर्क यह केवल इतिहासकारों के लिए नहीं है अपितु सामाजिक व सांस्कृतिक स्तर पर भी इसे रखकर देखें तो यह संवेदना पर सवाल खड़ा करता है। जब वोल्कर तुर्क अपने 75वें यूडीएच आर की बात करते हुए कई तरह की चुनौतियों का जिक्र करते हैं तो उसके पीछे यही संवेदना के स्तर पर गिराव राज्यों की और से दिखाई देता है। संभवत: यही कारण है कि राज्य नागरिकों को कभी कभी मृतक समान या अस्तित्वहीन समझने लगते हैं और वे शायद इसी कारण इस संवेदना के चलते मनुष्य के वैयक्तिक या समुदाय के गरिमा को भी नजरंदाज करते हैं। लेकिन देखा जाये तो यह विचलित करने वाली बात है। लेकिन इन सबके बीच राज्यों के बीच में ही अनेक समझौते विगत 75 वर्ष में हुए जो हमें राहत देते हैं।

संयुक्त राष्ट्र के दस्तावेज बताते हैं कि यूडीएचआर ने 80 से अधिक अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों और घोषणाओं, बड़ी संख्या में क्षेत्रीय मानवाधिकार सम्मेलनों, घरेलू मानवाधिकार बिलों और संवैधानिक प्रावधानों को प्रेरित किया है, जो मिलकर मानवाधिकारों के प्रचार और संरक्षण के लिए एक व्यापक कानूनी रूप से बाध्यकारी प्रणाली का गठन करते हैं।[7] इसके पीछे यह भी बताया जाता है कि हमारी कॉमन जरूरतें और सोच हमें यह सब करायी हैं। डाक्यूमेंट्स बताते हैं कि मानव अधिकारों के मूल सिद्धांत सबसे पहले यूडीएचआर में निर्धारित किए गए हैं, जैसे कि सार्वभौमिकता, अन्योन्याश्रितता और अविभाज्यता, समानता और गैर–भेदभाव, और मानव अधिकार एक साथ कर्तव्यधारकों और अधिकार, मालिकों के अधिकारों और

दायित्वों दोनों को शामिल करते हैं, जिन्हें कई अंतरराष्ट्रीय में दोहराया गया है। मानवाधिकार सम्मेलन, घोषणाएँ और संकल्प। आज, सभी संयुक्त राष्ट्र सदस्य देशों ने नौ प्रमुख अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों में से कम से कम एक की पुष्टि की है, और 80 प्रतिशत ने चार या अधिक की पुष्टि की है, जो यूडीएचआर और अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकारों की सार्वभौमिकता को ठोस अभिव्यक्ति देती है।[8] यह यूडीएचआर की अपनी ताकत है कि उसने हर संभव ऐसे पहलुओं की ओर ध्यान दिलाया और किसी न किसी रूप में एकात्मकता का बोध कराते हुए संधियों या दूसरे दस्तावेजों पर संकल्पबद्ध होने के लिए प्रेरित किया. एंड्रयू गिल्मर, संयुक्त राष्ट्र में मानव के लिए निवर्तमान सहायक महासचिव से चंद्लेर ग्रीन के साथ एक साक्षात्कार हुआ था. उन्होंने अपने साक्षात्कार में तमाम चैलेंजेज को स्वीकार करते हुए चिंता इस बात की ज्यादा व्यक्त की थी कि शायद मुझे सबसे अधिक चिंता मानवाधिकार रक्षकों पर लगाम लगाने की है। राज्यों में नागरिक समाज के लिए जगह बंद होती जा रही है।[9] लेकिन इन सबके बावजूद वह बोली थीं कि हम सभी के लिए यूडीएचआर में निहित आदर्शों के प्रति फिर से प्रतिबद्ध होने का अवसर प्रस्तुत करती है।[10] उन्होंने इसीलिए अनेकों चुनौतियों के बीच अवसर की बात की थी जो दुनिया के हर राज्य को सकारात्मक रूप से अपनाने के लिए प्रेरित करती है। अब राज्य स्वयं इसे कैसे लेते हैं, यह तो उनकी संवेदना और प्रज्ञा पर निर्भर है।

यूडीएचआर के समक्ष चुनौतियाँ

वोल्कर तुर्क, संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार उच्चायुक्त का कहना है कि यह बिल्कुल स्पष्ट है कि हमें मानवाधिकारों की सार्वभौमिकता, मानवाधिकारों की अविभाज्यता को पुनः प्राप्त करने की आवश्यकता है, और हमें एक नई ऊर्जा खोजने की आवश्यकता है जो दुनिया भर के युवाओं को प्रेरित करे।[11] किन्तु राज्य अपनी संप्रभुता के लिए और अपने सशक्तीकरण के लिए युद्ध करने के लिए तैयार हैं। राज्यों के भीतर उदारवादी धड़े कम हो रहे हैं और उग्र राष्ट्रों की संख्या में अभिवृद्धि हुई है। इसलिए हमारे सतत विकास लक्ष्य-2030 के लक्ष्य प्राप्ति की प्रत्याशा घटी है। दरअसल, यह हमारे लिए शुभ संकेत नहीं है। यह हमारे प्रसन्नता सूचकांक के लिए ग्रहण है। यह हमारी सभ्यता को प्रश्नांकित करने वाली स्थिति है। ऐसे में वोल्कर तुर्क ने अपील की है कि हमें हमारे सार्वभौमिक मूल्यों और अभिभाज्य हितों को ध्यान देने की आवश्यकता है। हमें नई पीढ़ी से ही उम्मीद रखने की आवश्यकता है किन्तु इसके लिए हमें एक ऐसा वातावरण बनाने की सशक्त जरूरत भी तो है

जो नई पीढ़ी के मानसिक स्तर को सार्वभौमिक मूल्यों के साथ जोड़ सके, उन्हें संवेदनशील बना सके।

यूडीएचआर के अमृत-पर्व के बाद की दुनिया को घोषणा-पत्र से उम्मीदें

कहते हैं उम्मीद पर दुनिया कायम है। निश्चित ही संपूर्ण मानव समुदाय को उम्मीद कभी नहीं चाहिए। सकारात्मक होना चाहिए। लक्ष्य निर्धारित करने चाहिए और उसे हासिल करने की पुरजोर कोशिश भी करनी चाहिए। हमारे सार्वभौमिक मूल्यों की एकात्मकता बहुत ही ज्यादा है, इसे मनुष्यता और मानव मूल्यों में विश्वास करने वाले कदाचित छोड़कर जी सकते हैं। हमारे सरोकार सांझे हैं। हमारी अविभाज्य जरूरतें हमें एक करती हैं। समान न्यायपूर्ण जलवायु, न्यायपूर्ण जिंदगी और न्यायपूर्ण व्यवस्था ही हमारे सतत विकास के पैमाने हो सकते हैं। यूडीएचआर की संवेदनशील संस्तुतियां न केवल मानव अधिकारों की रक्षा करने में सक्षम हैं अपितु हमारे भविष्य में आने वाले खतरे और चुनौतियों से लड़ने के लिए पूर्णतया अवसर भी प्रदान करते हैं।

सबसे अहम् बात यह है कि संयुक्त राष्ट्र यूडीएचआर के ज्यादा सघन सार्वभौमीकरण के लिए प्रतिबद्ध है और और इसलिए वह सतत विकास लक्ष्य-2030 के उद्देश्यों के साथ इसे जोड़कर आगे बढ़ने को तैयार है। संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक परिषद, जो सतत विकास के लिए काम करती है, "दि वे फॉरवर्ड: ट्रांस्फार्मेटिव पॉलिसीज एंड एक्शन" विषय पर चर्चा करने के लिए फरवरी 2023 में एकत्रित हुई उसमें यह कहा गया कि जब हम यूडीएचआर की 75वीं वर्षगांठ मना रहे हैं, यह ध्यान देना उचित है कि सतत विकास के लिए 2030 एजेंडा समानता और गैर-भेदभाव के सिद्धांतों को अपने मूल में रखता है और किसी को भी पीछे नहीं छोड़ने के लिए प्रतिबद्ध है। ओएचसीएचआर 2030 एजेंडा, एसडीजी और मानव अधिकारों के बीच अंतरसंबंधों पर काम को मजबूत कर रहा है, जिसमें अर्थशास्त्र और मानवाधिकार भी शामिल हैं। क्या आप इस कार्य के प्रभाव और 2030 एजेंडा के कार्यान्वयन में तेजी लाने की इसकी क्षमता के बारे में बात कर सकते हैं?[12] संयुक्त राष्ट्र के महासचिव एंतोनियो गुटेरेस ने एक बार कहा था वैश्विक प्रतिबद्धता पुनः जागृत करें।[13]

फिलहाल, यूडीएचआर के 75वीं वर्षगांठ पर हम सभी को उसके अमृत पर्व को जश्न के साथ सेलीब्रेट करना सौभाग्य की बात है लेकिन अपने अधिकार और कर्त्तव्य का भान भी हमें उसी मात्रा में होगा तो निश्चय ही हम एक सुनहरे आनंददायी

भविष्य का निर्माण कर सकेंगे जिससे आने वाली पीढ़ियाँ हम पर गर्व कर सकेंगी।

संदर्भः

1. हंसा मेहता ने, 1946 में, अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (AIWC) में, भारतीय महिलाओं के अधिकार चार्टर की अगुवाई की. इसमें लैंगिक समानता के साथ, भारत में महिलाओं के सिविल अधिकारों व उनके लिये न्याय की मांग की गई थी। इस महिला अधिकार चार्टर के अनेक प्रावधान, भारतीय संविधान में, अनेक लैंगिक निष्पक्ष प्रावधानों का आधार बने। डॉक्टर हंसा मेहता भारतीय संविधान का प्रारूप तैयार करने वाली कमेटी की भी सदस्या होने के साथ-साथ, मूल अधिकारों पर सलाहकारी कमेटी की भी सदस्या थीं। (https://news.un.org/hi/gallery/88782)
2. उद्घाटन डॉ. हंसा मेहता व्याख्यान में मुख्य अर्थशास्त्री गीता गोपीनाथ का मुख्य भाषण, 8 मार्च, 2021 (https://www.imf.org/en/News/Articles/2021/03/08/sp030821-gita-gopinath-inaugural-dr-hansa-mehta-lecture)
3. द्रष्टव्य:. राजदूत टीएस तिरुमूर्ति का स्वागत भाषण, हंसा मेहता मेमोरियल डायलॉग का दूसरा संस्करण, मार्च 15, 2022
4. https://www.ohchr.org/en/get-involved/stories/udhr-75-dignity-freedom-and-justice-all
5. एंटून डी बेट्स, इतिहास के अध्ययन पर "मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा" का प्रभा, इतिहास और सिद्धांत, फरवरी, 2009, खंड. 48, नं 1/ फरवरी, 2009/वेस्लीयन विश्वविद्यालय के लिए विली, पृष्ठ 33-34
6. वही
7. https://www.un.org/en/about-us/udhr/foundation-of-international-human-rights-law
8. Ibid
9. 70वें वर्ष पर प्रभाव: मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा पर एक अंतर्दृष्टि विषय पर एंड्रयू गिल्मर, संयुक्त राष्ट्र में मानव के लिए सहायक महासचिव से चौंडलर ग्रीन की बातचीत 5 दिसंबर, 2018

(https://unfoundation.org/blog/post/70-years-of-impact-insights-on-the-universal-declaration-of-human-rights/)

10. वही

11. https://www.ohchr.org/en/get-involved/campaign/udhr-75/outreach-campaign

12. https://rwi.lu.se/blog/what-ohchr-is-doing-to-connect-the-2030-agenda-sdgs-and-human-rights/

13. https://news.un.org/en/story/2022/12/1131597

❑ ❑ ❑

मानवाधिकारों के परिप्रेक्ष्य में किशोर न्याय अधिनियमः एक संक्षिप्त विवेचना

–सुमिता मुद्गल

प्रस्तावना

भारतीय समाज में नारी और बालक सबसे कोमल परन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। बालक देश के भावी कर्णधार होते है जिन पर समूचे राष्ट्र का भविष्य निर्भर करता है। बालकों को मानवाधिकार प्राप्त होने के बावजूद उनकी अपरिपक्वता के कारण उनके अधिकारों का हनन होता रहा है जिसके फलस्वरूप बालश्रम, बाल वेश्यावृति, बाल भिक्षावृत्ति, बाल अपहरण, बाल विवाह, बालश्रम, बाल अपराध जैसे नकारात्मक परिणाम दृष्टिगत हुए हैं। मानव चेतना के सम्पूर्ण विकास के लिए मानवाधिकारों का होना अत्यावश्यक हैं। बालकों के अधिकारों के प्रति जागरूकता सन् 1925 में "जेनेवा घोषणा" में परिलक्षित हुई। इसमें बच्चों के शारीरिक व मनोवैज्ञानिक भावना पर बल दिया गया। सन् 1948 को मानवाधिकारों के घोषणा पत्र के अनुच्छेद 25 में माँ और बच्चो के विशेष संरक्षण और सहायता की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया। 20 नवम्बर सन् 1959 को महासभा में "बाल अधिकारों" की घोषणा की गई जिन्हें 20 नवम्बर 1989 को पारित किया जिसका समर्थन भारत सहित 191 देशों में किया और बालकों को सभी मानवाधिकार प्रदान किये गये।

मानवाधिकारः एक परिचय

मानवाधिकार मनुष्य के वे मूलभूत सार्वभौमिक अधिकार हैं, जिनसे मनुष्य को किसी भी आधार पर वंचित नहीं किया जा सकता है। मानव अधिकार मानव

के विशेष अस्तित्व से सम्बन्धित होने के कारण उसे जन्मतः ही प्राप्त हो जाते हैं और इसकी प्राप्ति में जाति, लिंग, धर्म, भाषा, रंग और राष्ट्रीयता बाधक नहीं होती। मानवाधिकारों को मूलाधिकार, आधारभूत अधिकार, अंतर्निहित अधिकार तथा नैसर्गिक अधिकार भी कहा जाता है। मानवाधिकार में अधिकार का तात्पर्य 'स्वतंत्रता' से है। हैरोल्ड लास्की ने अधिकार को परिभाषित करते हुये लिखा है–"अधिकार मानव जीवन की ऐसी परिस्थितियां है जिनके बिना सामान्यतया कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर सकता।"

मानवाधिकारों के सार्वभौमिक घोषणा पत्र में 30 अनुच्छेद हैं और इन अनुच्छेदों को "मानवता का मैग्नाकार्टा" कहा जाता है। मानवाधिकारों की वैश्विक घोषणा के अनुच्छेद 1 व 2 में कहा गया है कि सभी मनुष्य समान अधिकार और सम्मान लेकर पैदा होते हैं, अतः सभी व्यक्ति जाति, रंग, भाषा, लिंग, धर्म, सम्पत्ति व राजनीति के सभी अधिकारों व स्वतंत्रता के हकदार हैं।

'मानवाधिकार' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग अमरीकी राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने 16 जनवरी, 1941 के दिन अमेरिकन कांग्रेस को सम्बोधित करते हुए कहा था कि मनुष्य की चार मूलभूत स्वतंत्रता होती है वाक्, स्वातन्त्रय, धर्म गरीबी से मुक्ति और भय से स्वातंत्र्य।

संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 20 नवम्बर, 1989 को पारित बाल अधिकारों की घोषणा में प्रस्तावना के अतिरिक्त 54 अनुच्छेद है जो बाल अधिकारों की सुरक्षा की महत्वपूर्ण व्यवस्था करते हैं।

संवैधानिक व अन्य वैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान में मानवाधिकारों को मुख्यतः मौलिक अधिकार एवं राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों वाले भाग में स्थान दिया गया है लेकिन सभी मौलिक अधिकार मानवाधिकार नहीं कहे जा सकते हैं जबकि सभी मानवाधिकारों को मौलिक अधिकारों की श्रेणी में रखा जा सकता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना स्पष्ट रूप से मानवाधिकारों के साथ ही बालकों के मानवाधिकारों के प्रति राज्य की प्रतिबद्धता की उद्घोषणा करती है। इसमें मानव को प्रत्येक प्रकार का न्याय, स्वतंत्रता व समानता का हक दिया है।

बाल अधिकारों की रक्षा हेतु भारतीय संविधान के मूल अधिकारों और नीति निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद 14, 15(3), 21 (क), (6 से 14 वर्ष के बच्चों हेतु

निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा), अनु. 23, अनु. 24, 29 (2), अनु. 32, 39(ड.), 39(च), 41,45,47, तथा अनु. 51 (क) (ट) आदि का अध्ययन है।

भारतीय दण्ड संहिता की धारा 315 (भ्रूण हत्या), 305 (बच्चों को आत्महत्या के लिए प्रेरित करना), 313 (नवजात मृत के शव का गुप्त रूप से दफन), 312 (बिना सहमति के गर्भपात), 354 (A) 360 (देश के बाहर अपहरण करके ले जाना), 363-A (भिक्षावृत्ति के लिए अपहरण), 366-(A) (अवयस्क लड़की का अपहरण), 368, 369, 372,(वेश्यावृत्ति के लिए लडकियाँ बेचना) आदि बाल अधिकारों की रक्षा के महत्वपूर्ण प्रावधान है। हिन्दू आवश्यकता एवं संरक्षकता अधि., (1956) बाल नियोजन अधि. (1938) और बाल विवाह अधि., 1928 (संशोधित 1978 जनवरी, 2017) भी बाल मानवाधिकारों की रक्षा हेतु उठाए गए विशेष कदम है।

उक्त प्रावधानों के अतिरिक्त सरकार द्वारा बनाए कुछ अन्य अधिनियम इस प्रकार है- बाल श्रम गिरवीकरण अधिनियम 1933, कारखाना अधिनियम 1948, प्लान्टेशन लेबर एक्ट (1951) खान अधिनियम 1952, मर्चेंट एक्ट 1958, एप्रेन्टिस एक्ट 1961, बालश्रम (निषेध एवं नियमितीकरण) अधि. 1986, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम 1958, शिषु दुग्ध अनुकल्प संशोधन अधिनियम 2003 राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम 2005, तथा किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण), अधिनियम 2015 आदि। उक्त सभी अधिनियम सरकार द्वारा बालअधिकार संरक्षण की दिशा में उठाये गये महत्वपूर्ण कदम हैं, जो संविधान के उपबंधों व उसकी भावना के अनुरूप भी हैं।

किशोर न्याय प्रशासन के लिए मानक न्यूनतम नियम, 1985

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 29 नवम्बर, 1985 को बच्चों के कल्याण और इनकी रक्षा करने के सम्बन्ध में मानक न्यूनतम नियम के रूप में इनको स्वीकार किया इनको बीजिंग नियम के नाम से भी ख्याति प्राप्त हुई है। इनको 6 भागों में रखा गया है। किशोर शब्द का तात्पर्य यहां शिशु, बच्चे से लिया गया है। इसमें सामान्य नियम, अन्वेषण अभियोजन, न्याय, समस्याओं, अपराधों का हल, गैर-संस्थागत व्यवहार, प्रशिक्षण योजना, नीति निर्धारण, मूल्यांकन आदि मुख्य बिन्दु शामिल हैं। किशोर न्याय प्रशासन के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा 1985 में मानक न्यूनतम नियमों को अपनाये जाने पर पहली बार अन्तरराष्ट्रीय कानूनों में किशोर शब्द का प्रयोग किया गया और सूत्र 'किशोर कानून' को गढ़ा गया।

किशोर न्याय अधिनियमः संक्षिप्त विवरणः-

समाज द्वारा स्थापित नियमों व उपनियमों को दरकिनार कर जब कोई कृत्य किया जाता है तो वह अपकृत्य या अपराध की परिभाषा में आता है। इस प्रकार जब समाज द्वारा बालकों के प्रति उत्पीड़न व शोषण प्रवृत्ति अपनायी जाती है तो वह भी बाल अपराधी व उपेक्षित बालक के रूप में समाज के समक्ष प्रतिबिम्बित होता है।

NCRB के अनुसार 2021 में किशोरों के विरुद्ध कुल 31170 मामले दर्ज किए गए, जो 2020 की तुलना में 4% की वृद्धि को दर्शाता है जब मामलों की संख्या 29768 थी। उनमें से अधिकांश 76.2% 16 से 18 आयु वर्ग में थे।

ऐसे बालकों के मानवाधिकारों की रक्षा हेतु सरकार द्वारा 1960 में बाल अधिनियम बनाया गया जिसमें विभिन्न प्रकार के संशोधन कर किशोर न्याय अधि. 1986 तत्पश्चात किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधि., 2000, किशोर न्याय (बालकों की देख-रेख और संरक्षण), संशोधन अधि., 2006, और वर्तमान में किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण अधि., 2015 (2016 का संस्थापक 2) बनाया गया है।

उक्त अधि., 2015 का उद्देश्य बालकों के सर्वोत्तम हित को ध्यान में रखकर, बालकों से सम्बन्धित विवादों का बालमित्र दृष्टिकोण अपनाते हुये न्याय निर्णयन करना है। इसमें बालकों की उचित देखभाल, संरक्षण, विकास, उपचार व सामाजिक पुनः समेकन के द्वारा उनकी मूलभूत जरूरतों को पूरा करने पर विशेष ध्यान दिया गया है।

वर्तमान किशोर न्याय अधिनियम को 7 मई, 2015 को लोकसभा द्वारा तत्पश्चात 22 दिसम्बर, 2015 द्वारा राज्यसभा द्वारा पास करने पर 31 दिसम्बर, 2015 को राष्ट्रपति महोदय की मंजूरी प्राप्त होने पर यह 15 जनवरी, 2016 से जम्मू एवं कश्मीर के अलावा पूरे भारत में लागू है।

वर्तमान अधि., 2015 के तहत किशोरों को 2 श्रेणियों में विभक्त किया गया है। पहली श्रेणी में कानून का उल्लंघन करने वाले किशोरों को तथा दूसरी श्रेणी में 'देखरेख व संरक्षण की आवश्यकता वाले किशोरों को रखा गया है। कानून का उल्लंघन करने वाले किशोरों के लिए "किशोर न्याय बोर्ड" व देखरेख व संरक्षण की आवश्यकता वाले बालकों के लिए "बाल कल्याण समिति" की स्थापना की गई है।

उपरोक्त कानून के तहत् सभी बच्चों की देखरेख और संरक्षण हेतु आधारभूत सिद्धांत निर्धारित किए गए हैं, जिनमें मुख्य रूप से बच्चे के अपराध की

निर्दोषिता, गरिमा और योग्यता, सहभागिता, सर्वोत्तम हित, परिवार की जिम्मेदारी, सुरक्षा, सकारात्मक उपाय, समानता और भेदभाव न करना,गोपनीयता का अधिकार व प्राकृतिक न्याय का अधिकार आदि महत्वपूर्ण सिद्धांतों का वर्णन है। (धारा –3)

मुख्य प्रावधान

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधि. 2015 के मुख्य प्रावधान निम्नानुसार हैं –

(A) विधि से संघर्षरत बच्चे

1. विधि से संघर्षरत अथवा विधि का उल्लंघन करने वाले बच्चों के संदर्भ में इस कानून में सुधारात्मक प्रक्रिया के साथ-साथ विशेष परिस्थितियों में दण्डात्मक व्यवस्था के प्रावधान किए हैं।
2. 18 वर्ष से कम आयु के बालक-बालिकाएं जिन्होनें किसी कानून का उल्लंघन किया है, विधि से संघर्षरत बच्चा माना गया है धारा –2 (13),
3. कानून में बच्चों द्वारा किये गये अपराधों को यथा छोटे अपराध (3 वर्ष तक की सजा वाले अपराध) गंभीर अपराध (3 वर्ष से 7 वर्ष तक की सजा वाले अपराध) एवं जघन्य अपराध (7 वर्ष से अधिक की सजा वाले अपराध)के रूप में परिभाषित किया है।

   धारा –2 (45),(54),(33),
4. किन्हीं परिस्थितियों में 16 से 18 वर्ष की आयु के जघन्य अपराध करने वाले विधि से संघर्षरत बच्चों के मामलों में जांच और विचारण का कार्य बाल अधिकार संरक्षण अधि., 2005 के तहत प्रत्येक जिले में स्थापित बाल न्यायालय (जिला एवं सत्र न्यायालय) द्वारा किया जायेगा।(धारा –19),
5. किन्ही परिस्थितियों में बाल न्यायालय द्वारा जघन्य अपराध करने वाले 16 वर्ष से अधिक आयु के विधि से संघर्षरत बच्चे को वयस्क अपराधी की तरह देखा जा सकेगा और IPC, 1860 में उपबंधित दण्ड में से कोई भी दण्ड दिया जा सकेगा, लेकिन मृत्युदण्ड या आजीवन कारावास नहीं दिया जा सकेगा और सजा पूरी होने पर केवल एक बार ही आर्थिक मदद दी जायेगी। (धारा –19, 21),

6. विधि से संघर्षरत बच्चे तथा वयस्क द्वारा कारित अपराध के प्रकरण में संयुक्त कार्यवाही नहीं की जायेगी। (धारा –23),

7. किशोर न्याय बोर्ड को विधि से संघर्षरत बच्चों के प्रकरणों की जांच, सुनवाई एवं निस्तारण के अतिरिक्त बच्चों के विरूद्ध होने वाले अपराधों के प्रकरणों में आवश्यक कार्यवाही करने का दायित्व सौंपा गया हैं (धारा –4, 8),

8. 16 से 18 वर्ष की आयु के जघन्य अपराध करने वाले विधि से संघर्षरत बच्चे, जिनके प्रकरण बाल न्यायालय के समक्ष विचराधीन हैं, के लिए सुरक्षित अभिरक्षा गृह तथा जिनके प्रकरणों को बाल न्यायालय द्वारा निस्तारित किया गया है, वहां पर बच्चों को सुरक्षित अभिरक्षा गृह/जेल में रखने का प्रावधान किया गया है (धारा –19),

9. 16 से 18 वर्ष की आयु के जघन्य अपराध करने वाले विधि से संघर्षरत बच्चे, जिनके प्रकरण बाल न्यायालय के समक्ष विचराधीन हैं, का आपराधिक रिकॉर्ड संधारित किया जा सकेगा। शेष समस्त श्रेणी के प्रकरणों में विधि से संघर्षरत बच्चें का कोई आपराधिक रिकॉर्ड संधारित नहीं किया जायेगा। (धारा –24),

10. किशोर न्याय बोर्ड़ के निर्णय के विरूद्ध 30 दिवस के अन्दर संबधित जिला एवं सत्र न्यायालय में अपील की जा सकेगी। इसी प्रकार बाल न्यायालय के निर्णय के विरूद्व उच्च न्यायालय में अपील की जा सकेगी। (धारा –101)

(B) देखभाल एवं संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे:-

1. इस कानून में 18 वर्ष से कम उम्र के 12 श्रेणी के बालक – बालिकाओं को देखभाल एवं संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चों के रूप में परिभाषित किया है। इस श्रेणी में घर से भागे हुए, सड़क पर रहने वाले, भीख मांगने वाले, स्ट्रीट चिल्ड्रन, बाल श्रमिक, उपेक्षित, शोषित, शारीरिक/ मानसिक रूप से विकलांग तथा किसी अन्य असाध्य रोग से ग्रसित बच्चे, अनाथ, परित्यक्त, समर्पित, हिंसा से पीड़ित बच्चे आदि सम्मलित हैं।

2. ऐसे बच्चों की देखरेख, संरक्षण, उपचार, विकास और पुनर्वास के लिए आवश्यक निर्णय लेने हेतु बालक कल्याण समिति सक्षम प्राधिकारी हैं।

3. अनाथ अथवा परित्यक्त बच्चों के प्रकरणों में बाल कल्याण समिति द्वारा आवश्यक जांच उपरान्त उसे दत्तक ग्रहण हेतू विधिमुक्त किया जा सकेगा।
4. बाल कल्याण समिति के निर्णय के विरूद्ध 30 दिन के अन्दर सम्बंधित जिला एवं सत्र न्यायालय में अपील प्रस्तुत की जा सकेगी, परन्तु फोस्टर केयर, प्रायोजकता एवं आफ्टर केयर से सम्बंधित अपील सम्बंधित जिला मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत की जा सकेगी।
5. देखभाल एवं संरक्षण की आवश्यकता वाले प्रत्येक बच्चे को कोई भी प्राधिकारी / चाईल्ड लाइन (1098) / स्वयंसेवी संस्था / व्यक्ति द्वारा अधिकतम 24 घण्टे के अन्दर बाल कल्याण समिति के किसी एक सदस्य के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक होगा। (धारा-31)
6. कोई भी प्राधिकारी /संस्था/ अस्पताल/ नर्सिंग होम/ व्यक्ति जिसे कोई भी परित्यक्त, गुमशुदा अथवा अनाथ बच्चा मिलता है, तो उसे अधिकतम 24 घण्टे के अन्दर चाइल्ड लाईन (1098)/पुलिस/बाल कल्याण समिति/ पंजीकृत गृह/ जिला बाल संरक्षण इकाई को सूचित करना आवश्यक होगा। (धारा-32)

(C) बच्चों के विरूद्ध अपराध की रोकथाम

1. कोई भी समाचार पत्र,पत्रिका या ऑडियो-वीडियो मीडिया या अन्य कोई संवाद के माध्यम के द्वारा विधि से संघर्षरत बच्चे अथवा देखभाल एवं संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे अथवा पीड़ित बच्चे अथवा साक्षी बच्चे के संबंध में जांच, अन्वेक्षण या न्यायिक कार्यवाही के तहत् बच्चे की पहचान यथा बच्चे का नाम, पता व फोटो या अन्य विवरण का उजागर / प्रकाशन करता है, तो संबंधित व्यक्ति को 6 माह तक की सजा 2.00 लाख रूपये तक जुर्माने से दण्डित किया जा सकेगा। (धारा-74)
2. कोई भी व्यक्ति जो बच्चे से भीख मंगवाने के लिए किसी बच्चे को नियोजित करता है या उसका उपयोग करता है या उससे भीख मंगवायेगा, तो उसे अधिकतम 5 वर्ष की सजा तथा 1.00 लाख रूपये के जुर्माने से दण्डित किया जा सकेगा। (धारा-76 (1))
3. कोई भी व्यक्ति बिना किसी अधिकृत चिकित्सक के आदेश पर सार्वजनिक स्थान पर बच्चे को नशीली शराब या नशीले पदार्थ / मादक औषधि या

तम्बाकू उत्पाद देता है या दिलवाता है, तो उसे अधिकतम 7 वर्ष की सजा तथा 1.00 लाख रूपये के जुर्माने से दण्डित किया जा सकेगा। (धारा-77)

4. कोई भी व्यक्ति किसी कार्य के लिए बच्चे को अपने पास रखता है या बंधुआ रखता है या उसकी आय को रोकता या स्वयं के लिए उसका उपयोग करता है तो उसे अधिकतम 5 वर्ष की कठोर सजा तथा 1.00 लाख रूपये के जुर्माने से दण्डित किया जा सकेगा। (धारा-79)

5. कोई भी व्यक्ति या संस्था द्वारा अनाथ,परित्यक्त, समर्पित बच्चे को दत्तक ग्रहण/ गोद देने की प्रक्रिया के बिना बच्चे को देने का प्रस्ताव रखता या देता है या प्राप्त करता है, तो उस व्यक्ति या संस्था को अधिकतम 3 वर्ष की सजा तथा 1.00 लाख रूपये के जुर्माने से दण्डित किया जा सकेगा। (धारा-80)

6. किसी वयस्क व्यक्ति या वयस्क समूह द्वारा गैरकानूनी कार्य के लिए स्वयं के स्तर पर अथवा गैंग के रूप में बच्चे का उपयोग किया जाता है, उस व्यक्ति को अधिकतम 7 वर्ष की कठोर सजा 5.00 लाख रूपये के जुर्माने से दण्डित किया जा सकेगा। धारा -83(2),

7. उपरोक्त में से कोई भी अपराध किसी भी विकलांग बच्चे पर किया जाता है तो उसे अपराध की निर्धारित सजा से दुगुनी सजा से दण्डित किया जा सकेगा। (धारा-85)

8. उपरोक्त में से कोई भी दुष्प्रेरण (बहकाना / उकसाना) के फलस्वरूप घटित हो जाता है, तो ऐसे दुष्प्रेरक व्यक्ति को भी अपराध की निर्धारित सजा से दण्डित किया जायेगा। (धारा-87)

9. उपरोक्त बच्चों के विरूद्ध अपराधों के प्रकरणों का विचारण निम्नानुसार वर्णित न्यायालयों द्वारा किया जायेगा।

    - ऐसे अपराध जिनमें 3 वर्ष से कम सजा का प्रावधान है, या केवल जुर्माने का प्रावधान है वे गैर संज्ञेय, जमानती होंगे, जिनका विचारण किसी भी न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा किया जायेगा।
    - ऐसे अपराध जिनमें 3 वर्ष से 7 वर्ष की सजा का प्रावधान है, वे संज्ञेय, गैर जमानती होंगे, जिनका विचारण प्रथम न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा किया जायेगा।

- ऐसे अपराध जिनमें 7 वर्ष से अधिक सजा का प्रावधान है, वे संज्ञेय गैर जमानती होंगे, जिनका विचारण बाल न्यायालय (जिला एवं सत्र न्यायालय) द्वारा किया जायेगा।

(D) संस्थागत सेवाएंः-

कानून के अन्तर्गत दोनों श्रेणियों के बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार की बाल देखरेख संस्थाओं के पंजीयन का प्रावधान है। ऐसा पंजीयन कराना अनिवार्य है। अन्यथा एक साल का दण्ड अथवा न्यूनतम एक लाख तक का जुर्माना से दण्डित किया जा सकेगा। (धारा -40, 41),

राज्य सरकार द्वारा कानून के क्रियान्वयन के लिए आवश्यक मानव संसाधनों सहित राज्य स्तर पर बाल संरक्षण सोसायटी एवं जिला स्तर पर बाल संरक्षण इकाई स्थापित की जायेगी। (धारा-106) कानून के क्रियान्वयन के निगरानी का दायित्व राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग तथा राज्य स्तर पर राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग को दिया गया है।(धारा -109),

(E) गैर संस्थागत सेवाएंः-

दत्तक ग्रहण (गोद देना)

1. अनाथ परित्यक्त एवं समर्पित बच्चों की देश के अन्दर या देश के बाहर दत्तक ग्रहण संबंधी कार्यवाही इसी कानून के तहत् की जायेगी। (धारा-56)
2. भारत सरकार द्वार केन्द्रीय दत्तक ग्रहण संसाधन प्राधिकरण (कारा) को वैधानिक संस्था का दर्जा दिया गया है। प्राधिकरण द्वारा समय-समय पर अधिसूचित दिशा-निर्देशो के तहत् दत्तक ग्रहण की कार्यवाही की जायेगी। (धारा-68)
3. सिविल न्यायालय (जिला एवं सत्र न्यायालय) द्वारा आवश्यक आदेश पारित करने के उपरान्त ही दत्तक ग्रहण वैध माना जायेगा। न्यायालय को ऐसे प्रकरणों का इन-कैमरा ट्रायल के माध्यम से अधिकतम 2 माह में निस्तारण करना आवश्यक होगा। (धारा-61)
4. राज्य में दत्तक ग्रहण को प्रोत्साहित करने तथा विशेषज्ञ दत्तक ग्रहण एजेंसियों के कार्यों का पर्यवेक्षण करने का कार्य राज्य दत्तक ग्रहण संसाधन एजेंसी (सारा) द्वारा किया जायेगा।

फोस्टर केयर (पालन पोषण देखभाल)

1. देखभाल एवं संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चों को पारिवारिक वातावरण में पालन-पोषण एवं शिक्षा उपलब्ध करवाने के लिए फोस्टर केयर (पालन-पोषण देखभाल) सेवाओं से जोड़ा जायेगा। – (धारा 44)
2. फोस्टर केयर (पालन-पोषण देखभाल) में लाभान्वित बच्चे की देखभाल के लिए फोस्टर पेरेन्ट्स को जिला बाल संरक्षण इकाई द्वारा मासिक स्तर पर आवश्यक आर्थिक सहायता भी उपलब्ध कराई जायेगी। – (धारा 44)

निष्कर्ष:-

बालकों के प्रति शोषण व उत्पीड़न को रोकने व मानवाधिकारों की रक्षा के लिए कानून के साथ-साथ सरकार का भी यह मुख्य उद्देश्य होना चाहिए कि राष्ट्रीय, प्रादेशिक व अन्तरराष्ट्रीय प्रत्येक स्तर पर बच्चों की भी समान व सक्रिय भागीदारी तथा लिंग के आधार पर हर प्रकार भेदभाव समाप्त हो। इस सम्बंध में मार्टिन लूथर किंग ने कहा है – "किसी भी स्थान पर अन्याय, हर स्थान पर न्याय के लिए खतरा है।"

अत: समाज में न्याय प्राप्त करने के लिए अपेक्षा और असहनीयता को समाप्त किया जाना जरूरी है तथा जागरूकता, शिक्षा और कुशलता द्वारा लोगों की मानसिकता में बदलाव लाने की आवश्यकता है। शिक्षा को 'तीर्थ क्षेत्र' माना जाता है। अत: शिक्षा द्वारा मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा होगी और सम्बन्धित नये-नये कानूनों की सहायता से न्याय प्राप्त किया जा सकेगा।

किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 में
सक्षम प्राधिकारी एवं बाल देखरेख संस्थाएं

क्र. सं.	बच्चों का समूह/विषय	सक्षम प्राधिकारी	बाल देखरेख संस्थाएं
विधि से संघर्षरत बच्चे			
1.	छोटे एवं गम्भीर अपराध के समय 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चे	किशोर न्याय बोर्ड	संप्रेक्षण गृह, फिट फैसेलिटी एवं विशेष गृह
2.	जघन्य अपराध के समय 16 वर्ष से कम उम्र के बच्चे	किशोर न्याय बोर्ड	संप्रेक्षण गृह, फिट फैसेलिटी, एवं विशेष गृह
3.	जघन्य अपराध के समय 16–18 वर्ष उम्र के बच्चे	किशोर न्याय बोर्ड/ बाल न्यायालय (जिला एवं सत्र न्यायालय)	संप्रेक्षण गृह, सुरक्षित अभिरक्षा गृह, फिट फैसेलिटी, विशेष गृह एवं जेल
देखभाल एवं संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे			
4.	0 से 18 वर्ष के देखभाल एवं संरक्षण की आवश्यकता वाले बच्चे	बाल कल्याण समिति	बाल गृह, ओपन शेल्टर एवं फिट फैसेलिटी
बच्चों के विरूद्ध हिंसा			
5.	ऐसे अपराध जिनमें 3 वर्ष से कम की सजा	न्यायिक मजिस्ट्रेट	
6.	ऐसे अपराध जिनमें 3 वर्ष से 7 वर्ष की सजा	प्रथम न्यायिक मजिस्ट्रेट	
7.	ऐसे अपराध जिनमें 7 वर्ष से अधिक सजा	बाल न्यायालय (जिला एवं सत्र न्यायालय)	
8.	बच्चों के विरूद्ध लैंगिक हिंसा/ शोषण	बाल/विशेष न्यायालय (जिला एवं सत्र न्यायालय)	
दत्तक ग्रहण			
9.	अनाथ, परित्यक्त एवं समर्पित बच्चों का दत्तक ग्रहण कार्यवाही	विशेषज्ञ दत्तक ग्रहण एजेंसी	विशेषज्ञ दत्तक ग्रहण एजेंसी, बाल गृह
10.	बच्चों के दत्तक ग्रहण की अनुमति	सिविल न्यायालय (जिला एवं सत्र न्यायालय)	
फोस्टर केयर			
11.	देखभाल एवं संरक्षण की	बाल कल्याण समिति	विशेषज्ञ दत्तक ग्रहण

19

	आवश्यकता वाले बच्चों को फोस्टर केयर में देना		एजेंसी, बाल गृह
12.	फोस्टर पेरेन्ट्स को आर्थिक सहायता	जिला बाल संरक्षण इकाई	
प्रायोजकता सेवाएं (स्पोंसरशिप)			
13.	कानून में चिन्हित श्रेणी के बच्चों को प्रायोजकता सेवाओं के तहत् आर्थिक सहायता	जिला बाल संरक्षण इकाई	विशेषज्ञ दत्तक ग्रहण एजेंसी, बाल गृह, ओपन शेल्टर
आफ्टर केयर			
14.	बाल देखरेख संस्थान से 18 वर्ष की आयु पूर्ण करने उपरान्त समाज की मुख्यधारा से जोड़ने हेतु आर्थिक सहायता	जिला बाल संरक्षण इकाई	बाल गृह, संप्रेक्षण गृह, विशेष गृह एवं सुरक्षित अभिरक्षा गृह
अन्य महत्वपूर्ण विषय			
15.	विशेष किशोर पुलिस इकाई की स्थापना, संचालन एवं पर्यवेक्षण	राजस्थान पुलिस	
16.	राज्य में कानून का कियान्वयन एवं इसके अधीन संस्थाओं की स्थापना, संचालन एवं पर्यवेक्षण	राज्य सरकार	
17.	राज्य में कानून के कियान्वयन की निगरानी	राजस्थान राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग	

20

संदर्भ ग्रंथ सूची

A. Books and Acts

1. डॉ. सुभाष कश्यप, हमारा संविधान: भारत का संविधान एवं संवैधानिक विधि, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया नई दिल्ली, 2012
2. भारतीय दण्ड संहिता, 1860
3. किशोर न्याय (बालको की देखरेख व संरक्षण) अधिनियम,. 2015
4. डॉ. विरेन्द्र सिंह यादव, नई सहस्त्राब्दी में मानव अधिकार के विविध संदर्भ, ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010
5. एम. पी. भारद्वाज, किशोर न्याय अधि. के क्रियान्वयन में पुलिस की भूमिका, पुलिस विज्ञान, 2007

B. Articles

1. Amati B.N. " Juvenile Delinquency: A Sociological Survey" , Social welfare, April 1975
2. Singh, S.D.: "Child Delinquency", Indian Journal of Correctional work, Vol. XXII, No.7, 1960
3. Dr- Bikram Kumar Das (2016)] Juvenile Justice System in India] Indian Journal of Research] Vol V
4. Venudhar Routiya: "A Critical Study of children under Juvenile Justice System in India".

C. Websites

1. www.rshrc.rajasthan.gov.in
2. www.cprgindia.org
3. www.socialjustice.nic.in
4. www.ncrb.gov.in
5. www.thehindu.com
6. www.data.gov.in

❑ ❑ ❑

अंतरराष्ट्रीय समझौते, युद्ध और मानवाधिकार

–पिंकी तुलसीदास चंदवानी

प्रस्तावना

युद्ध हमेशा और हर जगह एक सार्वजनिक स्वास्थ्य आपदा है। युद्ध की अंतर्निहित क्रूरता और बर्बरता के कारण, जैसा कि इतिहासकार जॉन कीगन ने कहा है, "आज दुनिया में कहीं भी इस राय के लिए तर्कसंगत समर्थन जुटाना शायद ही संभव है कि युद्ध एक उचित गतिविधि है।

जीवन अखंडता अधिकार मानव अधिकारों के पारंपरिक वर्गों को गले लगाते हैं, लेकिन उनसे आगे निकलते हैं, जिनमें राजनीतिक और नागरिक अधिकार (स्वतंत्रता या लोकतंत्र के पहलू), और सामाजिक और आर्थिक अधिकार (सामाजिक न्याय के पहलू) शामिल हैं। वे अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार और मानवीय कानूनों, समझौते और घोषणाओं की एक उल्लेखनीय विविधता में सन्निहित हैं, जिनमें शामिल हैं:

- संयुक्त राष्ट्र का चार्टर
- मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा
- नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय समझौता
- नरसंहार के अपराध की रोकथाम और सजा पर समझौता
- अत्याचार और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार के खिलाफ समझौते
- महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर समझौते
- नस्लीय भेदभाव के सभी रूपों के उन्मूलन पर अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन
- बाल अधिकारों पर समझौते।

मानवाधिकार और आतंकवाद

- दो प्रमुख क्षेत्र हैं जहां मानवाधिकार और आतंकवाद की अवधारणाएं टकराव में आ सकती हैं: पहला, सबसे स्पष्ट रूप से, आतंकवाद के एक कृत्य से संबंधित है; दूसरा उन उपायों से संबंधित है जो आतंकवाद का मुकाबला करने की प्रक्रिया में आधिकारिक अंगों द्वारा उठाए जा सकते हैं।
- आतंकवाद को जिस तरह से भी परिभाषित किया गया हो और इसके पीछे के कारणों या इसमें शामिल होने की प्रेरणा के बावजूद, आबादी के सदस्यों को आतंकित करने का कार्य सर्वोत्तम स्थिति में, उनकी गरिमा और व्यक्तिगत सुरक्षा के अधिकार का उल्लंघन है, और सबसे बुरी स्थिति में, जीवन के अधिकार का उल्लंघन। मानवाधिकार कानून के संदर्भ में, मामला कम सरल है क्योंकि मानवाधिकार कानून ज्यादातर व्यक्तियों को सरकारों की ओर से उनके अधिकारों और स्वतंत्रता के उल्लंघन से बचाने के लिए बनाया गया है।

हालाँकि, सरकारों के कुछ दायित्व होते हैं: सबसे पहले, नागरिकों को उनकी व्यक्तिगत सुरक्षा पर हमलों से बचाने के संदर्भ में; दूसरे, उन पीड़ितों को मुआवजा देने के संदर्भ में जो आतंकवादी हमलों से पीड़ित हो सकते हैं; और तीसरा, निस्संदेह, स्वयं आतंकवाद में शामिल न होने के संदर्भ में।

- मानवाधिकारों का उल्लंघन संघर्ष को जन्म दे सकता है, उत्पन्न कर सकता है और तीव्र कर सकता है। इसी तरह, जबकि इन उल्लंघनों के लिए जवाबदेही एक महत्वपूर्ण मांग हो सकती है, यह शांति प्रक्रियाओं में बाधा भी बन सकती है।
- सफल शांति प्रक्रियाओं को पिछले दुर्व्यवहारों के लिए जवाबदेही की मांगों को संबोधित करने, लड़ाकों को निरस्त्र करने और राजनीतिक प्रक्रियाओं और कानून और शासन की संस्थाओं को नया आकार देने की आवश्यकता है।
- घरेलू अदालतों या अंतरराष्ट्रीय संस्थानों के उपयोग के माध्यम से पिछले दुर्व्यवहारों की प्रतिक्रियाएँ विकसित की जा सकती हैं।
- गैर-राज्य सशस्त्र समूह और निजी सैन्य और सुरक्षा कंपनियां शांति

प्रक्रियाओं के लिए चुनौती पेश करती हैं और अंतरराष्ट्रीय मानवीय कानून के अनुप्रयोग को जटिल बनाती हैं।

- जो लोग मानवाधिकारों की रक्षा करना चाहते हैं और जो संघर्ष समाधान को बढ़ावा देना चाहते हैं उनके लक्ष्य एक-दूसरे के पूरक हैं। हालाँकि, वे लक्ष्यों को अलग ढंग से प्राथमिकता दे सकते हैं (या सफलता का आकलन कर सकते हैं)।
- अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून और अंतरराष्ट्रीय मानवीय कानून के तहत दायित्व व्यापक हैं, जो सबसे अधिक प्रासंगिक हैं, उन्हें अध्याय 4 में खोजा गया है। निम्नलिखित सबसे अधिक प्रासंगिक हैं: अंतरराष्ट्रीय अधिकार विधेयक; नरसंहार सम्मेलन; यातना सम्मेलन; और जिनेवा समझौते।
- अध्याय 3 में मानवाधिकार उल्लंघनों की प्रतिक्रियाओं के बारे में बताया गया है। इनमें घरेलू और अंतरराष्ट्रीय दोनों प्रक्रियाएं शामिल हैं। इनके अलावा संकर संस्थाएँ हैं जो घरेलू और अंतरराष्ट्रीय न्यायाधीशों, अभियोजकों और वकीलों और कानून को जोड़ती हैं।
- मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा में युद्ध का कोई संदर्भ नहीं है, सिवाय इसके कि यह दावा किया जाए कि मानवाधिकारों का सम्मान इसे रोकने का एक साधन है। ध्यान की कमी आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की अवधि में युद्ध का आचरण युद्ध अपराधों और मानवता के खिलाफ अपराधों के बारे में 1945 के नूर्नबर्ग घोषणा का विषय था, और पुनः मसौदा तैयार करने की अगुवाई में गहन बहस हुई थी। 1949 के जिनेवा समझौते के। वास्तव में, संयुक्त राष्ट्र चार्टर में मानवाधिकारों को संबोधित करने के लिए दबाव का एक हिस्सा यह विश्वास था कि शांतिकाल में मानवीय गरिमा के सम्मान की उपेक्षा की जा रही है। हालाँकि, उस शांतिकाल के फोकस के परिणामस्वरूप, सशस्त्र संघर्ष में स्वास्थ्य के अधिकार की लगभग 60 वर्षों तक उपेक्षा हुई।
- कानून विशेषज्ञों ने समझौते में मानवाधिकार अवधारणाओं, विशेष रूप से मानवीय गरिमा को शामिल करने की मांग की। हालाँकि, राजनीतिक और संस्थागत कारणों से, 1949 समझौते के प्रारूपकारों ने उस दृष्टिकोण को अस्वीकार कर दिया। नए समझौते ने केवल कुछ ही अधिकारों को मान्यता दी, जैसे कि धार्मिक स्वतंत्रता और यातना न देना या मानव प्रयोग के अधीन न होना।

युद्ध के कानूनों के मूल सिद्धांत क्या हैं?

- अंतरराष्ट्रीय मानवीय कानून, या युद्ध के कानून, नागरिकों और अन्य गैर-लड़ाकों को सशस्त्र संघर्ष के खतरों से सुरक्षा प्रदान करते हैं। यह संघर्ष के सभी पक्षों द्वारा शत्रुता के आचरण – युद्ध के साधनों और तरीकों – को संबोधित करता है। सबसे महत्वपूर्ण नियम यह है कि संघर्ष के पक्षों को हर समय लड़ाकों और नागरिकों के बीच अंतर करना चाहिए। नागरिक कभी भी जानबूझकर हमलों का निशाना नहीं बन सकते। संघर्ष के पक्षों को नागरिकों और नागरिक वस्तुओं को नुकसान को कम करने के लिए सभी संभावित सावधानियां बरतनी होंगी और ऐसे हमले नहीं करने होंगे जो लड़ाकों और नागरिकों के बीच भेदभाव करने में विफल हों, या नागरिक आबादी को असंगत नुकसान पहुंचाएंगे।
- समय के साथ, मानवाधिकार विचारों ने सशस्त्र संघर्ष के कानून में अपनी जगह बना ली। परंपरागत रूप से, अनावश्यक पीड़ा से बचने के लिए, युद्ध में शामिल नहीं हुए लोगों को नुकसान न पहुंचाने की जुझारू लोगों की जिम्मेदारियां मानवता के सिद्धांत पर आधारित थीं। यह मानव गरिमा के उन विचारों की तुलना में कहीं अधिक सीमित अवधारणा है जो यूडीएचआर और उसके बाद के समझौते को आधार बनाते हैं। नए जिनेवा समझौते पर 1949 के सम्मेलन से पहले के दो दशकों में, कुछ अंतरराष्ट्रीय मानवतावादी कानून विशेषज्ञों ने मानवाधिकार अवधारणाओं, विशेष रूप से मानव गरिमा, को समझौते में पेश करने की मांग की। हालाँकि, राजनीतिक और संस्थागत कारणों से, 1949 समझौते के प्रारूपकारों ने उस दृष्टिकोण को अस्वीकार कर दिया। नए समझौते ने केवल कुछ ही अधिकारों को मान्यता दी, जैसे कि धार्मिक स्वतंत्रता और यातना न देना या मानव प्रयोग के अधीन न होना।

निष्कर्ष

मानवाधिकारों को लागू करना राज्य का परम कर्तव्य है। न्याय वितरण प्रणाली को मजबूत करना विश्व शांति की नींव है जो मानवाधिकारों के लिए सार्वभौमिक सम्मान के माध्यम से हासिल की जाती है। मानव परिवार के सभी सदस्यों की अंतर्निहित गरिमा और समान एवं अहस्तांतरणीय अधिकारों की मान्यता के सार्वभौमिक घोषणा पत्र के वादे को पूरा करने में न्यायपालिका की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है।

इस प्रकार, प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध की घटनाओं ने अंतरराष्ट्रीय समुदाय को सार्वभौमिक रूप से मानवाधिकारों को बढ़ावा देने के लिए अपनी चिंता व्यक्त करने के लिए प्रेरित किया। इसने व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए अंतरराष्ट्रीय कानून के नियमों के विकास को प्रभावित किया है। 1945 में संयुक्त राष्ट्र चार्टर के लागू होने के साथ ही अंतरराष्ट्रीय प्रणाली के भीतर एक व्यवस्थित मानवाधिकार संरक्षण हुआ। हालाँकि, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद तक मानवाधिकार अंतरराष्ट्रीय राजनीति या कानून की चिंता नहीं बन पाए, लेकिन व्यक्तिगत कल्याण नहीं हुआ। उससे पहले भी पूरी तरह से अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था की सीमा से परे। अंतरराष्ट्रीय कानून और मानवाधिकार विचारों के इतिहास में अंतर्निहित थे, दोनों की पृष्ठभूमि प्राकृतिक कानून और रोमन कानून में थी।

यह स्पष्ट है कि मानव अधिकारों का आधुनिक अंतरराष्ट्रीय कानून द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की घटना है। मानवाधिकार समकालीन अंतरराष्ट्रीय कानून का विषय है और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकारों को विनियमित करने के प्रयासों को द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ही गति मिली। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दुनिया के विभिन्न हिस्सों में संहिताकरण और वैश्विक संस्थानों के माध्यम से मानव अधिकारों को संरक्षित करने के लिए व्यक्तियों के गंभीर प्रयास देखे गए। मानवाधिकारों के प्रति गहरी अंतरराष्ट्रीय चिंता की उत्पत्ति का पता वैश्विक स्तर पर कार्यात्मक संस्थानों के निर्माण से लगाया जा सकता है।

अंग्रेजी, अमेरिकी और फ्रांसीसी क्रांतियों के आधार पर जो भी सैद्धांतिक बहस हुई हो, यह स्पष्ट है कि प्रत्येक ने अपने तरीके से उदार लोकतंत्र के रूपों के विकास में योगदान दिया, जिसमें व्यक्तियों की सुरक्षा के लिए कुछ अधिकारों को सर्वोपरि माना गया था। राज्यों में अधिनायकवाद की प्रवृत्ति निर्मित हुई। संरक्षित अधिकारों के बारे में महत्व यह था कि, वे व्यक्तिवादी थे और चरित्र में मुक्तिवादी थे, वे मुख्य रूप से 'अधिकारों' के बजाय 'आजादी' थे।

आधुनिक भाषा में, इन्हें नागरिक और राजनीतिक अधिकार कहा जाएगा, क्योंकि वे मुख्य रूप से राज्य के अंग के साथ एक व्यक्ति के संबंध से संबंधित हैं। अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा, 1776, वर्जीनिया अधिकारों की घोषणा, 1776 और अमेरिकी अधिकारों का विधेयक, 1791 में न केवल पहले के अंग्रेजी दस्तावेजों के विचार थे, बल्कि कुछ मामलों में उनका मूल पाठ भी शामिल था। मनुष्य और नागरिकों के अधिकारों की फ्रांसीसी घोषणा, 1789 सीधे तौर पर पहले के अमेरिकी उदाहरणों से प्रेरित थी।

फ्रांसीसी क्रांतिकारी नारे, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के अनुसार, 'कराल वासाक' ने मानव अधिकारों के ऐतिहासिक विकास को वर्गीकृत करने की मांग की है। इनमें से प्रत्येक, कमोबेश, अलग-अलग श्रेणियों या अधिकारों की पीढ़ियों के विकास से मेल खाता है। स्वतंत्रता या पहली पीढ़ी के अधिकारों का प्रतिनिधित्व नागरिक और राजनीतिक अधिकारों द्वारा किया जाता है, यानी राज्य के मनमाने हस्तक्षेप से मुक्त होने का व्यक्ति का अधिकार।

समानता या दूसरी पीढ़ी के अधिकार आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की सुरक्षा के अनुरूप हैं, यानी राज्य द्वारा ऐसी स्थितियाँ बनाने का अधिकार जो प्रत्येक व्यक्ति को अधिकतम क्षमता से विकसित करने की अनुमति देगा। बंधुत्व या तीसरी पीढ़ी के अधिकार या एकजुटता के अधिकार अधिकारों की सबसे नई और सबसे विवादास्पद श्रेणी हैं। ये विकासशील राज्यों द्वारा दावा किया जाता है जो एक अंतरराष्ट्रीय, कानूनी और आर्थिक व्यवस्था का निर्माण देखना चाहते हैं जो विकास, आपदा राहत सहायता, शांति और अच्छे वातावरण के अधिकार की गारंटी देगा।

व्यक्ति की बुनियादी स्वतंत्रता की मान्यता के लिए उपरोक्त प्रयास अपर्याप्त और असंतोषजनक हैं, जब तक कि उन्हें राज्य के अधिकार के खिलाफ उचित मान्यता और पर्याप्त सुरक्षा के लिए अपना समर्थन देने में अंतरराष्ट्रीय समाज द्वारा शामिल और संरक्षित नहीं किया जाता है। भारत में, मानवाधिकार बुनियादी अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को शांतिपूर्ण वातावरण में रहने के लिए मिलना चाहिए। ऋग्वेद, मनु स्मृति में वर्णित प्राचीन काल से लेकर जैन और बौद्ध धर्म में भी मानवतावादी सिद्धांत का पालन किया जाता था। मध्यकाल में मुस्लिम शासकों ने राज्य के प्रभावी संचालन के लिए मानवाधिकार नीति अपनाई।

संदर्भ

- M.A. Glendon, A world made new: Eleanor Roosevelt and the Universal Declaration of Human Rights (New York: Random House 2001), pp. 9-10.
- B. Van Dijk, "Human rights in war: On the entangled Foundations of the 1949 Geneva Conventions," Journal of the American Society of International Law 112 (2018), pp. 553-582.

- D. Luban, “Human rights thinking and the laws of war,” in J. Ohlin (ed.)Theoretical Boundaries of Armed Conflict and Human Rights, (Cambridge: Cambridge University Press, 2016), pp. 45-77.
- Blackstone's, International Human Rights Documents (Universal Law Publishing, 1st Ed.2001)
- D.D. Basu, Human Rights & Constitution Law (LexisNexis Publications, 24th Ed. 1944).
- Harris, Cases, and Materials on International Law (Sweet & Maxwell Publications, 5th Ed, London 1998).
- Justice V.R. Krishna Iyer, Human Rights- A Judges Miscellany (D.K. Publications, Delhi, 1995)
- Malcolm N- Shaw] International Law (Cambridge University Press] Cambridge, 6th Ed- 2008)

❑ ❑ ❑

जल-संरक्षण की देशज परम्पराएं : समकालीन जल-संकट, चुनौतियाँ और संभावनाएं

–शरद कुमार यादव*

भूमिका:

जल अत्यंत ही मूल्यवान और महत्वपूर्ण पदार्थ है जो सृष्टि के समस्त प्रणालियों में जीवन का संचार करता है। देश में प्राचीन-काल से ही 'जल ही जीवन है' के रीति को आत्मसात करते हुए इसको सहेजने की एक अमूल्य सांस्कृतिक एवं सामाजिक परंपरा रही है। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि विगत कुछ दशकों से हो रहे पारिस्थितिकीय परिवर्तनों, बेरोकटोक आर्थिक विकास और प्राकृतिक संसाधनों के बेतहाशा दोहन ने जल के अनुचित तथा असंतुलित प्रयोग को बढ़ाया है। गौरतलब है कि 2018 में केंद्र सरकार के थिंक टैंक नीति आयोग ने एक रपट जारी करके देश में जल-संकट की हकीकत पर प्रकाश डाला है। नीति आयोग द्वारा जारी 'समग्र जल प्रबंधक सूचकांक' शीर्षक रपट में बताया गया है कि इस समय हमारा देश इतिहास की सबसे बड़ी जल-त्रासदी से गुजर रहा है जिसके कारण करोड़ों का जीवन और आजीविका खतरे में है। निराशाजनक स्थितियों की एक बानगी इन तथ्यों से मिल सकती है- भारत के पचहत्तर फीसदी घरों में शुद्ध पेयजल की उचित व्यवस्था नहीं है और लगभग सत्तर फीसदी जल प्रदूषित होने की वजह से पीने योग्य नहीं है। यह रपट यह भी बताती है कि 2030 तक हमारी चालीस फीसदी आबादी पेयजल से महरूम होने वाली है। भारत दुनिया के 122 देशों के 'जल गुणवत्ता सूचकांक' में

* सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, शहीद भगत सिंह सांध्य महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

120वें पायदान पर है।[1] उल्लेखनीय है कि भारत में विश्व की 17 प्रतिशत आबादी का निवास है। यद्यपि जल संसाधन केवल चार प्रतिशत ही है।[2] ये आँकड़े हमें सोचने पर मजबूर करते हैं कि आखिर पिछले कुछ दशकों में ऐसा क्या हुआ जिससे हमारी जल-व्यवस्था की हालत इतनी खराब हो गई। क्या ये चौंकाने वाले तथ्य जल-समस्या की ओर इशारा करते हुए इससे जुड़े विभिन्न हितधारकों व आम नागरिकों की नियोजित भागीदारी, संबंधित प्रबंधन प्रौद्योगिकी, नीतियों और कानूनों पर सवालिया निशान नहीं लगाते? क्या यह समस्या हमें भारत की उन देशज परंपराओं और पद्धतियों पर चिंतन करने की ओर नहीं ले जाती, जिनसे जल-संरक्षण प्रबंधन का स्थाई हल खोजा जा सके? इसी उद्देश्य के लिए लेख में जल संचयन और प्रबंधन की देशज परंपरा का जिक्र करने के साथ-साथ समकालीन जल संकट के चुनौतियों और इसके प्रबंधन की संभावनाओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

जल-संचयन और प्रबंधन की देशज परंपरा

प्राचीन-काल से ही जल को पूजनीय मानकर इसका उपयोग विभिन्न सांस्कृतिक प्रथाओं और अनुष्ठानों में किया जाता रहा है जो हमारे सांस्कृतिक विरासत का प्रतीक है। चूंकि जल से मनुष्य का संबंध आत्मिक रहा है। इसलिए प्राचीन-काल से ही हमारे पौराणिक ग्रंथो में जल के महत्व के संबंध में अनेक ऋचाएँ देखने को मिलती है। हमारी लोककथाओं, कलाओं, संस्कृति और धर्मों में जल के संरक्षण के महत्व को बताने के साथ-साथ प्राकृतिक तत्वों से बेवजह छेड़छाड़ से उत्पन्न होने वाले दुष्परिणामों का भी वर्णन शामिल हैं। पौराणिक ग्रंथों में इसकी महत्ता को बताते हुए कहा गया है कि आपो हि ष्ठा मयोभुवस्था न ऊर्जे दधातन। महे रणाथ चक्षसे।।१।। अर्थात हे जल, आपकी उपस्थिति के कारण, वातावरण इतना ताजा है, और हमें जोश और शक्ति प्रदान करता है। हम आपका सम्मान करते हैं जो आपके शुद्ध सार से हमें प्रसन्न करते हैं।

वर्तमान में भी जल संचय और प्रबन्धन की प्राचीन पद्धति की मिसाल देश के कई हिस्सों में देखने को मिलती है। मसलन राजस्थान की बावड़ी, कुंड, खड़ीन और महाराष्ट्र में ताल व बन्धारा, तो वही उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की बन्धी तथा बिहार की पइन और आहार। हिमाचल तमिलनाडु और केरल में क्रमशः कुहल, एरी व सुरंगम के नाम से प्रचलित है तो कर्नाटक में कट्टा और जम्मू क्षेत्र के कांडी

1. Aayog, N. I. T. I. (2018). Composite Water Management Index–A National Tool for Water Measurement, Management and Improvement. Government of India, New Delhi.
2. World Bank. (2023). How is India addressing its water needs? The World Bank.

इलाके के पोखर जल। यह पारंपरिक जल संरचनाएँ आज भी लोगो के लिए जीवन रेखा है। जल प्रबंधन की यह परंपरागत संरचना उस क्षेत्र विशेष के लोगों की स्थानीय जरूरतों, सांस्कृतिक मूल्यों और पारिस्थितिकीय तंत्र के अनुकूल हुआ करती थी।[1]

गौरतलब है कि सिंधु घाटी के दो प्रमुख शहर मोहनजोदड़ो और धोलावीरा उत्कृष्ट जल प्रबंधन और जल निकासी प्रणालियों के सर्वोत्तम उदाहरण रहे हैं। सिंधु घाटी के मोहनजोदड़ो के ग्रेट बाथ को "प्राचीन दुनिया का सबसे पुराना सार्वजनिक जल टैंक" माना जाता है।[2] पुरातात्विक साक्ष्य इंगित करते हैं कि सिंधु घाटी के हड़प्पावासी 2500 और 1700 ई.पू. के बीच की अवधि के दौरान सिंधु नदी की मौसमी वर्षा और बाढ़ से अच्छी तरह वाकिफ थे, जिसकी पुष्टि आधुनिक मौसम संबंधी जांच से हुई है।[3] इस अवधि के दौरान नहरों, जल भंडारण संरचनाओं, विभिन्न प्रकार के कुओं और टिकाऊ व कम लागत वाली जल-संचयन संरचनाओं के व्यापक नेटवर्क विकसित किए गए थे। हड़प्पावासियों ने परिष्कृत जल और अपशिष्ट जल प्रबंधन प्रणालियाँ भी बनाई थीं, भूमिगत नालियों के माध्यम से सीवरेज प्रणालियों के नियोजित नेटवर्क भी बने हुए थे।[4]

ऐतिहासिक और पुरातात्विक साक्ष्य से पता चलता है कि ई.पू चौथी शताब्दी से ही देश के कई क्षेत्रों में छोटे-छोटे समुदाय जल संचय और वितरण की कारगर व्यवस्था हुआ करती थी। मसलन, नंद के शासन में (363-321 ई.पू.) शासकों ने नहरें और समुदाय पर निर्भर सिंचाई प्रणालियाँ बनाईं वही मध्य भारत के गोड़ शासकों ने सिंचाई और जल आपूर्ति की न केवल बेहतर प्रणालियाँ बनाईं, बल्कि उनके रख-रखाव के लिये आवश्यक सामाजिक और प्रशासनिक व्यवस्थाएँ भी विकसित की थीं।[5] मौर्य शासन काल में जल संचयन प्रणालियों, सिंचाई और अन्य उद्देश्यों के लिए निर्मित हाइड्रोलिक संरचनाओं का उल्लेख महान दार्शनिक कौटिल्य ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक अर्थशास्त्र में विस्तृत वर्णन किया है।[6] कौटिल्य उपभोग-आधारित

1. अग्रवाल, अनिल और नारायण, सुनीता (1997), बूँदों की संस्कृति। फोर्थ रिपोर्ट ऑन द स्टेट ऑफ इंडियाज एनवायरमेंट. सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट.सीएसई, दिल्ली
2. Mujumdar, P. P., & Jain, S. K. (2018, April). Hydrology in ancient India: Some fascinating facets. In EGU General Assembly Conference Abstracts, Vienna, Austria
3. Srinivasan, T. M. (1976). Measurement of rainfall in ancient India. Indian Journal of History of Science Calcutta, 11(2), 148-157.
4. Singh, P. K., Dey, P., Jain, S. K., & Mujumdar, P. P. (2020). Hydrology and water resources management in ancient India. Hydrology and Earth System Sciences, 24(10), 4691-4707.
5. अग्रवाल, अनिल.और नारायण, सुनीता(1997). बूँदों की संस्कृति. फोर्थ रिपोर्ट ऑन द स्टेट ऑफ इंडियाज एनवायरमेंट. सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट.सीएसई, दिल्ली
6. Singh, P. K., Dey, P., Jain, S. K., & Mujumdar, P. P. (2020). Hydrology and water resources management in ancient India. Hydrology and Earth System Sciences, 24(10), 4691-4707.

जल-मूल्य निर्धारण मॉडल की नुमाइंदगी करते थे। ताकि जल दुरुप्रयोग की संभावना को कम किया जा सके और सभी की मूल आवश्यकता की पूर्ति भी सुनिश्चित हो सके। कौटिल्य के इस जल दर्शन में जल-उपभोग की असमानता को सीमित करने का विचार सुझाया गया है। लेकिन यह विडंबना है कि आज के समय में धनाढ्य व्यक्ति मुफ्त जल का बेरोकटोक उपभोग करते है वहीं मलिन बस्तियों में रहने वाले लोग एक बाल्टी पानी के लिए भी संघर्षरत है।[1]

जल-संकट और प्रबंधन: संभावनाओं की तलाश

वर्तमान में देश के विभिन्न शहरो में जल की समस्या को देखना खासा शिक्षाप्रद है। इन शहरो में जल की आपूर्ति न होने की वजह से हाहाकार मचा हुआ है। दरअसल, यह मसला केवल कुछ शहरो तक सिमटा हुआ नहीं है, बल्कि देश के अनेक इलाके इस भीषण संकट से गुजर रहे हैं या भविष्य में गुजरने वाले हैं। प्राकृतिक संसाधनों के बेतहाशा दोहन और बढ़ती जनसंख्या ने शहरीकरण एवं उद्योगीकरण का विस्तार किया है। इस वजह से व्यापक स्तर पर खनिज सम्पदा घटी है और वनोपज का दायरा सिमट गया है। नतीजे के तौर पर पारिस्थितिकीय असंतुलन की स्थिति पैदा हुई है। शहरों व विभिन्न उद्योगों से निकले वाले खतरनाक प्रदूषण का लगभग अठहतर फीसदी हिस्सा बिना शोधित किए हुए सीधे जलाशयों और नदियों में विसर्जित कर दिया जाता है।[2] जो कि जल संकट का एक प्रमुख कारण है।

एक समय ऐसा था जब गाँवों, कस्बों और छोटे नगरों में छोटे-छोटे तालाब, पोखर और कुएँ देखने को मिलते थे। आज इन पर शायद ही कहीं निगाह पड़ती हो। इसी के साथ-साथ लगभग सभी परंपरागत प्राकृतिक जलस्रोत विलुप्त होने की कगार पर हैं। इस संदर्भ में अनुपम मिश्र ने अपनी पुस्तक 'आज भी खरे है तालाब' में कहते है कि "सैकड़ों, हजारों तालाब अचानक शून्य से प्रकट नहीं हुए थे। इनके पीछे एक इकाई थी बनवाने वालों की, तो दहाई थी बनाने वालों की। यह इकाई, दहाई मिलकर सैकड़ा, हजार बनती थी। पिछले दो सौ बरसों में नए किस्म की थोड़ी सी पढ़ाई पढ़ गए समाज ने इस इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार को शून्य ही बना दिया। इस नए समाज के मन में इतनी उत्सुकता भी नहीं बची कि उससे पहले के दौर में इतने सारे तालाब भला कौन बनाता था।"[3] इसीलिए जल की सुचिता, अविरलता

1. Ramesh, M. (2022). Following Chanakya's water neeti. The New Indian Express.
2. Down to Earth. (2016).78 % of sewage generated in India remains untreated. Centre for Science and Environment.
3. मिश्र, अनुपम. (1993). आज भी खरे है तालाब. प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

और निर्मलता के लिए छोटे छोटे तालाबों एवं जलाश्यों का निर्माण कर न केवल भूमिगत जल का स्तर ऊपर उठाया जा सकता है अपितु अनेक क्षीणकाय नदियों को भी पुनर्जीवित किया जा सकता है।

जल-संकट का एक रिश्ता कृषि-अर्थव्यवस्था से भी है। सिचाई का उत्तम प्रबंध न होने की वजह से किसानों की निर्भरता भूमिगत-जल स्रोतों पर है। भूमिगत जल पर लगातार दबाव बढ़ने की वजह से भू-जल स्तर नीचे गिरता जा रहा है। एक आधिकारिक रपट के मुताबिक भारतीय कृषि में जल की खपत लगभग देश की घरेलू जल खपत की लगभग अस्सी फीसदी है।[1] जाहिर है कि यदि खेतों तक शोधित अपशिष्ट जल भेजने की प्रणाली विकसित कर ली जाए तो इस जल को कृषि-उपयोग में लाया जा सकता है। साथ ही देश में खुली सिंचाई नहरों के स्थान पर बड़े व्यास वाले पाइपों का इस्तेमाल कर बरबाद होते हुए जल को बचाया जा सकता है। यह काम भी मुश्किल नहीं है, लेकिन कोई ठोस पहल के लिए तैयार नहीं है। इस परिदृश्य में, सरकार को ड्रिप सिंचाई और स्प्रिंकलर सिंचाई जैसी कुशल सिंचाई विधियों को बढ़ावा देना चाहिए, जिससे जल की बर्बादी कम हो और फसल पैदावार में सुधार लाया जा सके।[2]

जल-असुरक्षा को नदियों के संबंध में भी विश्लेषित करना आवश्यक है। कहना न होगा कि भारत नदियों का देश है, लेकिन उनमें केवल पानी ही नहीं बहता बल्कि वे विभिन्न लोक-संस्कृतियों, जैव-विविधता, उत्तरजीविता और संस्कृतियों की वाहक भी हैं। विडम्बना है कि भारत में नदियों की 12, 363 किलोमीटर लंबी धारा प्रदूषित है।[3] लगभग 1.3 अरब लीटर सीवेज प्रति दिन और २६ करोड़ लीटर औद्योगिक और ठोस अपशिष्ट हर दिन गंगा में प्रवाहित किया जाता है।[4] यही कारण है कि आज गंगा अपने अंधाधुंध दोहन, महानगरों एवं कारखानों से उत्सर्जित प्रदूषण तथा जलीय अपशिष्ट के कारण गंभीर संकट से जूझ रही है। इसका असर मानव-परिस्थितिकी के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक पहलू जैसे कृषि-उपज की गुणवत्ता और पर्यटन पर भी पड़ा है।

दरअसल, हमारे यहाँ नदियों के सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व को नजरअंदाज करके उनके बारे में कोई आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक योजना सफल नहीं की जा सकती। भारतीय संस्कृति व सभ्यता के विकास में नदियों की

1. Chattopadhyay, S. (2022). India's growing water crisis, the seen and the unseen. The Hindu.
2. Narayanmoorthy, A (2023). Don't let water scarcity boil over. the Hindu Business.
3. Sengupta, S. (2018). Cleaning India's polluted rivers. Down to Earth, Center for Science and Environment.
4. Markandya, A. & Murty, M. N. (2004). Cost–benefit analysis of cleaning the Ganges: Some emerging environment and development issues. Environment and development economics, 9(1), 61-81.

अहमियत का ध्यान रखते हुए ही आधुनिक युग में उन्हें जीविका, सिंचाई और विद्युत-निर्माण के लिए उनका उपयोग किया जा सकता है। गंगा भारत की सबसे अधिक पवित्र नदी समझी जाती है। करोड़ों भारतवासियों के लिए यह धर्म और आस्था का जीवंत प्रतीक है। गंगा के किनारे बने मंदिरों, बाजारों व मेलों से भारत के पर्यटन बाजार को मजबूती मिलती है। लगभग 2,525 किलोमीटर लंबी गंगा देश के पाँच राज्यों के 97 शहरों से होकर गुजरती है और देश की 47 प्रतिशत मैदानी भूमि की सिंचाई करती है।[1] इस दृष्टि से गंगा समाज के आर्थिक आयाम को खुद में समाए हुए है। देश के सकल घरेलू उत्पाद की चालीस फीसदी हिस्सेदारी गंगा क्षेत्र से ही है। यह तथ्य गंगा के इसके आर्थिक महत्त्व को उजागर करता है।

हालांकि भारत दुनिया का अकेला ऐसा देश नहीं है जो इस तरह की त्रासदी से गुजर रहा हो। दुनिया में ऐसे अनेक देश है जो जल-संकट की गंभीर समस्या से जूझ रहे हैं, लेकिन कुछ देशों, खासकर इजराइल व मोरोक्को ने अपनी अनूठी प्रौद्योगिकी और मजबूत राजनीतिक इच्छा द्वारा जल- संरक्षण की एक नयी मिसाल पेश की है। मोरक्को ने न केवल जल-संभरण का अनूठा उदाहरण पेश किया है, बल्कि हवाओं की नमी को जमा कर रेगिस्तानी मैदानों को भी सींचने की कामयाबी हासिल की है।[2] इजराइल में एक समय जल दुर्लभ संसाधनों में से एक था, लेकिन उसने इस्तेमालशुदा पानी में से अस्सी फीसदी को पुनः शुद्ध करने की क्षमता हासिल की है। वह अपशिष्ट जल को उपचारित करके लगभग 85 फीसदी जल का उपयोग कृषि कार्य के लिए करता है। दस फीसदी का इस्तेमाल वह नदी प्रवाह बनाए रखने व जंगलों की आग बुझाने के लिए करता है, तथा पाँच फीसदी जल को समुद्र में विसर्जित कर देता है।[3] इसके लिए उसने नियोजित जल-प्रबंधन और पारिस्थितिकीय तंत्र की सुरक्षा के लिए निवेश में बढ़ोतरी की है। इसके लिए समाज में इसके प्रति जागरूकता बढ़ाई गयी है। न केवल आवश्यक नियम-कानून बनाए गए, बल्कि कानूनों को भी ठोस रूप से भी क्रियान्वित किया गया। इन देशों से हमें प्रेरणा लेनी चाहिए।

इस दिशा में पिछले कुछ वर्षो से सरकार द्वारा भी औद्योगिक व शहरी अपशिष्ट जल की रिसाइकलिंग पर ध्यान दिया जा रहा है। साथ ही गंगा व अन्य नदियों की सफाई का कार्य भी चल रहा है। मोदी सरकार ने गंगा कार्य मंत्रालय

1. Dutta, V., Dubey, D., & Kumar, S. (2020). Cleaning the River Ganga: Impact of lockdown on water quality and future implications on river rejuvenation strategies. The Science of the total environment, 743, 140756.
2. Down to Earth. (2016), From Morocco to Yemen, many squeeze water out of fog. Center for Science and Environment.
3. Hazony, D. (2015). How Israel Is Solving the Global Water Crisis. The Tower Magazine, (31).

का अलग निर्माण भी किया और गंगा नदी के प्रदूषण को समाप्त करने और नदी को पुनर्जीवित करने के लिए 'नमामि गंगे' नामक एक एकीकृत गंगा संरक्षण मिशन की स्थापना करके गंगा-सफाई के प्रति अपनी प्रतिबद्धता भी दिखाई। पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय ने प्रत्येक घर तक पाइप वाली जल आपूर्ति प्रदान के लिए 'हर घर जल' योजना की शुरुआत की है। देश के बड़े भाग से भूजल संसाधनों की समस्या दूर करने के लिये मंत्रालय ने 'अटल भूजल योजना' भी चलाई है जिसका प्राथमिक उद्देश्य देश में सामुदायिक भागीदारी द्वारा भू-जल प्रबंधन की स्थिति में सुधार लाना है। जिसमें विभिन्न भू-आकृतिक, जलवायु संबंधी, जल भू-वैज्ञानिक और सांस्कृतिक स्थिति के पहलुओं का प्रतिनिधित्व करने वाले सात राज्यों में पहचान किये गए भू-जल की कमी वाले प्रखंडों में 'टॉप-डाउन' और 'बॉटम अप' दृष्टिकोण का मिश्रण अपनाया गया है। उम्मीद है कि इससे कुछ हद तक स्थिति में सुधार आएगा। लेकिन कुल मिला कर हमें एक ठोस और किफायती समग्र जल नीति की आवश्यकता है जो जल संरक्षण और प्रबंधन को कारगर बनाने में मदद कर सके।

निष्कर्षात्मक अवलोकन

जल जीवनदायक है- इस भाव को व्यवाहारिक जीवन में आत्मसात करने की आवश्यकता है। न केवल व्यक्तिगत स्तर पर बल्कि कानूनी व प्रबंधकीय स्तर पर भी जल-प्रबंधन व संरक्षण को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जल-संरक्षण की बड़े पैमाने पर व्यवस्था और परंपरागत जल स्रोतों को भी पुनर्जीवित करने की जरूरत है। नियोजित जल-प्रबंधन, कचरे के उपचार के साथ-साथ पर्यावरण और पारिस्थितिकी की सुरक्षा के लिए निवेश को बढ़ाया जाना चाहिए। कानूनी स्तर पर, न केवल आवश्यक विधि-निर्माण किया जाए, बल्कि कानूनों को ठोस रूप से क्रियान्वित भी किया जाए। इसके लिए सरकार और जनता के बीच साझी जिम्मेदारी सुनिश्चित करने के साथ-साथ पर्यावरणीय सुरक्षा हेतु अधिक से अधिक जानकारी व सूचनाएँ सार्वजनिक दायरे में स्थानीय स्तर पर उपलब्ध कराने की योजना होनी चाहिए। राज्य को समाज की वे परम्पराएँ रेखांकित करनी होंगी जो पर्यावरण रक्षा के साथ सांस्कृतिक रूप से संबद्ध हैं। यह काम भी मुश्किल नहीं है पर इस आसान काम के लिए भी लोगों में चेतना जगानी होगी। कुल मिलाकर, इन तमाम प्रयासों, नवाचार,पारदर्शिता, जबाबदेही और मजबूत राजनीतिक इच्छा के सहारे हम जल-संकट से उबरने में कामयाब हो सकते हैं। अन्यथा आने वाली पीढ़ियों के लिए स्थिति बदतर होती जाएगी।

संदर्भ

1. Aayog, N. I. T. I. (2018). Composite Water Management Index–A National Tool for Water Measurement, Management and Improvement. Government of India, New Delhi.
2. अग्रवाल, अनिल. और नारायण, सुनीता(1997). बूँदों की संस्कृति. फोर्थ रिपोर्ट ऑन द स्टेट ऑफ इंडियाज एनवायरमेंट. सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट.सीएसई, दिल्ली
3. Chattopadhyay, S. (2022). India's growing water crisis, the seen and the unseen. The Hindu.
4. Down to Earth. (2016), From Morocco to Yemen, many squeeze water out of fog. Centre for Science and Environment.
5. Down to Earth. (2016).78 % of sewage generated in India remains untreated. Centre for Science and Environment.
6. Dutta, V., Dubey, D., & Kumar, S. (2020). Cleaning the River Ganga: Impact of lockdown on water quality and future implications on river rejuvenation strategies. The Science of the total environment, 743, 140756.
7. Hazony, D. (2015). How Israel Is Solving the Global Water Crisis. The Tower Magazine, (31).
8. Markandya, A. & Murty, M. N. (2004). Cost–benefit analysis of cleaning the Ganges: Some emerging environment and development issues. Environment and development economics, 9(1), 61-81.
9. मिश्र, अनुपम. (1993). आज भी खरे है तालाब. प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
10. Mujumdar, P. P., & Jain, S. K. (2018, April). Hydrology in ancient India: Some fascinating facets. In EGU General Assembly Conference Abstracts, Vienna, Austria
11. Narayanmoorthy, A (2023). Don't let water scarcity boil over. the Hindu Business.
12. Ramesh, M. (2022). Following Chanakya's water neeti. The New Indian Express.
13. Sengupta,S. (2018). Cleaning India's polluted rivers. Down to Earth, Centre for Science and Environment.

14. Singh, P. K., Dey, P., Jain, S. K., & Mujumdar, P. P. (2020). Hydrology and water resources management in ancient India. Hydrology and Earth System Sciences, 24(10), 4691-4707.

15. Srinivasan, T. M. (1976). Measurement of rainfall in ancient India. Indian Journal of History of Science Calcutta, 11(2), 148-157.

16. World Bank (2023) How is India addressing its water needs? The World Bank.

❑ ❑ ❑

राष्ट्रीय एकता में भाषा की भूमिका

–अपर्णा तिवारी

सौ रुपये के नोट और एक सफेद कागज के टुकडे में क्या फर्क है? विचार करने पर इसका जवाब हमारे मन में यही आता है कि नोट से चीजें खरीदी जा सकती हैं और सफेद कागज के टुकड़े से नहीं। मगर कागज के टुकड़े में छपाई के अलावा क्या ऐसा है जो उसे नोट बनाता है। इसका जवाब है– भाषा और उस भाषा द्वारा किया गया वादा कि मैं धारक को 100 रुपये अदा करने का वचन देता हूं। अर्थात यह भाषा ही है जो उस कागज के टुकड़े को मूल्य में परिवर्तित करती है।

लिग्विस्टिक सोसाइटी ऑफ अमेरिका के एक शोध के मुताबिक वैश्विक स्तर पर सात हजार से अधिक वो भाषाएं हैं जो अब तक पता चल पाई हैं या पढ़ी जा सकी हैं। कितनी सारी भाषाओँ को अभी भी पहचानना और पढ़ा जाना बाकी है। वहीं भारत की बात करें तो 2011 की जनगणना के अनुसार यहां 19500 के करीब मातृभाषायें और बोलियां हैं। मानव सभ्यता की सबसे परिपक्व एवं विकसित, पांच हजार साल पुरानी मोहनजोदड़ो सभ्यता के शिलालेखों में लिखी अनेक लिपियां, भाषाएं अब तक पढ़ी नहीं जा सकी हैं। सदियों से ये अपने दौर की, अपने हिस्से की कहानियाँ पढ़े जाने और सुनाए जाने का इंतजार कर कर रही हैं।

भाषा के विभिन्न आयाम

सेपिन्यस: अ ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ मैनकाइंड समेत कई किताबों के लेखक प्रोफेसर युवाल नोआह हरारी कहते हैं– *"मानव सभ्यता में कहानियां कहना ही एक ऐसी कला है जिसके चलते हजारों सालों से सेपियन्स यानी इंसान पूरी दुनिया की लाखों प्रजातियों पर राज करते आए हैं।"* भाषा ने इंसानों को ताकतवर बनाया, वहीं

जो देश शिक्षा, युद्ध कौशल या खनिज संपदा के मामले में मजबूत थे उनकी भाषाओं को भी दुनिया में तव्वज्जो मिली। अंग्रेजी इसका उदाहरण है।

संयुक्त राष्ट्र में अरबी, चीनी, अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी और स्पेनिश समेत छह आधिकारिक भाषाएं हैं। जब साल 1946 में जब संयुक्त राष्ट्र ने अपनी आधिकारिक भाषाएं चुनीं, तो सदस्य केवल पांच भाषाओं पर सहमत हुए, अंग्रेजी, फ्रेंच, चीनी, स्पेनिश और रूसी। चूंकि संयुक्त राज्य अमेरिका ने वैश्विक मंच पर एक बड़ी भूमिका निभाई, इसीलिए अंग्रेजी को आधिकारिक भाषा के रूप में शामिल किया गया। फ्रेंच को कूटनीति की भाषा के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त थी इसीलिए फ्रेंच इस संख्या में शामिल हुई। जनसंख्या के हिसाब से चीनी सबसे अधिक इस्तेमाल की जाने वाली भाषा थी, जबकि स्पेनिश 20 देशों की आधिकारिक भाषा थी। वहीं सोवियत संघ एक प्रमुख राजनीतिक अंग था, इसलिए रूसी को भी शामिल किया गया था। साल 1973 में, महासभा ने अरबी को आधिकारिक भाषा के रूप में शामिल करने के लिए मतदान किया। इस प्रकार ये 6 भाषाएं 195 देशों के प्रतिनिधित्व का जरिया बनीं।

भाषा के क्षेत्र में अहम नाम और अमेरिका की प्रोफेसर डॉ लिंडा चावेज कहती हैं, "भाषा सिर्फ संचार का माध्यम नहीं है। ये एक वो ताकतवर जरिया है तो राष्ट्रीय पहचान को दिशा देते हुए कई समुदायों को एक साथ लाने का काम कर सकती है। जब एक देश अपनी भाषाओं को प्रोत्साहित करता है तो वो कितने ही लोगों को एक ऐसी माला में पिरोने का काम करता है जिसमें समझ, सहयोग और एक-दूसरे के प्रति अपनापन शामिल होता है।"

इस बात को दूसरे कुछ उदाहरणों से भी समझाया जा सकता है, जहां एकता के लिए एक भाषा का आना या सीखना ही जरूरी नहीं है। किसी एक देश में कई भाषाओं का अस्तित्व भी लोगों को एकजुट करने का काम करता है। आसान शब्दों में कहें तो भाषाएं वो पुल हैं जिनको पार करके एक तरफ से लोग दूसरी तरफ जा सकते हैं और असीम संभावनाओं के रास्ते पर चलते हुए मंजिले पा सकते हैं।

भाषा की भूमिका और उसका महत्व कई प्रकार से देखा का सकता है परंतु देश को जोड़ने के परिपेक्ष्य में भाषा अपना अहम योगदान निभाती है। हाल के दिनों में देखें तो कई अंतराष्ट्रीय प्रसिद्धि के लोग भारत के संदर्भ में कुछ लिखते हिंदी का प्रयोग करते नजर आते हैं, वे अपने साक्षात्कार में नमस्ते बोलते हैं। भारत सरकार भी देशों के संदर्भ में वहां की भाषा में ट्वीट करती है। यह कूटनीति का ही हिस्सा है इसके जरिए देश एक दूसरे के प्रति अपनत्व दिखाते हैं। इससे इतर ऐसे उदहारण

भी हैं जहां भाषा देश एवं राज्यों के विभाजन का कारण भी बनी। धार्मिक पहचान एक होने के बावजूद भी भाषाई मतभेद के कारण पाकिस्तान का विभाजन हुआ और बांग्लादेश बना। अर्थात भाषाएं हमेशा से ही सामूहिक अस्मिता से जुड़ी रही हैं और इसे लेकर लोग सदैव से अति संवेदनशील रहे।

भारत एवं भाषाएं

भारत में भाषाओं के संदर्भ में कहावत है, *'कोस कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी"*। भारत के एक ही राज्य के लोग कई भाषाओं में खुद को अभिव्यक्त करते हैं। भारत में भाषाओं की विविधता को गीतकार गुलजार के सहारे समझ सकते हैं, पंजाबी बोलने वाले, हिंदी फिल्मों के गाने उर्दू में लिखने वाले गुलजार रविंद्र नाथ टैगोर के लिखे को पढ़ने के लिए बांग्ला सीखते है।

भारत एक बहुभाषिक देश है, यहां 22 आधिकारिक भाषाएं हैं। इसके अलावा अनेकों भाषाएं, मात्रभाषाएँ एवं बोलियां भी हैं। इन भाषाओं को बोलने वाले अलग-अलग सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आते हैं। सबकी अपनी मान्यताएं हैं, इन मान्यताओं, परपंराओं को व्यक्त करने का माध्यम भाषा बनती हैं। यह सत्य है कि भावनात्मक तौर पर हम लोगों से ज्यादा जुड़े हैं, कई बार जाति तो कई बार धर्म के नाम पर, भाषा भी ऐसा ही तत्व है। जाति और धर्म में बंटे भारतीय समाज को भाषा ही जोड़ती है। मशहूर गीतकार जावेद अख्तर ने इसी संदर्भ में कहा है, *"भाषा रीजन की होती है रिलिजन की नहीं।"*

मगर भारत में हिंदी या अंग्रेजी को छोड़ दिया जाए तो किसी क्षेत्र विशेष के लोग अपनी मातृभाषा से इतर किसी दूसरी भारतीय भाषा को सीखने की कोशिश करते हुए कम ही दिखते हैं। आदर्श स्थिति की बात करें तो ये अलग-अलग भाषाएं ही मिल कर एक देश भारत बनाती हैं। यही विविधता है और यही विविधता अलग-अलग अनुभवों, गुणों वाले लोगों को एक धागे में पिरोती है और यही धागा सुसज्जित होकर भारत कहलाता है।

भाषा के लिहाज से देखें तो भारत में हिंदी बोलने वालों की संख्या 52 करोड़ से ज्यादा है यानी हिंदी संख्या के लिहाज से भारतीयों द्वारा सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। हिंदी के बाद बंगाली और मराठी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषाएं हैं। ऐसे में भारत में अक्सर ऐसी प्रवृति देखी गयी जब हिंदी को राष्ट्रीय भाषा बनाने या उसको थोपने की कोशिश की जाती रही। हिंदी को आधिकारिक या

राष्ट्रीय भाषा बनाए जाने की मांग करने वालों का तर्क है कि यह सबसे ज्यादा लोगों द्वारा बोली जाने वाली सबसे पुरानी भाषा है और इससे "एक भारत" की विचारधारा को बल मिलेगा। पर तर्क यह भी हैं कि भारत में सबसे प्राचीन भाषाएं तमिल और संस्कृत हैं। दोनों भाषाएं तीन से पाँच हजार साल पुरानी बताई जाती हैं। ऐसे में जब राष्ट्रीय एकता के नाम पर हिंदी को प्राथमिकता देने पर दिया जाता है तो तमिल भाषी इतिहास के तथ्यों को सामने रखते हुए इसे गलत बताते हैं। इस तरह तमिल बनाम हिंदी की बहस चलने लगती है। ये बहस कई बार इतनी बढ़ जाती है कि ये राष्ट्र को जोड़ने की बजाय दरारों को दिखाने का काम करती है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि दुनिया भर में बोल-व्यवहार के आधार पर इलाकों की सीमाएँ तय होती हैं, प्रांतों, प्रदेशों के नाम तय होते हैं। भारत जैसे देश में जब राज्यों का पुनर्गठन हुआ तो वो रूप निकलकर सामने आया जिसमें राज्य भाषायी आधार पर बने।

भारत में भाषा राष्ट्रीय एकता में क्या और कैसी भूमिका निभा सकती है, इसके जवाब पर अलग-अलग मत हैं। भाषाशास्त्री और वरिष्ठ पत्रकार अजित वडनेरकर लिखते है, "द्रविड़ भाषी क्षेत्रों में हिन्दी विरोध का मूल आधार आर्य आक्रमण का सिद्धान्त है। भारत में वैसे भी यूरोपीयों का आगमन दक्षिण-पश्चिमी भारत में पहले हुआ उसके बाद यूरोपीय बंगाल पहुंचे। द्रविड़ राजनीति को सदा ही इस विचार से प्रेरणा मिलती रही कि दुष्ट आर्यों ने जिनकी भाषा वैदिकी, संस्कृत थी, हिन्दी जिसकी वंशबेल है, द्रविड़ों को पराजित कर दक्षिण में धकेल दिया था।"

भारत में भाषाओं की चर्चा दक्षिण बनाम उत्तर के संदर्भ से भी समझी जा सकती है। दक्षिण-उत्तर मिलाप चाहे उत्तर में हो या दक्षिण में, जरिया हमेशा हिन्दी ही रही है। आज से एक हजार साल पहले आदि शंकराचार्य ने अपना देशाटन शुरू किया तो मुख्यत: उत्तर भारतीय भाषा यानी बहता पानी जो सबको समेटता चले में ही भ्रमण किया। जानकार कहते हैं कि उस दौर में निश्चित ही जो भी देश की संपर्क भाषा होगी, हिन्दी उसी की वारिस है इसमें किसी को संदेह नहीं होना चाहिए। काशी में उस दौर में भी द्रविड़ ब्राह्मणों का ठिकाना था। दक्षिण के विद्वानों का उत्तर भारत में बड़ा मान रहा। इसकी वजह भी भाषा ही बनी। संस्कृत और वेद-पुराणों पर उनका ऐसा अधिकार था कि अध्ययन-अध्यापन की दाक्षिणात्य धारा ही उनके नाम हो गई।

आगे चलकर यह खड़ी बोली से होते हुए हिंदुस्तानी में बदलती गई। बीसवीं सदी की शुरूआत तक हिंदी के लिए हिंदुस्तानी शब्द ही आम था। हिन्दुस्तानी का अर्थ हिन्दी न होकर वह भाषा थी जो हिंदी-उर्दू के मिलावट से बनी थी। उर्दू या

हिंदी का फर्क तो विभाजन के समय शुरू हुआ और आजादी के बाद तेजी से बढ़ा। यानी राष्ट्रीय एकता के मामले में भाषा पहले भी अपनी भूमिका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निभाती रहीं।

ऐसे में मेरी भाषा बनाम आपकी भाषा के बीच कुछ बातों पर गौर करना बेहद जरूरी है। कितनी ही भाषाओं में ऐसे शब्द हैं जो पूरी तरह से उसमें बसे हुए हैं मगर वो हैं किसी दूसरी भाषा के। उदाहरणार्थ, "हिन्दी" जिसका अर्थ है "हिन्द का" स्वयं फारसी भाषा का शब्द है। इसी प्रकार कुछ शब्द जिनकी उत्पत्ति किसी क्षेत्र विशेष से हुई वो उसी तरह दूसरी भाषा में समाहित हो गये। उदाहरणार्थ, 'लैपटॉप', भारत की हर भाषा में लैपटॉप को लैपटॉप ही कहा जाता है या 'योग', जो हिंदी भाषा का शब्द है, को विश्व के हर देश की भाषा में योग ही कहा जाता है। जानकार बताते हैं कि हिन्दी में अरबी-फारसी शब्दों की कुल संख्या शायद 15 हजार के आस-पास है मगर मराठी में यह संख्या हिन्दी के दुगने से भी ज्यादा है। अन्तर यही है कि हिन्दी में विदेशी शब्दों को जस का तस बरतने पर जोर रहता है, वहीं मराठी में उसे अपने अनुकूल ढाल लिया जाता है। जैसे मराठी ब्राह्मणों का एक पदनाम है फड़नीस, यह मूलतः फारसी भाषा का शब्द फर्द-नवीस (लेखा-जोखा रखने वाला) था। यह स्थापित करता है कि भाषाएँ किस कदर एक-दूसरे में रची बसी हुई हैं, जो कि दिखती अलग हैं मगर मूलतः एक सी हैं, ऐसे में किसी एक भाषा का प्रभुत्व और दूसरे की हीनता की बहस स्वयं में बेमानी है।

भाषा एवं राष्ट्रीय एकताः वैश्विक दृष्टिकोण

अन्य देशों में भाषा राष्ट्रीय एकता में कैसी भूमिका अदा कर रही है इसको कुछ देशों के उदाहरण से समझा जा सकता है। उदाहरणार्थ- चीन में मंदारिन बोली और लिखी जाती है, ये चीन की आधिकारिक भाषा है। एकजुट हुए चीन के पहले सम्राट चिन शी हुआंग के समय से चीन में एक देश, एक भाषा पर जोर दिया जाता रहा। आज भी चीन इस बात पर बल देता है कि एक भाषा में यकीन करना संविधान और कानून के तहत सही है साथ ही ये मातृभूमि और सभी समुदायों के प्रति सम्मान का प्रतीक भी है। चीन का मानना है कि एक भाषा के इस्तेमाल से बराबरी, एकता और विकास का प्रोहत्साहन होता है। चीन की विकास यात्रा इस बात की पुष्टि करती हुई प्रतीत होती हैं परंतु चीन से इतर स्विटजरलैंड जैसे देश भी हैं, जहां राष्ट्रीय एकता के लिए कई भाषाओं को सीखना प्रोत्साहित किया जाता है। ये देश अपनी भाषायी विविधता के लिए जाना जाता है। स्विटजरलैंड में फ्रेंच, जर्मन,

इटैलियन एवं कुछ अन्य भाषाएं अस्तित्व में हैं और लोग इन्हें सीखने के लिये प्रयासरत रहते हैं। स्विटजरलैंड का मानना है कि ये भाषाएं लोगों को जोड़ने के लिए पुल का काम करती हैं।

कनाडा में भी फ्रेंच और अंग्रेजी दोनों ही भाषाएं सीखने पर जोर दिया जाता है और इसे सरकार से नीतिगत समर्थन भी मिलता है। बेल्जियम में तो तीन आधिकारिक भाषाएं हैं – डच, फ्रेंच और जर्मन। बेल्जियम का मानना है कि कई भाषाएं, विविधताओं वाले देशों को जोड़ने का काम करती हैं, साझी विरासत और साझी पहचान के प्रति सम्मान राष्ट्रीय एकता के लिए जरूरी है और ये तभी संभव है जब आप अलग-अलग भाषाओं को जानें और सम्मान दें। सिंगापुर में भी चार आधिकारिक भाषाएं हैं, हालांकि यहाँ की कामकाज की भाषा अंग्रेजी है मगर सिंगापुर बहुभाषाओं के प्रति सम्मान पर जोर देता है और इसे राष्ट्रीय एकता के लिए आवश्यक तत्व मानता है।

भाषा एवं राष्ट्रीय एकता

भाषा एवं राष्ट्रीय एकता को लेकर दुनिया के भाषा से जुड़े जानकारों के अपने-अपने मत रहे हैं। भाषायी इतिहास की प्रोफेसर डॉ सारा जॉनसन के अनुसार- “भाषा सिर्फ संचार का माध्यम नहीं हैं। ये एक वो तरीका है जिससे आप अपने सांस्कृतिक विरासत और पहचान के अहम प्रतीक की तरह इस्तेमाल कर सकते हैं। एक देश जो सभी भाषाओं का सम्मान करे और समान अवसर दे वो एक ऐसी नींव को जन्म देगा जिसकी इमारत राष्ट्रीय एकता को दर्शाएगी। कई भाषाओं के जरिए समाज को बेहतर बनाया जा सकता है।”

भाषाओं की विशेषज्ञ प्रोफेसर मारिया टॉरेस के अनुसार– “भाषा देश को जोड़ने के मामले में एक स्तंभ का काम करती हैं। ये नागरिकों को लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में हिस्सा लेने, सहयोग करने और बात करने के काम आती है। कोई देश भाषा के जरिए अपनी विकास यात्रा को तय कर सकता है।”

भाषाई मनोवैज्ञानिक डॉ चेन वेई के मुताबिक, “भाषा से जुड़ी ऐसी नीतियां जो सबको समान अवसर और शिक्षा दे, वो कई मायने में राष्ट्रीय एकता को बढ़ाती हैं और साझी विरासत को अधिक मजबूत करती हैं।”

ऐसे में राष्ट्रीय एकता के लिए भाषा के कौन से रूप को चुनना है, इसे लेकर दो रास्ते हैं।पहला वो रास्ता जिस पर चलने वाले लोग ये कहते हैं कि एक भाषा

के इस्तेमाल से देश में एकता आएगी। दूसरा वो रास्ता जिस पर चलने वाले लोग ये कहते हैं कि कई भाषाओं को एक माला में पिरोने से असली एकता देश में आएगी। दोनों रास्तों पर चलने वालों के अपने तर्क हैं।

ऐसे में एक आसान जवाब भारत के मशहूर लेखक भीष्म साहनी के लेख "राष्ट्रीय एकता और भाषा की समस्या" से मिल सकता है। इस लेख में भीष्म साहनी ने लिखा था, "भाषा के नाम पर लोगों को हांका नहीं जा सकता। मैं तो कहूंगा कि सियासतदान को भाषा के पीछे–पीछे चलना चाहिए, उसके विकास–क्रम को समझना चाहिए, भाषा खुद उसे रास्ता दिखाएगी, भाषा के आगे–आगे चल कर उसका मार्गदर्शन नहीं करना चाहिए।"

भारत की बात करें तो इतनी विभिधता वाले देश में पहला रास्ता तो संभव भी नहीं है। यहां ज्यादातर राज्यों की अपनी-अपनी भाषाएं हैं, उन भाषाओं के अंदर बोलियां हैं। ऐसे में हमारे पास दूसरा रास्ता बचता है। जहां किसी पर कोई एक भाषा थोपने की बजाय लोगों को भारत की अलग-अलग भाषाओं को सीखने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। अलग-अलग प्रदेशों की भाषा सीखने से हम वहां की संस्कृति, साहित्य और लोक-व्यवहार से परिचित होंगे जो कि राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त करेगा।

❑ ❑ ❑

वैश्वीकरण के दौर में संस्कृत की भूमिका

–डॉ. वन्दना यादव
सहायक आचार्य, संस्कृत
राजकीय कला महाविद्यालय, चिमनपुरा

शोध सार – वैश्वीकरण शब्द का प्रयोग आज आम हो गया है। संपूर्ण विश्व का एक धरातल पर होना, विश्व की एकमतता, नये अन्तरसंबंधों का विकास तथा आधुनिकीकरण के नवीन आयाम इत्यादि के स्वरूप वैश्वीकरण के अंतर्गत आते हैं। वैश्वीकरण प्रारंभिक रूप में आर्थिक संदर्भ में देखा जाता था परंतु अब केवल आर्थिक ही नहीं वरन सामाजिक, राजनैतिक, पर्यावरणीय, शैक्षिक एवं सांस्कृतिक तथा भाषाई विषयों में भी समाविष्ट है। वैश्वीकरण के दौर में पश्चिम से आयातित भाषा एवं संस्कृति का जिस तेजी से विस्तार हुआ है उससे भारतीय भाषा एवं संस्कृति के समक्ष अस्तित्व का संकट उत्पन्न हो गया है। भौतिकता, मानवीय संबंधों की शिथिलता, पाश्चात्य जीवन शैली के प्रति लोगों का बढता मोह चिंता का विषय बन गए हैं। संस्कृत भाषा एवं संस्कृति का ह्रास होता जा रहा है। प्रस्तुत लेख में यह वर्णित किया जाएगा कि क्या संस्कृत भाषा एवं वैदिक संस्कृति इन झंझावातों से उबरकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम रख पायेगी? क्या हम अपनी सांस्कृतिक विरासत 'संस्कृत भाषा' को अक्षुण्ण रख पायेंगे? क्या वैश्वीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों से निपटने में संस्कृत भाषा कोई नवीन संभावना तलाश कर पा रही है? क्या इस नवीन विश्व व्यवस्था में में संस्कृत एवं सनातन संस्कृति अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज कर पायेगी?

मुख्य शब्द– वैश्वीकरण, संस्कृति, संस्कृत, चुनौती, विरासत, मूल्य, आदर्श, पर्यावरण, योग, संगणक।

संस्कृत संसार की प्राचीनतम परिष्कृत भाषा है।संस्कृत में निबद्ध शास्त्र वैदिक एवं लौकिक तथा दर्शन का सर्वकालिक, सार्वभौमिक एवं सार्वजनीन महत्व है। आजकल वैश्वीकरण (Globalisation) सर्वत्र चर्चा का विषय है। संस्कृत मनीषियों द्वारा हजारों वर्ष पूर्व वैश्वीकरण का प्रतिपादन 'वसुधैव कुटुंबकम्', 'यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्' इत्यादि रूप में किया गया था। ऋषियों के लिए संपूर्ण विश्व एक परिवार, एक धरा के समान ही था।

"आ नो भद्राः क्रतवो यंतु विश्वतोऽ। दब्धासो अपरीतास उद्भिदः।।"[1]

हमें ऐसे शुभ संकल्प प्राप्त हों जो सर्वथा अविचल हों और जो हमें उत्तरोत्तर उत्कृष्ट जीवन की ओर ले जाने वाले हों। इस मंत्र में उद्घोष किया गया है कि जो कुछ भी श्रेष्ठ, शिव,भद्र,कर्म, ज्ञान है वह सभी दिशाओं से सभी देशों से हमारे पास आए। यही वैश्वीकरण का मूल मंत्र था। जो कल्याणकारी उदात्त एवं श्रेयस्कर है उससे सभी लाभान्वित हो। वह एक देश का न रहकर संपूर्ण धरा (विश्व) का हो जाए। संस्कृत साहित्य में पदे पदे सार्वजनीन हित की कामना की गई है। व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि पर ध्यान केंद्रित किया गया है। यहां सभी के सुख की कामना की गई है परंतु आज के दौर में बढ़ते बाजारवाद में नैतिक मूल्यों में तेजी से क्षरण हुआ है। इसने भारत की महान् सांस्कृतिक विरासत की नींव हिला दी। भारतीय संस्कृति के जीवन मूल्य एवं आदर्शों में लोगों की आस्था न्यून होती जा रही है। भाषा एवं संस्कृति के महान दुर्ग को धराशाई करने का प्रयास किया गया। आज हम अपने कर्तव्य एवं जीवन मूल्यों से दूर होते जा रहे हैं। विडंबना है कि जिस धरोहर से हम विमुख हो रहे हैं उसी धरोहर संस्कृत की पाश्चात्य द्वारा मुक्त कंठ से प्रशंसा की गई है।

आज संपूर्ण विश्व में योग का व्यापक प्रचार-प्रसार हो रहा है योग ऋषियों, महर्षियों तथा तपस्वियों की अनुभूत साधना का वैचारिक आदर्श है। वस्तुतः योग जीवन को सार्थक बनाने वाले साधनों में उत्तम साधन है। यह शरीर को सुगठित, मन को नियंत्रित और आत्मा को उद्भाषित करता है। यह सभी उत्थानों का सबसे मुख्य आधार एवं सारस्वत उपलब्धि का अक्षुण्ण स्रोत है। साल 2015 से शुरू कर प्रत्येक वर्ष 21 जून को मनाया जाने वाला 'योग दिवस' संपूर्ण विश्व के जन को निरोगी एवं स्वस्थ देखना चाहता है। योग मानव व प्रकृति के बीच सामंजस्य के साथ स्वास्थ्य और मानव कल्याण का एक समग्र दृष्टिकोण है। योग हमारी प्राचीन भारतीय परंपरा का एक अमूल्य उपहार है। योग शब्द साधन और साध्य दोनों का वाचक है। ऋग्वेद

1. यजुर्वेद 25/14

के एक मंत्र में यह शब्द इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त हुआ है–

"यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन। स धीनां योगमन्विति।।"[1]

गीता में योग के संदर्भ में कहा गया है-

"योगस्थ: कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्ध्यसिद्धयो समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।"[2]

दार्शनिक दृष्टि से अनुप्राणित 'आयुर्वेद' भारतवर्ष में विकसित प्राचीनतम चिकित्सा विज्ञान है। इसका दार्शनिक आधार 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' (शरीर ही योग तथा भोग का पहला साधन है) ही इसका वैशिष्ट्य है। आयुर्वेद के आचार्यों ने शरीर एवं उसे प्रभावित करने वाले सूक्ष्म तत्वों का गहन परिशीलन कर चिकित्सा शास्त्र को एक दार्शनिक आधार प्रदान किया जो कि पूर्णतया व्यावहारिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य हेतु उपादेय हैं। इस प्राचीन चिकित्सा पद्धति का भी संपूर्ण विश्व में व्यापक प्रचार-प्रसार होना चाहिए।

सृष्टि जगत के मूल तत्व का अन्वेषण वैदिक ज्ञान की विशेषता है। अखिल ब्रह्मांड में एक ही मूल तत्व है जिससे जगत की उत्पत्ति हुई है। तत्व द्रष्टा ऋषियों ने ब्रह्म में प्राणी जगत् तथा प्रकृति जगत् के एकत्व का प्रतिपादन किया है। प्रकृति के एक-एक तत्व के साथ तादात्म्य स्थापित कर विश्व ऐक्य की भावना को अंगीकार किया है- "एकोऽहं बहुस्याम:।"[3] अखिल ब्रह्मांड में जो भी चल-अचल स्थित है वह सभी चेतना से व्याप्त है। ऋषि ने प्रकृति के प्रति समग्र दृष्टि विकसित करते हुए त्यागपूर्वक उपभोग का उपदेश दिया है।

"ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्यस्विद्धनम्।।"[4]

आज जब संपूर्ण विश्व पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान खोजने का प्रयास कर रहा है तब वैदिक मूल्यों को आत्मसात करने की आवश्यकता है जिससे वर्तमान समस्याओं का समाधान संभव है। यदि वैदिक मानवीय मूल्यों का व्यावहारिक जीवन में हम प्रयोग करें तो संपूर्ण विश्व एक नवीन ऊर्जा, नवीन संकल्प, नवीन साधन,

1. ऋग्वेद 1/18/7
2. श्रीमद्भगवद्गीता 2/48
3. छान्दोग्योपनिषद् 6/2/3
4. ईशावास्योपनिषद्, 1

नवीन अनुशासन से अनुप्राणित हो सकेगा। वैदिक वांग्मय में यह स्वीकार किया गया कि व्यक्त जगत एक अविभक्त ब्रह्म की ही नाना रूपों में अभिव्यक्ति है। वैदिक दृष्टि में विकास एवं प्रगति का लक्ष्य है–विश्व शांति तथा अंतरराष्ट्रीय सद्भावना के प्रति समर्पित तथा प्रकृति जगत के संरक्षण एवं उसके प्रति मैत्री भाव के लिए संकल्पित मानवीय भावना का विस्तार। इस प्रकार की भावना से मानव की मूलभूत भौतिक आवश्यकताओं एवं मानसिक आकांक्षाओं को पूरा करने वाली एक न्यायसंगत विश्व व्यवस्था स्थापित हो सकेगी। उस विश्व व्यवस्था में परस्पर सामंजस्य, सामरस्य तथा अन्योन्याश्रित सहभाव की स्थापना हो सकेगी। संस्कृत साहित्य की परंपरा सांप्रदायिक भावना को हतोत्साहित करती हुई स्वयं परमात्मा तथा उनके बीच संबंध की मूल प्रकृति को वास्तविक रूप में जाने पर बल देती है।अतः यह धर्म का विज्ञान है। उदाहरण के लिए आइंस्टीन को यह कहते हुए उद्धृत किया जाता है–

"Science without religion is lame& Religion without science is blind."[1]

धर्म के बिना विज्ञान लंगड़ा है, विज्ञान के बिना धर्म अंधा है। धर्म एवं विज्ञान पृथक् नहीं है। ब्रह्मांड का वैज्ञानिक अन्वेषण (एक्सप्लोरेशन) धार्मिक अनुभूति का ही हिस्सा है। आज किसी विशेष वस्तु की तुलना में हमें एक सुधारक अवधारणा जो विश्व को समग्रता है देखने में सहायक हो, की आवश्यकता है। इस दृष्टि से यह भी महत्वपूर्ण है कि आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक विकास साथ-साथ हों। आध्यात्मिक चेतना विनाश व क्षति का कारण कदापि नहीं होती है। विज्ञान व धर्म दोनों का मुख्य उद्देश्य मानवता की सेवा एवं सहायता करना है, इस सिद्धांत पर इनके बीच संधि करना संभाव्य है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी अकेले ही समस्याओं का हल करने में असमर्थ है। हमें अपने कर्मों, शोध योजनाओं और लक्ष्य के चयनार्थ अतिरिक्त निर्देशिका की आवश्यकता है। इस निर्देशिका का नैतिकता, दर्शन और आस्था के साथ सरोकार होना आवश्यक है। हमें कोई नई नैतिकताओं का आविष्कार नहीं करना है, हमारे नैतिक तंत्रों की हजारों साल पुरानी परंपरा हैं, वह मानव सभ्यता की स्थाई आधारशिलाएं हैं। वैज्ञानिक एपीजे अब्दुल कलाम का भी मंतव्य है–

"Ancient sanskrit literature is storehouse of scientific principles and methodology- The work of our own Sanskrit Scholars should be throughly examined and where possible integrated with modern science."[2]

विश्वमैत्री और विश्व बंधुत्व की भावना भारतीय परंपरा का एक अभिन्न अंग रही है। 'वसुधैव कुटुंबकम्, 'संगच्छध्वंङ्ग. सं वो मनांसि जानताम्' इत्यादि उदात्त

1. Isaacson,Walter, Einstien His life and Universe, Pocket books, 2008, Page no.390
2. Kalam, A.P.J.,Abdul, Ignited Minds, Penguin books, India, 2002, Pageno.87

भावनाएं समस्त संस्कृत वांग्मय में यत्र तत्र विकीर्ण हैं, जो भारतीय परंपरा को गौरवान्वित करती हैं।

आज संपूर्ण विश्व को एक इकाई मानकर चिंतन आरंभ हो गया है। इस चिंतन के प्रेरणा स्रोत दर्शन, धर्म, काव्य, कला, विज्ञान, तकनीकि, यातायात एवं सूचना क्रांति आदि हैं।अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि पृथ्वीलोक के मनुष्य जगत एवं प्रकृति जगत की अनेक ऐसी संभावनाएं हैं जिनका समाधान एक देशीय धरातल पर संभव नहीं है, इनके समाधान के लिए विश्वजनीन दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। सार्वदेशिक धरातल पर ही इनका समाधान संभव है। व्यक्ति जब अपने राष्ट्र तक ही सीमित न रहकर संपूर्ण वसुधा को अपना निवास स्थान समझने लगता है, उससे ममता करता है, उसे मानव की श्रेष्ठतम वृत्तियों का क्रीडा स्थल बनाने के प्रयास में लग जाता है तब उसकी भावनाएं व्यापक हो जाती हैं। अंतरराष्ट्रीय सद्‌भावना के कारण व्यक्ति विशाल हृदय वाला बन जाता है। वस्तुत: वैदिक वांग्मय मानव जाति के लिए प्रेरणादायक व आनंद तथा शांति की मधुर रस्मियों को प्रस्फुटित करने वाला है। आज सर्वत्र अशांति, अस्त्रों की होड़ परस्पर राष्ट्रों में ईर्ष्या पूर्ण वातावरण है। निखिल विश्व ही मानो बारूद के ढेर पर बैठा है।अत: वेद ज्ञान ही हमें संसार में शांतिपूर्वक, निर्भय होकर, आत्मविश्वास से पूर्ण आदर्शों की शिक्षा देते हैं–

"अभयं मित्रादभयमयमित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा न: सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।"[1]

अर्थात हमें मित्रों से भय न हो, शत्रु से भय न हो, जाने हुए पदार्थ से भय न हो, न जाने हुए पदार्थ से भय न हो, हमें रात्रि से भय न हो, हमें दिन में भय न हो। सभी दिशाएं हमारी मित्र हों। इस प्रकार के मंत्र विश्व की प्रत्येक इकाई को हृदय में परम शांति, प्रेम, स्नेह, मित्रता, व सुख को प्रदान करने की प्रेरणा देता है।

"मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।"[2]

अर्थात मैं संसार के प्रत्येक प्राणी को मित्र की दृष्टि से देखूं और निखिल जनों द्वारा स्नेहसिक्त मित्रवत् दृष्टि से देखा जाऊं तभी विश्व के नक्शे में 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना पूरित होगी। भारतीय परंपरा में प्रारंभ से ही वैश्विक दृष्टिकोण को अपनाया गया है तथा प्रकृति को भोग्या न समझकर मातृवत् व्यवहार किया गया है। क्योंकि समस्त जगत एक ही परम तत्व की अभिव्यक्ति मात्र है–

1. अथर्ववेद 19/15/6
2. यजुर्वेद 36/10

"वेनस्तत्पश्यन्ति गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदं सं च वि चौति सर्वं स ओत: प्रोतश्च विभू: प्रजासु।।"[1]

वैदिक संस्कृति समन्वय की संस्कृति रही है। संस्कृत साहित्य में अध्यात्म को अधिक महत्व दिया गया, परिणामस्वरुप सांस्कृतिक आदर्श त्याग का रहा, भोग का नहीं। इस त्याग की भावना द्वारा स्वाभाविक रूप से प्रकृति का संरक्षण होता रहा। प्रकृति के सभी तत्वों में एकत्त्व की चेतना ने सृष्टि को नष्ट होने से बचाया। जब हम सब एक समान हैं तो कौन किसके प्रति हिंसा करें? यह समभाव मनुष्य को प्रकृति के छोटे से छोटे कण के प्रति प्रति संवेदनशील बनाता है। आत्मीयता की भावना से प्रेरित व्यक्ति सबको एक परिवार का अंग मानता है। अत: पुन: वैदिक युग के उदात्त विचारों से जुड़ना होगा एवं संस्कृत प्रदत्त विचारों को व्यवहार में लाना होगा। वर्तमान वैश्वीकरण एक ऐसी बाजार आधारित व्यवस्था है जो पश्चिम के संपन्न देशों को विश्व के बाजार में अपनी पैठ बनाने का अवसर प्रदान करती है परंतु अब बाजारवाद के दायरे से बाहर निकल भाषा एवं संस्कृति को इसने नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। सनातन मूल्यों एवं आदर्शों में लोगों की आस्था क्षीण होती जा रही है, परंतु फिर भी संस्कृत भाषा के कारण ही भारत की पहचान एवं अस्मिता जुड़ी है अत: बाहरी चमक-दमक के वशीभूत न होकर हमें अपनी जड़ों से जुड़ना होगा एवं अपनी संस्कृति पर गर्व करना होगा।

भारतीय आश्रम व्यवस्था, निष्काम कर्म, अद्वैत दर्शन, महात्मा बुद्ध के मध्यम मार्ग, एकत्त्व की धारणा प्रभृति अनेकों सिद्धांत संस्कृत में निबंध हुए जिनके आगे विदेशी भी नतमस्तक हुए।अंग्रेज विद्वान विलियम जेम्स, विल्सन, कनिंघम, ग्रियर्सन आदि ने भारतीय क्लासिकल ग्रंथों का अंग्रेजी अनुवाद कर यूरोप के लोगों का भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से साक्षात्कार कराया। मैक्समूलर, मैकडॉनल्ड, कीथ, वेबर, विंटरनित्ज आदि विद्वानों ने पश्चिम के देशों के सामने संस्कृत में निबद्ध भारतीय संस्कृति की अथाह निधि को खोल कर रख दिया। वस्तुत: भारतीय संस्कृति का मूलमंत्र 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' पर आधारित है। वर्तमान भूमंडलीकरण के मूल में आत्मनिष्ठता, प्रतिस्पर्धा एवं अवसरवादिता है अत: सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। वैचारिक धरातल पर इसका प्रभाव भी देखने को मिल रहा है। इस व्यवस्था का हिस्सा बनकर लोग गौरवान्वित महसूस कर रहे हैं। शाश्वत जीवन मूल्यों में आस्था क्षीण होती जा रही है। मशीन आधारित इस संस्कृति ने मनुष्य को यंत्रवत्

1. यजुर्वेद 32/8

एवं संवेदना शून्य बना दिया है। परंतु भारतीय सनातन परंपरा जो संस्कृत में निबंध है स्वयं में ही संपूर्ण है। जीवन को समुन्नत करने वाले उपादान उसमें प्रचुरता से समाहित हैं। पश्चिम की संस्कृति का अंधानुकरण त्याग कर अपनी संस्कृति पर हमें गर्व करना होगा। हमें अपनी जड़ों से जुड़ना होगा एवं बाहरी ताजा हवा के लिए थोड़ी गुंजाइश भी रखनी होगी, तभी सही मायने में वैश्वीकरण भारत की सभ्यता संस्कृति एवं भाषा के लिए सकारात्मक साबित हो सकेगा।

संस्कृत केवल भाषा नहीं अपितु यह विशाल वाङ्मय जो दुनिया की प्राचीनता एवं विज्ञान को स्वयं में समेटे हैं। इस भाषा में रोजगार, व्यवसाय के अनेक आयाम विद्यमान हैं। आज संगणकीय संस्कृत, नाट्यशास्त्रीय पाठ्यक्रम, वैद्य, कवि, भविष्यवक्ता, सामुद्रिक शास्त्र, वास्तुशास्त्री, योग, वैदिक कृषि, महाभारतीय नीति, रामायण कालीन मानवीय मूल्य, कालिदास जैसी काव्य कला, भर्तृहरि जैसी दार्शनिकता इत्यादि द्वारा लोक को पूर्ण दृष्टि दी जा सकती है। आज आवश्यकता है कि संस्कृत में निबद्ध नीति, उपदेश, धर्म, दर्शन, साहित्य, पुरुषार्थ का आज के संदर्भ में नवीन उद्भावनाओं के साथ व्यवहारिक जीवन में इसकी संश्लिष्ट करने की। सहस्राब्दी में सुरक्षित हमारा साहित्य हमें जीवन के विविध पक्षों को जीने की कला सिखाता है। विश्व में तमाम भाषाओं में हुए इनके अनुवाद से यह निर्विवाद सत्य है कि संस्कृत विश्व को अपना योगदान देने में सफल रही है। एक ओर इस भाषा के स्वरूप की अजस्र धारा पल्लवित हो रही है तो दूसरी और आधुनिक सर्जनाएं एवं नए द्वार भी विकसित हो रहे हैं। इसकी क्लिष्ट पदावली को सहज रूप में भी प्रस्तुत किया जा रहा है। कला विषयक चिंतन हो या वैज्ञानिक अवधारणाएं सभी का उन्मेष वेद में प्राप्त होता है। संस्कृत भाषा ने हमें जो अभिव्यक्ति प्रदान की है, जीवन के सर्वांगीण सिद्धांत बताए हैं, उन्हीं के द्वारा हम अंतरराष्ट्रीय स्तर पर परमोन्नत एवं पूर्णविकसित राष्ट्र के आदर्श के रूप में देख सकते हैं। आज आवश्यकता है कि हमें ऐसा समन्वित प्रयास करना होगा कि कला के साथ-साथ विज्ञान के आयामों को समन्वित कर ऐसा दृष्टिकोण विकसित करें जिससे भारतीय ज्ञान- विज्ञान को दुनिया के समक्ष अनुकरणीय तरीके से प्रस्तुत कर पाएं। विदेशी वैज्ञानिक भी संस्कृत भाषा के महत्व को स्वीकारते हैं। वैज्ञानिक शोपेनहावर का भी मंतव्य है-

"In the whole world there is no study so beneficial and so elevating as that of Oupnekhat (Upanishads)- It has been the solace of my life, it will be the solace of my Death."[1]

1. English translation by Max Muller, The Upanishads, New York, Dover Publication,P. 436-437

इस भाषा की वैज्ञानिकता का अध्ययन करके ही अनुसंधान संस्थान नासा ने 1987 में ही संस्कृत को कंप्यूटर के लिए सर्वोत्तम भाषा घोषित किया था।पाश्चात्य भाषा वैज्ञानिकों ने पाणिनी व्याकरण को मानवीय बुद्धिमत्ता की सर्वोत्कृष्ट रचना कहा है। अमेरिका की संस्था नासा ने संस्कृत भाषा को अंतरिक्ष में मैसेज भेजने के लिए उपयोगी माना है।क्योंकि वाक्य के उल्टे होने पर भी इसमें अर्थ परिवर्तन नहीं होता। संस्कृत एक ऐसी भाषा है जिसे बोलने में जीभ की सभी संवेदिकाओं का प्रयोग होता है एवं इसके बोलने से शरीर में ऊर्जा का संचार तथा रक्त प्रवाह बेहतर होता है। संस्कृत में इतनी वैज्ञानिकता होने के कारण ही अमेरिका, रूस, स्वीडन, कनाडा जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, आस्ट्रेलिया आदि देशों में बच्चों को संस्कृत पढ़ाई जाने लगी है।

पूरा संसार एक समग्रता है। वैदिक सनातन परंपरा की यह कामना है कि संसार के सभी अवयवों में जहां एक ओर एकता एवं प्रेम के बंधन में ग्रंन्थित परस्पर निर्भरता एवं अन्योन्याश्रितता का विकास हो वहीं दूसरी ओर एक दूसरे की भिन्नताओं के प्रति आदर भाव का भी पल्लवन हो। इस दिशा में यह प्रयास होना चाहिए कि विभिन्न संस्कृतियों के बीच आदान-प्रदान हो, सभी संस्कृतियों का सहज विकास हो तथा उन्हें किसी विशेष सांचे में ढालने के प्रयास नहीं किये जाएं। विश्व के मनुष्य समाज से यह अपेक्षा है कि वह शांति एवं विकास का मार्ग प्रशस्त करे तथा अपने अस्तित्व के लिए इस पृथिवीलोक को सुरक्षित बनाए रखने में समर्थ सिद्धि सके। मंगल कामना है- 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे संतु निरामया:। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दु:ख भाग्भवेत्।' हितोपदेश में भी कहा गया है-

"अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम्।।"[1]

जब चित्त उदार बनता है, मन महामना बनता है, जब चेतना का विकास होता है, तब पूरी वसुधा एक कुटुंब के रूप में परिणत हो जाती है।

संस्कृत केवल भाषा नहीं है बल्कि ज्ञान की सुविकसित प्रणाली है। संस्कृत ने ही 'वसुधैव कुटुंबकम्' का संदेश पूरी दुनिया को दिया। केवल शब्दों में नहीं संस्कृत में मानवीय एकता के इस भाव को अतीत में चरितार्थ भी किया। इसी वजह से दुनिया के कई विद्वानों ने संस्कृत को अपनाने में रुचि दिखाई। व्याकरण के आधार पर संस्कृत दुनिया की सबसे ज्यादा वैज्ञानिक व्यवस्थित एवं संपन्न भाषा है। आधुनिक

1. हितोपदेश 1/70

युग में संस्कृत का महत्व बढ़ रहा है क्योंकि कंप्यूटर के लिए संस्कृत सर्वाधिक वैज्ञानिक भाषा है यह पाश्चात्य विद्वानों द्वारा भी उद्घोषित किया जा रहा है। जानकारी एवं वर्णित विषयों में भी संस्कृत एक बेजोड भाषा है। संस्कृत वह ज्ञान की परम्परा है जो संपूर्ण विश्व को अंधकार से प्रकाश की ओर चलने का संदेश देती है। वैसे तो संस्कृत आम बोलचाल की भाषा के रूप में प्रयोग में नहीं प्रयोग नहीं है लेकिन सभ्यता, संस्कृति एवं इतिहास जानने के लिए महत्वपूर्ण है।यही कारण है कि यूनेस्को जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठन भी संस्कृत को पूरे विश्व समुदाय की अमूल्य धरोहर मानते हैं। सर्वदा ध्यातव्य है कि भाषा केवल अक्षर, शब्द भंडार की यांत्रिक व्यवस्था मात्र नहीं होती यह अपने साथ बहुत सारे विचार, दुनिया को देखने का नजरिया देती है एवं एक वैकल्पिक विश्व की रचना भी करती है। संस्कृत की विरासत संभाल कर भारत भारत रह सकेगा और समकालीन विमर्श में सार्थक उपस्थिति बना सकेगा। संस्कृत की ज्ञान राशि की यह विशेषता है कि उसमें अद्भुत बहुलता है, विचारों का प्रजातंत्र है, जिसमें विविधता की स्वीकारोक्ति है। इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखकर पंडित नेहरू ने कहा था कि 'अगर मुझसे पूछा जाए कि भारत का सबसे बड़ा खजाना क्या है और श्रेष्ठतम विरासत क्या है तो असंदिग्ध रूप से यही कहूंगा कि-संस्कृत भाषा और साहित्य और जो कुछ उसमें है। यह उत्कृष्ट विरासत है और जब तक यह जीवित है, हमारे समाज के जीवन को प्रभावित करती है, तब तक भारत की मेधा अक्षुण्ण बनी रहेगी।'

❑ ❑ ❑

जैविक हथियारों के प्रयोग से मानवाधिकारों का उल्लंघनः जीवन के अधिकार के विशेष सन्दर्भ में

–डॉ प्रदीप कुमार*

1. परिचय

वर्तमान समय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का समय है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के प्रयोग के आधार पर ही किसी राष्ट्र के विकास का अनुमान लगाया जाता है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की क्रांति ने विश्व स्तर पर प्रत्येक राज्य और उसमें रहने वाले व्यक्तियों तथा समाज की प्रगति में बहुत बड़ा योगदान दिया है। संपूर्ण विश्व एक वैश्विक गांव के रूप में दिखाई देने लगा है राष्ट्रों की सीमाएं अब व्यापार संचार आवागमन इत्यादि के लिए कोई मायने नहीं रखती है। इस विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के विकास का प्रभाव मनुष्य, पर्यावरण, जीव–जंतुओं कृषि इत्यादि पर सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही प्रकार के प्रभाव पड़ रहा है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने राष्ट्रों के मध्य होने वाले युद्ध पर भी नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका के पश्चात् अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रों के बीच शांति स्थापित करने तथा भविष्य में युद्ध में प्रबलता को कम करके बातचीत के अथवा मध्यस्थता के माध्यम से विवादों को सुलझाने पर बल दिया जा रहा है इसके लिए संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई है जो अपनी अनेक विभागों के माध्यम से अंतरराष्ट्रीय स्तर पर शांति व्यवस्था, मैत्री संबंध, मानवाधिकारों का राज्यों की सीमा पर संरक्षण को बल देने के लिए प्रयासरत है।

* उपाचार्य, विधि विभाग, विधि अध्ययन विद्यापीठ, बीबीएयू, लखनऊ।

संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा शस्त्र निरस्त्रीकरण के लिए अनेक सम्मेलन, सन्धिया एवं अभिसमय इत्यादि के द्वारा प्रयास किया परंतु आज भी लगभग प्रत्येक राष्ट्र गुप्त रूप से अधिक घातक शस्त्र बनाने के कार्य में व्यस्त हैं। जिसके पास जितने घातक शस्त्र है वह राष्ट्र उतना बलशाली माना जाता है द्वितीय विश्व युद्ध के समाप्त होने के पश्चात्, राष्ट्र युद्ध के समय परंपरागत शस्त्रों के उपयोग की जगह परमाणु हथियारों का उपयोग की बात करने लगे। तथा अनेक विकसित, विकासशील और अविकसित राष्ट्रों ने विश्व बैंक जैसे संस्थाओ से ऋण लेकर परमाणु हथियारों का निर्माण किया परन्तु वर्तमान समय में परमाणु शस्त्रों से एक कदम आगे बढ़कर रसायनिक व जैविक शस्त्रों का निर्माण जो कि परमाणु हथियारों से भी ज्यादा घातक होते है तथा इसके विध्वंसक प्रभाव न केवल उस राष्ट्र की सीमाओं के अन्दर होता है अपितु अन्य सीमावर्ती राष्ट्रों व दूरस्थ राष्ट्रों तक भी हो सकता है।

विगत एक वर्ष से अधिक समय से चल रहे रूस एवं यूक्रेन के युद्ध का एक मुख्य कारण यह भी है कि रूस ने यह आरोप लगाया है कि संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने अपनी जैविक हथियारों की प्रयोगशाला यूक्रेन में स्थापित की है जिसके लिए यूक्रेन ने अपनी सहमति दी है। वहीं अमेरिका का यह आरोप है कि रूस यूक्रेन में जैविक हथियारों के हमले की योजना बना रहा है। वर्ष 2020 में सम्पूर्ण विश्व जब कोविड-19 महामारी की चपेट में आया था तथा यह वृहद् रूप से मानव संहार का कारण बना था तो विश्व स्वास्थ्य संगठन से कई राष्ट्रों ने इस आशंका के साथ यह शिकायत की थी कि कोविड महामारी नहीं अपितु चीन के द्वारा छोड़ा गया जैविक हथियार है, जिसका दुष्परिणाम सम्पूर्ण विश्व पर पड़ा है।

अंतरराष्ट्रीय मानवीय कानूनों तथा अंतरराष्ट्रीय संधियों के अंतर्गत परमाणु हथियारों की भाग जैविक हथियारों का प्रयोग भी प्रतिबंधित है सशस्त्र में जैविक हथियारों का प्रयोग करना युद्ध अपराध है। इस आलेख में हम जैविक हथियारों, उनकी विशेषताओं तथा उनके प्रयोग के परिणाम स्वरूप होने वाले मानवाधिकारों के उल्लंघन के बारे में जानेंगे।

2. जैविक हथियारों के संदर्भ में मानव अधिकार

जैविक हथियार एक विषाक्त संक्रामक वाहक होते हैं जो सार्वजनिक स्वास्थ्य को चुनौती उत्पन्न कर देते हैं। जिससे कम समय में ही बड़ी संख्या में लोग संक्रमण का शिकार होकर दम तोड़ सकते हैं। यह जैविक हथियार वायरस, बैक्टीरिया, कवक आदि जैसे सूक्ष्मजीव की तरह हैं अथवा जीवित जीवो द्वारा बनाए गए विषाक्त पदार्थ

होतें है जो जानबूझकर मनुष्यों, जानवरों व वनस्पतियों आदि में बीमारी फैला कर ज्यादा से ज्यादा मात्रा में जनहानि करने के उद्देश्य से बनाए जाते हैं तथा उन्हें प्रसारित किये जाते हैं।

जैविक हथियार हथियारों का एक बड़े वर्ग का उप समूह बनाते हैं जिन्हें कभी-कभी और अपरंपरागत हथियार या सामूहिक विनाश के हथियार कहा जाता है। जिसमें रासायनिक, परमाणु एवं रेडियोलॉजी हथियार भी सम्मिलित हैं। जैविक हथियारों का निर्माण एवं उपयोग वर्तमान समय में गंभीर चिंता का विषय बनता जा रहा है। संपूर्ण विश्व जैविक हथियारों के निर्माण एवं युद्ध में इसके उपयोग से बहुत ही चिंतित है।

जैविक हथियारों से उत्पन्न होने वाले घातक परिणाम एवं प्रभाव एक राष्ट्र की सीमा तक सीमित नहीं होते हैं अपितु अनेक राष्ट्रों को अपनी गिरफ्त में ले सकते हैं। बड़ी संख्या में मनुष्यों में जानवरों के मृत्यु के अतिरिक्त ऐसे जैविक अस्त्रों का उपयोग कृषि उत्पादन में कमी, आपदाएं, पर्यावरण में असंतुलन तथा अन्य आर्थिक नुकसान कर सकते हैं। जिनका व्यापक प्रभाव समस्त विश्व की राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था पर पड़ता है। जैविक हथियारों के प्रयोग से मानव जाति सर्वाधिक प्रभावित होती है तथा मानव के मानवाधिकार के घोर उल्लंघन होते हैं।

3. जैविक हथियार एवं जैविक युद्ध से तात्पर्य तथा उसका प्रभाव

जैविक हथियार, हथियारों के बड़े समूह का उपसमूह है जिन्हें अपरंपरागत हथियार अथवा सामूहिक विनाश का हथियार कहा जाता है। जैविक हथियार किसी वायरस, बैक्टीरिया अथवा कवक आदि जैसे सूक्ष्मजीवों या जीवित जीवों अथवा ऐसे जीव जो स्वयं में सुसुप्ता-अवस्था में होते हैं परंतु जैसे ही वह किसी मनुष्य अथवा जानवर के अंदर प्रवेश करते हैं या संपर्क में आते हैं वह सक्रिय होकर जीव के शरीर को नुकसान पहुंचाना आरंभ कर देते हैं। एंथ्रेक्स, बोटूलिन्म, टॉक्सिन और प्लेग जैसे जैविक अभिकर्ता मानव जाति एवं पशुधन के लिए एक कठिन तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौती उत्पन्न करते हैं।

जैविक युद्धः जैविक युद्ध विषाक्त अथवा रोगाणु-युक्त जैविक अभिकर्ता के माध्यम से शत्रु राष्ट्र अथवा विरोधी राष्ट्र में एक रणनीतिक अथवा सामरिक लाभ प्राप्त करने के लिए नियोजित तरीके से प्रवेश कराकर किया जाता है इस प्रकार के युद्ध को जैविक आतंकवाद भी कहा जा सकता है।

मानव पर प्रभाव: जैविक हथियारों का सर्वाधिक प्रभाव मानव जाति पर पड़ता है इसके प्रभाव से अकाल मृत्यु, संक्रमित रोग और अस्पष्टीकृत रोग जिनके कारणों का पता चिकित्सा क्षेत्र के लोगों को भी नहीं पता हो पाता है तथा उसका उपचार संभव नहीं हो पाता है। यह दुर्लभ बीमारी जो एक बड़ी आबादी को प्रभावित करती है पहले से रोग ग्रस्त व्यक्तियों में दुर्लभ-रुग्णता तथा उसके परिणामस्वरूप मृत्यु दर में बढ़ोतरी इत्यादि जैविक हथियारों के प्रयोग के परिणामस्वरूप मृत्यु दर में अचानक वृद्धि, अपंगता होना मानसिक रोगी होना इत्यादि प्रभाव होते है।

आर्थिक व्यवस्था को नष्ट करना: जैविक हथियार के उपयोग के कारण शत्रु राष्ट्र को युद्ध के साथ ही महामारी जैसे रोग, फसल नष्ट होना, पर्यावरण के अचानक परिवर्तन से आपदा आने के कारण दोहरी मार झेलनी पड़ती है जिससे उस राष्ट्र की पूरी अर्थव्यवस्था प्रभावित होती है जिसके परिणामस्वरूप उस राष्ट्र को अत्यधिक आर्थिक नुकसान होता है।

पर्यावरण पर प्रभाव: जैविक हथियारों के प्रयोग से पर्यावरण में बहुत ही घातक परिवर्तन हो सकते हैं। जानवरों में रोग के संक्रमण से उसमें घातक बीमारियां फैलना और उसके फलस्वरूप मृत्यु हो जाना मौसम का असमय परिवर्तित होना, अत्यधिक बारिश होना या ना होना, अतिवृष्टि से बाढ़ आना इत्यादि का प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता है जिसका नुकसान मानव समाज उठाता है।

कृषि एवं मत्स्य पालन व्यवस्था पर प्रभाव: जैविक हथियार के रूप में कीटाणु, विषाणु के प्रयोग से कृषि व्यवसाय, मत्स्य पालन व्यवसाय, मुर्गी पालन व्यवसाय, पशुपालन व्यवसाय इत्यादि कुछ ही दिनों में नष्ट हो जाते हैं जिससे ना केवल मनुष्यों को आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है परिणामस्वरूप राज्य की अर्थव्यवस्था पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

4. जैविक हथियार द्वारा मानव अधिकारों का उल्लंघन

जैविक हथियार युद्ध में बड़े पैमाने पर शत्रु राष्ट्र में विनाश के उद्देश्य से प्रयोग किया जाता है जिसमें न केवल राष्ट्र की सेना बल प्रभावित होती है अपितु पूरी जनसंख्या प्रभावित होती है। जैविक युद्ध में संक्रमण फैलाने वाले विषाणु एवं जैविक विषाक्त पदार्थों का उपयोग किया जाता है जो कि यह 21वीं सदी में बहुत ही विध्वंसक हथियार है।

इस प्रकार के युद्ध के माध्यम से शत्रु राष्ट्र का न केवल सेना बल को

प्रभावित किया जाता है, अपितु सेना का समर्थन करने व मनोबल बढ़ाने वाले राज्य के नागरिकों की मृत्यु कारित कर, खतरनाक रोग के संक्रमण फैला कर तथा उन्हें रोगी बना कर सामाजिक आर्थिक व्यवस्था को नुकसान पहुंचा कर राष्ट्र पर चंहु-ओर आक्रमण करके उसे कमजोर बनाने का प्रयास किया जाता है।

जीवन का अधिकार: जीवन का अधिकार प्रत्येक मनुष्य को उसके जन्म से ही प्राप्त होता है इसलिए समस्त मानवाधिकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं मूल्यवान मानव अधिकार 'जीवन का अधिकार' है। संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना तथा उसके द्वारा मानव अधिकारों के संरक्षण के उपायों के रूप में किए गए सभी अभिसमय, प्रसंविदा, सम्मेलनों एवं नवाचारों इत्यादि का मुख्य उद्देश्य मानव जीवन को संरक्षण प्रदान करना तथा प्रत्येक हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र पर यह दायित्व अधिरोपित करता है कि वह अपनी सीमाओं में रहने वाले प्रत्येक नागरिक के इस अधिकार को संरक्षित करने हेतु विधायन के माध्यम से प्रयास करे। जीवन का अधिकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 एवं मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 1948 के अनुच्छेद-3 तथा नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966 के अनुच्छेद 6(1) के अंतर्गत उल्लेखित किया गया है। जैविक हथियारों का उपयोग विरोधी अथवा शत्रु राष्ट्रों को कम समय में अत्यधिक हानि पहुंचाने के उद्देश्य से किया जाता है जिससे सैन्य रूप से नहीं अपितु अपने देश में सामाजिक, आर्थिक, व्यापारिक एवं राजनीतिक दृष्टि से भी कमजोर हो जाए तथा राज्य अपने नागरिकों के 'जीवन के अधिकार' को सुरक्षित करने में उसका ध्यान भटक जाए। क्योंकि जैविक हथियारों का सर्वप्रथम तथा सर्वाधिक प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है जैविक हथियारों के माध्यम से कम समय में बड़ी संख्या में जनहानि हो सकती है जिसमें निर्दोष व्यक्तियों की मृत्यु होती है जिन्हें यह भी नहीं पता होता है किन कारणों के कारण उनकी असमय मृत्यु हुई।

स्वास्थ्य का अधिकार: जीवन के अधिकार का तात्पर्य मात्र व्यक्ति के रूप में सांस लेने से नहीं अपितु गरिमा पूर्ण जीवन जीने से है जीवन का तात्पर्य स्वस्थ जीवन से है क्योंकि एक स्वस्थ शरीर का व्यक्ति ही अपने जीवन के प्रत्येक क्षणों का उपयोग न केवल अपने हितों के लिए अपितु राष्ट्र निर्माण में योगदान देकर सकता है। स्वास्थ्य का अधिकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन के अधिकार के अंतर्गत प्रवर्तनीय है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 1948 के अनुच्छेद 3 तथा नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा,

1966 के अनुच्छेद 6(1) के अंतर्गत उल्लेखित किया गया है। जैविक हथियार का सर्वाधिक प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर पड़ता है क्योंकि जैविक हथियार बड़ी तेजी से मनुष्यों को संक्रमित रोग फैलाते हैं। ये जैविक हथियार के लिए प्रयोग किये जाने वाले विषाणु, जीवाणु, फंगल इत्यादि के माध्यम से मनुष्यों में तेजी से संक्रमण फैलता है, ये रोग अथवा संक्रमण इस प्रकार का होता है जिसके बारे में चिकित्सकों को भी कोई जानकारी नहीं होती है अथवा उसके लक्षण समझ नहीं आतें तथा उसका कोई इलाज उस समय में संभव नहीं हो सकता है तथा लक्षण समझ करके इलाज करने करना संभव नहीं हो सकता। इस प्रकार मनुष्य बिना इलाज के बड़ी संख्या में मर जाते है।

भोजन का अधिकारः जैविक हथियारों का प्रयोग कृषि, मत्स्य, जीव जंतु तथा कुकुटपालन इत्यादि पर गंभीर रूप से होता है, जिसके परिणामस्वरूप पारिस्थितिक तंत्र पर भी पड़ता है। इन रासायनिक और जैविक हथियारों के माध्यम से पारिस्थितिक तंत्र में पाए जाने वाले फसलों, मानव उपभोग में आने वाले जीव जंतुओं पर प्रभाव पड़ता है। तथा इन पशु पक्षियों इत्यादि जो पहले से संक्रमित होते या तो उनकी मृत्यु हो जाती है या उन्हें खाने के वाद मानव को संक्रमण का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार खाने पीने की वस्तुओं को संक्रमित हो जाने के वाद व्यक्तियों के भोजन के मानव अधिकार जो कि जीवन के अधिकार का अभिन्न अंग है का उल्लंघन होता है।

स्वस्थ्य पर्यावरण का अधिकारः भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत सुभाष कुमार बनाम बिहार राज्य के बाद में न्यायालय ने 'जीवन के अधिकार' के अंतर्गत प्रदूषण मुक्त जल एवं वायु के उपयोग के अधिकार को संरक्षित किया है। जैविक एवं रासायनिक हथियारों के प्रयोग मात्र से होने वाले पारिस्थितिक तंत्र एवं पर्यावरण को नुकसान जीवन के अधिकार को संकट उत्पन्न करता है।

5. जैविक हथियारों के प्रयोग पर संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रतिबंध

निरस्त्रीकरण का शाब्दिक अर्थ शारीरिक हिंसा के प्रयोग के समस्त भौतिक व मानवीय साधनों का उन्मूलन, निरस्त्रीकरण एक ऐसा कार्यक्रम है जिसका उद्देश्य हथियारों के अस्तित्व और उनकी प्रकृति से उत्पन्न कुछ विशेष खतरों को कम करना है। विश्व में होने वाले विनाशकारी युद्धों के पीछे राष्ट्रों में शस्त्रीकरण की होड़ एक प्रमुख कारण रही है, चाहे वह शस्त्र परमाणु हथियार हो या जैविक हथियार। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात निरस्त्रीकरण के अनेक प्रयास किए गए, क्योंकि निरस्त्रीकरण को शांति का एक साधन तथा मानवता का संरक्षक समझा जाता है। निरस्त्रीकरण

का प्रयोजन राष्ट्रों को लड़ाई के साधनों से वंचित कर देना है। निरस्त्रीकरण के दर्शन के अनुसार युद्ध का एकमात्र प्रत्यक्ष कारण शस्त्र एवं हथियारों का अस्तित्व है। निरस्त्रीकरण का सिद्धांत इस संप्रत्यय पर खड़ा है कि शस्त्रों के कारण युद्ध न केवल भौतिक दृष्टि से संभव है बल्कि राजनीतिक दृष्टि से भी संभावना बन जाता है। मनुष्य इसलिए नहीं लड़ते कि उनके पास हथियार है वरन इसलिए लड़ते हैं कि उन्हें लड़ने के लिए आवश्यक समझते हैं।

इस कारण केवल जैविक हथियारों का निरस्त्रीकरण ही पर्याप्त नहीं है फिर भी यह आवश्यक कदम माना जा सकता है। निरस्त्रीकरण की दिशा में संयुक्त राष्ट्र संघ विशेष रूप से चिंतित एवं प्रयत्नशील है संयुक्त राष्ट्र संघ 1970-80 के दशक को निरस्त्रीकरण दशक घोषित किया, मई-जून 1978 में 1982 में तथा 1987 में संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में निरस्त्रीकरण पर सम्मेलन आयोजित किए गए थे।

रासायनिक हथियार निषेधः 13 जनवरी 1993 को रासायनिक हथियारों के विकास उनका निर्माण भंडारण और उनके प्रयोग पर प्रतिबंध लगाने हेतु एक संधि की गई। तत्पश्चात 29 अप्रैल 1997 को यह संधि लागू कर दी गई। इस संबंध में 13 अप्रैल 1993 को पेरिस में एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए थे जिसमें 160 देशों ने सहमति की, लेकिन इसे लागू करने के लिए कम से कम 65 देशों द्वारा इसका अनुमोदन किया जाना जरूरी था। 65 देशों के अनुमोदन के बाद इस संधि के कानूनी रूप लेने की अवधि 180 दिन थी इस हिसाब से 29 अप्रैल 1997 को यह रासायनिक हथियार निषेध संधि लागू हो गई।

जैविक हथियार से मनुष्यों, जानवरों फसलों, पर्यावरण जैसे मिट्टी, जल, वायु इत्यादि के माध्यम से संक्रमण फैला कर नुकसान पहुंचाने, मृत्यु कारित करने अथवा संक्रमित रोग फैलाने वाले जीवाणुओं, कीटाणु विषाणु आदि के उद्देश्य से किए जाते हैं। जो बहुत कम समय में अत्यधिक विनाश फैला सकते हैं। अतः प्रथम एवं द्वितीय विश्व युद्ध में होने वाले विनाश के पश्चात समस्त राष्ट्रों का ध्यान जैविक हथियारों के विध्वंसक परिणाम पर गया था। अतः संयुक्त राष्ट्र के द्वारा जैविक एवं रासायनिक हथियारों के विकास उत्पादन अधिग्रहण, हस्तांतरण भंडारण और इनके उपयोग पर प्रभावी ढंग से प्रतिबंधित करने हेतु जैविक एवं रासायनिक हथियार अभिसमय, 1972 के द्वारा प्रयास किया गया। इस अभिसमय को लगभग 170 राष्ट्रों के द्वारा अनुमोदित और हस्ताक्षरित किया जा चुका है परंतु यह संधि/अभिसमय जैविक युद्ध के विरुद्ध संरक्षण एवं बचाव के लिए अनुसंधान कर सकते हैं।

6. निष्कर्ष

जैविक हथियार किसी एक क्षेत्र विशेष में पहुंच को रोकने के लिए उपयोग किए जा सकते हैं यह हथियार घातक हो सकते हैं और इसका निशाना कोई व्यक्ति, लोगों का समूह अथवा पूरी जनसंख्या हो सकती है। 1993 में जैविक हथियारों के विकास, भंडारण एवं हस्तांतरण पर रोक लगाकर प्रतिबंध को और अधिक सुदृढ़ किया गया। परंतु आज भी विश्व के अनेक राष्ट्र जैविक हथियारों का निर्माण कर रहे हैं अथवा रक्षा एवं संरक्षण के लिए इस पर अनुसंधान कर रहे हैं। जैविक हथियारों का अनुसंधान भी जैविक युद्ध से कम नहीं होगा यदि अनुसंधान के समय भूलवश भी इसका संचरण हो गया तो, ना जाने कितने मनुष्यों के जीवन संकटापन्न हो सकते है।

सन्दर्भ

1. मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 1948।
2. नागरिक और राजनीतिक अधिकारों की अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा, 1966।
3. संयुक्त राष्ट्र चार्टर, 1945।
4. आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा, 1996।
5. जय नारायण पाण्डेय, भारत का संविधान, सेंट्रल ला एजेंसी, प्रयागराज, 51वां संस्करण, 2019।
6. डॉ एस. के. कपूर, मानव अधिकार एवं अंतरराष्ट्रीय विधि, सेंट्रल ला एजेंसी, प्रयागराज, 28वां संस्करण, 2010।
7. डॉ टी. पी. त्रिपाठी, मानव अधिकार, इलाहाबाद ला एजेंसी, प्रयागराज, 10वां संस्करण, 2015।
8. डॉ शिवदत्त शर्मा, मानव अधिकार, विधि साहित्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2006।
9. ब्रजकिशोर शर्मा, भारत का संविधान: एक परिचय, प्रेन्टिस हाल ऑफ इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, तीसरा संस्करण
10. द हिन्दू
11. दैनिक जागरण

❑ ❑ ❑

राजस्थान के संत साहित्य में पर्यावरण संरक्षण संबंधी मानवाधिकार चिंतन

–सुमन देवी शर्मा
राजकीय महाविद्यालय, चिमनपुरा

पर्यावरण सदियों से मानवीय जीवन का महत्वपूर्ण आयाम रहा है। पर्यावरण की उत्तम अवस्थाएं मानव जीवन को सुखद एवं स्वस्थ बनाती हैं जबकि निम्न दशाएं मानव जीवन को दुष्कर कर देती हैं। पर्यावरण सम्बन्धी चिन्तन हमें वैदिक साहित्य में तो प्राप्त होता ही है लेकिन उत्तरोत्तर यह विषय लोक सन्तों के साहित्य में भी व्याप्त होता गया। पर्यावरण को मानवाधिकार से जोड़कर देखा जाए तो यह चिन्तन वैदिक साहित्य से यात्रा करता हुआ लोक सन्तों की वाणी से सन्त साहित्य में लिपिबद्ध रूप में प्राप्त होता है। शुद्ध वातावरण में श्वास लेना, पेड़ों की छाया, फल, फूल, लकड़ी, औषधियां आदि पर्यावरण से प्राप्त करना मानवाधिकार के दायरे में आता है क्योंकि पर्यावरण मानव पर और मानव पर्यावरण पर निर्भर है, दोनों परस्पर आश्रित हैं। राजस्थान के प्रमुख सन्त रामदेवजी, जाम्भोजी, चतुरदासजी, विल्होजी, दरियावजी आदि के साहित्य में पर्यावरण सम्बन्धी मानवाधिकार के दर्शन होते हैं। जाम्भोजी कहते हैं – मोरै धरती ध्यांन वणासपति वासौ अर्थात् मैं धरती का ध्यान रखता हूँ। वह मेरे ध्यान में है और वनस्पति में मेरा वास है। सन्त साहित्य में कहा गया है कि सेतत सेतूं, जेरज जेरुं, इंडज इंडू, अइयालो उरघज खांणी अर्थात् समस्त योनियों में वहीं परब्रह्म परिभाषित हो रहा है। स्वेदज में स्वेद जरायुज में जरायु रूप में, अण्डज में अण्डे के रूप में और उद्भिज में रूप में वनस्पति के रूप में इस तत्त्व में परब्रह्म रमा हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्र में सन्त साहित्य में पर्यावरण सम्बन्धी मानवाधिकारों के पक्षों को खंगालने का प्रयास किया गया है।

सन्त साहित्य उस वटवृक्ष के समान है जिसको लोक सन्तों ने अपने हृदय की भावना से सींचा है, उसकी जड़े बहुत गहरे रूप से जमीं हैं, जो सैंकड़ों हजारो वर्षो से मानव को ज्ञान, उल्लास एवं अधिकार चेतन रूपी छाया प्रदान करता चला आ रहा है। सन्त साहित्य जहां पर्यावरण सम्बन्धी मानवाधिकारों की बात करता है तो वहीं कर्त्तव्यपरायणता का बोध भी कराता है।

मरूदेश राजस्थान में सन्त केवल धर्म के पालक, समाज सुधारक एवं जीव रक्षक ही नहीं बल्कि पर्यावरण के संरक्षक भी रहे। इन सन्तों ने तद्युगीन समाज को पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्द्धन के प्रति जागृत ही नहीं किया अपितु पर्यावरण संरक्षण के लिए जनसाधारण को चेतावनियां भी दी और अधिकारों से भी अवगत करवाया। इन्होंने पर्यावरण संवर्द्धन के साधनों एवं साध्यों को अपना प्रतीक बनाया ताकि पर्यावरण के प्रति जनसाधारण की चेतना व जागरूकता बनी रहे।

राजस्थान के सन्तों द्वारा अपने-अपने भूभाग में ओरण घोषित किये और ओरण भूमि को सन्तों की भूमि कहा जाता है। ओरण भूमि पर सन्तों के अधिकार होने के कारण सैकड़ों वर्षों के बाद भी भी इस ओरण भूमि पर कोई भी शासक अपना आधिपत्य नहीं कर पाया। पर्यावरण संरक्षण एवं पल्लवन की दृष्टि से ओरण भूमि का महत्वपूर्ण स्थान हैं। ओरण भूमि में सैकड़ों जीव-जन्तु स्वच्छंद विचरण करते हैं तथा हरे-भरे वृक्ष वातावरण को शुद्धता प्रदान करते हैं और वह उनका अधिकार भी है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह विश्वास है कि सन्तों से सम्बंधित ओरण में हरे-भरे वृक्ष काटने एवं मूक जीवों का आखेट करने पर सन्तों द्वारा अनिष्ट किया जाता है।

भारतीय न्यायपालिका ने संविधान के अनुच्छेद 21 की व्याख्या करते हुए जीवन के अधिकार में परम्परा, संस्कृति और विरासत, शिक्षा के अधिकार, आजीविका के अधिकार, प्रदूषण रहित जल एवं वायु के अधिकार तथा सन्तुलित पर्यावरण के अधिकार को भी सम्मिलित माना है।

जाम्भोजी का पर्यावरण संरक्षण हेतु यह मूल मन्त्र दिया है – जीव दया पालनी, रुख लीला न घावै। इस पद से ज्ञात होता है कि जाम्भोजी पर्यावरण संरक्षण, अहिंसा तथा परोपकार पर अत्यधिक बल देते थे। वे इसे मानव का कर्त्तव्य मानते थे। जाम्भोजी के अनुयायी पर्यावरण को अपना अधिकार मानते थे तब ही तो उन्होंने उसे बचाने के लिए अपनी कर्त्तव्यपरायणता दिखाते हुए प्राणोत्सर्ग किया। जाम्भो जी ने उन्होंने अपने धर्म नियमों की रचना पर्यावरण संरक्षण एवं मानवाधिकार की दृष्टि से की। जो प्रत्येक व्यक्ति जीव, स्थूल सूक्ष्म जड़-चेतन आदि के लिए सार्थक तथा उपयोगी है।

जाम्भोजी का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण था कि मानव जगत, जीव जगत व वनस्पति जगत तीनों परस्पर एक दूसरे पर पूरक व निर्भर है। एक का अभाव दूसरे के अस्तित्व के लिए खतरा है। इसलिए पर्यावरण सुरक्षा को जाम्भोजी ने प्रत्येक व्यक्ति के दैनिक जीवनचर्या का अभिन्न अंग मानकर कई धर्म नियम बताए। 29 धर्मों की आचार संहिता में कुछ इस प्रकार हैं–

1. हरा वृक्ष नहीं काटना।
2. जीव दया पालनी।
3. होम या हवन प्रतिदिन करना।
4. पानी ईंधन व दूध आदि को छान कर स्वच्छ कर व्यवहार में लेना।
5. थाट अमर रखवाना (बकरों को न काटना एव न ही बंध्याकरण करना।
6. बैलों का बंध्याकरण न करवाना।

सन्त साहित्य में भी कहा गया है कि मानव जीवन पारिस्थतिक सन्तुलन तथा पर्यावरण के गुण स्तर पर निर्भर करता है। पारिस्थितिक सन्तुलन सभी जीवधारियों की उत्तरजीविता के लिये अनिवार्य है। अतः जीवन का अधिकार पर्यावरण सन्तुलन के अधिकार का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। यदि किसी परिस्थिति या क्रिया–कलाप से पर्यावरण का प्राकृतिक–सन्तुलन प्रभावित होता है तो वह मानव जाति के विरुद्ध जीवन के अधिकार का हनन है और उसे मानवाधिकार–हनन के रूप में लिया जाना चाहिए।

मानव–विकास का इतिहास प्रकृति के नियंत्रण और दोहन में समाहित है। प्राकृतिक संसाधनों का सन्तुलित तथा विवेकपूर्ण दोहन एवं उपयोग मानव जाति की प्रगति का पर्याय है तो असन्तुलित तथा अविवेकपूर्ण दोहन विनाश का कारण बन सकता है। पर्यावरण का प्राकृतिक स्वरूप प्रकृति है। प्रकृति में प्राकृतिक व्यवस्था के अन्तर्गत परिवर्तन से पर्यावरण के भौतिक और प्राकृतिक तत्वों के प्रभाव तथा उपयोग से मनुष्य के आर्थिक एवं सामाजिक पर्यावरण निर्मित होते हैं। जैव विकास के सिद्धांत की दृष्टि से देखें तो मनुष्य सहित सम्पूर्ण जीव–जगत पर्यावरण की ही उपज है तथा उनका वर्तमान और भविष्य भी पर्यावरण पर निर्भर रहता है। अन्य प्राणियों की तुलना में पर्यावरण के सन्दर्भ में मनुष्य की भूमिका विशिष्ट है क्योंकि एक ओर तो वह दूसरे प्राणियों की भाँति पर्यावरण की उपज है तो दूसरी ओर पर्यावरण का नियंत्रक या संचालक भी। वह पर्यावरण को समृद्ध करने की बौद्धिक क्षमता तो रखता ही

है, जाने-अनजाने उसके विनाश के उपाय भी करता रहता है, भले ही वैसा करना उसके लिये आत्मघाती हो।

इसी सन्दर्भ में भगवान श्री जाम्भोजी की वाणी उनके धर्मोपदेश तथा वाणी में निहित शिक्षा तथा धर्म आयामों के द्वारा विश्व की अनेक ज्वलंत समस्याओं का समाधान किया जा सकता है बशर्ते उनकी व्यावहारिक शिक्षाओं को दैनिक जीव व्यवहार में क्रियान्वित करना होगा। वर्तमान में मानव समाज के सामने अनेक समस्याएं खड़ी हैं जैसे पर्यावरण प्रदूषण, लालची लोग, औद्योगिक बहुराष्ट्रीय कंपनियों की गला काट प्रतिस्पर्धा, आतंकवाद, सामाजिक अपराधीकरण, विकृत मानसिकता, अनैतिकता, अत्याचार, मानव उत्पीड़न, अराजकता, भौतिक संसाधनों के प्रति बढ़ता मानव का मोह आध्यात्मिकता से वंचित, अत्यधिक तनाव आदि समस्याओं के कारण प्रत्येक क्षेत्र में मानवीय मूल्यों में गिरावट आ रही है। आर्थिक असमानता मानव समाज को खोखला कर रही है। समाज में अनेक प्रकार की बुरी आदतें एवं नशावृत्ति फैल रही है। इन समस्याओं से आज मानव अशान्त असुरक्षित एवं आन्तरिक द्वंद्व से ग्रसित है। इन सभी समस्याओं का समाधान जाम्भोजी की नित्य प्रति जीवन जीने की पद्धति में खोजा जा सकता है।

पर्यावरणीय समस्याओं से पार पाने का एकमात्र रास्ता जाम्भोजी के धर्मनियमों को अपने जीवन में आत्मसात करना ही एकमात्र समाधान है। जाम्भोजी के अनुयायी जाम्भोजी की वाणी के शब्दों को अक्षरशः अपने जीवन में ढालने का प्रयास करते हैं ये बातें उनके संस्कारों के द्वारा अवचेतन मन में घर कर जाती हैं। इसी कारण जहाँ कहीं भी पर्यावरण संरक्षण के नियमों का उल्लंघन होता है। हरे वृक्षों को कोई काटता है या मूक वन्य प्राणियों का कोई व्यक्ति शिकार करता है तो ये लोग एक ही झटके में अपने जीवन का सर्वस्व त्यागकर अपने प्राणों की आहुति देकर भी ऐसे कार्यों का विरोध करते हैं वृक्षों को काटने नहीं देते हैं। निरीह और मूक प्राणियों के रक्षार्थ चाक-चौबंद रहते हैं तथा प्रकृति के नियमों का अक्षरशः पालन करते हैं एवं प्रकृति व पर्यावरण विकास में वायु, जल, अग्नि, सूर्य की विकिरणों से होने वाले सतुलित तंत्र को विशेष महत्त्व देते हैं।

पर्यावरणीय समस्याओं का पूर्व बोध जाम्भोजी को आज से 550 वर्ष पूर्व हो गया था। अपने पूरे जीवनकाल में प्रकृति की गोद में ही उनका आश्रयस्थल था–

हरी कंगहडी मंडप मैडी, ताहा हमारा वासा।

पर्यावरण के अवयवों का आपस में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। प्रकृति-दोहन की मानवीय क्रियाओं से पर्यावरण के कारकों में असन्तुलित परिवर्तन हो रहा है जिसका स्वाभाविक रूप से समायोजन या परिमार्जन सम्भव नहीं है। फलतः पर्यावरण में हानिकारक अवशिष्ट उत्पन्न होते हैं जिससे पृथ्वी, जल, वायु आदि दूषित हो जाते हैं। इस प्रकार पर्यावरण प्रदूषित होता जाता है और प्राणि मात्र को घातक ढंग से प्रभावित करता है। प्रदूषणों को उत्पन्न करने वाले तत्वों को प्रदूषक कहते हैं। प्रदूषक प्राकृतिक या मानव निर्मित हो सकते हैं। प्रायः प्राकृतिक प्रदूषकों के कुप्रभावों का प्रबन्ध प्रकृति स्वयं कर लेती है परन्तु मानव-निर्मित प्रदूषकों को निष्क्रिय करने की क्षमता उसमें कम होती है। अतः प्रदूषण मुख्य रूप से मनुष्य के कृत्यों से उत्पन्न होता है और यह मानवाधिकारों का हनन है। पर्यावरण के प्रदूषकों का माध्यम विशेष रूप से वायु, जल या स्थल होता है।

यद्यपि जाम्भोजी के जीवन काल में पर्यावरण प्रदूषण की कोई सीमा नहीं थी। तदपि उन्होंने इस समस्या की भयंकरता को समझा और इसके समाधान हेतु अपने अनुयायियों को एक राह बताई। पर्यावरण संरक्षण के संबंध में जाम्भोजी ने जो विचार व्यक्त किए है उनके आधार पर उन्हें विश्व का प्रथम पर्यावरणविद कहा जा सकता है। आज पूरा संसार इस समस्या से चिंतित है। इसी कारण आज विश्व में जहाँ तहाँ जाम्भोजी की विचारधारा पहुँच रही है। वहाँ-वहाँ के देश एव प्रबुद्ध नागरिक जाम्भोजी की विचारधारा को अपने जीवन में आत्मसात करते जा रहे हैं। जिस दिन पूरा विश्व जाम्भोजी की विचारधारा को पर्यावरण के संबंध में अपना लेगा उस दिन विश्व में पर्यावरण से संबंधित कोई समस्या नहीं रहेगी। प्रकृति के प्रमुख तीन घटक है मानद वनस्पति एव मानवेतर प्राणी। इन तीनों में मानव अपनी रक्षा खुद कर सकता है। शेष दोनों घटकों की रक्षा मानव की इच्छा पर निर्भर है। मानव का हित इन दोनों को सुरक्षित एवं संतुलित रखने में है। इन तीनों घटकों में जब संतुलन रहता है तो पर्यावरण शुद्ध रहता है और इनमें जब संतुलन बिगड़ता है तो पर्यावरण दूषित हो जाता है। इन्हीं सब बातों को समझकर जाम्भोजी ने पर्यावरण संरक्षण के लिए मूल मन्त्र दिया, वह है—

जीव दया पालनी, रूंख लीला न घावै।

प्रायः सभी सन्तों ने हिन्दू-मुस्लिम धर्मानुयायियों में धर्म के नाम पर प्रचलित जीव हिंसा की कठोरतम शब्दों में निन्दा की है। वैसे मध्यकालीन संतों के पूर्व नाथ योगी सम्प्रदाय में भी धार्मिक-हिंसा तथा मद्यपान विरोधी स्वर मिलता है। संत

दरियाव साहब ने हिन्दू–मुस्लिम दोनों धर्मों में प्रचलित हिंसक वृत्ति का विरोध करते हुए कहा है–

वेद कितेब, कुरान, गीता पढ़े, जीव का दरद नहिं कबहिं आने।
जीव का दरद फुरमान साई किया, सोई दरवेश जो कहा माने।।

संत सुखराम ने जीव दया को धर्म का सार बताते हुए किसी भी जीव को न सताने का उपदेश दिया है–

सुखराम संसार में, जीवदया धर्म सार।
घात न काहूं बंछिये, जेता घट आकार।।

संत प्रेमदयाल ने जीव को न सताने का संदेश दिया है–

दया राखिये दिल में, जीव न सतावो कोय।
प्रेमदयाल या सीखूं कूं, चित में राखो पोय।।

संत उमाराम ने 'हुक्का' आदि का सेवन करने से भी जीव हिंसा होती है–

होका पंती होका भर, पाणी माय जीव मर।
तमाकू को बड़ो पाप, अगनी देव दीनों सराप।।

षाव पीव सुंग भाइ, सातु पीढ़ी नरकां जाइ।
तमाकु को पोटो कांम, इयू कह उमाराम।।

धर्म के नाम पर मांस–भक्षण के साथ मदिरा सेवन को भी बहुत बढ़ावा दिया गया था। इसके कारण भी समाज में अनैतिकता और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिल रहा था। इस कारण संतों ने मदिरा सेवन का भी घोर विरोध किया। रेण–रामस्नेही संत भी इसका अपवाद नहीं है। इस सम्प्रदाय की न केवल नियमावली में नशीले पदार्थों के त्याग की शिक्षा दी गई है बल्कि इन संतों की वाणियों में भी मादक वस्तुओं के सेवन को निषेध किया गया है। रामस्नेही संस्थापक संत दरियाव ने नशे का निषेध करते हुए इसे आसुरी प्रवृत्तियाँ माना है–

दरिया अमल है आसुरी, पीयां होत शैतान।
राम रसायण जो पिवे, सदा छाक गलतान।।

रामस्नेही सन्तों ने संसार को असत्य मानकर उसकी नश्वरता का वर्णन किया

है। निर्गुण सन्तों की साधना अन्तर्मुखी थी। उनकी वाणी में साधनागत अनुभवों का वर्णन है। प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर उस पर रीझना और उसे आलम्बन मान कर उसके सम्बंध में कुछ लिखना उनका अभीष्ट नहीं था। उनके साहित्य में प्रकृति के दृश्यों के प्रसंग केवल ब्रह्म निरूपण, उपदेश और विरह के वर्णन में ही आये हैं। कहीं-कहीं प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण भी मिल जाता है। इन संतों प्रकृति को चित्रण का विषय न मानकर उसमें रम कर अपने परमात्मा से साक्षात्कार करना ही उनका ध्येय था। राम गुण का स्मरण करते-करते प्रसंगवश प्रकृति के मनोरम दृश्यों का अनायास ही कहीं पर चित्रण देखने को मिलता है। रामस्नेही सन्तों की वाणियों में प्रकृति का आलम्बनगत चित्रण बहुत कम देखने को मिलता है।

प्रकृति के आलम्बन रूप का वर्णन संत दरिया साहब ने मरूभूमि ने रूप में किया है–

जहाँ निर्जल धरती बहुत धूर, जहाँ साकित बस्ती दूर-दूर।
ग्रीष्म ऋतु में तपे भोम, जहाँ आतम, दुखिया रोम-रोम।।

संत पदुमदास ने दरियाव जी की जन्मलीला में प्रकृति का चित्रण किया है–

जहां रहया येक रात प्रात चढ़ीया गिरनारा।
चहुँ दिस झरणा झरे पुरब हे नदियाँ नारा।।

नाना विध जलकुंड तरू झुकि रहे अपारा।
आंबा निंबू दाष दाड़मांगीने पारा।।

नारेलां षजूर ओर फल रही बिदामां।
मानुं सिव कैंलास चहुँ दिस जन अभिरांमा।।

संतों को प्रकृति व पर्यावरण के माध्यम से उपदेश देने में पूर्ण सफलता मिली। ये संत परिस्थितियों के अनुकूल प्राकृतिक उपादनों के उदाहरण देकर अपनी बात कहते थे जो आम जन को सरलता से समझ में आ जाता था। संत दरिया साहब ने कहा है कि जब प्रेम की हवा चलती है तब सारे बुरे कर्म जल जाते है और आत्मा शीतल हो जाती है–

ब्रह्म अगनी ऊपर जलै, चलत प्रेम की बाय।
दरिया सीतल आतमा, कर्म कन्द जल जाय।।

संतों को प्रकृति व पर्यावरण के माध्यम से उपदेश देने में पूर्ण सफलता मिली।

ये संत परिस्थितियों के अनुकूल प्राकृतिक उपादनों के उदाहरण देकर अपनी बात कहते थे जो आम जन को सरलता से समझ में आ जाता था। संत दरिया साहब ने कहा है कि जब प्रेम की हवा चलती है तब सारे बुरे कर्म जल जाते है और आत्मा शीतल हो जाती है–

ब्रह्म अगनी ऊपर जलै, चलत प्रेम की बाय।
दरिया सीतल आतमा, कर्म कन्द जल जाय।।

इससे रामस्नेही सम्प्रदाय के संतों की पर्यावरणीय चेतना का पता चलता है कि उन्होंने पर्यावरण को सामाजिक चेतना का माध्यम बनाया।

जिस प्रकार जल के बिना मछली तड़पती है उसी प्रकार गुरु (परमात्मा) के बिना शिष्य (आत्मा) तड़पती रहती है–

मीन तड़पती जल बिना, सागर माहिं समाय।
जन दरिया ऐसी करी, गुरु कृपा मोहिं आय।।

पर्यावरणीय समस्याओं से पार पाने का एकमात्र रास्ता संतों धर्मनियमों को अपने जीवन में आत्मसात् करना ही एकमात्र साधन है। राजस्थान के संतों के अनुयायी उनकी वाणी के शब्दों को अक्षरशः अपने जीवन में ढालने का प्रयास करते हैं। ये बातें उनके संस्कारों के द्वारा अवचेतन मन में घर कर जाती हैं। इसी कारण जहां कहीं भी पर्यावरण संरक्षण के नियमों का उल्लंघन होता है, हरे वृक्षों को कोई काटता है या मूक वन्य प्राणियों को कोई व्यक्ति शिकार करता है तो ये लोग एक ही झटके में अपने जीवन का सर्वस्व त्यागकर, अपने प्राणों की आहूति देकर भी ऐसे कार्यों का विरोध करते हैं, वृक्षों को काटने नहीं देते हैं। निरीह और मूक प्राणियों के रक्षार्थ चाक-चौबंद रहते हैं तथा प्रकृति के नियामों का अक्षरशः पालन करते हैं एवं प्रकृति व पर्यावरण विकास में वायु, जल, अग्नि, सूर्य की विकिरणों से होने वाले संतुलित तंत्र को विशेष महत्व देते हैं।

इन्हीं प्राकृतिक नियमों को संतों ने स्वयं जिया भी था। उन्होंने पर्यावरण संतुलन के प्रति जोर दिया। उसी का नतीजा है कि उनके अनुयायी पर्यावरण तथा जीव-जंतु प्रेमी होते हैं। तद्‌युगीन परिस्थितियों एवं जीवन में पर्यावरण प्रदूषण की कोई सीमा नहीं थी। तथापि राजस्थान के संतों ने इस समस्या की भयंकरता को समझा और इसके समाधान हेतु अपने अनुयायियों को एक राह बताई। पर्यावरण संरक्षण के संबंध में जाम्भोजी, विल्होजी, संत दरियाव जी आदि ने जो विचार व्यक्त किए है उनके

आधार पर उन्हें पर्यावरणविदों की संज्ञा दी जा सकती है।

वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण प्रदूषण की समस्या से ग्रसित है। इसी कारण आज विश्व में जहां–जहां संतों की विचारधारा पहुंच रही है, वहां–वहां के देश एवं प्रबुद्ध नागरिक संतों की विचारधारा को अपने जीवन में आत्मसात् करते जा रहे हैं। जिस दिन पूरा विश्व इन संतों की विचारधारा को पर्यावरण के सम्बन्ध में अपना लेगा उस दिन विश्व में पर्यावरण से सम्बन्धित कोई समस्या नहीं रहेगी। प्रकृति के तीन प्रमुख घटक हैं – मानव, वनस्पति एवं मानवेत्तर प्राणी। इन तीनों में मानव अपनी रक्षा खुद कर सकता है। शेष दोनों घटकों की रक्षा मानव की इच्छा पर निर्भर है। मानव का हित इन दोनों को सुरक्षित एवं संतुलित रखने में है। इन तीनों घटकों में जब संतुलन रहता है तो पर्यावरण एवं प्रकृति शुद्ध रहती है और इनमें जब संतुलन बिगड़ता है तो पर्यावरण दूषित हो जाता है।

सम्पूर्ण जीव जगत वनस्पति पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निर्भर है। वनस्पति एवं वृक्षों की उपयोगिता के आधार पर मनुष्य उसे देवता मानकर उसकी पूजा करता आ रहा है। वृक्षों की इसी उपयोगिता एवं उसे प्राणयुक्त मानकर संतों ने अपने अनुयायियों में वृक्ष प्रेम की भावना जागृत की थी। पर्यावरण को शुद्ध रखने एवं लोगों में वृक्ष प्रेम की भावना जागृत करने के उद्देश्य से ही जाम्भोजी ने स्थान–स्थान पर खेजड़ी के वृक्ष लगाए थे, जो आज भी देखे जा सकते हैं। जाम्भो जी ने राजस्थान के रोटू गांव में हरी खेजड़ियों का बगीचा लगवाया जो पूरे गांव की सरहद में आज भी लहलहा रहा है। जाम्भोजी के अनुयायी विल्होजी ने वृक्षों की रक्षा का बहुत प्रचार–प्रसार किया था। उनके इस प्रचार–प्रसार का बिश्नोई समाज पर बहुत प्रभाव पड़ा। लोग वृक्षों के महत्व को अच्छी तरह समझने लगे एवं वृक्षों की रक्षा के लिए आत्मोसर्ग तक तैयार रहे। बिश्नोई लोगों के दिल में एक बात घर कर गई कि – सिर साटे रूंख रहे तो भी सस्तो जाण।

इस प्रकार हम पाते हैं कि राजस्थान के संतों में जाम्भोजी, संत दरियाव जी, विल्होजी, रामेदवीजी आदि पर्यावरण और मानव कल्याण के प्रति सजग थे और इस सजगता को उन्होंने राजस्थान क्षेत्र में ही नहीं अपितु विश्व में प्रसारित करने का प्रयास किया।

सन्दर्भ

1. माहेश्वरी, हीरालाल (संपादक एवं टीकाकार), जाम्भोजी की शब्दवाणी

(मूल व -टीका), शब्द सं. 2, पंक्ति 9

2. प्रो. हरिमोहन, मानव अधिकारी एवं पर्यावरण सन्तुलन, पृ. 93
3. चौड़वाल, एस., पर्यावरण संरक्षण एवं सतत् विकास, पृ. 62
4. सिंह, कोमल, पर्यावरण एवं संसाधन प्रबन्ध, पृ. 224
5. माहेश्वरी, हीरालाल, पूर्वोक्त, शब्द सं. 73, पंक्ति 1
6. जाम्भोजी कृत कलश मंत्र
7. दरियाव योग-दर्शन (हस्तलिखित), महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाश, जोधपुर, पृ. 135
8. कुमार, हरीश, रामस्नेही सन्तकाव्यः परम्परा एवं मूल्यांकन, अनुभव वाणी, पृ. 59
9. वही, पृ. 115
10. कुमार, हरीश, रामस्नेही सन्तकाव्यः परम्परा एवं मूल्यांकन, अनुभव वाणी, पृ. 187
11. शास्त्री, हरिनारायण, श्री दरियाव दर्शन, पृ. 113
12. वही, पृ. 123-24
13. कुमार, हरीश, पूर्वोक्त, पृ. 201
14. वही, पृ. 91
15. वही, पृ. 91
16. वही, पृ. 78

❑ ❑ ❑

राष्ट्रीय एकता में हिंदी भाषा का अवदान

–डॉ. अमित कुमार विश्वास

भाषा राष्ट्र की एकता–अखंडता और विचार–विकास के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत जैसे बहुविध भाषा–भाषी देश में विविधता में भी एकता की एक मिसाल है। राष्ट्रीय एकता ही वह भावना है जो भारत में विविध धर्मों, जातियों, भाषा, सभ्यता व संस्कृति के अनुयायियों को एक सूत्र में पिरो कर रखती है। समन्वयात्मक संस्कृति से आप्लावित भारतवर्ष को गुरुदेव रविंद्र नाथ टैगोर ने एक 'महामानव समुद्र' की संज्ञा प्रदान की है। समूचे विश्व को 'वसुधैव कुटुंबकम्' का पाठ पढ़ाने वाले भारत ने नवीन परिवर्तनों के दौर से गुजरते हुए भी बाह्य प्रभावों को स्वयं में आत्मसात करके उसे अपने में ढाल लिया। भारतीय भाषाओं और सांस्कृतिक प्रतिमानों को जानने व सीखने की ललक विदेशों तक अपनी पैठ बना चुकी है। भारतीय योग समूचे विश्व में अपना परचम लहरा रहा है। सनातन सामाजिक मूल्यों व सांस्कृतिक विविधताओं की अभिव्यक्ति व भाव संप्रेषण का सशक्त माध्यम भाषा ही है।

भारत की सांस्कृतिक एकता के विकास में अखिल भारतीय शब्दावली की भूमिका बहुत प्राचीन समय से हमारा भारत मूलभूत विज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी रहा है और उसकी सफलता निश्चय ही वैज्ञानिक तंत्र पर आधारित रही है। इसके फलस्वरूप हमारे यहाँ अनेक विषयों में पारिभाषिक शब्दावली विकसित हुई है, जिसका आयुर्वेद, योग, ज्योतिष और गणितीय गवेषणा से लेकर भौतिक विज्ञान तक सफलतापूर्वक प्रयोग होता था। संस्कृत भाषा ने भारतीय उपमहाद्वीप को जिस एकता के सूत्र में बाँधा था, कालांतर में उसका स्थान कई भाषाओं ने ले लिया। फिर ऐसा समय आया, जब इसमें से प्रत्येक भाषा का एक विशिष्ट व्यक्तित्व तथा अपनी संचार–प्रणाली विकसित हो गई।

हमारे देश में भाषाओं के आधार पर राज्यों का गठन हुआ है परंतु फिर भी लोगों को एकता के सूत्र में बांधने का सबसे सशक्त साधन भी भाषा ही होती है। भारत की बहुभाषिकता के बावजूद भी एकता और अखंडता को कोई खतरा नहीं है। क्योंकि भारत का परस्पर शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व रहा है। भारत में भाषाओं का स्वरूप क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक है। मातृभाषा व प्रादेशिक भाषा में शिक्षा प्रदान की जाती है। साहित्य सृजन किया जाता है परंतु हम सब की परंपराएं व संस्कृति के स्रोत एक ही हैं। भारतीय भाषाओं में परस्पर द्वेष व कटुता नहीं है। देश की एकता और अखंडता को बनाये रखने में हिंदी का अहम योगदान है। देश की स्वतंत्रता से लेकर हिंदी ने कई महत्वपूर्ण उपलब्धियां प्राप्त की हैं। देशवासियों में परस्पर संपर्क व विचारों का आदान–प्रदान हिंदी के माध्यम से ही होता है। मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, झारखंड, हरियाणा और बिहार हिंदी भाषा–भाषी प्रदेश हैं जबकि पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र के कुछ भागों में भी हिंदी का उपयोग निरंतर किया जाता है। हिंदुस्तान को जानना है तो हिंदी को जानना होगा। हिंदी ही वह खिड़की है जहां से पूरे हिंदुस्तान को देखा और समझा जा सकता है।

आज हिंदी दुनिया में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। इसे बोलने–समझने वालों की संख्या एक अनुमान के अनुसार साठ करोड़ से अधिक है। दुनिया के भिन्न देशों के चार सौ से अधिक केंद्रों पर हिंदी में अध्ययन–अध्यापन हो रहा है। देश के जीरोमाइल के पास स्थित महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, हिंदी को विश्व के मानचित्र पर स्थापित करने में सार्थक योगदान दे रहा है। मीडिया के सभी क्षेत्रों पर हिंदी का वर्चस्व है। भिन्न भाषाई समाजों में भी हिंदी की स्वीकृति बढ़ी है। वह चौपालों, चौराहों, आंदोलनों तथा इंटरनेट की आभासी दुनिया की गवाही देने वाली भाषा है। फेसबुक, ह्वाट्सएप सहित नई प्रौद्योगिकी में यूनिकोडित हिंदी ने अपनी जगह नई पीढ़ियों के बीच भी बनाई है। संसद से सड़क तक हिंदी इस देश के धड़कन की भाषा है। लेकिन इस तस्वीर का दूसरा पहलू भी मौजूं है कि आज हिंदी की सामाजिक हैसियत कम हुई है। हिंदी माध्यम के स्कूलों की दयनीय स्थिति से हम वाकिफ हैं।

मध्यवर्ग और हिंदी : कुछ वर्षों में भारत विश्व की सबसे तेज बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं वाला देश बन गया है। भारत का मध्यवर्ग योरोप की कुल आबादी से भी बड़ा है। इस बड़े बाजार में घुसपैठ करने के लिए पूंजीपति तबका बेचैन है। यहां बाजार का फैलाव सिर्फ महानगरों तक ही सीमित नहीं है बल्कि अब उसका विस्तार

छोटे शहरों, कस्बों से होता हुआ ग्रामीण इलाकों तक हो गया है। इस नए बाजार में सिर्फ अंग्रेजी के सहारे नहीं पहुंचा जा सकता, हिंदी इस काम में सबसे उपयोगी इस लिहाज से है कि आधा भारत संप्रेषण के लिए हिंदी का प्रयोग करता है और शेष आधे का बड़ा हिस्सा हिंदी आसानी से समझता है। शायद यही कारण है कि भारत के बाहर हिंदी पढ़ने वालों की संख्या में इजाफा हुआ है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को पता है कि मध्य वर्ग के पास आमदनी बहुत है और वे उपभोक्ता–संस्कृति के वाहक हैं अतएव साहित्य से लेकर विज्ञापनों के कथ्य मध्यवर्ग को केंद्र में रखकर तैयार किए जाते हैं। अब हिंदी का संघर्ष किसी बाहरी सत्ता या अंग्रेजी से कहीं अधिक मध्यवर्ग के दोहरे चरित्र और अवसरवादिता से है। यह मध्यवर्ग हिंदी का उपभोक्ता मात्र है, हिंदी उसके मनोरंजन की भाषा है। वह हिंदी की स्थिति को लेकर चिंतित दिखाई देता है, संगोष्ठियों में शरीक होता है और बातचीत में हिंदी की दुर्दशा का रोना रोता है लेकिन यही मध्यवर्गीय व्यक्ति हिंदी का साहित्यकार, पत्रकार और अध्यापक है जो इस लालसा में डूबा रहता है कि उसकी संतानों को अमरीका या यूरोप की नागरिकता मिल जाए। मध्यवर्ग के इस व्यावसायिक और अनैतिक व्यवहार ने हिंदी भाषा की भारी क्षति की है।

आज के प्रतिस्पर्धी दौर में भाषा–संस्कृति का मसला हाशिए पर है जबकि ग्राहक की नई जिजीविषा को बढ़ाना उसका अहम पहलू है। हिंदी को विस्थापित करने में हिंदी पुरोधाओं का भी योगदान है, वे बतौर 'स्टेटस' अंग्रेजी को अपनाते हैं। यह तो सच है कि आज अंग्रेजी का विश्वव्यापी बाजार है, वहां पैसा है, यश है, मान है, सबकुछ है तो फिर नई पीढ़ी इसे क्यों न अपनाएं। पर वह आत्म चेतना, राष्ट्रीयता, आत्मगौरव, मातृभाषा प्रेम, जन–चेतना कहां है, जिसके कारण आजादी के बाद बीबीसी के संवाददाता द्वारा साक्षात्कार चाहने पर गांधीजी ने कहा था कि "दुनिया को खबर कर दो कि गांधी अंग्रेजी नहीं जानता है, गांधी अंग्रेजी भूल चुका है।" गांधीजी की यह तीखी प्रतिक्रिया इसलिए थी कि वे महसूस कर रहे थे कि राजनीतिक स्वाधीनता देश की संपूर्ण स्वाधीनता नहीं है। भाषाई गुलामी से मुक्त किए बिना देश इसकी पराधीनता की गिरफ्त में आ जाएगा। अंग्रेजी शिक्षा नीति को लागू करने के लिए जब चार्ल्स वुड ने प्रस्ताव पारित किया था तो उनका सीधा सा मतलब था–अपना कामकाज साधने के लिए नौकरशाह तैयार करने के साथ–साथ भारतीय लोगों में से कुछ लोगों को 'डी–क्लास' (वर्ग–पृथक) और 'डी–नेशन' (देश–पृथक) कर अपने अनुकूल बनाना। साथ ही उनका अंतिम लक्ष्य भारत की जनता में सुख–सुविधा की ऐसी होड़ जगाना था, जिससे ब्रिटिश माल की खपत भारत में हो और नई–नई चीजों

का बाजार तैयार हो सके। विदेशी भाषा के माध्यम से उपभोक्ता संस्कृति को निर्मित कर मानसिक रूप से गुलाम बनाने की वह नीति थी। आज इसकी फिर से पुनरावृत्ति की लहर चली है। मानवीय समाज की बजाय उपभोक्ता समाज में तब्दील किया जा रहा है। इसका जवाब हिंदी बखूबी दे सकती है। जिस प्रकार स्लम डॉग मिलेनियर का जमाल, जो विष्टा के गढ्ढे में कूदकर जोश, पुरुषार्थ और उमंग के मैदान में निकलते हुए किसी अप्रत्याशित नायकी को हासिल करता है। नई पीढ़ी को हिंदी में संसाधन उपलब्ध करा दें, वह दुनिया में अपना परचम और भी बखूबी ढंग से लहरा सकता है। हम अपने बच्चों को सिर्फ बाजार में उपभोक्ता बनने के लिए न छोड़ दें अपितु अपनी भाषा के माध्यम से मानवीय समाज का एक अंग बनने दें। हिंदी भारतीय जीवन की सामाजिकता को आत्मसात करने वाली संपर्क भाषा है। हम सभी का यह प्रयास होना चाहिए कि भारतीय अस्मिता को वहन करने वाली यह भाषा ज्ञान, तकनीकी और रोजगार की क्षमता से संपन्न होकर विश्व भाषा बने। हिंदी में विश्व भाषा बनने की तमाम संभावनाएं मौजूद हैं। इन्हीं संभावनाओं को ध्यान में रखते हुए हिंदी को नवीन प्रौद्योगिकी से जोड़ना चाहिए। हिंदी भाषा–साहित्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति का बिगुल दुनिया भर में फैल रहा है। यहां यह गौरतलब है कि प्रत्येक भाषा और बोली में अपने क्षेत्र की संस्कृति या कुछ एक वर्गों की संस्कृति प्रतिबिंबित होती है, परंतु कोई एक भाषा नहीं है, जिसने सभी अंगों या तत्वों को एक जगह संजो रखा हो, यह कार्य हिंदी को करना है, संविधान ने यह उत्तरदायित्व हिंदी को सौंपा है, जिसे सच्चे अर्थों में राष्ट्रभाषा बनाना है और संविधान ने संघीय सरकार को यह कर्तव्य ठहराया है कि वह उन सांस्कृतिक तत्वों की खोज करके हिंदी के भंडार को भरे। भारत की वर्तमान भाषाओं में जो शब्द संपत्ति पड़ी है उसका सर्वेक्षण हो जाना चाहिए। भारत की शब्द सम्पत्ति करोड़ों तक है। उसमें हिंदी वह सब कुछ ग्रहण करे, जो उसके लिए आवश्यक और वांछनीय है।

बॉलीवुड ने दिए हिंदी को पंख : आज हिंदी सिनेमा विश्व में एक अहम स्थान रखता है। बॉलीवुड की पहचान भी हिंदी से ही है। हिंदी की वजह से ही बॉलीवुड में हजारों लोगों को रोजगार मिलता है। हिंदी भाषा सिर्फ वार्तालाप और संचार का ही माध्यम नहीं है बल्कि यह देश में रोजगार के सृजन का भी माध्यम है। हिंदी की फिल्में मुल्क की सरहदों के पार अपनी लोकप्रियता का परचम लहरा रही हैं। हिंदी फिल्मों ने लोक भाषाओं, प्रांतीयताओं एवं देश के सांस्कृतिक वैविध्य को भुलाकर राष्ट्रीयता का अभूतपूर्व विकास किया है। भूमंडलीय स्तर पर हिंदी गानों के बोल व राग सुनाई पड़ते हैं। विदेशों से हिंदी पढ़ने आए विद्यार्थी हिंदी फिल्मों के गानों

पर थिरकते हैं। चीन से आई यालान अपने देश ही में सलमान और शाहरूख खान की कई फिल्में देख चुकी हैं, बात-बात पर दिलवाले दुल्हनियां ले जाएंगे फिल्म का गाना गुनगुनाने लगती हैं और कहती हैं कि मैंने फिल्मी गाने से ही हिंदी सीखी। हिंदी को भूमंडल पर गाना बजाना, साहित्य का रंग-बिरंगा तराना आदि इसे विश्व भाषाओं का दर्जा दिए जा रही है। हिंदी फिल्में केवल गीत-संगीत, नृत्य संवाद का रंगीन पिटारा लेकर भूमंडल में ही नहीं घूमती है बल्कि इसके साथ हमारे देश की सभ्यता और संस्कृति भी पायल की रून-झुन की तरह विश्व से एक रागात्मक स्थापित कर रही है। आज हिंदी सिनेमा से लेकर हिंदी पत्र-पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों, और सोशल मीडिया पर हिंदी का बोलबाला है, जो कि देश में लाखों रोजगार पैदा करते हैं। आज इंटरनेट पर भी करोड़ों लोग हिंदी का अनुसरण करते हैं, इसलिए आज हिंदुस्तान में सोशल मीडिया (फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, गूगल प्लस) भी अपना रूपांतरण हिंदी में कर चुका है और करोड़ों लोग फेसबुक तथा ट्विटर में अपने विचार हिंदी में साझा करते हैं। आज विदेशी वेबसाइटें भी अपना हिंदी संस्करण हिंदुस्तान में प्रारंभ कर रहीं है क्योंकि उनको पता है कि हिंदुस्तान में अगर उनको टिकना है तो हिंदी को बढ़ावा देना ही होगा। अमेरिकी सरकार विद्यालयीन पाठ्यक्रमों में हिंदी को बढ़ावा दे रही है।

हिंदी के विकास और उसके सम्मान की चिंता करते हुए हमें इस सच्चाई को स्वीकार किया जाना चाहिए कि आजादी के बाद विज्ञान और समाजविज्ञान के क्षेत्र में कोई मौलिक चिंतन या लेखन इस भाषा में नहीं के बराबर हुआ है। साहित्य के क्षेत्र में हिंदी में भरपूर सक्रियता है, बहुतायत संख्या में पत्र-पत्रिकाएं छप रही हैं। हिंदी के विकास की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है क्योंकि साहित्य भाषा का सांस्कृतिक परिसर है, लेकिन जीने के लिए रोजगार चाहिए, अंग्रेजी की वनिस्पत हिंदी में रोजगार के अवसर कम हैं। जीवन जीने के दैनिक संघर्ष में ही जिस भाषा समाज के अधिकांश लोगों की ऊर्जा नष्ट होती हो उसमें साहित्य और संस्कृति के प्रश्न बेमानी हैं। यह अप्रासंगिक नहीं है कि संघर्ष और दरिद्रता के कारण हिंदी भाषी समाज 'पुस्तक-संस्कृति' विहीन समाज है और उनमें अपनी भाषा को लेकर बहुत लगाव नहीं दिखता और न ही गर्व का भाव। प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक जड़ता और दृष्टिहीनता का जो अंधेरा व्याप्त है उसे दूर किए बिना हिंदी का विकास संभव नहीं है। हमें हिंदी के साथ हिंदी भाषी समाज के आर्थिक-सांस्कृतिक उन्नयन पर भी विचार करना होगा। यह हिंदी की विडंबना है कि अपने ही देश में उसे वह सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो सकी जिसकी वह हकदार है। हमें यह जरूर मंथन करना चाहिए कि नई पीढियों की जरूरतों के मुताबिक पाठ्यक्रमों को हिंदी में क्यों नहीं उपलब्ध करा पा रहे हैं।

समकालीन जरूरत के अनुसार हो पाठ्यक्रम – आज इस एकलध्रुवीय शक्ति और वर्तमान परिवेश में पिछड़े व विकासशील राष्ट्र की जनता के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है–अपनी सांस्कृतिक व भाषाई अस्मिता की सुरक्षा करना, क्योंकि समाज के वर्चस्ववादी शक्तियों के कारण सीमान्त समाज (सबाल्टर्न सोसायटी) की भाषा व बोलियां विलुप्त होने लगी हैं। अतएव विभिन्न राजनीतिक शासन प्रणालियों, आक्रामक बाजार और तकनीकी शक्तियों के भयावह परिदृश्य में यह और भी जरूरी हो गया है कि हिंदी जैसी सशक्त देशज भाषा के माध्यम से बहुआयामी लोकतांत्रिक संवाद प्रक्रिया को सुदृढ किया जाय। हिंदी को हृदय की भाषा कहने की बजाय ज्ञान–विज्ञान की भाषा के रूप में विकसित किया जाय ताकि पर्यावरण, चिकित्सा, ऊर्जा, पर्यटन, स्त्री–विमर्श, दलित–विमर्श जैसे विषयों को हिंदी माध्यम से समाज को नई दिशा मिल सके, अगर हिंदी को प्रौद्योगिकी व तकनीक की भाषा के रूप में विकसित नहीं करेंगे तो इससे युवा पीढ़ी या नई पीढ़ी नहीं जुड़ पायेंगे, इसलिए इनकी आकांक्षाओं के अनुरूप रोजगारपरक पाठ्यक्रम तैयार किया जाय ताकि बच्चे गर्व से हिंदी पढने के लिए आतुर हों, उसे यह हीनताबोध नहीं होगा कि हम हिंदी पढकर डॉक्टर, इंजीनियर या वैज्ञानिक नहीं बन सकते हैं।

हिंदी के प्रति बढ़ेगी आत्मीयता – शिक्षा, साहित्य, प्रशासन और ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में हिंदी ने संतोषजनक प्रगति की है। अब सांस्कृतिक धरातल पर उठकर और सार्वदेशिक रूप में उसे अपना विकास करना है इससे हिंदी का ही नहीं, सारे देश का हित होगा। भाषा के विकास को जो राजनीति के आधार पर सोचा समझा जाता रहा है उससे देश में विघटनकारी प्रवृत्तियाँ पनपीं हैं। राजनीति तोड़ती है, तो संस्कृति जोड़ती है। संस्कृति हमें एक दूसरे के निकट लाती है राजनीति पृथक करती है। हिंदी का सार्वदेशिक रूप होने पर और उसमें भारतीय संस्कृति के सभी अंगों का समावेश हो जाने पर उसके शब्द लालित्य और अर्थसौष्ठव में वृद्धि होगी, उसे नए–नए अलंकार मिलेंगे, जिनसे विभूषित होकर वह अधिक सुंदर होगी। परंतु सबसे बड़ी बात यह होगी कि भाषाओं के बीच खाई पट जाएगी। वह सारे देश का प्रतिनिधित्व करेगी और उसके प्रति बंधुत्व की भावना जागृत होगी क्योंकि तब सभी प्रदेशों के लोगों को वह अपनी प्रतीत होगी। जब देश के विभिन्न भागों के भाषाभाषी उसमें अपनी भाषा के अंश पाएंगे तब उनमें हिंदी के प्रति आत्मीयता बढ़ेगी। हिंदी की समन्वयवादी संस्कृति राष्ट्रीय एकता का परिचायक है। यहां दीप्ति गौड़ की बात बड़े ही मार्के की लगती है, एक आलेख में वह कहती हैं कि 'हमारे देश के विद्यार्थियों को भी इतना सक्षम बनाना है कि वह विभिन्नता में एकता की खोज कर सकें तथा

अपने देश की सांस्कृतिक विरासत को समझकर उसका पुनर्मूल्यांकन कर सकें क्योंकि विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर भी समाज और संस्कृति का प्रभाव पड़ता है वह किस प्रकार समाज के साधनों का उचित प्रयोग करके देश के सांस्कृतिक संरक्षण में अपना योगदान प्रदान कर सकते हैं।' यह तो सच है कि विद्यार्थियों में भारतीय जीवन के मूल्यों समान नागरिकता, विविधता में एकता, लोकतंत्र, धर्म निरपेक्षता, समाजवाद न्याय, स्वतंत्रता, समानता तथा बंधुत्व में आस्था विकसित की जाए। भारतीय भाषाओं में ऐसी पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण किया जाए जिससे राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायता मिले।

स्पष्टत: यह कहा जा सकता है कि हिंदी हर युग में इस देश की आवाज रही है। आज उसके सामने एक नई पीढ़ी है, जिनके स्वप्न हरे हैं वह त्वरित दुनिया के साथ कदमताल से या यों कहें कि उससे भी आगे चलने को उत्सुक है, उसे अपनी भाषा में नवीनतम ज्ञान प्रौद्योगिकी, सम्मान, आत्मनिर्भरता, समृद्धि, जीवनयापन और उत्कर्ष से भरपूर अवसर मिलना चाहिए ताकि वह भारत के मस्तक और भी ऊँचा कर सके।

(लेखक महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा में सहायक संपादक के पद पर कार्यरत हैं। हिंदी की अंतरराष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका 'बहुवचन' के सहायक संपादक एवं www.hindisamay.com के संपादक हैं। संपर्क : 9970244359, E-mail: amitbishwas2004@gmail.com)

❑ ❑ ❑

राष्ट्रीय एकता में भाषा की भूमिका

–ओम प्रकाश

राष्ट्रीय एकता का अभिप्राय है संपूर्ण भारत को एकता एवं अखण्डता के सूत्र में बाँधे रखना। जब तक राष्ट्र के नागरिक परस्पर एकता के सूत्र में नहीं बँधते तब तक राष्ट्र की सर्वांगीण प्रगति संभव नहीं है। भारत एक ऐसा राष्ट्र है जिसमें विभिन्न धर्म, विभिन्न भाषाएं एवं विभिन्न संस्कृतियां हैं, किन्तु यह विभिन्नता भी शक्ति एवं सामर्थ्य का परिचायक है, उसकी कमजोरी नहीं। वस्तुतः विभिन्नता में एकता का मंत्र भारत का उद्घोष है भारत के मूल निवासी इतने सहिष्णु एवं उदार रहे कि उन्होंने बाहर से आने वाले लोगों को अपना लिया। उनके धर्म, संस्कार, पूजा पद्धति में किसी प्रकार का व्यवधान उत्पन्न नहीं किया गया। परिणाम यह हुआ कि देश में हिन्दू मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी सभी एक साथ अपनी–अपनी पूजा पद्धति अपने–अपने इष्टदेव एवं अपनी–अपनी संस्कृति को लेकर माला में गूंथे हुए मनकों की भांति एकता के सूत्र में जुड़े रहे।

राष्ट्र एक सांस्कृतिक शब्द है, जिसका अभिप्राय केवल भौगोलिक सीमाओं से नहीं लिया जाता अपितु यह हमारे जातीय गौरव, जातीय स्वाभिमान एवं जातीय चरित्र को अभिव्यक्त करता है। साम्प्रदायिकता की भावना राष्ट्रीय एकता में बाधक है। जब एक वर्ग अलगाव की बात करता है और दूसरे वर्ग के प्रति विद्वेष, असन्तोष एवं ईर्ष्या के भाव रखता है, तब राष्ट्रीय एकता की भावना को खतरा पैदा हो जाता है। इसी प्रकार प्रान्तीयता, भाषावाद, क्षेत्रीयता, जातिवाद भी राष्ट्रीय एकता के बाधक तत्व है। देशवासियों में राष्ट्रीयता का भाव जगाने में हिन्दी का योगदान पहले से ही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार के सामने एक ऐसी भाषा के चुनाव का प्रश्न आया जिसे राष्ट्र भाषा बनाया जा सके। यह एक काफी

गम्भीर और बड़ा सवाल था जिसस पर जल्दी ही सरकार को निर्णय करना था। स्वतंत्रता के साथ-ही-साथ देश का विभाजन भी हो गया था तथा उस समय सारा देश संकटपूर्ण परिस्थितियों में था। विध्वंसकारी प्रवृत्तियों से जीवन अस्त-व्यस्त था। देश के कल्याण के लिए यह अत्यन्त आवश्यक था कि जल्दी से जल्दी इन संकटों की समाप्ति हो तथा उत्पादन बढ़ाकर देश को स्वावलम्बी बनाया जाए। देश में एकता तथा लोगों के परस्पर सम्बन्धों में परिवर्तन लाने के लिए यह निहायत आवश्यक था कि वही भाषा राष्ट्र भाषा बने जो देश के ज्यादातर क्षेत्रों में समझी जाती हो और जिससे कोई भी असन्तुष्ट न हो। विश्वविद्यालयों में शिक्षा अंग्रेजी द्वारा दी जाती थी। सार्वजनिक कार्यों में भी ज्यादातर अंग्रेजी का ही प्रयोग होता था। किन्तु स्वतंत्र होने के बाद अंग्रेजी के आधार पर निर्भर रहना नामुमकिन था। बहुत देर तक विचार करने के बाद सरकार इस निष्कर्ष पर पहुंची कि हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनाया जाए क्योंकि केवल हिन्दी ही एक ऐसी भाषा थी जिसे देश के कुछ छोटे से भाग को छोड़, बाकी तमाम जगह व्यवहार में लाया जाता था और जिसे साधारण तौर पर, शिक्षित व अशिक्षित सभी समझ सकते थे। यद्यपि कुछ लोग इसके खिलाफ भी थे और कहीं-कहीं इसका विरोध भी हुआ, परन्तु ज्यादातर लोगों ने इसका ही समर्थन किया। इसलिये, केन्द्रीय सरकार ने हिन्दी को ही राष्ट्र-भाषा बनाना बेहतर समझा। हिन्दी से सम्बन्धित ऐसा कौन होगा जिसे इसके राष्ट्र-भाषा बनने पर खुशी न हुई हो। वास्तव में हिन्दी भाषा में इतने गुण विद्यमान है कि शायद ही कोई दूसरी भाषा इसका मुकाबला कर सके।

पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी को प्रोत्साहन देने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा किये गए प्रयत्नों की प्रशंसा की जानी चाहिए। सरकार ने इसको प्रोत्साहन देने के लिए कई समितियां बनाई तथा उनकी सिफारिशों के अनुसार कार्य करने का निर्णय किया। समिति के सदस्यों ने परस्पर परामर्श करके हिन्दी को प्रत्येक परिवार तक पहुंचाने की दृष्टि से योजनाएं तैयार कीं। सरकार के अतिरिक्त इसके विकास के पीछे बहुत-सी सरकार द्वारा संरक्षित अथवा सामाजिक व सांस्कृतिक संस्थानों का भी काफी हाथ है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन एक ही संस्था है जिसकी भारत सरकार संरक्षक है। हिन्दी में जनाब, कब्जा इत्यादि दूसरी भाषाओं के प्रचलित शब्दों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। हिन्दी के इस परिवर्तित रूप ने इसको लोकप्रिय बनाने में काफी सहायता दी है। इन सबका परिणाम यह हुआ है कि आज हिन्दी समझने वालों की संख्या पहले से कहीं बहुत ज्यादा है। इसमें सन्देह नहीं कि भारत सरकार के संरक्षण में, अगले कुछ वर्षों में यह संख्या अवश्य और भी ज्यादा हो जाएगी। जाहिर है इस मामले में

सरकार ने जो कुछ भी किया है कोई मामूली कार्य न था। यह सबको मालूम है कि भाषा सम्बन्धी समस्या को सुलझाना कितना कठिन था।

कुछ का यह विचार था कि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में लोगों को हिन्दी के शिक्षण पर मजबूर किया जायेगा। परन्तु यह विचार बिलकुल निरर्थक था। यह दृष्टिकोण केवल उन लोगों का था जो हिन्दी को नुकसान पहुंचाना चाहते थे। हिन्दी का विकास किस तरह से किया जाय, इस प्रयोजन से पिछले वर्ष हिन्दी के मशहूर लेखकों का जो सम्मेलन बुलाया गया था, इसका उद्घाटन करते हुए आदरणीय गृह मंत्री ने सरकार की हिन्दी सम्बन्धी नीति का पूरी तरह से स्पष्टीकरण कर दिया था। उन्होंने इस बात पर भी बल दिया था कि यह कार्य ऐसा नहीं कि जो सिर्फ सरकार का ही हो बल्कि हम सबको संयुक्त रूप से इसके विकास में सहायता करनी चाहिए। बगैर दोनों की सहायता के यह कार्य हरगिज परा नहीं हो सकता।

फिलहाल हिन्दी को जो आदर का स्थान प्राप्त है वह ही काफी नहीं है। सम्भव है आज भी हिन्दी के विरोधी, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर इसकी ओर कठोर रूख अपनाएं। लेकिन अगर हम उनका हृदय से विरोध करें और निष्पक्ष भाव से उन्हें समझाने का प्रयत्न करें, तो मुमकिन है कि निकट भविष्य में वे स्वयं हमारे साथ सम्मिलित हो जाएं और सहर्ष इसके विकास में हाथ बटाएं।

यदि हम चाहते हैं कि संसार में हिन्दी को एक बहुत ऊंचा स्थान प्राप्त हो और संसार के ज्यादातर लोग हमारे इस महान देश और हमारी ऊंची संस्कृति को ज्यादा स्पष्ट तौर पर समझ सकें, तो क्या मैं और क्या आप, देश के प्रत्येक नौजवान का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह हृदय से इसके विकास में सहायता दे। यह कार्य ऐसा नहीं जो एक या दो सप्ताह या कुछ हफ्तों में समाप्त हो जाये बल्कि इसके लिए लम्बे काल तक अत्यन्त धैर्य से प्रयत्न करने की जरूरत है।

स्वतंत्रता के आंदोलन में हिन्दी के अनेक साहित्यकारों की कलम से निकले शब्दों ने भारतीयों को देश पर मर-मिटने के लिए प्रेरित किया। वर्तमान समय में हिन्दी राष्ट्रीय एकता का बहुत बड़ा माध्यम है। भले ही अभी तक हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में अंगीकार नहीं किया गया हो, लेकिन वास्तविकता यही है कि हिन्दी भारत की आत्मा है, राष्ट्रीय एकता की पोषक है और राष्ट्रभाषा का सम्मान पाने की अधिकारी भी हिन्दी ही है।

भारत एक एक बहुभाषी राष्ट्र है। देश के विभिन्न प्रान्तों में अलग-अलग भाषाओं का बोलबाला है। हिन्दी, सिन्धी, उड़िया, बंगला, असमिया, गुजराती, मराठी,

तमिल, तेलगू, कन्नड़ और मलयालम भारत की प्रमुख भाषाएं हैं। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न खड़ा होता है कि कौन सी भाषा राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित की जाएं? किसी देश की राष्ट्रभाषा वही हो सकती है, जिसका अपने देश की संस्कृति और साहित्य से गहरा संबंध हो। राष्ट्रभाषा बनने के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे देश की बहुसंख्यक जनता बोलती-समझती हो तथा वह अन्य प्रान्तीय भाषाओं के साथ भी घनिष्ठ संबंध रखती हो। अन्य भाषाओं के शब्दों को पचाने की क्षमता भी उस भाषा में होनी चाहिए। इस दृष्टि से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाएं केवल अपने-अपने प्रान्त में सीमित है, उन्हें बोलने वालों की संख्या भी सीमित है, जबकि हिन्दी का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है।

भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है, क्योंकि यह बहुसंख्यक लोगों की भाषा है तथा इसका क्षेत्र व्यापक है। हिन्दी क्षेत्र के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश, हरियाणा, दिल्ली उत्तर-प्रदेश, उत्तराखण्ड, मध्य प्रदेश, छतीसगढ़ बिहार, झारखण्ड और राजस्थान राज्य आते हैं। इन राज्यों में तो हिन्दी का बोलबाला है ही इनके अतिरिक्त महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब, कश्मीर पश्चिमी बंगाल में भी हिन्दी बोलने-समझने वालो लोगों की कमी नहीं है। देश के अन्य प्रांतों में हिन्दी बोलने वाले लोग चाहे कम संख्या में हों लेकिन हैं अवश्य। स्पष्ट है कि हिन्दी बोलने बाले लोग चाहे कम संख्या में हो लेकिन है अवश्य। स्पष्ट है कि हिन्दी भारत के सर्वाधिक लोगों की भाषा है। अनुमानत: 60 करोड़ लोग हिन्दी भाषा भाषी हैं अत: हिन्दी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा को भारत की राष्ट्र के पद पर सुशोभित नहीं किया जा सकता।

हिन्दी भारतीय संस्कृति सभ्यता से भी जुड़ी हुई है इसका साहित्य उच्चकोटि का है और राष्ट्रीय, स्वाभिमान की वाहक होती है। भारत की स्वतंत्रता के उपरान्त जब राष्ट्रभाषा का सवाल उठा तो हमारे दूरदर्शी नेताओं गांधीजी, नेहरूजी, राजगोपालचारी, मौलाना अबुलकलाम आजाद, गोविन्द बल्लभ पंत आदि ने एक स्वर में हिन्दी को इस पद पर प्रतिष्ठित करने की वकालत की थी।

बहुसंख्यक लोगों की भाषा को राष्ट्रभाषा कहा जाता है, जो देश के विस्तृत भू-भाग में बोली समझी जाती है जबकि संविधान द्वारा स्वीकृत सरकारी राजकाज की भाषा को राजभाषा कहा जाता है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा भी है और राजभाषा भी। भारतीय संविधान की धारा 343 के अन्तर्गत हिन्दी को देश की राजभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है तथा धारा 351 के अन्तर्गत यह प्रावधान किया गया है कि केन्द्र हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं विकास के लिए प्रयासरत रहेगा। केन्द्रीय हिन्दी

निदेशालय का गठन भी इसी उद्देश्य के लिए किया गया तथा हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए सरकार की ओर से अनेक कार्य भी किए जा रहे हैं।

शुरूआत में दक्षिण भारत विशेषत: तमिलनाडु में हिन्दी का विरोध किया गया। कैसी विडम्बना है कि वे एक भारतीय भाषा का तो विरोध करते हैं, किन्तु विदेशी भाषा अंग्रेजी के समर्थक है? वास्तविकता यह है कि यह हिन्दी विरोध विशुद्ध राजनैतिक है और राजनैतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ही लोगों को भ्रमित किया जाता है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों से दक्षिण भारत में भी हिन्दी की स्वीकार्यता बढ़ी है। धार्मिक एवं पर्यटन की दृष्टि से बड़ी संख्या में हिन्दी भाषा-भाषी दक्षिण भारत के कन्याकुमारी, तिरूअनन्तपुरम, रामेश्वरम, तिरूपति, बालाजी, मदुरै, हैदराबाद, बैंगलोर, चेन्नई आदि स्थलों की यात्रा पर जाते हैं तो व्यापारी वर्ग में इन यात्रियों के साथ संवाद स्थापित करने के लिए हिन्दी संपर्क भाषा के रूप में निरन्तर विकसित हो रही हैं। आम दक्षिण भारतीय हिन्दी विरोध की राजनैतिक चाल को समझ चुका है और उसे पता है कि उसके कारोबार-व्यापार की सफलता के लिए हिन्दी का ज्ञान कितना जरूरी है।

मेरे मित्र बी.एस.एम.(पी.जी.) कॉलेज रूड़की के प्रोफेसर डॉ. सम्राट सुधा पिछले दिनों केरल की यात्रा पर थे, जहाँ वह लगभग एक माह रहे और हिन्दी ओरियन्टेशन प्रोग्रामों में भाग लिया। उन्होंने बताया कि केरल में हिन्दी बोलने-समझने वालों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। बड़ी संख्या में छात्र वैकल्पिक विषय के रूप में हिन्दी का चयन कर रहे हैं। दुकानदार उत्तर भारतीयों के साथ काम चलाऊ हिन्दी में संवाद करते हैं। डॉ. सुधा ने बताया कि हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए अनेक स्वयंसेवी संस्थाएं पूरे मनोयोग से जुटी हैं। वास्तव में यह सब हिन्दी के भविष्य के लिए तो सुखद है ही, राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के लिए भी शुभ संकेत है।

आज हिन्दी को उन तथाकथित काले अंग्रेजों का विरोध झेलना पड़ रहा है जो अंग्रेजी सभ्यता, संस्कृति के गुलाम बन चुके हैं। देश की स्वतंत्रता के बाद भी वे मानसिक गुलामी से मुक्त नहीं हुए और अभी भी वे अंग्रेजी के नाम पर सामान्य जनता का शोषण करते हैं और सरकारी कामकाज की भाषा के रूप में अंग्रेजी के पक्षधर हैं, उन्हें भय है कि यदि हिन्दी में कार्य करना अनिवार्य कर दिया गया तो वे जनता को मूर्ख नहीं बना पाएंगे। कैसी विडम्बना है कि जो भाषा भारत के दो प्रतिशत लोग भी नहीं बोल पाते, वही सरकारी कार्यालयों में छायी हुई है?

यह अत्यन्त खेदजनक है कि लोग हिन्दी का विरोध करते हैं और उसके स्थान

पर किसी अन्य भारतीय भाषा की वकालत न करके अंग्रेजी का समर्थन करते हैं। क्षेत्रीय भाषाओं को भी फलने-फूलने का पर्याप्त अवसर मिले, लेकिन पूरे देश को एक सूत्र में बाँधने वाली भाषा हिन्दी के प्रति अनुराग रखना चाहिए, क्योंकि अपनी भाषा की उन्नति से ही देश की उन्नति हो सकती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसीलिए कहा था–

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को शूल।।

अंग्रेजी देश को एकता के सूत्र में नहीं बाँध सकती। यह कार्य तो हिन्दी को ही करना है। अतः राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से भी हमें हिन्दी को ही अपनाना पड़ेगा। अंग्रेजी भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता से जुड़ी हुई नहीं है अतः उसके वर्चस्व को समाप्त करना ही होगा। प्रायः लोग यह समझते हैं कि अंग्रेजी विश्व की भाषा है, किन्तु यह नितान्त भ्रमपूर्ण है। रूस, चीन, जापान, जर्मन, फ्रांस की अपनी-अपनी भाषाएं हैं और इनके नेता विदेशों में अपने देश की भाषा में बोलते हैं। भारत के नेताओं को भी विदेश में अपने देश की भाषा में बोलना चाहिए, अंग्रेजी में नहीं। आज हिन्दी ने वह सामर्थ्य एवं क्षमता भी ग्रहण कर ली है जिससे वह उच्च शिक्षा का माध्यम बन सकने में समर्थ हो सकी है। आज हिन्दी की शब्द सम्पदा बढ़ी है। वैज्ञानिक, तकनीकी, विधि एवं शासकीय शब्दावली से संबंधित हिन्दी के अनेक शब्दकोश प्रकाशित हो चुके हैं।

राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने में फिल्म, संचार, संगीत, एवं साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका है। हिन्दी फिल्में बिना किसी भेदभाव के पूरे देश के हर कोने में अत्यन्त रूचि के साथ देखी जाती है, जिससे राष्ट्रीय एकता के लिए स्वस्थ वातावरण का निर्माण होता है। गोस्वामी तुलसीदास की रामचरित मानस, कबीर-जायसी का निर्गुण काव्य, सूरदास, मीराबाई एवं रसखान का कृष्ण भक्ति काव्य तथा राष्ट्र कवियों की राष्ट्र भावना जगाने वाली रचनाओं पर पूरे देश को गर्व है। प्रत्येक स्वाभिमानी नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह हिन्दी का अधिकाधिक व्यवहार करें, हिन्दी में पत्र लिखें, हिन्दी में हस्ताक्षर करें और हिन्दी में भाषण दें। जब हिन्दी हमारे मन-प्राण से जुड़ जाएगी, तब निश्चित रूप से वह राष्ट्रभाषा के सम्मान को प्राप्त कर पायेगी।

महात्मा गांधी जैसे नेता ने हिन्दी को भारत की आत्मा के रूप में पहचाना था और वे उसी का उपयोग देश की जनता के साथ सम्पर्क हेतू करते थे। विभिन्न प्रांतों के लोग हिन्दी भाषा सीखें और हिन्दी का अधिकाधिक व्यवहार करें। हिन्दी का प्रयोग

करने में हीनता का अनुभव करना जिस दिन भारतवासी छोड़ देंगे और उसका प्रयोग करने में गौरव का अनुभव करने लगेंगे, उसी दिन से हिन्दी का उत्कर्ष प्रारम्भ होगा। अपनी क्षेत्रीय भाषाओं का सम्मान करते हुए भी हिन्दी को अपनाया जा सकता है, तभी क्षेत्रीयता की संकीर्णता पर राष्ट्रीयता की जीत होगी। क्योंकि–

हम बंगाली, हम पंजाबी, गुजराती, मद्रासी हैं।
लेकिन इन सबसे पहले, हम केवल भारतवासी हैं।

ओम प्रकाश
रिसर्च असिस्टेंट, रिसर्च यूनिट 3 व 4

❑ ❑ ❑

युद्धकाल में मानवाधिकारों की घोर मानवीय त्रासदी : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

–डॉ. नरेश कुमार* एवं डॉ. जितेंद्र कुमार**

सारांश

मानवाधिकार वे अधिकार होते हैं जो व्यक्ति के जन्म के साथ प्राप्त होते हैं अर्थात मानवाधिकार सभी मनुष्यों में निहित अधिकार है चाहे उनकी जाति, लिंग, राष्ट्रीयता, जातीयता, भाषा, धर्म या कोई अन्य स्थिति कुछ भी हो। मानवाधिकारों में जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार, मानव व्यक्ति की गरिमा व मूल्यों सुरक्षा, गुलामी और यातना से मुक्ति, न्याय, विश्व शांति, विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, समानता का अधिकार इत्यादि और बहुत कुछ शामिल हैं। अतः बिना किसी भेदभाव के हर कोई व्यक्ति इन अधिकारों का हकदार है।

जहाँ तक युद्धकाल में मानवाधिकारों के व्यापक उल्लंघन व युद्ध से हुई घोर मानवीय त्रासदी का प्रश्न है, तो प्रथम विश्व युद्ध व द्वितीय विश्व युद्ध से बड़ा कोई और उदाहरण नहीं हो सकता, लेकिन फिर भी द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त कालांतर में कई ऐसी परिस्थितियाँ घटित हुई है, जिसके चलते विश्व में शीत युद्ध गृहयुद्ध या फिर दो देशों के बीच परस्पर युद्ध हुए हैं। युद्ध के दौरान मानवाधिकारों की धज्जियाँ उड़ायी गयी हैं। अतः यह बात भी सच है कि मानवाधिकारों का उल्लंघन युद्ध का कारण भी बन सकता है। उदाहरण के लिए आतंकवादी घटनाएँ, अवैध हिरासत, न्यायेतर निष्पादन, गायब होना, यातना, व्यापक हत्या या यहां तक कि नरसंहार के

* सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, शहीद भगत सिंह सांध्य कॉलेज, (दिल्ली विश्वविद्यालय)
** सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, शहीद भगत सिंह सांध्य कॉलेज, (दिल्ली विश्वविद्यालय)

प्रयास चाहे राज्य द्वारा या गैर-राज्य अभिनेताओं द्वारा किए गए हों आपसी संघर्ष का कारण बन सकते हैं।

प्रथम व द्वितीय विश्व युद्ध और मानवाधिकार

प्रथम विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप 1.8 करोड़ से अधिक सैनिक और नागरिक मारे गए। इसके बाद स्थापित अंतरराष्ट्रीय संगठन लीग ऑफ नेशन जैसे अंतरराष्ट्रीय संगठन के तहत अल्पसंख्यक अधिकारों को मान्यता और उनकी रक्षा करने के लिए विशिष्ट अधिकारों को अंतरराष्ट्रीय कानून के माध्यम से व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करने के प्रयास शुरू हुए। परन्तु लीग ऑफ नेशन के तहत दी जाने वाली मानवाधिकार सुरक्षा कुछ समूहों और देशों तक ही सीमित थी। तीन दशक से भी कम समय के बाद यूरोप एक बार फिर बड़े संघर्ष में उलझ गया। द्वितीय विश्व युद्ध जिसने जर्मनी, जापान और इटली को ग्रेट ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के विरुद्ध खड़ा कर दिया लगभग 7 करोड़ नागरिकों और सैनिकों को युद्ध ने अपनी चपेट में ले लिया, जिससे द्वितीय विश्व युद्ध मानव इतिहास का सबसे घातक शस्त्र संघर्ष और नरसंहार बन गया। लाखों लोग बेघर हो गए और लाखों लोगों ने शरणार्थियों के रूप में अनिश्चित जीवन शुरू करना पड़ा। युद्ध के परिणामस्वरूप लाशों के ढेर लग गए, पूरे शहर ध्वस्त हो गए, नागरिक आबादी के खिलाफ हिंसा से देश सदमे में आ गये। इसी काल में जर्मनी में फासीवादी तानाशाही के रूप में एडॉल्फ हिटलर और नाजी पार्टी के शासन के 12 वर्षों में लाखों यहूदियों और जिप्सियों की नरसंहार और अन्य अल्पसंख्यकों का उत्पीड़न देखना पड़ा।

शीत युद्धकाल एवं मानवाधिकारों को चुनौतियाँ

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस के बीच उत्पन्न तनाव ने दुनिया को दो भागो में बाट दिया। रूस के नेतृत्व में साम्यवादी और अमेरिका के नेतृत्व में पूँजीवादी देश दो खेमों में बँट गये। संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत रूस के बीच उत्पन्न तनाव की स्थिति को शीत युद्ध के नाम से जाना गया। इन दोनों पक्षों में आपसी टकराहट आमने सामने कभी नहीं हुई, पर ये दोनों गुट दुनिया में इस प्रकार का वातावरण बनाते रहे कि युद्ध का खतरा हमेशा बना रहे। जिसके चलते दुनिया में अशांति का माहौल उत्पन्न हुआ सैनिक संगठनों व विध्वंसकारी व आणविक हथियारों की होड़ को बढ़ावा मिला। बर्लिन संकट कोरिया युद्ध (1950-1953), वियतनाम युद्ध (1965-1975), यु 2 विमान काण्ड, क्यूबा

मिसाइल संकट, सोवियत सेना द्वारा अफगानिस्तान पर आक्रमण इत्यादि शीतयुद्ध की प्रमुख घटनाएँ थी। उक्त घटनाओं में लाखों निर्दोष लोग मारे गये, लाखों लोग बेघर हुए और उनको शरणार्थी जीवन जीने के लिए मजबूर होना पड़ा। अतः इस दौरान संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के उद्देश्यों को आघात पहुँचा। लेकिन सन् 1991 में सोवियत रूस के विघटन से उसकी शक्ति कम हो गयी और शीतयुद्ध की समाप्ति हो गयी।

गृहयुद्ध और मानवाधिकार

आज दुनिया में कहीं भी लड़े जाने वाले सभी सशस्त्र संघर्षों में से 95 प्रतिशत से अधिक आंतरिक युद्ध हैं जिसे गृहयुद्ध कहा जाता है। 1946 और 1991 के बीच गृहयुद्धों की संख्या में बारह गुना वृद्धि हुई जो 200 वर्षों में सबसे बड़ी वृद्धि है। अफगानिस्तान, मध्य अफ्रीकी गणराज्य, इथियोपिया, लीबिया, माली, सोमालिया, दक्षिण सूडान और सीरिया जैसे देश वर्तमान में गृहयुद्ध का सामना कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप लाखों लोग हताहत और विस्थापित हुए हिंसा और अशांति फैली है।

दक्षिण सूडान को 9 जुलाई 2011 को जनमत संग्रह के पश्चात स्वतंत्रता प्राप्त हुई। हालांकि दक्षिणी सूडान 2005 से सूडान गणराज्य का एक स्वायत्त क्षेत्र था। आज दोनों देश सूडान और दक्षिण सूडान गृहयुद्ध से जूझ रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र के मानवीय मामलों के समन्वय के लिए संयुक्त राष्ट्र कार्यालय; ओसीएचए की रिपोर्ट के मुताबिक अफ्रीकी देश में सूडानी सेना और रैपिड सपोर्ट फोर्सेज के बीच संघर्ष में हजारों लोग मारे गए हैं। गृहयुद्ध के दौरान से अधिक लोग विस्थापित हुए हैं इनमें लगभग 7,36,200 लोग आंतरिक रूप से विस्थापित हैं और लगभग 2 लाख लोगों ने पड़ोसी देशों में शरण ली है। सूडान के लोग पहले ही भोजन की गंभीर कमी से जूझ रहे हैं, देश में भुखमरी और बेरोजगारी के कारण हालात बेहद बदतर है। बहुत से लोगों से उनके घर.मकान छिन गए हैं। सूडान संकट का असर वहां रह रहे हजारों भारतीय मूल के लोगों पर भी पड़ा। भारतीयों को वहां से सुरक्षित निकालने के लिए भारत सरकार ने ऑपरेशन कावेरी लॉन्च किया था। इस ऑपरेशन के तहत भारतीय वायुसेना के विमानों ने लगभग 3 हजार लोगों की वापसी कराई। बताया जाता है कि सूडान में भारतीय समुदाय के लोग 150 साल से रह रहे थे।

सोमालिया पर इटली व ब्रिटिश द्वारा कब्जा कर लेने के बाद ये देश दो भागों में बंट गया। इसका नतीजा ये हुआ है कि ये दोनों देश आपस में ही लड़ने लगे।

1920 में इटली ने ब्रिटेन को हराकर पूरे सोमालिया पर अपना अधिकार कर लिया। 1969 में सुप्रीम रिवोल्यूशनरी काउंसिल ने सत्ता अपने हाथों में ले ली और सोमालिया डेमोक्रेटिक रिपब्लिक बन गया। 1991 में इसके पतन के साथ ही देश में गृहयुद्ध छिड़ गया। समय के साथ ये युद्ध और व्यापक होता चला गया और देश के हालात और खराब होते गए। इस्लामिक आतंकवादी संगठन अल शबाब के उदय के साथ सोमालिया के हालात और अधिक खराब हो गए। 2012 के मध्य तक देश का आधे से अधिक भूभाग गृहयुद्ध की चपेट में आ चुका था। कहने के लिए यहां पर डेमोक्रेटिक प्रणाली है लेकिन इसकी हकीकत कुछ और ही है। यूएन के आंकड़ों के अनुसार यहां पर छिड़े गृहयुद्ध में अब तक 5 लाख से अधिक लोगों की मौत हो चुकी है। इसके अलावा इसकी वजह से 1 करोड़ से अधिक लोग बेघर या विस्थापित हुए हैं।

सीरियाई गृहयुद्ध सीरिया में विभिन्न गुटों के बीच चल रहे शस्त्र संघर्ष को कहा जाता है। यह विरोध सीरिया के राष्ट्रपति बशर अल-असद के नेतृत्व वाले सीरियाई अरब गणतंत्र एवं विभिन्न स्थानीय एवं विदेशी ताकतों का है, जो सीरियाई सरकार और आपस में है। सीरिया में अशांति का दौर सीरियाई सरकार और सशस्त्र बलों में विद्रोह से आरम्भ हुआ जिसमें असद को हटाने के लिए हिंसक विद्रोह बड़े स्तर पर फैल गया। वर्तमान में सीरिया में विभिन्न गुटों के मध्य युद्ध चल रहा है, जिसमें सीरिया की सशस्त्र सेना तथा इसके स्थानीय एवं विदेशी सहयोगी विपक्ष के कुछ गठबंधन सलाफी जिहादी समूह, मिश्रित कुर्दिश-अरब सीरियाई गणतांत्रिक बल और इस्लामिक स्टेट ऑफ इराक लेवेंट शामिल हैं। सीरिया में हिंसक दमन के 12 साल बाद भी देश गृहयुद्ध की चपेट में है। एक करोड़ 40 लाख से अधिक लोगों को मानवीय सहायता की आवश्यकता है। एक करोड़ 20 लाख से अधिक लोग विस्थापित हो चुके हैं जिनमें से 60 लाख से अधिक लोगों को देश के बाहर शरण लेने के लिये विवश होना पड़ा है। संयुक्त राष्ट्र से प्राप्त जानकारी के अनुसार इस युद्ध में कम से कम साढ़े तीन लाख लोगों की मौत हो चुकी है। इस बीच लाखों लोग या तो हिरासत में हैं उन्हें यातनाएं दी गई हैं या फिर उन्हें जबरन गायब कर दिया गया है। शांति वार्ता के लिए अनेक प्रयास हो चुके हैं मगर कुछ खास प्रगति नहीं हुई है।

अफगानिस्तान में गृहयुद्ध की शुरुआत 1980 के दशक में हुई। इसके बाद 1992-1996 तक मुजाहिदीन सत्ता में तो रहे पर उनके बीच आपसी संघर्ष शुरू हो गया। तालिबान पांच साल की सत्ता अवधि के दौरान लोगों ने सबसे खराब मानवाधिकार उल्लंघन देखे। गैर मुस्लिम लोगों के ऊपर हमले किए गये और उनके

धार्मिक स्थलों पर भी हमले किए गए जिसका नतीजा उनको अफगानिस्तान छोड़ना पड़ा। वहाँ की महिलाओं को शिक्षा और स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित रखा गया। लड़कियों को घर पर बैठने और बाहर जाते समय एक विशेष प्रकार की पोशाक पहनने के लिए मजबूर किया गया। लोगों को खुले में मार दिया गया और सभी को शरिया कानूनों का पालन करना पड़ा। हाल ही में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार प्रमुख ने अफगानिस्तान में बढ़ते तनाव पर चिंता व्यक्त की है और उन्होंने अंतरराष्ट्रीय समुदाय से हाथ मिलाने और अफगानिस्तान की रक्षा करने का आग्रह किया। पूर्व में तालिबानी और नॉर्दर्न अलाइयन्स के बीच अफगानिस्तान में सत्ता को लेकर भयंकर युद्ध छिड़ा हुआ था बीच में ही तत्कालीन राष्ट्रपति अशरफ गनी अपने सहयोगियों के साथ देश छोड़कर भाग गए और 'विजयी' तालिबान ने राष्ट्रपति भवन और काबुल में कई सरकारी कार्यालयों पर कब्जा कर लिया और घोषणा की कि युद्ध खत्म हो गया है। बीस वर्ष बाद अर्थात तालिबान 15 अगस्त 2021 को अफगानिस्तान में पुनः सत्ता में वापस लौट आया। अमेरिकी सेना ने निर्धारित समय से एक दिन पहले 30 अगस्त को देश से वापसी की जिससे अफगानिस्तान में उसकी 20 वर्ष की सैन्य उपस्थिति समाप्त हो गई। अफगानिस्तान में अमेरिका के 2,461 सैनिक और अन्य सेवाओं के सदस्य मारे गये। इसके अलावा अप्रैल 2023 तक 3,846 अमेरिकी ठेकेदार, अफगान नेशनल मिलिट्री और पुलिस के 66,000 जवान अन्य सेवाओं में अफगानी कार्यरत 1,444, आम नागरिक 47,253 राहतकर्मी 444 पत्रकार 72 और तालिबान के लगभग 51,191 आतंकी मारे गए।

पश्चिम एशिया में इजरायल और फिलिस्तीन के मध्य संघर्ष का आरंभ 19वीं सदी के अंत में हो चुका था। पश्चिम एशिया क्षेत्र में होने वाली यहूदियों की बसावट का अरबवासियों द्वारा तीखा विरोध ही संघर्ष का कारण बना। अरब और इजरायल के बीच पहला युद्ध (1948-1949) चार अरब देशों मिस्र, इराक, सीरिया और जॉर्डन ने मिलकर इजरायल पर हमला कर दिया। पहले युद्ध के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में फिलिस्तीन के लोग या तो मारे गए या उन्हें वहाँ से अपनी जान बचाकर भागना पड़ा। इसी कारण इस क्षेत्र में फिलिस्तीनी शरणार्थियों का संकट अत्यंत गहराने लगा। इजरायल और फिलिस्तीन के बीच 1967 ईस्वी में फिर से एक युद्ध हुआ। इस लंबे सैन्य संघर्ष के बीच फिलिस्तीन ने आतंकवाद के माध्यम से अपने उद्देश्य को पूरा करना शुरू किया और उन्होंने 1987 ईस्वी में हमास नामक एक आतंकवादी संगठन का गठन किया। हमास की ही तरह फिलिस्तीन में एक फतह नामक संगठन भी सक्रिय है। यह संगठन भी फिलिस्तीन के लिए एक स्वायत्त क्षेत्र का गठन करने

के लिए उत्सुक है। फिलिस्तीन आतंकवादियों द्वारा यहूदी बस्तियों पर हमला किया गया और इसके परिणामस्वरूप विभिन्न यहूदियों को अपने घरों से विस्थापित होना पड़ा। इजरायल और फिलिस्तीन 2021 में फिर से हिंसक विवाद तब आरंभ हो गया जब इजरायल के सैनिकों ने पूर्वी यरुशलम के 'हराम अल शरीफ' नामक जगह पर स्थित 'अल अक्सा मस्जिद' पर हमला कर दिया था। मानवीय मामलों के समन्वय संयुक्त राष्ट्र कार्यालय (ओसीएचए) के अनुसार 2008 से 2020 तक सैन्य संघर्ष में होने वाली मौतों में 5,600 फिलिस्तीनी मारे गए जबकि 115,000 घायल हुए। इसी अवधि में 250 इजराइली मारे गए जबकि 5,600 घायल हुए।

रुस-यूक्रेन युद्ध और मानवाधिकार

रूस-यूक्रेन युद्ध को एक साल से भी ज्यादा हो गया है। इसमें मारे गए लोगों का कोई सटीक आंकड़ा तो नहीं है लेकिन अलग-अलग रिपोर्ट्स के अनुसार एक साल के अंदर तीन लाख से ज्यादा लोग दोनों तरफ से मारे जा चुके हैं। नॉर्वे चीफ ऑफ डिफेंस की रिपोर्ट के अनुसार इस युद्ध में 22 जनवरी 2023 तक यूक्रेन के तीस हजार से ज्यादा लोग मारे गए थे। एक लाख बीस हजार से ज्यादा यूक्रेनियन जवानों ने अपनी जान गंवाई थी। वहीं तमाम रिपोर्ट्स ये दावा करती हैं कि यूक्रेन से ज्यादा रूसी सैनिकों की मौत हुई है। अमेरिका के आंकड़े बताते हैं कि 24 फरवरी 2022 से 16 फरवरी 2023 तक दो लाख से ज्यादा रूसी सैनिक या तो मारे जा चुके हैं या फिर यूक्रेन में बंधक बनाए गए हैं। इसके अलावा करीब सात हजार से ज्यादा रूस का साथ देने वाले यूक्रेनियन अलगाववादी भी मारे जा चुके हैं। दोनों तरफ से दो लाख से ज्यादा जवान और नागरिक लापता हुए है। यूक्रेन में लाखों बच्चे और वृद्ध लोग देश छोड़ चुके हैं, जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यूरोप में सबसे बड़ी शरणार्थी आबादी बन गई। देश के भीतर लगभग 70 लाख लोगों के विस्थापित होने का अनुमान लगाया गया है। इनमें महिलाएं, वृद्ध, विकलांग और बच्चे शामिल हैं। यूक्रेन में 2021 में 19 हजार से अधिक बच्चों को बाल सैनिकों के रूप में भर्ती किया गया है। इस लड़ाई में काफी संख्या में यूक्रेनी बाल सैनिक मारे गये हैं उनमें अपंग भी हुए हैं, यूक्रेनी महिलायें यौन हिंसा का शिकार हुई हैं। सशस्त्र संघर्षो के दौरान यूक्रेनी नागरिकों और सैनिकों का अपहरण कर लिया गया है। संयुक्त राष्ट्र कार्यालय ने बताया है कि यूक्रेन में रूसी सैनिकों द्वारा जबरन गुमशुदगी यातना दिए जाने मनमाने ढंग से की गई हत्याओं दुर्व्यवहार हिंसक संघर्ष-सम्बन्धी यौन हिंसा और आम लोगों को मनमाने ढंग से हिरासत में लिए जाने के बड़ी संख्या में मामले

सामने आ रहे हैं। यूएन मानवाधिकार कार्यालय ने रूसी सैन्य बलों द्वारा बच्चों को मनमाने ढंग से हिरासत में रखने उनके जबरन लापता होने बच्चों को यातना दिए जाने या उनके साथ बुरा बर्ताव कि जाने के मामलों पर गम्भीर चिन्ता जताई है। यूक्रेन युद्ध की जाँच के लिए गठित स्वतंत्र आयोग ने 16 मार्च 2023 को प्रकाशित अपनी नई रिपोर्ट में कहा है कि रूस सरकार ने अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून और अंतरराष्ट्रीय मानव कल्याण क़ानून के हनन के अनेक मामलों को अंजाम दिया है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: मानवाधिकार आंदोलन को गति देने वाले कई बुनियादी विचार वास्तव में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान हुए नरसंहार की घटनाओं के बाद विकसित हुए है जिसकी परिणति पेरिस में संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा के रूप में स्वीकृति प्रदान की गई है। प्राचीनकाल में सार्वभौमिक मानवाधिकारों की कोई आधुनिक अवधारणा नहीं थी। उक्त विचार अंतरराष्ट्रीय शांति को बढ़ावा देने और सशस्त्र संघर्ष को रोकने के प्राथमिक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद अवतरित हुआ है। मानव इतिहास की घटित घटनाओं से ज्ञात होता है कि युद्ध मानवाधिकारों के हनन का बहुत बड़ा कारण रहा है भले ही विश्व युद्ध शीत युद्ध गृहयुद्ध या फिर दो या दो से अधिक राज्यों के बीच लड़े जाने वाले युद्ध क्यों न हो। सभी प्रकार के युद्धों ने न केवल मानवाधिकारों के मूल्यों एवं प्रतिष्ठा को गहरा आघात पहुँचाया है बल्कि जीवन के मूलभूत अधिकारों के हनन के दौरान संवेदनहीनता की एक नयी पराकाष्ठा स्थापित की है। यद्यपि मानवजाति को अमानवीय परिस्थितियों से निपटने के लिए समय-समय पर समाधान ढूंढने के अंतरराष्ट्रीय प्रयास किये गए तथापि मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा को अंतरराष्ट्रीय व्यापक स्तर पर लागू करने हेतु संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार आयोग ने दो संधियों का मसौदा तैयार किया नागरिक और राजनीतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध और इसके वैकल्पिक प्रोटोकॉल और आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध जिसे वैश्विक स्तर पर स्वीकार किया गया। मानवाधिकारों के विधेयक में अनुबंधों के अलावा संयुक्त राष्ट्र ने मानवाधिकारों को और अधिक विस्तृत करने वाली 20 से अधिक प्रमुख अंतरराष्ट्रीय संधियों को भी अपनाया है, जिनमें प्रमुख शरणार्थियों से जुड़े मुद्दे युद्ध अपराध अमानवीय अत्याचार और नरसंहार, जैसे विशिष्ट दुर्व्यवहारों को रोकने और उन्हें प्रतिबंधित करने से संबंधित शामिल हैं। उपरोक्त अंतरराष्ट्रीय प्रयासों के बावजूद भी रुस-यूक्रेन युद्ध अफगानिस्तान में क्रूर

घटनाओं और अफ्रीका के कुछ देशों में आंतरिक सशस्त्र संघर्ष और अरब–इजराइल संघर्ष इत्यादि देशों में हो रही मानवाधिकारों के हनन की घटनाओं ने दुनिया को झकझोर कर रख दिया है जिसे अमानवीय घोर त्रासदी के रूप में देखा जा सकता है।

सन्दर्भ सूची

- अमर उजाला हिंदी समाचार पत्र
- दैनिक जागरण हिंदी समाचार पत्र
- दृष्टि, द विजन
- हिंदुस्तान टाइम्स अंग्रेजी समाचार पत्र
- द हिंदू अंग्रेजी समाचार पत्र
- यूनाइटेड नेशनएयूएन क्रॉनिकल
- मानव अधिकारः नई दिशाएं, वार्षिकी जर्नल्स, एन.एच.आर.सी., नई दिल्ली
- शर्मा, मुकुल, ह्यूमैन राइट्स इन ग्लोबलाइजेशन वर्ल्ड, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- मुक्त ज्ञानकोश, विकीपिडीया, भारत में मानव अधिकार
- रूस, यूक्रेन और अंतरराष्ट्रीय कानूनः व्यवसाय, सशस्त्र संघर्ष और मानवाधिकार पर, यूआरएलः https://www.hrw.org/news/2022/02/23/russia-ukraine-international-law-occupation-armed-conflict-and- human-rights.
- एमनेस्टी इंटरनेशनल, यूक्रेन 2022, यूआरएलः https://www.amnesty.org/en/location/europe-and-central-asia/ukraine/report-ukraine/
- क्लैफाम, एंड्रयू (2007), "ह्यूमन राइट्सः ए वेरी शॉर्ट इंट्रोडक्शन" ऑक्सफोर्ड यूनिवरसिटि प्रेस:ऑक्सफोर्ड.
- जॉर्ज जे. अन्नास और एच. जैक गीगर, युद्ध और मानवाधिकार यूआरएलः https://lawexplores.com/war-and- human-rights/
- श्रीराम, चंद्र लेखा और अन्य (2018),युद्ध, संघर्ष और मानवाधिकार सिद्धांत और व्यवहार, रूटलेजः ऑक्सन.
- ०मैक्कार्थी, "नियाल इजरायल–फिलिस्तीनी संघर्ष की मानवीय लागत,", 12 मई, 2021, यूआरएलः https://www.statista.com/chart/16516/israeli-palestinian-casualties-by-in-gaza-and-the-west-bank/

❑ ❑ ❑

जल संरक्षण – समस्या एवं समाधान

–नीलमणि शर्मा

संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार यदि विश्वभर के पानी को आधा गैलन मान लिया जाए तो उसमें ताजा पानी आधे चम्मच से ज्यादा नहीं होगा, और धरती की ऊपरी सतह पर कुल जितना पानी है, वह तो सिर्फ बूंदभर ही है, बाकी सब भूमिगत है। वर्ष 1988 में संयुक्त राष्ट्र के महासचिव बुतरस घाली ने चेतावनी दी थी कि मध्य पूर्व में अगला युद्ध पानी के लिए होगा। वर्ष 1996 में विश्व बैंक के उपाध्यक्ष इस्माइल सेरोगोल्डिन ने भी चेतावनी को दोहराया कि अगली सदी में युद्ध तेल और राजनीति के लिए नहीं, बल्कि पानी के लिए होगा। वर्ष 2008 में यूनेस्को के महानिदेशक कोचचिरो मत्सूरा ने कहा था कि जल की उपलब्धता कम हो रही है, जबकि मांग नाटकीय रूप से बढ़ रही है।

जल के विभिन्न उपयोग

भारत संस्कृतियों व संस्कारों का देश है। यहां कोई भी शुभ कार्य बिना जल के संपन्न नहीं होता, यहां तक कि जब किसी सूखेग्रस्त इलाके में जल देवता से पानी बरसाने के लिए यज्ञ किया जाता है तो उसमें भी जल की आवश्यकता होती है। प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में पंच महाभूतों अर्थात क्षिति (पृथ्वी), जल (पानी), पावक(अग्नि), गगन (आकाश) और समीर (वायु) में से जल यानी पानी का जीवन की रचना में और जीवन के संचालन में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। साहित्य में जल का महत्व का वर्णन किया गया है। महादेवी वर्मा, कबीर, रहीम, सूर, मीरा, जायसी, तुलसीदास आदि ने जल के महत्व के बारे में लिखा है।

जल बिना जीवन संभव नहीं है। हमारे शरीर का दो तिहाई भाग जल ही है। जल एक पोषक तत्व होने के साथ ही साथ शरीर के लिए आवश्यक अन्य पोषक तत्वों के वहन का कार्य भी करता है। शारीरिक प्रकियाओं के अतिरिक्त भी मानव के अनेक मूलभूत जीवन क्रियाकलापों में भी जल अत्यंत आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए भोजन पकाने के लिए, अन्य घरेलू कार्यों सफाई आदि के लिए, विभिन्न उद्योगों में, सिंचाई हेतु, मत्स्यपालन में, जलाशयों के रख-रखाव हेतु, वाष्प चालित इंजनों तथा बिजली पैदा करने के लिए विद्युत संयंत्रों में, दमकल कार्यवाही में आग बुझाने के लिए तथा फव्वारे, बौछार, तरणताल, नौका विहार आदि। दुनिया में तीन चौथाई रोजगार पानी पर सीधे तौर पर जुड़े हैं। जल का उपयोग नौवहन अथवा अंतरदेशीय जल परिवहन के रूप में भी हो रहा है।

दुनिया के सामने जल संकट

जल संकट आज दुनिया के सामने एक चुनौती बनकर खड़ी है। विकासशील देशों या कम आय वाले देशों में जल संकट एक प्रमुख मुद्दा है। स्वास्थ्य देखभाल और स्वच्छता के लिए जल तक बेहतर पहुंच प्रदान करना आज एक चुनौती बन गया है। विकासशील देश ही नहीं बल्कि विकसित देश भी इस समस्या से अछूते नहीं हैं। जल का लगभग 70 प्रतिशत भाग सिंचाई में शेष 22 प्रतिशत कल-कारखानों में एवं लगभग 8 प्रतिशत घरेलू कार्यों के लिए प्रयोग होता है। शहरों में जन साधारण के लिए ही नहीं, अपितु बड़े होटलों, स्विमिंग पूलों, लॉन व गोल्फ कोर्स तक के लिए भी खूब पानी मिल जाता है, जबकि गांव प्यासे रह जाते हैं।

उद्योग और कृषि के बीच विवाद है कि किसानों को उनकी फसलों की सिंचाई के नाम पर जल परियोजनाओं को स्वीकृति मिलती है लेकिन उनका पानी बड़े उद्योगों व बिजलीघरों को दे दिया जाता है। एक आदमी को वर्ष में औसतन 1700 घन मीटर से अधिक जल की आवश्यकता होती है। यदि व्यक्ति के लिए जल की उपलब्धता 1000 घन मीटर से नीचे चली जाती है तो यह मान लिया जाता है कि वहां पानी का अभाव हो चला है। पानी के उपभोग का यही गणित जब 500 घन मीटर से भी नीचे चला जाता है तो उस क्षेत्र में जल अकाल जैसे लक्षण पैदा होने लगते हैं।

भारत में जल एक चुनौती

वर्ष 2018 में भारत सरकार की रिपोर्ट के अनुसार भारत वर्तमान में सबसे खराब जल संकट से गुजर रहा है क्योंकि 84 प्रतिशत ग्रामीण घरों में पानी की पहुंच नहीं है और 70 प्रतिशत से भी अधिक हमारे जल संसाधन दूषित है। इसके अतिरिक्त पानी की आपूर्ति के बुनियादी ढांचे पुराने और लीकेज युक्त हैं। दूषित जल के लिए भारत की जल उपचार क्षमता केवल 33 प्रतिशत है और शेष दूषित जल को सीधे नदियों, झीलों और यहां तक की भूमिगत जलवाहकों में डाल दिया जाता है।

नीति आयोग द्वारा जारी समग्र जल प्रबंधन सूचकांक के अनुसार भारत अपने इतिहास में सबसे विकट जल संकट की स्थिति का सामना कर रहा है और लाखों लोगों की आजीविका खतरे में है। स्वच्छ जल उपलब्ध न होने के कारण हर वर्ष करीब दो लाख लोगों की मौत हो जाती है। वर्ष 2030 तक देश में जल की मांग, आपूर्ति के मुकाबले दोगुनी होने और देश के जीडीपी में 6 प्रतिशत की कमी होने का अनुमान है। इससे करोड़ों लोगों के सामने जल संकट की स्थिति उत्पन्न होगी।

जल संरक्षण समस्या एवं सुझाव

कश्यप मुनि ने कहा है कि संसार में जो कुछ दिखाई देता है, उसमें जल को ही समझना चाहिए। जल ही विभिन्न रूपों में हमें दिखाई देता है और उन रूपों का संरक्षण, संवर्धन भी तभी संभव है, जबकि जल बचा रहे। पाराशर ऋषि का मत है कि जैसे कुल का हितचिंतक अपने परिवार के स्त्रीधन की सुरक्षा करता है, वैसे ही बारिश के जल का शरद से पूर्व ही संरक्षण का यत्न करना चाहिए। जल की बचत अकाल को सुकाल में बदल सकती है।

जल के संबंध में 28 जनवरी, 2011 को सुप्रीम कोर्ट के जज मार्कंडेय काटजू ने एक निर्णय में कहा था, हमारे पूर्वज मूर्ख नहीं थे। वे जानते थे कि एक निश्चित अवधि के बाद सूखा या किसी अन्य कमी के कारण जल की समस्या उत्पन्न होगी...इसलिए उन्होंने हर गांव के साथ जुड़े तालाब बनाएं। हर मंदिर के साथ एक जलाशय बनाया। ये उनका परंपरा गत रेनवाटर हार्वेस्टिंग तरीका था, जो हजारों सालों से उनके लिए उपयोगी बना रहा।

22 मई, 2016 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने अपने मन की बात कार्यक्रम में जल संरक्षण के लिए सभी उपायों को अपनाने के लिए पूरे समाज का आह्वान करते हुए कहा था कि तालाब बचाने, नये तालाब बनाने व पुराने तालाबों की मरम्मत करने और संरक्षण पर ध्यान देना चाहिए। उन्होंने 30 जून, 2019 को मन की बात में कहा था कि जल संरक्षण बेहद जरूरी है। उन्होंने यह भी कहा कि वर्षा जल का मात्र 8 प्रतिशत ही हम सहेज पाते हैं।

भारत की सालाना वर्षा करीब 4,000 बीसीएम है, जिसका 8 प्रतिशत 320 बीसीएम होता है। वर्षा जल का संचयन करके हम अधिक-से-अधिक अलग-अलग जगहों में इकट्ठा कर सकते हैं जैसे बांधों, कुओं और तालाबों में। अलग अलग जगहों में पानी का संचयन करने के कारण जमीन पर बह कर व्यर्थ जाने वाले वर्षा जल की मात्रा में कमी आती है, जिससे बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदा को रोकने में और भूजल को रिर्जव करने में स्वाभाविक रूप से मदद मिलती है। वर्षा जल को हम जितना जमीन के अंदर जाने देंगे, उतना ही हम जल संकट को दूर रखेंगे। इस विधि से मिट्टी का कटाव भी रुकेगा और हमारे देश को सूखे व अकाल का सामना भी नहीं करना होगा।

भूजल हालांकि जल विज्ञानीय चक्र और सामुदायिक संसाधन का हिस्सा है लेकिन इसे वैयक्तिक संपत्ति मानकर इसकी निरंतरता के विषय में सोचे-समझे बिना इसका दोहन किया जा रहा हैं। सरकारी अध्ययन के अनुसार देश का भूजल स्तर 0.3 मीटर सालाना की दर से गिर रहा है। बढ़ते भूजल दोहन के कारण धरती की सतह धंसने लगी है। शोध के अनुसार दुनिया के 34 देशों में 200 से अधिक जगह पर भूजल के अनियंत्रित दोहन के कारण जमीन धंसने के सबूत मिले हैं।

फिलहाल कृषि क्षेत्र पानी की सबसे ज्यादा खपत करता है। विश्व में मौजूद मीठे जल का 70 फीसदी हिस्सा कृषि में खर्च होता है। पानी की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए भूजल का ज्यादा दोहन हो रहा है। इसकी वजह से दुनिया भर के भूजल भंडार में हर साल 100-200 घन किलोमीटर की कमी आ रही है। देश में वर्षा आधारित फसलों पर से अपनी निर्भरता कम करने का कोई प्रयास नहीं किया जा रहा है। वर्षा के दौरान नदी-नालों में बहकर यूं ही बर्बाद हो जाने वाले पानी के संग्रहण की कोई उचित व्यवस्था अब तक नहीं बन जाई है। गांवों में औसतन जितनी वर्षा होती है, यदि उसका मात्र 14-15 प्रतिशत हिस्सा ही संग्रहण कर लिया जाए

तो वहां सिंचाई से लेकर पेयजल की सारी जरूरतें पूरी हो सकती हैं। कुंड का पानी कुंड में, खेत का पानी खेत में, नाले का पानी नाले में और गांव का पानी गांव में का प्राचीन सिद्धांत अपनाया जाना चाहिए।

जल की शुद्धता की गुणवत्ता परखने के लिए कॉलेजों को विज्ञान प्रयोगशालाओं में आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिए। तालाब और कुएं से एकत्र जल को सफाई करके पीने के योग्य बनाया जाना चाहिए। जो लोग जल को व्यर्थ गंवाते हैं, उन्हें दंडित किया जाना चाहिए। पहाड़ी क्षेत्रों की नदियों एवं झरनों के पानी को एकत्र करके, उन्हें शुद्ध करके आपूर्ति के योग्य बनाया जाना चाहिए।

वर्षा ऋतु में जब अधिक वर्षा होती है तो अतिरिक्त वर्षा जल की मात्रा जो भूमि पर प्रवाहित होकर हमारी पकड़ से बाहर चली जाती है उसे एकत्रित करके उस जल को वाष्पीकरण एवं निष्पंदन की हानियों से बचाकर, फसलोत्पादन के लिए जीवन रक्षक सिंचाई के रूप में प्रयोग करना वाटर हार्वेस्टिंग कहलाता है। राष्ट्रव्यापी स्तर पर रेनवाटर हार्वेसटिंग और कृत्रिम रिचार्ज कार्यक्रम को सर्वाधिक प्राथमिकता के आधार पर चलाया जाना चाहिए।

नहाते समय बाल्टी में पानी लेकर शावर या टब में नहाने की तुलना में बहुत जल बचाया जा सकता है। नगरों और महानगरों में घरों की नालियों के पानी को गढ्ढे बनाकर एकत्र किया जाए और पेड़- पौधों की सिंचाई के काम में लिया जाए। वाहनों की धुलाई के लिए पाइप से पानी का इस्तेमाल करने की बजाय बाल्टी में पानी लेकर स्पंज से धुलाई करें। बगीचे में पत्तियों को जलाएं नहीं बल्कि उनकी कम्पोस्ट खाद बनाए। प्लास्टिक के थैलों का इस्तेमाल न करें और अगर करें तो उन्हें इधर-उधर न फैंके। प्लासटिक के थैले पृथ्वी में जल के रिसाव को रोकता है।

भविष्य में जल संकट का सामना हमारे युवा पीढ़ी को करना है, क्योंकि कल वे ही इसके उपभोक्ता हों। यदि युवक में जल के संरक्षण और इसके महत्व के प्रति जागरूकता हो तो वह कल किसी भी पद पर जाकर इसका सदुपयोग करेगा। इसके अलावा युवाओं में ऊर्जा अधिक है तथा वे किसी भी चीज को जल्दी ग्रहण कर लेते हैं। जल संरक्षण को सामाजिक आंदोलन के स्तर पर चलाया जाए और इसमें युवकों की भागीदारी निश्चित की जाए तभी इस समस्या का कुछ समाधान निकल सकता है।

समस्या पानी के संकट से अधिक उसके प्रबंधन को लेकर है। टॉयलेट फ्लश करने में पानी की सबसे अधिक बर्बादी होती है। फ्लश टैंक के आकार के आधार

पर प्रत्येक फ्लश के साथ पांच से सात लीटर पानी बर्बाद होता है। इसे रोकने के लिए जापान ने एक नवोन्मेषी तरीका अपनाया है। वहां की एक कंपनी ने शौचालय के फ्लश टैंक के ऊपर ही हाथ धोने के लिए वॉश बेसिन लगवा दिए। इससे हाथ धोने के बाद ये पानी फ्लश टैंक में चल जाता है और टायलेट फ्लश करने के लिए इस्तेमाल होता है।

हमारे घरों में इस्तेमाल होने वाला 80 प्रतिशत पानी बर्बाद हो जाता है। अधिकांश मामलों में इस पानी को शुद्ध करके दूसरे या कृषि में इस्तेमाल नहीं हो पाता है। इजरायल और ऑस्ट्रेलिया में ऐसा नहीं है। इजरायल अपने शत-प्रतिशत इस्तेमाल पानी का शुद्धिकरण करता है और घर में इस्तेमाल होने वाले पानी के 94 प्रतिशत को रिसाइकिल किया जाता है। आवश्यकता है इजरायल जैसी तकनीक भारत में भी विकसित की जाए।

जल प्रबंधन, संरक्षण हेतु सरकारी पहल

डब्ल्यूएचओ और यूनिसेफ के एक रिपोर्ट के अनुसार, 2021 में, दुनिया भर में लगभग 857 मिलियन लोगों के पास उनकी स्वास्थ्य देखभाल सुविधा में पानी की सुविधा उपलब्ध नहीं है जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकारी पैनल की नवीनतम मूल्यांकन रिपोर्ट के अनुसार, दुनिया की लगभग आधी आबादी पहले से ही कम से कम कुछ वर्षों के लिए गंभीर जल संकट के जोखिम में है। अतः हमें जल संरक्षण के उपायों पर विशेष ध्यान देने की आवश्कता है।

जल कानून के निर्माण की शुरुआत ब्रिटिश सरकार ने सिंचाई एवं जल प्रदाय की सुविधाओं को बढ़ाने के लिए वर्ष 1829 में तटबंध अधिनियम बनाकर की थी। इसके बाद अनेक तटबंध और सिंचाई अधिनियम बनाए गए। वर्ष 1935 के भारत सरकार अधिनियम द्वारा जल संबंधी कानून को भी स्पष्ट किया गया था। आजादी के बाद भारत ने जल के संबंध में इसी व्यवस्था को अपनाया। इसके अतिरिक्त भारत के संविधान में अनुच्छेद 262, अंतरराज्यीय नदियों के जल बंटवारे के विनियमन के लिए रखा गया।

जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम 1974 को 23 मार्च, 1974 में 12 राज्यों एवं संघ राज्य क्षेत्रों में लागू किया गया तथा अन्य राज्यों में लागू करने की व्यवस्था की गई। अधिनियम का संशोधन 1978 व 1988 में किया गया। भारत

में पहली जल नीति वर्ष 1987 में बनी फिर दूसरी और तीसरी नीति का निर्धारण वर्ष 2002 और 2012 में किया गया। वर्ष 2002 की जल नीति में केवल निजी क्षेत्र भगीदारी की बात शामिल थी वहीं वर्ष 2012 की नीति केन्द्र में जल के मूल्य निर्धारण, जल के लेखा परीक्षण यानी बूंद-बूंद पानी का हिसाब रखने और इसके लिए नई संस्थाओं को बनाने पर जोर दिया गया।

जल संसाधन मंत्रालय को पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय के साथ विलय करके और नदी संरक्षण निदेशालय को नए मंत्रालय में स्थांनातरित करके जलशक्ति मंत्रालय का गठन किया है। देश में बढ़ते जल संकट को ध्यान में रखते हुए 5 जून, 2015 को विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर जल क्रांति अभियान देशभर में शुरू किया गया, ताकि देश में इसे जनांदोलन बनाया जा सके। नल से जल सरकार की एक योजना भी चलाई जा रही है।

सरकार ने देश के कई राज्यों में वर्षाजल संचयन को अनिवार्य बना दिया है। मध्यप्रदेश में 140 वर्गमीटर या उससे अधिक क्षेत्रफल पर निर्मित होने वाले सभी भवनों में वर्षाजल संचयन को अनिवार्य बना दिया है। राजस्थान में सभी सरकारी भवनों में वर्षाजल संचयन करवाना अनिवार्य कर दिया है। दिल्ली, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, बिहार, कर्नाटक और आंध्रप्रदेश में भी नई इमारतों में कानून, वर्षाजल संचयन को अनिवार्य बना दिया गया है। कर्नाटक में वर्षाजल संचयन करवाने पर संपत्ति कर में 5 वर्ष के लिए 20 प्रतिशत की छूट मिलती है। पंजाब में लुधियाना और जालंधर नगर निगमों ने इसे जरूरी किया है। छत्तीसगढ़ राज्य सरकार को वर्षाजल संचरन को अनिवार्य कर दिया है। गुजरात में भी यह नियम लागू है।

अंत में

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 में पानी के अधिकार की गारंटी देता है। लेकिन जल अधिकार के साथ जिम्मेदारियां भी आती हैं। पेयजल इतनी अधारभूत आवश्यकता है कि इसे सिर्फ सरकार के भरोसे नहीं छोडा जा सकता। नागरिक समाजिक संगठनों के रूप में हमारे लिए दोहरी जिम्मेदारियाँ हैं। जीने के मौलिक अधिकार के रूप में पानी के अधिकार के प्रति जागरुकता फैलाना और उन तरीकों को अपनाना जो इन अधिकारों को सुनिश्चित करते हैं। वास्तव में, यदि पृथ्वी पर उपलब्ध जल की मात्रा को देखा जाए तो पानी की न तो कमी है और न ही

अधिकता। आवश्यकता इस बात की है कि जल-चक्र को नियंत्रित किया जाए। दृढ़ इच्छा शक्ति, संसाधनों के उचित इस्तेमाल, योजनाओं के सही कार्यान्वयन और भागीदारी के एक आंदोलन के रूप में, यदि समेकित प्रयास किये जाए तो देश में पानी की समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है।

डी.जी-001, एक्सप्रैस ग्रीन्स,
सेक्टर-1, वैशाली, उत्तर प्रदेश -201010
neelnisheeth@gmail.com
मोबाईल 9311125737

❑ ❑ ❑

बेघरी का आलम और दर-ब-दर मनुष्यता
विस्थापितों के वृत्तांत

–ओम निश्चल

तुम जो इस सैलाब से उबर कर निकल आए हो
जिसमें हम डूब गए
याद रखना जब हमारी विफलताओं पर बात करना
तो उस अंधेरे समय के बारे में बात करना मत भूलना
जिससे तुम बच कर निकल आए हो
हमने जितने ज्यादा जूते नहीं बदले
उससे ज्यादा मुल्क बदले
युद्धों और हताशाओं से गुजरते हुए
जहां केवल अन्याय था और कहीं कोई प्रतिकार नहीं।

(टू दोज बार्न लेटर, बेख्त, बर्तोल्त ब्रेख्तः पोयम्स, 1913-1956)

ब्रेख्त की कविताएं पढ़ते हुए लगता है यह एक कवि की पीड़ा नहीं है, यह समूची मनुष्यता की पीड़ा है जो दुनिया में अपनी रिहाइश की तलाश में दर ब दर हो रही है। यों तो कहने को पूरी दुनिया मनुष्यों का ही घर है किन्तु समस्त मानवाधिकारों पर विमर्श के बावजूद लाखों करोड़ों लोग पूरी जिंदगी एक घर की तलाश में बिता देते हैं। वे अपनी जड़ों से उखड़ते हैं या इसके लिए बाध्य किए जाते हैं तो फिर किसी दूसरे मुल्क में शरण खोजते हैं और वे वहां जा पहुंचते हैं, जहां दाना पानी लिखा होता है। ऐसी स्थिति में जरा उनकी सोचिए जो किसी न किसी कारणवश अपने ही मुल्क से खदेड़ दिए जाते हैं, और किसी अन्य मुल्क में शरण ले लेते हैं। बेघर

होने की पीड़ा या पराये मुल्क में जिस तरह का व्यवहार उनके साथ किया जाता है, वह कितना त्रासद होता है, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। यहां से गिरमिटिया मजदूर बन कर जो लोग फिजी, सूरीनाम, गयाना, त्रिनीदाद आदि मुल्कों में ले जाए गए वे अपने देश और संस्कृति से छिन्नमूल होकर वहां बसे। वहां की जमीन को उर्वर बनाया। पर जहां तक अधिकारों का प्रश्न है, वहां के मूल नागरिकों की तरह वे स्वीकार नहीं किए जाते। इससे भी बदतर स्थिति यह है कि जहां जहां जिन मुल्कों में अंग्रेज, फ्रेंच या अन्य शासकों के उपनिवेश बने, वहां उन मुल्कों के मूल नागरिकों से गुलामों की तरह व्यवहार किया जाता था। अविकसित या अल्पविकसित राष्ट्रों ने गुलामी की जंजीरों को निकट से महसूस किया है।

भारत में लंबे अरसे तक मुगल व अंग्रेज शासकों का आधिपत्य रहा। लिहाजा यहां के नागरिकों को गुलामी की कितनी लंबी यातना से गुजरना पड़ा। ब्रिटिश उपनिवेश से पार पाने में यहां के देशवासियों व स्वतंत्रता सेनानियों को लंबा संघर्ष करना पड़ा है। अफ्रीका भी सुदीर्घ समय तक विदेशियों का उपनिवेश रहा है जिसका फल यह हुआ कि दक्षिण अफ्रीका को आजादी कितनी देर से मिली। दक्षिण अफ्रीका के गांधी कहे जाने वाले नेल्सन मंडेला ने लगभग आधी से ज्यादा जिंदगी जेलों में गुजार दी। यह आजादी मांगने का प्रतिफल था। अफ्रीकी नेशनल कांग्रेस का एक लंबा संघर्ष चला। रंगभेद की निंदा दुनिया के तमाम प्रगतिशील मुल्कों ने की फिर भी दक्षिण अफ्रीका को आजाद होने में लंबा समय लगा। अफ्रीकी कविताओं को पढने से वहां के मूल निवासियों की पीड़ा का अनुमान लगता है। जिन दिनों अफ्रीका में रंगभेद चरम पर था, वहां के कवि डान मातेरा को पढ़ने का अवसर मिला। उसकी कविता में अश्वेत चेतना की अभिव्यक्ति देखें।

मैंने जब रोटी मांगी
उन्होंने मुझे गेहूं के खेते दिए
और कहा कि वे मुझे प्यार करते हैं
मैंने पानी माँगा और
उन्होंने मुझे कुआँ ही दे दिया

यह कहते हुए कि उन्हें मुझसे सहानुभूति है।
क्योंकि मैंने उनकी मोहब्बत पर यकीन किया
क्योंकि मैंने उनकी सहानुभूति को यथार्थ माना
इसलिए एक दिन मैंने उनसे अपनी आजादी चाही।

तब उन्होंने गेहूँ का खेत छीन लिया
और मुझे कुएँ से वंचित कर दिया
उन्होंने मुझे भारी भरकम सींकचों में कैद कर दिया
और मुझसे कहा कि
बहुत ज्यादा मांग रहा हूँ। (ए बुक आफ अफ्रीकन वर्स)

सच है, पराधीन सपनेहुं सुख नाही। पर बेघरी का आलम यह कि रोजी रोटी के निमित्त अपना मुल्क छोड़ कर दीगर मुल्कों में बसना ही पड़ता है और वहां की विपदाओं को सहना ही पड़ता है। यह भी दूसरे शब्दों में विस्थापन ही है। दुनिया में विस्थापितों की बड़ी तादाद है। विस्थापन के मुद्दे पर चिन्मय मिश्र कहते हैं कि 'यूरोप को अपने कल-कारखानों के लिए कच्चे माल की आवश्यकता थी इसलिए सारी दुनिया की खनिज संपदा पर उनकी निगाह पड़ी। इस तरह जमीन के नीचे दबे खनिजों को बड़े पैमाने पर निकालने के लिए उन पर बसे आदिवासियों को खदेड़ने की जो शुरुआत तीन शताब्दियों पूर्व हुई थी वह आज भी जारी है। सिर्फ नाम बदल गए हैं पहले उनमें से एक ईस्ट इंडिया कंपनी थी, अब वेदांता है और यह अजीब सा दुर्योग है कि दोनों के मुख्यालय लंदन में ही हैं।' पर इसकी वजह से आदिवासियों का जिस व्यापक पैमाने पर विस्थापन हुआ, उन्हें उनके ही इलाकों से खदेड़ा गया वह त्रासद है। कहा जाता है उड़ीसा की नियमगिरि पहाड़ी से एल्यूमिनियम निकालने के लिए वेदांता के आने से वहां निवास करने वाली डोंगरिया कोंध जनजाति विस्थापित की भारी विभीषिका झेल रही है। इन आदिवासियों का कहना है कि जब नियमराजा ने हमें खाने-पीने की सारी चीजें जमीन के ऊपर दे रखी हैं तो हम पहाड़ को उत्खनित क्यों करें।

आए दिन कभी बांध, चांदमारी, यूरेनियम की खान या बिजली परियोजनाओं के लिए लोगों को विस्थापित होना पड़ता है और दर बदर की ठोकरें खानी पड़ती हैं। विकास की कीमत पर प्रकृति, पर्यावरण और मनुष्यता जिस तरह के उजाड़ और विस्थापन से गुजर के दौर से रही है, उसकी कीमत भी मनुष्य को उठानी पड़ रही है। पर न बांध से हमने सबक लिए न खनन परियोजनाओं से। टिहरी और हरसूद जैसे हादसे इसके प्रमाण हैं। उत्तराखंड की तबाही और चेन्नई में असमय बारिश का कहर वे चेतावनियां हैं जिन्हें हमने अब तक अनुसना कर रखा है। विकास और आधुनिकता की होड़ ने मानवीय जीवन को कितना जटिल और निरीह बना दिया है। पारिस्थितिकी के असंतुलन ने पर्यावरण की चूलें हिला दी हैं। इसका दुष्परिणाम

यह है कि किसी भी इलाके में ऐसी आपदाएं आती हैं भूकंप, सुनामी, बाढ़ या भूस्खलन–इससे हजारों लाखों लोग विस्थापन का शिकार होते हैं। घर से दर–ब–दर होते हैं। पिछले बरस दक्षिण अफ्रीका के कुछ शहरों में जाना हुआ। दक्षिण अफ्रीका की आजादी के बीस साल पूरे होने पर वहां होने वाले साहित्योत्सव के साहित्यिक दल में शामिल होकर अच्छा लगा। यह जानकर और भी कि यही वह देश है, जहाँ कभी महात्मा गाँधी आए थे। यहाँ रहकर उन्होंने भारतीय नागरिकों को सम्मान दिलाने और उनकी सम्मानजनक रिहाइश के लिए महत्वपूर्ण कार्य किए। जिस अफ्रीका में वहाँ के अपने नागरिकों की ही सुनवाई न हो, वहाँ भारत जैसे राष्ट्र के लोगों की क्या स्थिति होगी, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। वहाँ भारतीयसमुदाय के लोगों को देखकर यह अवश्य लगा कि वे वहाँ अपने–अपने रोजगार में संलग्न हैं और उनके पास जीविका के सम्मानजनक संसाधन भी हैं पर फिर भी उन्हें वहाँ रहते हुए हर वक्त यह अहसास अवश्य होता है कि वे अपने देश में नहीं, हजारों किलोमीटर दूर, एक पराए देश में रह रहे हैं, जहां खोजने पर आम का पौधा बड़ी मुश्किल से मिलता है। तुलसी के पौधे भी किसी विरल धर्मपरायण व्यक्ति के आँगन में ही मिलेंगे, किंतु इन भारतीयों के बीच जोड़ने वाली एक कड़ी ऐसी है जो सबको परस्परता में बाँधे रहती है। जिस रंगभेद के विरूद्ध भारत ने पूरे मन से अफ्रीकियों का साथ दिया, उसी दक्षिण अफ्रीका में आज अफ्रीकी नागरिक भारतीय समुदायों पर हमलावर हो उठते हैं। यहाँ तक कि जिन इलाकों में कभी भारतीयों की बस्ती सघन हुआ करती थी, वहाँ से इसी भय के कारण उजड़कर भारतीय समुदायों ने अपने घर, अपने समुदायों के बीच बना लिए हैं। कभी इस बारे में विस्तार से बातचीत कीजिए तो भारतीय परिवारों का यह दर्द छिपा नहीं रहता कि जिन अफ्रीकियों के साथ भारतीयों ने राजनैतिक तौर पर अपनत्व–भरा रिश्ता निभाया है, वे औपनिवेशिक शासकों के अलावा भारतीयों को भी लगभग उपेक्षा की नजर से देखते हैं।

ब्रिटेनः परायेपन के अहसास के साथ नेपाली

बेघर होने और एक पराई संस्कृति के बीच अपनी जड़ें जमाने में समय लगता है। कोई व्यक्ति या समुदाय ऐसे किसी पराए देश में अंत तक अपने को छिन्नमूल ही समझता है, जहाँ वह पैदा नहीं हुआ, भले ही उस समाज में उसकी तालीम और परवरिश हुई हो, लेकिन हर जगह उसे लगता है कि वह दोयम दर्जे की नागरिकता का शिकार है। उसे विदेशी मिट्टी अपनी नहीं लगती। वहां की बोली–बानी हर वक्त पराएपन का अहसास कराती है। ब्रिटेन में ही बसे नेपालियों को लें तो हम देखते

हैं कि ब्रिटेन में प्रवासी नेपालियों की तादाद बहुत है। वहाँ पाकिस्तानी लगभग 1.2 मिलियन, बांग्लादेशी लगभग 560,000, भारतीय 1.4 मिलियन और श्रीलंकाई अनुमानत:500000 की संख्या में होंगे। ब्रिटेन के 2001 की जनगणना के मुताबिक मात्र 5943 व्यक्ति थे जो नेपाल में पैदा हुए थे, लेकिन 2004 की शुरुआत में बड़ी संख्या में नेपाली वहाँ आए और कुछ ही वर्षों में ब्रिटेन में इनकी तादाद बढ़ने लगी। अनेक ब्रिटिश नगरों में नेपाली रेस्तराँ खुले, जिनके नाम गुरखा अथवा एवरेस्ट हुआ करते। उन्हें स्वयंभू, अथवा देवी कुमारी के पोस्टरों से सजाया गया होता और वहाँ उत्तर भारतीय भोजन उपलब्ध होता। 2011 की जनगणना में इंग्लैंड और वेल्स में नेपालियों की तादाद 60,202 दर्ज की गई। बहुत थोड़े समय में ब्रिटेन में नेपालियों ने लगभग 400 संगठनों का गठन किया है। इन समूहों का जुड़ाव नेपाल से है, किंतु ये हुड़ाव कितना सघन है, यह इससे जुड़ी शख्सियतों पर निर्भर करता है। निस्संदेह इन सूत्रों ने हाल के वर्षों में सोशल मीडिया का लाभ उठाया है। कुछ ब्रिटेन केंद्रित समूह नेपाल में चैरिटी अथवा निवेश के लिए पर्याप्त राशियां भी जुटाते हैं। यहाँ हिंदू, बौद्ध, किरंत, बौन एवं ईसाई धार्मिक संगठन हैं, गोरंग, तमू,मगर, तवांग, शेरपा, नेवार, छेत्री, थकाली, लिंबू एवंराय जैसे संगठन भी हैं। कुछ गुरखा संगठन भी बने हैं जो गुरखा सैनिकों के समूहों को एक मंच प्रदान करते हैं, उन्हें बुनियादी प्रशिक्षण देते हैं और गुरखा अधिकारों एवं गुरखा कल्याणकारी गतिविधियों के सहयोग के लिए अभियान भी चलाते हैं। इनके साहित्यिक, सांगीतिक,खेल-कूद और युवा संघ भी हैं,डॉक्टरों, नर्सों, इंजीनियरों, कारोबारियों और मीडिया प्रोफेशनल्स के संगठन भी हैं और मुद्दा आधारित एवं नेपाल के राजनैतिक दलों से संबंधित राजनैतिक संगठन भी। यहां कुछ अंतरराष्ट्रीय नेपाली संगठन और धर्मादा संस्थाएं भी हैं जो सभी नेपालियों को एकसूत्र में जोड़ने का प्रयास करती हैं और नेपाल में विकास कार्य अथवा शिक्षा हेतु सहयोग उपलब्ध कराते हैं।

अधिकांश संगठन कम-से-कम एक ग्रीष्म समारोह और वार्षिक उत्सव अथवा आम बैठक का आायोजन करते हैं। वार्षिक नेपाली मेले के दौरान तमाम समूह एकत्रित होते हैं और गतिविधियों में हिस्सा लेते हैं। उदाहरण के लिए किरात राय याओक्ख, ब्रिटेन देश भर में सभी रायों को एक मंच पर लाता है तथा मिल-जुलकर मई में शनिवार के दिन सकेलाऊ भावली त्योहार मनाता है।नेपालियों ने यहां पर अपनी संस्कृतियों को महफूज रखा है। आपस में नाच-गाना, मिलना-जुलना चलता रहता है। इनके खेलकूद समारोह होते रहते हैं। सामूहिकता के बावजूद लोग बिना किसी आर्थिक उपार्जन के सांप्रदायिक सौहार्द्र के लिए काम करते हैं। पर सब कुछ

गुलाबी गुलाबी ही नहीं है। संगठनों में तनाव भी पैदा होते हैं पर वे सुलझा भी लिए जाते हैं।

ऐसा नहीं कि सब कुछ बहुत आसान था नेपालियों के लिए ब्रिटेन में। अपनी रिहाइश अपने सम्मान के लिए उन्हें खासा संघर्ष करना पड़ा है। स्थानीय जनता के साथ कुछ नोंकझोंक भी होती रही है। अनेक गुरखा सैनिक जो वहां जा बसे, बहुत बुजुर्ग थे, कम बोलते थे, अंग्रेजी नहीं जानते थे, सीधे गांव से ब्रिटेन आए थे। उन्हें यूके में बसने का अधिकार तो मिल गया था ; केवल पेंशनयाफ्ता थे जिनकी पेंशन नेपाल के अनुसार तो पर्याप्त थी पर यूके के लिहाज से बेहद कम। अचानक नेपालियो की तादाद बढते देख जनवरी 11 में वहां के स्थानीय सांसद जेरल्ड हावर्थ ने प्रधान मंत्री को खुला खत लिखा और कहा कि स्थानीय अधिकारियों व इसके नेता के लिए यह चिंता का विषय है कि इस भीड़ के कारण उनकी सेवाएं खतरे में हैं। इससे समुदाय के भीतर तनाव पैदा हो रहा है तथा खास कर नेपालियों की अल्प साक्षरता व अंग्रेजी की सीमित समझ के कारण उन्हें एक व्यवस्थित समुदाय में एकीकृत करने में बाधा आ रही है।

भीड़ की बात को नेपाली समुदाय के स्थानीय नेताओं द्वारा भड़काऊ माना गया पर सांसद निश्चय मतदाताओं की भावनाओं को टटोल रहे थे। वे प्रभात फेरी के नेपाली रीति रिवाज से अनभिज्ञ थे और समूह में नेपालियों के इकट्ठे होने को खतरा मानते थे। नेपालियों से बीमारी फैल सकती है, कालरा हो सकता है, इस तरह की बातें भी फैलाई गयीं। नेपालियों, टीबी और कालरा के बीच पारस्परिक सूत्र भी जोड़े गए। सांसद के पत्र से दुष्प्रेरित होकर उस वक्त पापुलर ब्रिटिश मीडिया में यह बात लिखी गयी कि बूढ़ेपूर्व गुरखा यहां रह रहे हैं ओर वे जोआन्ना लूम्ली पर दोषारोपण कर रहे हैं जिसने गुरखा बंदोबस्त अधिकारों की लड़ाई जीतने का अभियान चलाया और झूठे वायदों पर उन्हें ब्रिटेन लाए। बाद में जब एक औरत को डाक्टर का अपाइंटमेंट नहीं मिल सका तो उसके पति सैम फिलिप्स ने उस इलाके में रहने वाले नेपालियों को केंद्र में रखते हुए लूम्ली की वसीयत नामक फेसबुक पेज बनाया। इस पर काफी बहस चली और एक मिशन स्टेटमेंट जारी किया गया कि जाति–नस्लवादी पोस्टें मिटा दी जाएंगी तथा इसके लिए उत्तरदायी माने गए सदस्यों को समूह से निकाल दिया जाएगा। बाद में अपनी अलग राय रखने वालों ने इस समूह से हटाए जाने के बाद कुछ दूसरे छोटे–छोटे समूह बना लिए और फेसबुक पेज बंद कर दिया और गैर जातीय इरादों के बावजूद लूम्ली की वसीयत इस तरह की चिंताओं को लेकर जारी रही।

बाद में स्थानीय लेबर कौसिंलर के सुझाव पर एक अलग फेसबुक पेज भी बनाया गया --- वी लव द गुरखाज नाम से ताकि नकारात्मक प्रचार से निपटा जा सके।

जब युवा लोगों का गुस्सा फूटा तो कहीं अनिष्ट न हो जाए इसलिए पुलिस और कम्युनिटी कामगारों ने बीच बचाव किया। इसके बाद 4 फरवरी 2012 को एल्डरशाट में किंग्स सेंटर में एक बड़ा आयोजन किया गया : बेस्ट आफ बोथ, जिसमें गेरल्ड हावर्थ व ब्रिटिश गुरखा वेलफेयर सोसाइटी के चेयरमैन टिकेंद्र दीवान, व ग्रेटर रशमूर नेपाली सोसाइटी के प्रेसीडेंट शामिल हुए। वहां गुरखा सैनिक चौरिटीज, रशमूर बोरो कौंसिल स्थानीय पुलिस व नेपाल में काम कर रही चौरिटीज के काम को प्रदर्शित करने वाले स्टाल लगाए गए। नेपाली और स्थानीय ब्रिटिश युवकों की एक नई फुटबाल टीम गठित की गयी और यह सारा आयोजन लुम्लीज लेगेसी फेसबुक फोरम की ओर से सैम फिलिप्स ने किया। हालांकि कुछ सीमा तक शांति बहाल हुई और हिंसा को रोका जा सका पर वर्तमान सामुदायिक संबंध बहुत दुरुस्त नहीं कहे जा सकते। ब्रिटेन के बहुपठित अखबार 'द डेली मेल' ने इस दुखद प्रकरण पर कई आन लाइन लेख प्रकाशित किए।

घर से दूर ब्रिटेन में रहने का अर्थ आज भी नेपालियों के लिए बहुत सम्मानजनक नहीं प्रतीत होता। बड़े बुजुर्ग नेपाली निचले स्तर के दुर्व्यवहार को जिसमें गाली गलौज भी शामिल है, आज भी महसूस करते हैं। गोरे लोगों को एल्डरशाट में उनकी मौजूदगी पसंद नहीं है। किन्तु कई कम्युनिटी समूह जैसे 'मदद समूह' व 'नया युवा' नवागत औरतों की मदद करते हैं व दोनों समुदायों में फूट डालने की कार्रवाई का विरोध करते हैं।

जैसा कि डेविड एल गेलनर का कहना है, नेपाल सांस्कृतिक विविधता का अगुवा है। यह विविधता ब्रिटेन में देखने को मिलती है इस एक अपवाद के साथ कि मधेसी और मुसलमान मुश्किल से ही उपस्थित होते हैं। दलितों की उपस्थिति भी कम दिखती है। मित्र पेरियार ने जैसा दिखाया है, जो दलित यूके आए उन्हें भी नेपाल के शहरी इलाकों में उन्हीं समस्याओं से गुजरना पड़ा। किराये पर मकान देने से इन्कार करना, किचन शेयर करने से इन्कार और अन्य अपमानजनक टिप्पणियों से गुजरना। यह विचार कि यूके में जाति को लेकर कोई पूर्वाग्रह नहीं है एक विशफुल थिंकिंग है जैसा कि भारतीय पृष्ठभूमि के यूके में रह रहे दलितों ने भी ऐसा महसूस किया है।

ऐसा माना जाता है कि यूके में नेपालियों की आबाद दुनिया के इर्द गिर्द अन्य नेपाली प्रवासी समुदायों की तुलना में असामान्य है। ब्रिटेन के नेपालियों की दो तिहाई

आबादी या तो गुरखा सैनिकों की है या उनके सगे संबंधियों की। इसके मायने यह कि वे जातीय समूह जिन्हें ब्रिटिश गुरखा रेजीमेंटों में भर्ती किया गया --जैसे मगर, गुरुंग, राय, लिम्बू आदि, वे यूके में ज्यादातर संख्या में हैं बनिस्बत अन्य जगहों या नेपाल के। एक अनुमान के मुताबिक गुरंग जो तमु के नाम से भी जाने जाते हैं, नेपाल की आबादी के केवल 1.9 प्रतिशत हैं किन्तु यूके में यह 22 प्रतिशत के लगभग हैं और एक बड़ा नेपाली समूह है। लिम्बू नेपाल में केवल 1.5 प्रतिशत हैं पर यूके में नेपाली आबादी के 9.6 फीसदी हैं। मगर, गुरुंग, राय एवं लिम्बू को मिला कर यह आबादी 12 फीसदी के लगभग हे जो कि यूके के नेपाली जनसंख्या की दो तिहाई से ज्यादा है।

गुरखा इतिहास उनके रिहाइशी पैटर्न में झलकता है। यूके में या जैसे भारत में भी, जहां मिलिट्री बेस है, वहां आसपास पूर्व गुरखा सैनिकों की रिहाइश मिलेगी। रशमोर बोरो, नार्थ ईस्ट हैम्पशायर में नेपालियों की जबर्दस्त मौजूदगी है जहां कई मिलिट्री बेस हैं। हैम्पशायर काउंटी में लंदन के बाद नेपालियों की जनसंख्या सर्वाधिक है। तीसरी सबसे ज्यादा जनसंख्या केंट, ऐशफोर्ड, वेल्स, यार्कशायर ओर एसेक्स में है। पश्चिमी लंदन में जहां मिलिटी सूत्र नहीं हैं वहां भी पर्याप्त संख्या में नेपाली रहते हैं।

नेपालियों ने अपने धार्मिक विश्वासों का पुनर्गठन भी किया है। इससे धार्मिक फैब्रिक बदला है। नेपाल में हिंदुत्व के प्रति आकर्षण प्रवासी नेपालियों में नहीं दिखता। यद्यपि नेपाल दुनिया का एकमात्र हिंदू राष्ट्र नहीं है और अपने को सेक्युलर संघीय गणराज्य मानता है, तथापि यहां 81 फीसदी आबादी हिंदू के रूप में दर्ज है। पर यूके के नेपाली समूहों में यह घट कर 40 से 64 फीसदी ही है। यानी धार्मिक विश्वासों में विविधता और स्वतंत्रता है। धार्मिक सहिष्णुता या सहअस्तित्व इस अनुमान से उलट यह दर्शाता है कि आधुनिक राष्ट्र प्रायः लोगों को एक विश्वास, एक जातीय समूह, एक धर्म से जुड़ने को प्राथमिकता देते हैं। पर जहां तक धर्म का ताल्लुक है, केवल एक धर्म की अनुमति है और कोई हाईब्रिड विकल्प नहीं, क्योंकि धर्म आधुनिकतावादी शुद्धता का अंतिम शरण्य है। बहुत पहले लोग इस बात के अभ्यस्त न थे कि कोई उनसे पूछे, आपका धर्म क्या है? आज नेपाली प्रायः इस सवाल से रू-ब-रू होते हैं और कुछ जातीय संगठन जैसे 'नेपाल मगर समाज' उनके धर्म को बौद्ध मानने का अभियान भी चलाता है; चाहे अपने दैनंदिन के व्यवहार में वे कतई बौद्ध न हों।

आज बहुविकल्पीय धार्मिक पहचानों की बात करें तो कुछ नेपाली परिवारों के

सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि वे पहला विकल्प तो बेशक बौद्ध चुनते हैं पर बहुविकल्प का अवसर देने पर वे हिंदू + बौद्ध, किरांती + हिंदू, किरांती + बौद्ध एवं यहां तक कि किरांती+ बौद्ध + हिंदू भी होना स्वीकार करते हैं। पर यदि एक बार उन्हें हिंदू एवं बौद्ध दोनों स्वीकार करने का विकल्प दिया जाए तो यह उन्हें ज्यादा सुविधाजनक लगता है। ऐसा अवसर दिये जाने पर जिसने पहले केवल बौद्ध धर्म का विकल्प दिया था, उसके लिए बाद में हिंदू + बौद्ध होना ज्यादा सुकूनदेह लगा।

पुरानी पीढ़ी के नेपाली अपने बच्चों के बारे में इस बात से चिंतित दिखते हैं कि वे नेपाली बोल या पढ पाएंगे कि नहीं। क्या वे ब्रिटेन में शैक्षिक अवसरों का लाभ उठा पाएंगे। क्या वे अपने मा पिता की इच्छाओं की उपेक्षा करेंगे, अलग रहेंगे या माँ पिता की तरह कठोर श्रम करेंगे। क्या वे नेपाल से इसी तरह जुड़े रह सकेंगे। यकीनन नई पीढ़ी ब्रिटेन में सुविधाजनक महसूस करती है। हालांकि गुरखाओं के लिए समान पेंशन एवं दोहरी नागरिकता की चिंताएं उन्हें नहीं सतातीं। वे अपने को ब्रिटिश पापुलर कल्चर के ज्यादा निकट महसूस करते है। धीरे धीरे शुद्धता एवं जाति की पारंपरिक चिंताएं निष्प्रभ पड़ती जाएंगी। पर साथ ही युवा नेपालियों ने ब्रिटेन में सामाजिक कार्यो में बढत ली है तथा वे नेपाल में चैरिटी प्रयोजनों के धन संग्रह करते हैं। यह ब्रिटेन के नेपाली डायस्पोरा के भविष्य के लिए एक सुखद संकेत है।

प्रवासी तिब्बती : नव उदार अर्थव्यवस्था की पैदाइश

उत्तरी अमेरिका में प्रवासी तिब्बतियों के अध्ययन से यह बात सामने आई है कि वे सीमा पर घुसपैठ करते हुए पूछने पर यही बताते हैं कि वे अपने देश से निष्कासित हैं तथा अमरीका में शरण चाहते हैं। पहले तिब्बतियों की सुविधाजनक रिहाइश भारत या नेपाल हुआ करती थी पर अब हालात बदले हैं। तिब्बती कूच कर रहे हैं और उत्तरी अमरीका उनका वांछित गंतव्य है। चाहे इसके लिए वैध या अवैध कोई रास्ता क्यों न अख्तियार करना पड़े। एक बार 1990 में अमेरिकी कांग्रेस ने 1000 तिब्बतियों के पुनर्वास की अनुमति देते हुए उन्हें अपने परिवार भी लाने की अनुमति दी थी पर तब से रातोरात अमरीका में तिब्बतियों की संख्या कुछ सौ से बढ कर हजारों में हो गयी। यों तो इसका कोई सुनिश्चित आकड़ा नहीं है पर अनुमानत: बीस हजार से ज्यादा तिब्बती आज अमरीका में होंगे।

प्राय: गत दो दशकों से सभी नेपाली, नेपाल या भारत से उत्तरी अमरीका पहुंचे हैं। पहले वे अकेले पहुंचते हैं फिर एक बार व्यवस्थित होने के बाद अपने पूरे कुनबे

को भी बुला लेते हैं। आज टोरंटों एवं न्यूयार्क जैसी जगहों पर तिब्बती समुदायों के एन्क्लेव देखने में आते हैं। इन इलाकों में तिब्बती रेस्तरां पाए जाते हैं तथा यहां की गलियों व सार्वजनिक परिवहन में इनकी आवाजें सुनी जा सकती है। अब तक तिब्ब्ती समुदाय नेपाल अथवा भारत में सामान्यतः स्थायी पुनर्वास एवं एक सौहार्दपूर्ण माहौल में रहते आए हैं। धर्मशाला केंद्रित केंद्रीय तिब्बती प्रशासन ने इनके लिए बेहतरीन शैक्षिक संसाधन भी मुहैया कराया है। किन्तु अब इनके सपनों में सुदूर उत्तरी अमेरिका जैसी जगहें हैं जहां वे खानाबदोश होकर भी अपने लिए बेहतर संसाधन जुटा सकते हैं।

पर पश्चिमी देशों में प्रवास ने तिब्बतियों के समक्ष नए अवसर व चुनौतियां दोनों पैदा की हैं। वे ग्लोबल डायस्पोरा का हिस्सा एवं बहुराष्ट्रीय नव उदार अर्थव्यवस्था के अंग हैं। इससे विकसित अर्थव्यवस्थाओं को सस्ता श्रम भी उपलब्ध होता है। डायस्पोरा निर्वासन या प्रवास से अलग है। यह भूमंडल के दो बिंदुओं के बीच संचरण है। आज तिब्बतियों का वांछित गंतव्य उत्तरी अमरीका अथवा यूरोप है। इसलिए तिब्बती प्रवासी आर्थिक अवसरों एवं बेहतर जिंदगी की तलाश में लगे अन्य प्रवासियों से कतई अलग नहीं है। हालत यह है कि तिब्बती भारत में रहते हुए भारतीय संस्कृति से इतना सुपरिचित होते हुए भी भारतीय उत्सवों में हिस्सा नहीं लेते जबकि अमरीकी पापुलर कल्चर में भाग लेते हैं। यही कारण है कि वहां तिब्बती परिवार अपने बच्चों में तिब्बती जागरूकता अथवा तिब्बती भावना के अभाव का रोना रोते हैं। हालांकि अभी अपने देश के प्रति चेतना तिब्बतियों में जिंदा है तथा उत्तरी अमरीका में तिब्बती समुदाय दलाईलामा का जन्मदिवस और 10 मार्च को तिब्बती नववर्ष मनाते हैं। पर हो सकता है कि समय के साथ ये परंपराएं क्षीण पड़ती जाएं।

तिब्बती प्रवासियों के लिए अब मातृभूमि के प्रति विचार बदल रहा है जहां मूल उदगम स्थल के लिए एक नास्टैल्जिक इच्छा या भाव तिब्बत की मिथकीय भूमि और नेपाल अथवा भारत के भौतिक प्रतीक में बदल रहा है। ज्यादातर तिब्बतियों के द्वारा उनके रिमिटेंसेज भारत या नेपाल में ही भेजे जाते है, तिब्बत में नहीं और उनके परिवारों के ताल्लुकात ल्हासा की अपेक्षा दिल्ली या काठमांडू से ज्यादा मजबूत हैं। तिब्बत के बारे में खबरें हिंदुस्तान व नेपाल के माध्यम से होकर मिलती हैं और राजनीति का अर्थ उनके लिए दक्षिण एशिया में तिब्बती डायस्पोरा की राजनीति है।

सुदूर राष्ट्रवाद : पहचान का संकट

प्रवासियों की पहचान प्रायः सुदूर राष्ट्रवाद से जोड कर देखी जाती है। अमेरिका में तिब्बती वाशिंगटन डीसी में इकट्ठा होते हैं और अपने सीनेटरों के लिए लाबींग

करते हैं; वे तिब्बती अमेरिकन के रूप में हैं। टोरंटो में तिब्बती समुदाय ने टोरंटो स्कूल बोर्ड का बाध्य किया कि वह बीजिंग सरकार द्वारा प्रायोजित कन्फ्यूसियस संस्थानों के साथ गठबंधन निरस्त करे। जबकि नेपाल या भारत में इसका सवाल ही नहीं उठता कि तिब्बती यहां की स्थानीय राजनीति में दखल दें। उत्तरी अमरीका में तिब्बती आसानी से हाइब्रिड आइडेंटिटी अंगीकार कर लेते हैं या कनैडियन तिब्बती अथवा तिब्बती अमेरिकन के रुप में, किन्तु उन्हें इंडियन तिब्बती अथवा नेपाली तिब्बती कहा जाना स्वीकार नहीं। भारत की नागरिकता उन्हें स्वीकार्य नहीं है पर पश्चिमी मुल्कों की नागरिकता को स्टेटस से जोड कर देखा जाता है। भारत या नेपाल से सामूहिक माइग्रेशन ने उप महाद्वीप में तिब्बतियों के जीवन को बदल दिया है। वे वहां बेहतर रिहाइश रखते हैं। यहां 2007 में दलाई लामा ने कनाडियन प्राधिकारियों से अनुरोध किया था कि वह अरुणाचल प्रदेश के 1000 तिब्बतियों को पुनर्वास दे जहां तिब्बती शरणार्थी बहुत असुविधाजनक स्थिति में हैं।यहां किसी रिश्तेदार या मित्र को बुलाना प्रतिष्ठा का विषय माना जाता है। जो अपने सभी नाते रिश्तेदारों को ला पाने में सफल हो गया उसे बहुत ही सक्षम व साधनसंपन्न माना जाता है। तिब्बती शहरी इलाकों में आने के लिए अपने रिश्तेदारों व मित्रों के नेटवर्क का लाभ लेते हैं पर एक बार सुरक्षित रूप से व्यवस्थित होने के बाद अपने बच्चों के बेहतर शैक्षिक अवसरों को देखते हुए कौन उपनगरों की ओर रुख करता है? यहां रहते हुए नेपाली आसानी से कारें खरीद लेते हैं जबकि भारत में वे इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। त्सेरिंग शाक्य ने अपने शोध में पाया है कि उत्तरी अमरीकी विश्वविद्यालयों में उच्च अध्ययन में काफी तिब्बती महिलाएं हैं और यह संयोग नहीं कि तिब्बती औरतें माचिक एवं स्टूडेंट्स फार फ्री तिब्बत जैसे तिब्बती समूहों का नेतृत्व कर रही हैं।

इस सबके बावजूद उत्प्रवासित परिवारों को तमाम कठिनाइयां भी उठानी पडती हैं। जब तक दोनों मां पिता काम न करें वे अपनी गृहस्थी नहीं चला सकते। पर इससे वे अपनी संततियों पर नियंत्रण खो बैठते हैं। यह आम प्रवृत्ति देखी जा रही है कि नेपाल व भारत के तिब्बती समुदायों में पश्चिमी संगीत ज्यादा हिट है। उनकी संस्कृतियां इस हद तक प्रभावित हो रही या हुई हैं कि यह आशंका व्यक्त की जा रही है कि भविष्य में कोई शख्स अपने को जातीय तौर पर भले ही तिब्बती बताए पर वह सांस्कृतिक तौर पर अमरीकी होगा। तमाम बेहतर चीजों के बावजूद इस समुदाय के प्रति कभी कभी घृणा का माहौल भी देखने को मिलता है। जैसे कुछ साल पहले चार तिब्बतियों को क्रेडिट कार्ड की धोखाधड़ी के लिए पकड़ा गया था। पर तिब्बती वेबसाइट्स और समाचार साइट्स पर ये चीजें छुपाई गयीं। क्योंकि यह

तिब्बती समुदाय के लिए अपमान की बात होती। ऐसा माना जाता है कि तिब्बतियों की छवि एक शांत बौद्ध की है और इसे बनाए रखने की आवश्यकता भी है। प्रवासी नेपाली संस्कृति को चित्रित करने वाले कुछ लोकप्रिय कृतियों में प्राजवाल पराजुली की द गुरखाज डाटर और लैंड व्हेयर आई फ्ली जैसी पुस्तकें लिखी गयी हैं जिनसे गुजरते हुए भारतीय नेपालियों की मनोभूमि को समझा जा सकता है। इस संदर्भ में किरन देसाई की बुकर पुरस्कार प्राप्त कृति इनहेरिटेंस आफ लॉस को भी एक विरल सभ्यता समीक्षा के रूप में देखा जा सकता है।

निर्वासन में कवि : बेघर होने का दर्द

बहुतेरे कवियों ने भी निर्वासन झेले हैं और वे अक्सर अपने घरों से दूर सत्ता के लिए खौफ का पर्याय भी बने हैं। एक वक्त नोबल पुरस्कार विजेता कवि वोल सोयिंका को नाइजीरिया से भागना पड़ा। उन्होंने होम एंड अवे: डायस्पोरा वाइसेज में अपने संस्मरण दर्ज किए हैं। हालांकि वे पूछने पर यही कहते थे, ' मैं निर्वासन में नहीं हूँ, मैं एक राजनीतिक सब्बैटिकल पर घर से दूर हूँ। मैं निर्वासन में नहीं था क्योंकि निर्वासित महसूस नहीं कर रहा था। हम महसूस करते हैं इसलिए निर्वासित होते हैं। नहीं करते तो महूसस नहीं होता। यद्यपि मुझे मालूम था कि मैं निर्वासित हूं पर मैने निर्वासन की स्थितियों को स्वीकार करने की अनुभूति के विरुद्ध बैरियर्स सेट किए।' कवि और राजनीतिज्ञ दांते को भी पवित्र रोमन सम्राट के समर्थन के लिए फ्लोरेंस से निर्वासित होना पड़ा। यह निर्वासन दांते आजीवन भुगतते रहे। पर इसका प्रभाव दि डिवाइन कामेडी पर बहुत पड़ा जो कि एक मास्टरपीस कृति है। यह संरक्षण खोजने के नरक से गुजरते हुए उनके वास्तविक जीवनानुभवों की समानांतर अभिव्यक्ति है।

जर्मन कवि बर्तोल्त ब्रेख्त ने तमाम निर्वासन झेले। 1933 में निर्वासित होकर 1941 तक स्कैंडिनेविया में, मुख्यतया डेनमार्क में रहें, फिर अमरीका में 1941 से 47 तक। जर्मनी में उनकी किताबें जला दी गयीं और उनकी नागरिकता छीन ली गयी। वे जर्मन थियेटर से कट गए किन्तु 37 से 41 के बीच उन्होंने अपने अनेक बेहतरीन नाटक लिखे। 47 में उन्होंने अमरीका छोड़ दिया व एक साल ज्यूरिख में बिताया। 1949 में वे बर्लिन लौटे और अंत तक यहीं रहे। यहां आकर उन्होंने अपनी कंपनी बर्लिनर इनसेम्बल स्थापित की। उर्दू शायर फैज को जियाउल हक की सरकार ने देशनिकाला दे दिया था। फलत: उन्हें बेरूत में शरण लेनी पड़ी थी। निर्वासन का दर्द महमूद दरवेश की कविताओं में भी देखा जा सकता है। अपने बेघर होने का दर्द उन्होंने किन मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है:

लेकिन मैं ही निर्वासित हूँ
अपनी आँखों से मुझे मुहरबंद कर दो
तुम जहाँ भी हो मुझे वहाँ ले चलो
ले चलो मुझे जो कुछ भी तुम हो।
लौटा दो मुझे चेहरे का रंग
और देह की ऊष्मा
हृदय और आँख की रोशनी,
रोटी का नमक और लय
पृथ्वी का स्वाद ... मातृभूमि।
छिपा लो मुझे अपनी आँखों में।
उदासी की हवेली का अवशेष मानों मुझे
मेरी त्रासदी की कुछ पंक्तियों के रूप में मुझे देखो
जानो मुझे एक खिलौने जैसा, घर की ईंट जैसा
ताकि हमारी संतानें घर लौटना याद रखें।

घर से बेघरों को प्राय: हम निर्वासितों, शरणार्थियों, प्रवासियों, उत्प्रवासियों इत्यादि के रूप में देखते हैं। पर प्रवास जहां अपनी इच्छा पर निर्भर करता है, निर्वासन सत्ता के दंड विधान का अंग है। कवियों को उनके सत्ताविरोधी आचरण के लिए दंडित होना पड़ा है। निर्वासित होना पड़ा है और दीगर मुल्कों में शरण लेनी पड़ी है। उनकी कविताएं जब्ती का शिकार हुई हैं। बांग्लादेश से निष्कासित तस्लीमा नसरीन आज तक निर्वासन में ही रह रही हैं। सलमान रश्दी भी मुसलमानों के विरुद्ध अपकथन के कारण निर्वासित रहे हैं। पर इन तमाम रूपों में लेखकों को बेघरी के आलम से तो गुजरना पड़ा ही है, उस खौफ से भी दो चार होना पड़ा है जिसके चलते जीवन अनिश्चितता के बिन्दु पर रेंगता है।

शरणगाह खोजते नागरिक

अपने एक लेख में फिल्मकार पल्लव गोयल लिखते हैं कि "अकेले 2013 –14 में कोई पांच करोड बारह लाख लोग अपनी अपनी जगहों से विस्थापित हुए हैं। इनमें भी आधे से ज्यादा बच्चे हैं। एक जानकारी के अनुसार दुनिया के हर 122 लोगों में से एक व्यक्ति आज शरणार्थी है। एक जानकारी के मुताबिक पिछले साल कोई 40 लाख लोग ईराक और सीरिया से बाहर निकले हैं व अफगान से कोई

30 लाख लोगों ने अपना घर छोड़ा है और सोमालिया से कोई 10 लाख लोगों ने। वे कहते हैं, दुनिया में इस समय तीन ऐसे देश हैं जिनमें इस अभागी आबादी की उपस्थिति बहुत बड़ी संख्या में है। इस समय तुर्की में 10 लाख से ज्यादा शरणार्थी हैं। पाकिस्तान में भी लगभग इतने ही लोग हैं और इसी तरह लेबनान में। आसपास से उखड़ कर आए हुए कोई 10 हजार लोगों ने ईरान में भी शरण ली है। इथोपिया और जॉर्डेन में भी कोई 60-60 हजार शरणार्थी आए हैं। एक समय में भारत में भी बांग्लादेश से आए शरणार्थियों की संख्या बहुत बढ गयी थी।' ' (गांधी मार्ग,वर्ष 57, अंक 5) भारत में भी कश्मीर से ही विस्थापित कश्मीरियों का एक लंबा इतिहास है जिन्हें अपना अधिकांश जीवन शरणार्थी शिविरों में बिताना पड़ा है। कश्मीरी पंडितों के इस दर्द और विस्थापन की दास्तान अनेक उपन्यासों और कविताओं में बयान की गयी है। स्वयं कश्मीरी आज संगीनों के साये में जिस तरह रह रहे हैं उसकी मार्मिक दास्तान वहां के कवि निदा नवाज ने हाल ही प्रकाशित अपनी डायरी ' 'सिसकियां लेता स्वर्ग'' में दर्ज की है। अपने ही घर में दहशत के माहौल में रहना वाकई अपने ही घर में नजरबंद होकर रहने जैसा है।

•

घर से दूर-- घर की तलाश में गये प्रवासियों की लगभग एक सी पीड़ा होती है। वे हिंदुस्तानी हों जो मजदूरी के लिए सुदूर सूरीनाम, फिजी, मारीशस, गयाना गये हों,या नेपाली, तिब्बती, भूटानी या श्रीलंकाई प्रवासी जो बेहतर रिहाइश या मजदूरी के लिए पश्चिमी देशों या यूरोप या अफ्रीकी देशो में गए, वहां अपनी संस्कृतियां संजो कर रखीं या उनकी संस्कृतियों में घुल मिल गए। रोजी रोटी का संघर्ष, भाषाई संघर्ष, सांस्कृतिक सामाजिक संघर्ष से हर प्रवासी समुदाय को गुजरना ही होता है। हर प्रवासी उस देश का अवांछित मेहमान ही होता है। वहां उसकी पहचान प्रवासी के तौर पर ही होती है। अपने घर, अपना देश छोड़ने की पीड़ा हर वक्त सताती है। भले ही वे वहां अपना कम्यून बना कर रहें या कम्युनिटी किन्तु एक सांस्कृतिक शून्यता के बोध से वे पीड़ित रहते हैं। यह परायापन उनका आजन्म पीछा करता है। वी एस नयपाल के उपन्यासों में भारतीय प्रवासियों और अपनी जड़ों से कटने का दर्द मिलता है। सलमान रुश्दी, अमिताव घोष और झुम्पा लहिड़ी की कृतियों में भी इंडियन डायस्पोरा की विसंगतियों का चित्रण मिलता है। अज्ञेय का एक संग्रह है 'ऐसा कोई घर आपने देखा है?'। घर का हमारे लिए क्या अर्थ है, अज्ञेय अपनी **घर** शीर्षक कविता के आखिरी पद में स्पष्ट करते हैं:

घर
मेरा कोई है नहीं,
घर मुझे चाहिए :
घर के भीतर प्रकाश हो
इसकी भी मुझे चिन्ता नहीं है;
प्रकाश के घेरे के भीतर मेरा घर हो-
इसी की मुझे तलाश है।
ऐसा कोई घर आपने देखा है?

देखा हो
तो मुझे भी उसका पता दें
न देखा हो
तो मैं आपको भी
सहानुभूति तो दे ही सकता हूँ
मानव हो कर भी हम-आप
अब ऐसे घरों में नहीं रह सकते
जो प्रकाश के घेरे में हैं
पर हम बेघरों की परस्पर हमदर्दी के
घेरे में तो रह ही सकते हैं।

जब हम 21वीं शती में घर की अवधारणा पर विचार कर रहे हैं तो हमें अज्ञेय की ये पंक्तियां नहीं भूलनी चाहिए। घर भले कैसा भी हो पर वह बेघरों की परस्पर हमदर्दी के घेरे वाला घर जरूर हो। हमने घर की तलाश में राष्ट्रीयताएं बदली हैं; विकास के नाम पर हम अपने घरों से विस्थापित हुए हैं, निर्वासित होकर दूसरे देशो में शरण ली है, टेंटों और शरणार्थी शिविरों में विवशतापूर्ण जीवन जिया है और उसे ही अपना घर या नियति मानने पर विवश हुए हैं। हमने बाढ़, बांधों के निर्माण के कारण या दैवी आपदाओं की वजह से अपने-अपने घर खोए हैं, विभाजन के नाम पर दर ब दर हुए हैं। हमें अक्सर कातर और दया की निगाह से देखा गया है। क्योंकि हमने दूसरों की संस्कृतियों में सेंध लगाई है, हमने एक अदद छत और जीविका के लिए सीमाओं पर घुसपैठें की है। यह सब हमने घर के नाम पर ही किया है। दाना पानी हमें जहां जहां ले गया वहां वहां हम गए हैं। हम भले ही दुनिया भर की

परिक्रमा कर लें, पर न भूलें कि दूसरों के घरों में हमें अपने घर का-सा अहसास नहीं होता। घर का अहसास तो अपनी कुटिया में ही होता है। अज्ञेय पुनः कहते हैं:

दूसरों के घरों में
दूसरों के घर
दूसरों के घर हैं।

(डेविड एन गेलन, त्सेरिंग शाक्य, व एलेन टर्नर
द्वारा प्रस्तुत तथ्यों की रोशनी में विरचित।)

डॉ ओम निश्चल हिंदी के सुधी कवि-समालोचक, निबंधकार, चिंतक एवं भाषाविद है तथा कई प्रतिष्ठित पुरस्कारों-सम्मानों से विभूषित हैं।

संपर्क : डॉ ओम निश्चल
जी-1/506 ए, दाल मिल रोड,
उत्तम नगर नई दिल्ली 110059
फोन 9810042770
मेल : dromnishchal@gmail-com

❑ ❑ ❑

खंड–II

कविताएँ

औरत और पानी

–रितु श्रीवास्तव

औरतें ढोती रहीं, भरती रहीं पानी
गांवों में, घरों में
रेत में, जहां पानी ही एक आस
किस्से, कहानियों में
कागजों में, चित्रों में
औरत, मटकी, पानी,
ब्रज की गोपियां
भरतीं पानी
खुसरो की पनिहारिन
करती ठिठोली
करती बोझ को पानी,
बस पानी पानी
मानो पानी की पूरी विरासत
कर ली हो इन्होंने अपने नाम
युगों से
अनजाने ही
और ढोने लगी पानी,
बचाने लगी पानी
सहेजने लगी पानी
उन्हें पता है

जब बदलेगी दुनिया, बदलेगा मौसम
औरत पर भारी पड़ेगा
और दूर हो जाएंगी नदियां,
तालाब, झीलें
तब भी ये ही मरेंगी पानी
या खोद लाएंगी जमीन के अन्दर से
या एक दिन खुद बन जायेंगी पानी
बचा लेंगीं जीवन
खुद को बचा कर
बह कर
कि कोई प्यासा न रहे
औरत और पानी
सब कुछ
खत्म हो रहा है
धरती के नीचे भी
ऊपर भी
पानी के बोझ से
पानी की खोज में।

❑ ❑ ❑

युद्ध और अशांति

–प्रियंका पुरोहित

वीभत्स नरसंहार से व्याकुल सम्राट अशोक।
लहूलुहान भूमि सर्वत्र व्याप्त शोक।।

विचलित हृदय सोच रहा यह कैसा भयावह चित्र।
असंख्य कपाल बिखरे पड़े यह युद्ध विजय विचित्र।।

तत्क्षण आहत बालिका उपस्थित हुई सम्राट के निकट।
मुख भावशून्य नेत्रों में रोष विकट।।

बोली सम्राट राज्य विस्तार की लालसा का है परिणाम।
स्त्रियाँ हुई पतिहीना किशोर हुए अनाम।।

छिन्न–भिन्न मेरा जीवन छूटा पिता का साथ।
तीक्ष्ण संग्राम की ज्वाला से हुई मैं अनाथ।।

पिता लड़े युद्ध डटकर थे पंक्ति में अग्रिम।
बतलाओ हे राजन ! क्या था यह युद्ध अंतिम?

क्या लाभ इस युद्ध का प्रजा है दु:ख निमग्न?
इस घृणित दृश्य से क्या हृदय है प्रसन्न?

क्या होंगे सदैव ऐसे ही भीषण युद्ध?
हिंसक पशु भांति मनुज होंगे परस्पर विरुद्ध।।

हिंसा की ज्वाला में कब तक मनुष्य जलेगा?
देख ढेर लाशों का कब तक सूर्य ढलेगा?

सुनो पुत्री ! युद्ध ना होता कभी निर्णायक।
यह है मानव की अनंत इच्छा का परिचायक।।

युद्ध है मानव के अधिकारों की हत्या।
करता हूँ त्याग युद्ध रूपी मिथ्या।।

करके राज्य विस्तार की तृष्णा का त्याग।
स्थापित करूंगा अहिंसक खड्ग गाऊँगा शांति राग।।

❑ ❑ ❑

नफरतों के सिपहसालार

–डॉ. मणिबेन पटेल
गेस्ट फैकल्टी, दिल्ली विश्वविद्यालय
maniben1986@gmail-com
8383805299

नफरतों के सिपहसालारों
नफरत के पत्थर
तुम उठाओ
जख्म देने के लिए धार
तुम खुद बनाओ
अंधेरा तुम फैलाओ
धरती पर रक्त तुम चखो
हम न जुड़ेंगे उसमें
न हम जैसे
हम डंके की चोट पर
तुम्हें बता देना चाहते हैं
कि हम और
हम जैसे की बाजुओं के बगैर
तुम जैसों की बाजुओं में
कोई दम नहीं
और अकेले तुम्हारे बाजू
कंधे और मस्तिष्क

कभीं कामयाब न होंगे।
नफरतों के सिपहसालार
तुम होते हो बहुत डरपोक
और डरते हो
निहत्थे शान्तिप्रियों से।
नफरतों के सिपहसालारों!!!
तुम किसी को दे नहीं सकते
कुछ अच्छा
अपने बच्चों को भी नहीं
नफरत की गठरी के सिवाय
मेरे 'हम जैसे लोग'
याद रखना इसे।

❑ ❑ ❑

गहरी नींद

–तजिन्दर एस. लूथरा

मुझे सुला दो गहरी
नींद
कितनी रातों, माहों
और बरसों से
सोया नहीं हूँ मैं

मैं सोना चाहता हूँ
जैसे हड्डियाँ तोड़
सोता है मजदूर

या माँ की गोद में
पारियों की कहानी
सच मान के
सो जाता है बच्चा

अभिसार के
उत्कर्ष के बाद
थोड़ी ग्लानि, थोड़ी संतुष्टि
और ढेर सारी जीत
के भुलावे में

सो जाता है
नादान प्रेमी

और जैसे डोली विदा
कर, अपने ही भीतर
के पिता से
कृतज्ञता से भर जाता
है पिता
और सो जाता है
बेपरवाह

या फिर स्वप्न में
कर्ज चुका
किसान
सपने में ही सो जाता है
बेधड़क

जैसे एक साधारण
व्यक्ति
एक मुहावरे के
छलावे में
सो जाता है
घोड़े बेच कर

मुझे सुला दो गहरी
नींद
कितनी रातों, माहों
और बरसों से
सोया नहीं हूँ मैं

❑ ❑ ❑

मेरे जैसा ईश्वर

–तजिन्दर एस. लूथरा

हे ईश्वर तुम क्यूँ नहीं हो मेरे जैसे?
मैं तो नहीं सुन–समझ सकता तुम्हारी भाषा
और तुम हो अंतर्यामी.
मैं नहीं देख पाता तुम्हारा रंग भी
और तुम गढ़ देते हो मेरा तन मेरा रंग
जब जैसे अपने मन से।

तुम्हारी व्यवस्था भी समझ नहीं आती–
'करे कोई भरे कोई.'
तुम पहले से ही जानते हो मेरा हर गणित
और मैं तुम्हारा भाग्यविधाता वाला
एक भी फार्मूला बूझो छोड़ो, जान भी नहीं पाया।

एक दिन के लिये ही सही हे ईश्वर!
बनो ना तुम भी मेरे जैसे–
मैं भी पूछूँ तुमसे
एक कठिन प्रश्न
तुम्हें भी हो उलझन
झटपटाती सी मेरे जैसी
तुम भी आँखे बंद कर

करो प्रार्थना–
'हे भगवन इस बार बचा लो।'

एक दिन के लिए ही सही
तुम भी बनो मेरे जैसे
थोड़े कमजोर, थोड़े डरे–डरे
थोड़े अलमस्त, थोड़े बेपरवाह थोड़े दंभी, थोड़े जिद्दी
और अपने ही ईश्वर से प्रश्न पूछने वाले।

❑ ❑ ❑

खंड-III

कहानियाँ

बोझ नहीं बेटी

–लक्ष्मी अग्रवाल

राघव और नंदिनी ने घरवालों की इच्छा के विरुद्ध जाकर प्रेम विवाह किया था, जिसके कारण दोनों के घरवालों ने उनसे रिश्ते–नाते तोड़ लिये थे। लेकिन नंदिनी के गर्भ धारण करने के पश्चात् दोनों तरफ कुछ बर्फ सी पिघली और उनके रिश्ते को स्वीकार कर लिया गया। आने वाले नन्हें मेहमान का दोनों परिवार बड़ी बेताबी से इंतजार करने लगे। आने वाला यह बच्चा दोनों परिवारों की नई पीढ़ी का पहला बच्चा था, इस कारण दोनों तरफ उत्सुकता का अलग ही आलम था। नाती–पोते की चाहत में दोनों परिवार खुशी से फूले न समाते थे। आखिरकार वह दिन भी आया, जब नंदिनी को प्रसव–पीड़ा प्रारंभ हुई और उसे अस्पताल ले जाया गया। कुछ ही घंटों के इंतजार के बाद नंदिनी ने एक प्यारी सी बेटी को जन्म दिया।

राघव की खुशी का तो जैसे कोई ठिकाना ही न था, परंतु बेटी के जन्म से घरवाले इतने खुश नहीं थे। सबने अनमने मन से ही उस बच्ची को गोद में लिया, जिस प्रेम और उल्लास से सभी इस बच्चे की प्रतीक्षा कर रहे थे, वह तो न जाने कहाँ काफूर हो गया। घरवाले तो घरवाले स्वयं नंदिनी ने भी उस बच्ची को गोद में लेने एवं उसे स्तनपान कराने से मना कर दिया। वह उसे अपनी संतान के रूप में अपनाने को तैयार ही नहीं थी। नंदिनी को भी पुत्र की लालसा थी। राघव ने समझाने का बहुत प्रयत्न किया कि आज के जमाने में बेटे और बेटी में कोई फर्क नहीं है। तुम इतनी पढ़ी–लिखी होने के बावजूद ऐसी बातें कर रही हो। अपने ही अंश से मुहँ मोड़ रही हो। मुझसे पिता होने का सुख छीन लेना चाहती हो। अपनी इस बिटिया को ठुकराने के बाद मैं कभी खुद से नजरें नहीं मिला पाऊँगा। मेरा जमीर मुझे कभी माफ नहीं करेगा। जीवन भर एक रिक्तता और अपराध बोध मुझे सालता रहेगा। पर

नंदिनी कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थी। उसने साफ कह दिया था कि मैं इसे कभी भी एक माँ का प्यार नहीं दे पाऊँगी। आखिरकार एक पति के आगे पिता हार गया और राघव को नंदिनी के आगे घुटने टेकने पड़े। राघव ने अपनी बच्ची को आखिरी बार चूमा और उसे अनाथालय की सीढ़ियों पर रोता-बिलखता छोड़ आया। मानो वो नन्हीं सी जान बार-बार अपने पिता से प्रश्न कर रही हो कि आखिर मेरा कसूर क्या है, जो आप मुझे यों ठुकरा रहे हो। पर एक पति की लाचारी के आगे एक पिता अपनी संतान को अपनाने की हिम्मत नहीं जुटा पाया।

राघव और नंदिनी अब अपने घर आ चुके थे, पर अब उनका जीवन पहले सा प्रेमपूर्ण न रहा। राघव बुझा-बुझा सा रहने लगा। नंदिनी से कम ही बात करता। बेशक अपनी पुत्री का त्याग करते समय एक पति की जीत हुई परंतु अपनी संतान के त्याग का अपराधबोध उसके प्रेम पर हावी हो रहा था। शायद इसके लिए वह नंदिनी को कभी माफ न कर पाए। राघव नंदिनी से खिंचा-खिंचा रहने लगा। ऐसे में इकतरफा प्रेम भी कितने दिन परवान चढ़ता। धीरे-धीरे नंदिनी भी राघव से दूर होती गई। वे साथ तो थे पर साथ होने का एहसास मर चुका था। शायद एक पिता की हार के साथ ही एक प्रेमी, एक पति की भी मृत्यु हो चुकी थी, जिसका आभास नंदिनी को काफी देर से हुआ।

नंदिनी के इस कदम के पीछे काफी हद तक उसका बचपन जिम्मेदार था। अपने घर में उसने बचपन से ही पुत्र-पुत्री के बीच होने वाले भेदभाव को देखा था। नंदिनी ने खुद उस पीड़ा को सहा था, जहाँ हर कदम पर उसे बेटी होने का एहसास कराकर उसे उसके भाइयों से कम आँका जाता था। रोज-रोज के उस उपेक्षापूर्ण व्यवहार ने नंदिनी के मन में भी पुत्र के महत्त्व का बीजारोपण कर दिया था। पुत्र-प्रेम की लालसा उसके दिलो-दिमाग पर इस कदर हावी होती चली गई कि आज उसने खुद की ही संतान से मुहँ मोड़ लिया।

इधर राघव और नंदिनी की इस बच्ची को अनाथ समझकर एक ऐसी दंपती ने गोद ले लिया, जिनके पहले से दो पुत्र थे। दूसरी संतान के जन्म के बाद भी जब मयंक और निशा की पुत्री की लालसा पूरी न हुई तो उन्होंने एक अनाथ बच्ची को अपनाकर उसे अपना नाम देने का निर्णय लिया। अपने इसी मनोरथ की सिद्धि हेतु दोनों उसी अनाथाश्रम पहुँचे, जहाँ पर राघव ने अपनी बेटी को रोता-बिलखता छोड़ दिया था। राघव की बेटी में मयंक और निशा को अपनी बेटी दिखाई देने लगी और दोनों ने उसे ही गोद लेने का निर्णय किया। घर आकर बड़ी ही धूमधाम से उसका

नामकरण संस्कार संपन्न किया और उस मासूम को नाम मिला 'तनुजा'। तनुजा के पास अब एक सुखी-संपन्न परिवार था जहाँ वह अपने भाइयों एवं माता-पिता की लाड़ली थी। तनुजा के आगे उसके भाइयों की एक न चलती थी। इधर काम पर ठीक से ध्यान न देने के कारण राघव को उसकी नौकरी से निकाल दिया गया। नई नौकरी की तलाश उसे मयंक की फैक्ट्री तक खींच लाई और राघव को यहाँ नौकरी मिल भी गई। साथ ही नंदिनी फिर से गर्भवती हो गई। नंदिनी अपनी गर्भावस्था को लेकर बहुत खुश थी, पर राघव को जैसे कोई फर्क ही नहीं पड़ा। उल्टा उसे डर सत्ता रहा था कि यदि इस बार भी बेटी हो गई तो वह कैसे हालातों का सामना करेगा, अपनी ही संतान से दोबारा मुख मोड़ लेना उसके लिए संभव नहीं होगा। वह कैसे खुद का सामना कर पाएगा। इसी कश्मकश में राघव आहत मन से दिन काट रहा था।

आज तनुजा का पाँचवाँ जन्मदिन है और उसके माता-पिता ने इस उपलक्ष्य में एक बहुत बड़ा आयोजन रखा है, जिसमें फैक्ट्री के सभी कर्मचारियों को भी सपरिवार बुलाया गया था। राघव भी नंदिनी के साथ पहुँचा। समारोह में नंदिनी की नजर सबसे पहले तनुजा पर पड़ी। बेहद मासूम और प्यारी सी एक गुड़िया जो आज किसी परी से कम नजर नहीं आ रही थी। नंदिनी बरबस ही उसकी ओर आकर्षित हो चली। शायद उसके अंदर का मातृत्व जाग उठा। उसके मन में अपनी अबोध बालिका का ख्याल आया। आज अगर मेरी बेटी हमारे साथ होती तो वो भी इतनी ही बड़ी होती। दूसरे ही पल उसने अपने ख्यालों को झटक दिया। वह उसे भुला देना चाहती थी, पर चाहकर भी ऐसा नहीं कर पा रही थी। राघव को भी तनुजा से मिलकर अपनापन सा महसूस हुआ। तनुजा को भी राघव से कुछ लगाव सा महसूस हुआ। नन्हीं तनुजा राघव का हाथ पकड़कर बोली आइए न अंकल, अंदर आइए। मैंने आपको पहचाना नहीं। राघव ने बताया कि मैं आपके पापा की फैक्ट्री में अभी नया हूँ, इसलिए आप मुझे नहीं जानती। जान-पहचान के बाद तनुजा राघव को बैठाकर अपने दोस्तों में मस्त हो गई। समारोह की समाप्ति के बाद सब अपने घर चले गए, पर राघव और नंदिनी के मन पर उस नन्हीं परी की अमिट छाप पड़ गई, जिसे वे भुला ही नहीं पा रहे थे।

राघव मयंक की फैक्ट्री में पूरी मेहनत एवं लगन से काम कर रहा था। धीरे-धीरे वह मयंक के खास कर्मचारियों में शामिल हो गया और उसका कभी-कभी घर पर भी आना-जाना हो जाता। जहाँ अकसर तनुजा उसे अपने साथ खेलने को कहती। उसके साथ रहकर राघव को भी एक अजीब सी खुशी मिलती। अपने अंदर के जिस पिता को वह मार चुका था, धीरे-धीरे वह फिर से जी उठा। तनुजा पर अपना प्यार

लुटाकर इसे एक अजीब सा सुकून महसूस होता और तनुजा भी उससे अपने पिता जैसा स्नेह रखती थी। धीरे-धीरे दिन बीतते गए और नंदिनी ने एक बेटे को जन्म दिया। पुत्र के जन्म से उसकी इच्छा तो पूरी हो गई, पर राघव का अपराधबोध और ज्यादा बढ़ गया। उसे ऐसा लगता इसी पुत्र की चाहत ने उसे उसकी दुधमुँहीं बच्ची से दूर कर दिया। नहीं तो आज तनुजा जैसी बिटिया उसका घर-आँगन भी चहका रही होती। नंदिनी के अंतर्मन में शायद कहीं न कहीं अपनी बेटी के लिए ममता जागने लगी थी, पर पुत्र के मोह में वह उन भावों को नजरअंदाज कर अपनी सारी ममता उस पर उड़ेलने लगी। बड़े प्यार से उसने इसका नाम रखा 'शौर्य'। शौर्य की देखभाल में वह इस तरह रम गई कि उसने अपने दिमाग से पूरी तरह से अपनी बेटी का ख्याल निकल दिया था। राघव भी शौर्य को प्यार-दुलार करता। उसका ध्यान रखता, पर जैसा प्रगाढ़ स्नेह उसे तनुजा से था, वैसा शौर्य से कभी न हो पाया।

वक्त का पहिया धीरे-धीरे घूमता रहा और 25 साल कैसे बीत गए, पता ही न चला। तनुजा ने अपने पिता मयंक का बिजनेस इतनी अच्छी तरह सँभाल लिया था कि सभी उसकी तारीफ करते न थकते थे। रूप-गुण से संपन्न तनुजा के लिए बड़े-बड़े घरानों से रिश्ते आ रहे थे। इधर शौर्य की पढाई-लिखाई में कोई रुचि नहीं थी और न ही वह कहीं ढंग से नौकरी कर पाता। नंदिनी के प्यार का फायदा उठाकर उसने कब राघव और नंदिनी से उनका घर भी अपने नाम लिखवा लिया, खुद नंदिनी को भी पता न चला। शौर्य ने रुचिका नाम की लड़की से प्रेम-विवाह कर लिया और अपने माता-पिता को घर से बाहर निकाल दिया। तनुजा राघव से भी अपने पिता के समान स्नेह रखती थी, जब उसे यह सब पता चला तो उसके मन को बहुत दु:ख पहुँचा। राघव को बेघर देखकर उससे रहा न गया। इस उम्र में राघव अंकल नंदिनी आंटी के साथ कहाँ धक्के खाते फिरेंगे, सोचकर अपना एक फ्लैट राघव को रहने के लिए दे दिया। आज नंदिनी के मुँह से तनुजा के लिए ढेरों आशीष निकले और बेटी को बोझ समझने वाली अपनी गलत सोच पर बहुत पछतावा हुआ। आज उसका मन अपनी बेटी के लिए तड़प उठा। जिस बेटी को उसने गोद में भी लने से मना कर दिया था आज उसे एक बार देखने की लालसा उत्पन्न हो गई थी।

रुचिका से शादी करने के बाद शौर्य का जीवन कुछ बदलने लगा। रुचिका एक पढ़ी-लिखी जिम्मेदार लड़की थी और जल्द ही उसने राघव को उसकी गलती का एहसास कराकर उसे एक जिम्मेदार व्यक्ति बनाने की कवायद शुरू कर दी। रुचिका की लगन शीघ्र ही रंग लाई और शौर्य ने अपना व्यवसाय आरंभ किया। रुचिका

के साथ और सहयोग से व्यापार खूब फलने-फूलने लगा। अब रुचिका ने शौर्य को भी अपने माता-पिता को ससम्मान घर वापस लाने के लिए मना लिया। नंदिनी तो शौर्य की बात सुनते ही उसके साथ वापस जाने को तैयार हो गई, परन्तु राघव का आत्मसम्मान उसे रोक रहा था। अंतत: रुचिका और शौर्य के स्नेह से राघव भी एक साथ खुशहाल जीवन बिताने के लिए मान गया। राघव को आज अपनी पुत्रवधू रुचिका पर गर्व महसूस हो रहा है। राघव ने नंदिनी को एहसास दिलाया कि तुम बेटियों को बोझ समझती थी और आज देखो किसी और की बेटी ने ही हमारे बेटे का जीवन सँवार दिया। रुचिका भी किसी की बेटी है और आज से मैं इसे अपनी बेटी मानता हूँ। जो प्यार और दुलार मैं अपनी अबोध बच्ची को नहीं दे पाया, वो सब मैं रुचिका को दूँगा। आज से रुचिका मेरे लिए शौर्य से भी बढ़कर है। राघव की बात सुनकर नंदिनी को भी अपनी गलती का एहसास हुआ और उसने अपनी सहमति दी। इधर तनुजा के लिए भी शहर के नामी घराने से रिश्ता आया। वे लोग तनुजा के रूप-रंग एवं व्यवसाय संचालन की कुशलता से काफी प्रभावित थे। तनुजा से अपने बेटे श्रेयस का रिश्ता पक्का करने के लिए वे पूरी तैयारी के साथ आए थे। तनुजा और श्रेयस ने एक दूजे को पसंद कर लिया तो श्रेयस के माता-पिता ने साथ के साथ ही रिश्ता पक्का करने का प्रस्ताव रखा। उनके प्रस्ताव के बाद मयंक ने कहा कि मुझे भी यह रिश्ता मंजूर है पर एक बात मैं आप लोगों को पहले ही बता देना चाहता हूँ कि तनुजा हमारी बेटी है या यों कहें वह हमारे लिए अपनी संतान से भी बढ़कर है, पर निशा ने तनुजा को जन्म नहीं दिया। तनुजा इस सच को जानती है, हमने उससे कभी कुछ नहीं छिपाया और अब मैं चाहता हूँ कि आप लोग भी इस सच को जानें और उसके बाद ही किसी निर्णय पर पहुँचें। मयंक की बात सुनकर श्रेयस के पिता ने कहा कि हमें तनुजा उसके गुणों की वजह से पसंद है और फिर आपने उसकी परवरिश बेटी से बढ़कर की है तो हमारे लिए तो वह आपकी ही बेटी है, हमें उसके जन्मदाता माता-पिता से कोई सरोकार नहीं है। दोनों तरफ की रजामंदी के बाद हँसी-खुशी तनुजा और श्रेयस का रिश्ता पक्का कर दिया गया। इस सच को सुनने के बाद राघव को अजीब सी बेचैनी होने लगी। उसे ख्याल आया कि कहीं तनुजा मेरी ही बेटी तो नहीं है। उसने उसकी अनाथाश्रम में जाकर खोजबीन शुरू की और उसकी आशंका सच साबित हुई। यह सच जानकर राघव खुशी से फूला न समा रहा था। उसने घर आते ही नंदिनी को सबकुछ बताया। अब तो नंदिनी भी अपनी बेटी को गले लगाने के लिए तड़प उठी।

अपनी बरसों पहले ठुकराई हुई बेटी का सच जानने के बाद दोनों के कदम

रुकने का नाम ही नहीं ले रहे थे। राघव और नंदिनी उड़कर जल्दी से अपनी तनुजा के पास पहुँच जाना चाहते थे। मयंक के घर पहुँचकर दोनों ने तनुजा को देखते ही गले लगा लिया। इस प्रेमपूर्ण आलिंगन से ममता अश्रुधारा के रूप ने नंदिनी के नेत्रों से बह रही थी। तनुजा को उन दोनों का यह व्यवहार काफी अजीब लगा और वह खुद को वजह पूछने से रोक न पाई। राघव ने उसे सबकुछ बता दिया, साथ ही दोनों ने प्रार्थना की कि अब अपना विवाह होने तक हमारे साथ ही रहो। हम भी कुछ दिन तुम पर अपना प्यार लुटाना चाहते हैं। इतने बरस जो प्यार-ममता हम अपने दिल में दबाए रहे, वो सब हम तुम्हें इन कुछ दिनों में देना चाहते हैं। हमें भी अपना फर्ज निभाने दो। यह सब सुनकर तनुजा को अपने कानों पर विश्वास ही न हुआ। उसे गहरा आघात पहुँचा। तनुजा गुस्से में भरकर बोली राघव अंकल पहले तो मैं आप दोनों की काफी इज्जत करती थी, अंकल आपको तो मैं अपने पिता के समान मान-सम्मान देती थी। लेकिन आप दोनों मेरे इतने बड़े अपराधी होंगे मैंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था। एक दुधमुँहीं बच्ची को अनाथाश्रम छोड़ने पर आप लोगों की इनसानियत नहीं जागी तो अब अचानक आप लोगों के मन में मेरे लिए प्यार कहाँ से जाग गया। शादी के पहले का समय हर लड़की के लिए बेशकीमती होता है, जिसे वह अपने परिवार के साथ बिताना चाहती है और मैं भी यह पल अपने माता-पिता के साथ ही बिताना चाहती हूँ और यह उनका हक भी है। आप दोनों मेरे माता-पिता नहीं हैं और आपने इतना स्वार्थी बनकर सोचा भी कैसे कि आप मेरे माता-पिता से उनकी बेटी की विदाई के पहले के अनमोल लम्हे छीन लेंगे। मैं आप लोगों के साथ कहीं नहीं जाऊँगी और न ही कभी भविष्य में आपसे रिश्ता रखना चाहती हूँ। बेहतर होगा आप लोग मेहमान की हैसियत से भी मेरी शादी में न आएँ। इसी में मेरी खुशी है। राघव जानता था कि तनुजा का गुस्सा जायज है और तनुजा की खुशी के लिए उसने वादा भी कर दिया कि जब तक तनुजा खुद नहीं चाहेगी, वे दोनों कभी उसके सामने नहीं आएँगे।

वक्त बीतते देर न लगी और जल्द ही निशा और मयंक ने तनुजा को विदा कर दिया। विदाई के समय मयंक ने उससे पूछा कि क्या वह एक बार राघव और नंदिनी से मिलना चाहेगी तो उसने यह कहकर मना कर दिया कि मेरा उन लोगों से कोई वास्ता नहीं है। आप भी कभी दोबारा मेरे सामने उनका जिक्र मत कीजिएगा। इधर रुचिका ने एक बेटी को जन्म दिया। इस बार नंदिनी दुःखी नहीं बल्कि बहुत खुश थीं कि ईश्वर ने उसे एक बार फिर अपनी बेटी को अपनाने का मौका दिया है। नंदिनी ने अपनी पोती का नाम रखा तनुजा। अब वह उस नन्हीं सी जान में अपनी तनुजा को

महसूस करती। दादी नहीं बल्कि माँ बनकर उसका पालन–पोषण करना चाहती थी। उसने रुचिका से कहा बेटी बरसों पहले मुझसे जो अपराध हुआ, वो बहुत बड़ा था। मैंने बेटी को बोझ समझकर ठुकरा दिया। इससे बड़ा कोई पाप नहीं हो सकता। पर हम अपनी तनुजा के लालन–पालन में कोई कमी न रखेंगे। अब दोनों दादी–पोती एक दूसरे का सहारा बन गए तथा बेटियों को आत्मनिर्भर बनाने के लिए नंदिनी ने एक कौशल विद्यालय आरंभ कर दिया, जहाँ वह गरीब लड़कियों को मुफ्त ट्यूशन देने के अन्य कला–कौशल संबंधी शिक्षा भी देने लगी। रुचिका ने भी उसके इस कार्य में पूर्ण सहयोग किया। घर के साथ–साथ वह कौशल विद्यालय की जिम्मेदारी भी बखूबी निभाती। नंदिनी की मेहनत रंग लाई। अब कई गरीब लड़कियाँ उसके विद्यालय में आने लगीं। उसके प्रायश्चित का जो सबसे बड़ा फल उसे मिला, वह था तनुजा के दिल में उसके लिए माफी। नंदिनी के कार्यों के बारे में जब उसे पता चला तो उसने नंदिनी को माफ कर दिया तथा नंदिनी के विद्यालय में अपना सहयोग देकर उसे आधुनिक तकनीकी सुविधाओं से संपन्न विद्यालय बना दिया, जहाँ अब कई लड़कियाँ बोझ नहीं अपितु आत्मनिर्भर बनने हेतु मुफ्त प्रशिक्षण प्राप्त कर रही हैं। नंदिनी तथा उसके परिवार के इस प्रयास ने कई लड़कियों के जीवन में प्रकाश भर दिया।

❑ ❑ ❑

बरामदे के लोग

–नीलम चतुर्वेदी

इस रास्ते के किनारे वह दफ्तर है जिसके लिए अक्सर कहती हूं कि यहां से मेरे संबंध सारी दुनिया में फैलते हैं। वैसे बाहर – बाहर से देखने पर यह केवल एक बहुत बड़ी इमारत है, लेकिन अंदर घुसने पर भी आप जान नहीं सकते कि इसकी अंतरात्मा कहां है। लगभग डेढ़ सौ लोग इसमें काम करते हैं। पच्चीस लोग कुछ और आप किस्म के हैं और सौ लोग कुछ और ही किस्म के। रहे बाकी के पच्चीस – वे कमरों में कभी नहीं बैठते। उनकी कोई कुर्सी इस दफ्तर में नहीं है। उन्हें मैं अक्सर बरामदे में ही देखती हूं। वे बरामदे में ही नौकरी भी कर लेते हैं और दफ्तर भी। वे अगर बाहर – बाहर ठीक हैं तो दफ्तर भी भीतर – भीतर ठीक है।

वैसे तो घंटी हर कमरे से आती है लेकिन हर पांचवें कमरे से जो घंटी आती है, उससे बरामदे की आत्मा में थोड़ी हलचल होती है। पहले तो ऐसा होता था कि जैसे बरामदे को किसी ने सुई चुभो दी हो। मगर अब एक – एक जर्रे में धैर्य आ गया है। अब बरामदे को यह भी पता लग जाता है कि घंटी किसी खास काम से बजी है या साहब को केवल पानी पीना है। यहां तक पता चल जाता है कि घंटी बजी या यों ही साहब के हाथ से दब गई।

हर दरवाजे के बाहर स्टूल नहीं है। स्टूल असल में कुर्सियों की कमी के कारण ऑफिस के अंदर चले गए हैं। लंबे बरामदे के आखिरी कोने पर एक बेंच पड़ी हुई है। तमाम चपरासी उसी पर बारी – बारी से बैठते हैं। कुछ खड़े रहते हैं। कुछ फर्श पर पालथी मारकर बैठ जाते हैं। कुछ दूसरे – दूसरे विभागों में चले जाते हैं। इस प्रकार वे पच्चीस कहीं न कहीं इस दफ्तर में हैं और बहुत महत्वपूर्ण हैं। लगभग

उतने ही जितने इस इमारत के खंभे कई वर्षों से सांसारिक बातचीत सुनते हुए काफी बेरंग व स्वाभाविक उदासी से मढ़े हुए लगते हैं। बरामदे के लोगों के पास कमरे के लोगों के अनेक रहस्य हैं। किसी को भी तोलने के उनके अपने तराजू और अपने किलोग्राम हैं। यहां तक कि जब किसी को बेंच पर जगह लेनी होती है तो वह यह कहकर धंसेगा कि पचास ग्राम जरा उधर सरको।

कस्तूरीलाल के जीने का बहाना

कस्तूरीलाल और उसके पैर में से कौन लंगड़ाता है, इस पर बाकी चपरासी पीठ पीछे बतियाते रहते हैं। कभी उसके पैर में चोट लगी थी। चोट ठीक हुए काफी अरसा हो गया, पर कस्तूरीलाल ने उस बीच जान लिया कि घायल और जख्मी होने के काफी फायदे हैं। वह दर्द और दया में एक मानवीय रिश्ता पहचान चुका था, इसलिए उसने जीवन भर बेदर्द लंगड़ाने का फैसला कर लिया।

अब उसे दर्द नहीं था। अब वह केवल लंगड़ाता था और किन्ही खास – खास मौकों पर खास – खास तरह से लंगड़ाता था। असल में लंगड़ेपन से वह अपनी असमर्थताओं को ढकता नहीं था बल्कि सामर्थ्य का इजहार करता था – "साहब, पैर पर वजन देने से दर्द बढ़ जाता है वर्ना हमसे पहले कोई दफ्तर क्या पहुंचे। समय से दफ्तर पहुंचने के लिए हम बहुत बदनाम हैं।"

लम्बी घनी मूंछें, बाहर को निकली पड़ती – सी खुश्क आँखें। जैसे जंग की दहशत से भरा सिपाही हो। शरीर किसी पुरानी फाइल की तरह भारी होता जा रहा है। कस्तूरीलाल का काम करने का वक्त शाम चार बजे से शुरू होता है।

सुबह ग्यारह बजे दिया कागज जब कस्तूरीलाल तीन बजे तक नहीं पहुंचा सका तो साहब बिगड़े –"तुम्हें कागज दिया था, पहुंचाया?"

कस्तूरीलाल ने समझाया– "यानी कि साहब, यह तो बड़ी ज्यादती है। हम इतनी बार फलां साहब की सीट तक गए। मिले ही नहीं। अब मैं चलने से मजबूर आदमी और तीन बार जाना पड़ा। सरकारी कागज की अहमियत जानता हूं

साहब! फिर आपने जिस जोर से कहा था कि फलां साहब को दे आओ तो कागज को उनकी गैरहाजिरी में मेज पर कैसे छोड़ आता?"

"जाओ। फौरन देकर आओ।"

"बहुत अच्छा साहब।"

रास्ते में कमबख्त बेंच पड़ती थी। कस्तूरीलाल चर्चा में शामिल हो गया। थोड़ी देर बाद फिर बुलाहट हुई।

"कागज दे आए?"

"बस जा ही रहे हैं।"

"क्या मतलब? तुम अभी तक गए ही नहीं?"

"अब साहब, बात इतनी-सी है कि मैं किस-किसका कौन-कौन-सा काम करूं? कोई जब पान मंगाते हैं तो क्या चाय और सिगरेट भी उसी समय नहीं मंगा सकते? पर नहीं मंगाएंगे। आप ही बताएं – कितने काम एक साथ किये जा सकते हैं? लेकिन असल काम भी टाला नहीं जा सकता। बस जा ही रहा हूं साहब।"

चपरासी पहले अपने-अपने साहबों के कमरों के आगे बैठा करते थे। पर एक तो वहां खुलकर बात नहीं हो सकती थी और दूसरी बात यह है कि हर समय साहब की घंटी अलग तंग करे। एक दिन वह बेंच क्लर्कों के कमरे के पास बिछी पाई गयी। घंटी की आवाज यहां सुनाई देती है। लेकिन सुनकर अनसुना भी किया जा सकता है। घंटे-डेढ़ के फर्क से सब चपरासी इस बेंच पर जमा होते हैं। बीड़ी-सिगरेट के बीच उनके अफसरों के मिजाज पर व्यंग्य होते हैं। कभी-कभी लोकगीत भी गाये जाते हैं। जंगीलाल प्रधानमंत्री के नाम लिखा बिरहा पढ़कर सुनाता है। अब्दुल्ला शिया-सुन्नी का अलम उठने पर दंगों का हाल सुनाते हैं। हज जाने का खर्च जोड़ा जाता है। पे-बिल पर पर बहस होती है। चुनाव में किस उम्मीदवार को कौन-सा निशान मिला। किसके साहब की बीवी बीमार है, किस साहब के यहां कौन चपरासी बर्तन मांजता है। इंश्योरेंस की किस्त कितनी कटेगी। रिटायर होने के बाद की योजनाएं। ऐसी ही और दूसरी बातें।

साहब के सामने कस्तूरीलाल की पेशी हुई।

"तुम लोग हर वक्त वहां क्या मीटिंग किया करते हो?"

"साहब यानी कि कैसी बातें कर रहे हैं। मीटिंग करना तो साहब लोगों को ही शोभता है। बेपढ़े- लिखे लोग यानि कि हम काहे पर मीटिंग करेंगे?"

"आज के बाद फिर कभी तुम लोगों का जमघट वहां देखा तो मेमो दे दूंगा। समझे?"

"बहुत अच्छा साहब।"

चपरासियों के बीच लौटकर कस्तूरीलाल ने कहा–"साहब सबको यानि कि एमओ भेजने वाले हैं।"

सब हंस पड़े।

जंगीलाल: दखल की ताकत

शरीर की ताकत के जरिये सफलताएं हासिल करने की जो परंपरा फिल्मों ने चलाई है, जंगीलाल उसी को राजनीति मानता है और अपने बाहुबल से वह दफ्तर के होश भी फाख्ता कर सकता है। उसके चाल-चलन से लेकर नाक-नक्श तक में किसी भ्रष्ट अफसर की छाप दिखाई देती है। जंगीलाल सरकारी कामकाज के घंटो में सत्यकथाएं पढ़ता है।

अगर कोई काम उसे सौंपा जाता है तो कहने वाले का तरीका इस प्रकार होता है – "जंगीलाल जी, अगर आप खाली हों तो क्या हमारा एक काम कर सकेंगे?"

जंगीलाल बड़े रौब से बोलेगा–"आते हैं।"

लेकिन सब जानते हैं कि आने को कहकर भी आएगा नहीं। उस तक पहुंचना पड़ता है। इस दफ्तर में आने से पहले जंगीलाल ने कई जगह नौकरियां पाईं और छोड़ीं। बड़े-बड़े साहबों का घरेलू नौकर होने से वह ऊब चुका था। अब वह किसी सरकारी दफ्तर में नौकर होना चाहता था जिसमें सेवा करने का एक कानूनी आधार हो। मेम साहबों के थैले और बच्चे उठाते-उठाते उसे लगा कि धीरे-धीरे उसका पौरुष खत्म होता जा रहा है।

शहर के प्रशासक वर्ग के बारे में जंगीलाल तरह-तरह की डींगें हांकता है। अब्दुल्ला एक मुकदमा हार गया। जंगीलाल को मालूम हुआ तो बहुत बिगड़ा–" अमां अब्दुल्ला, तुम भी अच्छे बेवकूफ हो। फलां जज का मुकदमा और उसमें तुम्हारे खिलाफ फैसला हो गया। जंगीलाल के जिंदा रहते! अगर एक बार कह देता तो वो बात टाल नहीं सकते। पांच साल तक उनके बच्चे खिलाये हैं। पर तुम लोग तो समझते हो- जंगीलाल गप्प हांकते हैं। एक अदालत से हारे हो, लेकिन बाकी सबमें जीतोगे। अब तुमने बता दिया। चलना, दूसरे साहब से बात करवा देंगे। एक बार हम मिलवा देंगे। आगे हमारा नाम लेके चले जाना।"

अपनी हर छोड़ी हुई नौकरी का किस्सा वह कुछ इस तरह सुनाता है जैसे छोड़ी हुई बीवी के बारे में कुछ बता रहा हो।

"डी साहब के मजे ही और थे। हिंदुस्तानी आदमी होने के बावजूद उन्होंने अंग्रेजी बोल-बोल के सारे दफ्तर को इतना हताश कर रखा था कि सब सोचते-डी साहब रिटायर हो जायेंगे तो दफ्तर का क्या होगा? डी साहब के अंडर में मैं थोड़े दिन रहा। मुझसे उनके नखरे नहीं उठाए जाते थे। एक बार उनके पास एक फाइल लेकर गया। साथ में कुछ कहना भी था लेकिन डी साहब बड़े जोर से अंग्रेजी में बोले, क्या बोले यह तो मुझे अब याद नहीं लेकिन निकल जाने को बोले। मैं बाहर चला आया। उनके स्टेनो ने बुलाकर कहा-"साहब कह रहे हैं, पहले पान थूककर आओ। तब बात करो। साहब को पान खाने वालों से नफरत है।" मुझे बड़ा गुस्सा आया। मैं बोला-श्पान तो अपने पैसे का खाया है। थूक कैसे दें।पैसे खर्चे हैं।" स्टेनो बोला-श्अच्छा बाबा,जब मुँह का पान खत्म हो जाए तब बात करना।"

"डी साहब अपने चपरासी से घर के काम भी खूब करवाते थे। वह बेचारा परेशान था। एक बार उसे अपनी बन्दूक का लाइसेंस बनवा लाने भेजा। बड़ी देर बाद वह वापस आया। डी साहब बिगड़े-इतनी देर कहां रहे?" वह भी ताव खा गया। बोला -"आपके काम से ही तो गया था।" बस क्या था कि डी साहब को गुस्सा आ गया। वो अंग्रेजी में गाली बकने लगे। चिल्लाने लगे-"मैं तुम्हें गोली मार दूंगा।"

"चपरासी ने भी तय कर लिया कि वह अबकी बार लड़े बिना नहीं रहेगा। हम सब चपरासी लोग बोले कि हां, तुम्हें जाकर शिकायत करनी चाहिए। तो भई, उसने एक अर्जी बनाई और चीफ साहब के पास गया। साहब ने पूछा-श्क्या बात है?" बोला-"साहब, डी साहब ने हमे गोली मार देने को कहा है।"

"पूरी बात बताओ।"

"साहब, डी साहब हमसे अपने घर का सारा काम कराते हैं। यह देखिए, यह उनकी बन्दूक का लाइसेंस बनवाकर लाया हूं। इतनी देर लाइन में खड़े हम खटते रहे। ऊपर से वो हमें गलियाने लगे। गोली से मारने की बात करते हैं।"

"चीफ साहब ने डी साहब को बुलाया। पूछा-'क्या यह सब सच है?' डी साहब चुप रहे। बोलते क्या? रंगे हाथ पकड़े गए थे। तब चीफ साहब ने उनसे कहा, "अपने चपरासी से माफी मांगिए।"

"काफी देर डी साहब चुप रहे। फिर 'सॉरी' बोलकर फौरन बाहर चले गए।"

इस दफ्तर के चपरासियों में जंगीलाल अकेला है जो रोज अखबार पढ़ता है। कर्मचारियों के लिए जो नए नियम बनते हैं उन्हें नोट कर लेता है। दूसरे चपरासियों

पर इस बात की धौंस जमाता रहता है कि मैंने सरकारी मैनुअल पढ़ा है।

जंगीलाल नौकरी के कुछ सत्य जानता है। उनमें से एक सच यह है कि अफसर और चपरासी का असली फर्क उनके वेतन का फर्क है। छोटा साहब भी बड़े साहब से वैसा ही डरता है जैसे चपरासी। जंगीलाल के काम करने का तरीका चपरासी होने की वास्तविकता और परमानेंट न होने की मनोवैज्ञानिक ग्रंथि से प्रभावित रहता है।

उसका सीधा–सादा गणित है कि अफसर लम्बी तनख्वाह पाता है तो लम्बी ड्यूटी बजाए। चपरासी को अपने वेतन के अनुसार दिन में दो घंटे से ज्यादा काम नहीं करना चाहिए। वरना उसका शोषण हो जाएगा। उसके साथ बेइंसाफी हो जाएगी।

जंगीलाल की जड़ें भी दूसरे चपरासियों कि तरह गांव में हैं। यह बात से उसे शहर आने पर मालूम हुई। गांव के नौवें दर्जे में फेल होने के बाद उसे लगा कि इतना क्वालीफाइड होकर भी वह गांव में क्यों पड़ा है? शहर में साहब के नीचे काम करने लायक तो वह हो ही गया है।

दफ्तर की राजनीति को समझने में जंगीलाल को ज्यादा वक्त नहीं लगा। बड़े लोगों के नीचे काम करने का सपना टूट गया। उसने जाना कि यहां छोटे–बड़े की परिभाषा बिलकुल नईऔर अलग है। बड़े का मतलब बड़प्पन नहीं, साहब भी छोटे–छोटे झूठ बोलकर नौकरी चला रहे हैं। बड़प्पन साहब की कुर्सी में है। कुर्सी की बुनावट और उसकी गद्दी में है। उस पर बैठकर साहब बड़ा हो जाता है। यह जानने के बाद जंगीलाल को अपने छोटेपन पर बड़ा संतोष होने लगा।

जंगीलाल अक्सर बिना पोर्टफोलियो के मंत्री की तरह इस–उस जगह बैठा लिखा–पढ़ी करता रहता है। उसके खरेपन और जिद्दी स्वभाव के कारण कोई साहब अपने यहां उसको रखने के लिए तैयार नहीं।

चपरासी साहब के दरवाजे से पहले का एक दरवाजा है जिसे कोई लांघकर नहीं जा सकता।

तोताराम और वर्णव्यवस्था

देश की ऊंच– नीच दफ्तर तक पहुंची हुई है। बड़े साहब का बड़ा चपरासी, छोटे साहब का छोटा चपरासी।

तोताराम बड़े साहब के अंडर में तब से काम कर रहा है जब यह दफ्तर पैदा हुआ था। उसकी पोशाक से पता चल जाता है कि साहब दफ्तर में हैं या दौरे पर।

दौरा बड़ा है या छोटा। जिन दिनों साहब दफ्तर में बैठते हैं, तोताराम की वर्दी साफ-सफेद नील पड़ी और कलफ से अकड़ी होती है। आंख का चश्मा नाक पर सरकने नहीं पाता। जूते चमचमाते रहते हैं। जिस किसी कमरे में तोताराम पर्दा उठाकर झांकता है, भीतर बैठे नामालूम अफसर को पता चल जाता है कि साहब बुला रहे हैं।

"कहो तोताराम भाई, सब खैरियत तो है? कुछ सुराग दोगे कि क्यों बुला रहे हैं?"

तोताराम घनी प्रौढ़ मूंछों में मुस्कराता- "साब, चलकर देख लीजिए। साब का मिजाज तो ठीक लगता है, वैसे कह नहीं सकता कि घास के नीचे कितना दलदल है।"

जिन दिनों साहब दौरे पर होते हैं, तोताराम आराम की मुद्रा में रहता है। मैला-सा अलीगढ़ी पायजामा। ढीला,मटमैला कुर्ता। टूटी सैंडिलें घिसे सोल वाली। सिर पर आधा इंची बालो में मुटठी भर चुटिया की गांठ किसी कंद की तरह दिखाई देती है। चाल में सुस्ती रहती है। नौकरी जैसे कोई सुहाग हो कि साहब हों तभी श्रृंगार भी हो। साहब के दौरे वाले दिनों में तोताराम की हुलिया विधवा हो जाती है।

रामअजार: घंटी की आवाज

रामअजार बहुत जल्दी हरेक की धौंस में आ जाता है। चतुर्थ श्रेणी के अन्य लोग भी उस पर हुक्म चलाते रहते हैं।

जरा हमारी लाइन की सुराहियां भर देना।

ऊपर जा रहे हो क्या? जरा हमारे ये कागज-पत्तर ले जाना। तुम्हारे होते कौन जीना चढ़े और टांगें तोड़े।

जरा हमारे साहब के कमरे की चिक गिरा देना।

सुना है तुम्हें ओवरटाइम का मुनाफा हुआ है। आज चाय का आर्डर तुम्हारी तरफ से होना चाहिए।

नीचे से चार पान बनवा लाना। सक्सेना साहब मांग रहे हैं।

रामअजार बड़ी दबी आवाज में इतना कहता- अच्छा अभी भरते हैं, अभी ले जाते हैं, अभी करते हैं, अभी लाते हैं।

रामअजार की इस निरीहता में चतुर्थ श्रेणी वालों को एकाएक अपनी तौहीन नजर आने लगी।

साला, गधे की तरह बिना सोचे- समझे बोझा ढोया करता है। ट्रेनिंग नहीं मिली कहीं।

इसलिए रामअजार की ट्रेनिंग शुरू की गयी। बातों में फंसाकर उसे बेंच पर बैठा लिया जाता। घंटी की आवाज सुनते ही रामअजार भागने को होता तो पकड़कर बैठा लेते –"साले, एक घंटी पर उठेगा तो मार-मार के भुरता बना दिया जाएगा। तुम हम सबकी नाक कटाओगे। मर्दानगी सीखो। अरे, चपरासी हैं तो क्या हुआ। नौकरी करने का भी तो एक ढंग होता है।'

धीरे-धीरे रामअजार लाइन पर आ रहा है। साहब लोग भी साधारण लोगों की तरह मरणशील होते हैं। यह उसकी समझ में तब आया जब एक बार साहब बैल की तरह खांसने लगे।

रामअजार साहब के सामने दवाई की शीशी रखता है। साथ में केमिस्ट द्वारा लौटाई रेजगारी भी। साहब शीशी उठाकर उस पर लिखे निर्देश पढ़ते हैं। रामअजार आउटट्रे में से कागज समेटकर बाहर आ जाता है। घंटी बजती है।

रामअजार कागज वैसे ही छोड़कर फिर कमरे में जाता है – "आपने बुलाया साहब?"

"जरा एक गिलास पानी लाना।"

"पानी साहब? अच्छा साहब।"

रामअजार पानी लाता है साहब शीशी उसे पकड़ाते हैं–"देखो, छह बूंदे मेरे मुँह में टपकाओ।"

रामअजार की समझ में नहीं आया।

"साहब हम टपकाएं?"

"हां, तुम टपकाओगे।"

"बहुत अच्छा साहब।"

रामअजार डरते-डरते साहब के मुँह में दवाई टपकाता है। उसने देखा कि साहब के दांत बेहद पीले और गंदे हैं। हर बूँद पर उसे लगता, साहब झिड़केंगे–"तुम्हें दवा टपकाने की भी तमीज नहीं।" पर उसका डर कुछ कम हो चुका था, क्योंकि गांव में भी आम लोगों के दांत ऐसे ही पीले और सड़े हुए होते हैं। दांतो से तो साहब उसे बहुत पहचाने हुए से लगे।

साहब दवा पीकर डकार लेते हैं–"काफी अच्छा रहा। बढ़िया दवा है।"

"हां साहब! बहुत बढ़िया है।" रामअजार बिना सोचे-समझे कहता है।

"तुम समझ गए न? रोज दिन में तीन बार। ऐसे ही छह बूँदें। मैं भूल जाऊं तो याद दिला देना।"

"तीन बार साहब? बहुत अच्छा साहब।"

रामअजार की समझ में नहीं आता, साहब दवा खुद न पीकर उससे क्यों टपकवाना चाहते हैं। फिर यह सोचकर खुश होता है कि साहब उसे बहुत मानते हैं।

अगली बार दवा टपकाने के लिए वह घड़ी में समय देखता है। तीन बजे वह साहब के कमरे में घुसता है। साहब किसी जरूरी विषय पर हैडक्लर्क से बात कर रहे हैं। रामअजार शीशी दिखाता है–"साहब, समय हो गया है। टपकाएं?"

"अभी नहीं। थोड़ी देर बाद।"

"थोड़ी देर बाद? बहुत अच्छा साहब।"

एक बार इस दफ्तर में चपरासियों की यूनियन बनाने की बात बड़े शोर से चली। जंगीलाल और रामअजार दफ्तर के कम उम्र चपरासी हैं और उन्हें अपने हितों की सबसे ज्यादा चिंता है।

उन्होंने आसपास के दफ्तरों में जाकर पता किया कि कहां-कहां चतुर्थ श्रेणी वालों की यूनियन हैं और यूनियन बनाने के क्या नियम होते हैं। सारी जानकारी मिल जाने पर एक प्रस्ताव तैयार किया गया।

दिन भर भागदौड़ होती रही। सबसे दस्तखत कराए गए। एकाध मुकर रहे थे लेकिन भीड़ भर के दस्तखत देखकर उन्होंने भी अंगूठा लगा दिया था। शाम तक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष,कोषाध्यक्ष, मंत्री आदि पदों के लिए नाम भी चुन लिए गए। वार्षिक चंदे की राशि पर भी कोई असहमति नहीं थी। घर लौटते समय यह तय था कि यूनियन बनकर रहेगी। लेकिन अगले दिन न जाने क्या हुआ कि एक-एक,दो-दो करके चपरासी अपना नाम कटवा गए। यह क्रम कहां से शुरू हुआ, यह तो पता नहीं चला लेकिन नाम वापस लेने का कारण था-कहीं रिटायरमेंट पर असर न पड़े।

जंगीलाल को बहुत गुस्सा आया। पहले तो सबको समझाया कि भई, रिटायर होने के लिए अफसर की दया नहीं चाहिए। वह तो तुम अपने आप हो जाओगे। जिन्हे साल-दो साल बाद रिटायर होना है, उनके खिलाफ कोई कुछ नहीं कर सकता। अपने

मत से वे नई उम्र वालों के लिए जरूर कुछ कर सकते हैं। लेकिन बूढ़े चपरासियों की समझ में कुछ नहीं आया। वे अंत तक डटे रहे कि नाम वापस लेंगे। यूनियन की योजनाओं के रात भर सपने देखने के बाद यह सुबह बड़ी अटपटी और सोचे हुए के विरुद्ध थी।

बरामदा, अखबार और वे

वहीं बेंच पर वे बैठे हैं। सामने आज का अखबार फैला हुआ है। जैसे सारी दुनिया उनके सामने बिछी हुई हो।

आज की पहली खबर से वे हिल गए।

अब चपरासियों की भर्ती नहीं की जाएगी। इस खबर के अंत में कहा गया था कि किसी भी दफ्तर में अब कोई चपरासी नहीं रखा जायेगा। सबके नीचे से फर्श लगभग खिसक गया। खबर पढ़कर वे उन बिरादरों का इंतजार करने लगे जो समय से दफ्तर पहुंचना साहबों से डरने का पहला लक्षण मानते हैं। ये अपने को निडर बनाने की कोशिश में जुटे हुए थे। मगर अब तो निडर होने से भी उन्हें डर लगने लगा।

कस्तूरीलाल भी पहुंच गया। आज कुछ ज्यादा ही लंगड़ा रहा था, क्योंकि डेढ़ घंटा लेट था। जब देखा कि उसके साहब अभी तक नहीं आये तब वह बरामदे में सीधा और सपाट चलने लगा। जैसे अचानक अपने दर्द पर काबू पा लिया हो। जंगीलाल भी पंहुचा। थोड़ा सा पसीना और थोड़ी सी सीनियर चपरासियत उसके चेहरे पर चिपचिपा रही थी। झोला भी उसका आज धुला हुआ था। ड्रेस भी कलफ से थोड़ी सी अकड़ी हुई थी।

बेंच पर जगह खाली थी, पर वह बैठा नहीं। खड़े-खड़े उसने यह कहते हुए अखबार मांगा–"रामअजार! इस तरह उस अखबार का गोबर न बनाओ। अखबार की फोल्डिंग का तो थोड़ा सा ख्याल रखो। इधर लाओ।" रामअजार ने अखबार की मुख्य खबर पर जंगीलाल का ध्यान अटकाना चाहा। मगर पढ़ते ही जंगीलाल की त्योरियों पर अजीब तरह का खिंचाव हुआ।

"अरे, तुम लोग इसी खबर से मुर्दा हुए बैठे हो। हमसे पहले वो मुर्दा हो जायेंगे जिनके लिए हम रखे जाते हैं। हम नहीं होंगे तो दफ्तर अपनी रफ्तार से एको इंच आगे नहीं बढ़ सकता। हमने पहले ही कह दिया था कस्तूरी भाई। ऐसा हो सकता है। मर-मिटने के लिए यूनियन होती तो आज ही फैसला हो जाता। इनको चपरासी रखने होंगे। ये पचास वर्षों से हमारे कायल हैं।"

रामअजार सीधे अपने साहब के कमरे में गया और काफी देर तक नहीं लौटा। उसके साहब अभी आये नहीं थे। पर वह काफी दिन बाद फिर से अपने को ड्यूटी पर समझ रहा था।

अब्दुल्ला बोला–"अगर मुझसे कोई पूछे तो मैं यह बता देना चाहूंगा कि चपरासी भर्ती नहीं किये जायेंगे, इस बात की जंगी भैया कोई तुक नहीं है। इलेक्शन कराके देख लो। सारे साहब चपरासी पर वोट देंगे।"

कस्तूरीलाल को लगा, वह दोनों पैरों से लंगड़ा हो गया है।

"अब्दुल्ला ठीक कहते हैं। आजादी के बाद भैया, जब अंग्रेजी चल सकती है तो हम क्यों नहीं चल सकते?"

रामअजार को सीढ़ियां चढ़ते अपने साहब के बूटों की आवाज सुनाई दी। वह भागकर गया और उनके कमरे के सामने खड़ा हो गया। साहब को सलाम करने के बाद उसने दरवाजे का पर्दा उठाया। फिर बहुत ही विनम्र होकर पूछने लगा–"साहब पानी लाऊं?"

साहब को रामअजार का व्यवहार बड़ा अटपटा और अस्वाभाविक लगा। इस तरह के व्यवहार की कोई आदत उन्हें नहीं थी। फिर भी वे एकदम तनकर कुर्सी पर बैठ गए। कोई जवाब दिए बगैर अपनी मेज देखने लगे।

"हमारी मेज कहां गई?"

"यही है साहब।"

"नहीं, यह नहीं है। यह हमारी कल तक वाली मेज नहीं है। मैं तीन सालों से उस पर काम कर रहा हूं। तुम समझते हो कि मैं उसे पहचानता नहीं?"

"साहब, मेज मैंने साफ की है। देखिये न, एकदम नई लग रही है।"

नीलम चतुर्वेदी

M-49 B, अडानी सम्सारा
सेक्टर–60, गुडगाँव–122001
Mob: 7042151049
Mail: neelam-chaturvedi0412@gmail.com

[सुपरिचित कथाकार और दूरदर्शन की पूर्व उपनिदेशक]

❑ ❑ ❑

बंद अलमारी

–मुकुल अमलास

यह पटना विश्वविद्यालय के पी.डी.एस. गर्ल्स हॉस्टल का कमरा नंबर दो था जो सबसे ऊपरी मंजिल पर था। सुबह के चार बज रहे थे, चारों ओर अंधेरा छाया था और कोई जोर-जोर से दरवाजा खटखटा रहा था। मैं ने घबरा कर आँखें खोलीं और लाइट जलाया, मेरी रूममेट शाहदा की भी स्थिति मेरी जैसी थी। इतनी सुबह-सुबह कौन हो सकता है? मैं ने भयमिश्रित उत्कंठा के साथ दरवाजा खोला। हमारी वार्डन निलीमा वर्मा कमरे में दाखिल हुईं, उनके साथ कुछ पुलिस वाले भी थे। उन्होंने घुसते ही कमरे की तलाशी लेनी शुरू कर दी। अचानक गहरी नींद से जगने और यह नजारा देखने के कारण मेरे दिल में हौल सा समा गया था, भय से पाँव काँप रहे थे। आखिर यह क्या हो रहा है? जानने की तीव्र उत्कंठा के बावजूद पूछने के लिए मुँह से आवाज नहीं निकल पा रहे थे। हमने ऐसा क्या कर दिया कि पुलिस इस समय हमारे कमरे की तलाशी ले रही है! हमें अलमारी खोलने को कहा गया जो हमने झट से खोल दी। पुलिस वाले पलंग के नीचे भी ताक-झाँक कर रहे थे। जब पुलिस हमारे कमरे से निकल बगल वाले कमरे की तलाशी लेने लगी तब जान में जान आया, लगा हो न हो इसका संबंध हमसे नहीं किसी और से है। पर बात क्या है?

साथ चल रही रिसर्च स्कॉलर छोटी किरण, जिनका कमरा ठीक हमारे कमरे के बगल में था, से हिम्मत करके मैं ने पूछा," दीदी क्या हुआ है?" पता चला कि फर्स्ट फ्लोर के सिंगल सीटर रूम में रहने वाली बड़ी किरण नहीं मिल रही, उसी को ढूँढा जा रहा है? धीरे धीरे लड़कियों की भीड़ बढ़ती जा रही थी जिस रूम की तलाशी हो जाती उस कमरे की लड़कियाँ भी इस जमात में शामिल हो जातीं।

यह पटना का बेहद प्रतिष्ठित और पुराना होस्टल था जो पोस्ट ग्रेजुएट तथा बी.एड. करने वाली लड़कियों के लिए आरक्षित था। हॉस्टल अंग्रेजी के वी अक्षर के आकार में बना हुआ था अत: हर फ्लोर पर दो विंग थे। जब एक विंग की तलाशी हो गई तो पुलिस ने दूसरे विंग की तलाशी शुरू की। वार्डन ने पुलिस को सूचित किया की बी.एड. की सभी लड़कियाँ अपने घर जा चुकी हैं अत: हर कमरा बंद है। पुलिस ने कहा खोलवाइये, सर्च तो करना पड़ेगा। फिर तो उन बंद कमरों को भी खोला गया पर बड़ी किरण का कहीं पता नहीं चला। कमरा-दर-कमरा खोजबीन करते-करते पुलिस की सतर्कता घटती गई और अंत में वह बंद कमरों को खुलवा कर सिर्फ खुली अलमारियों को ही देख रही थी जिन अलमारियों में ताले जड़े थे उसे छोड़ देती थी। जब पुलिस फर्स्ट फ्लोर की तलाशी के लिए नीचे उतर गई तो हम सब अपने कमरे में लौट आए। पौ फटने का समय हो चला था, आसमान से उजाला झाँकने लगा था और इसके साथ ही पूरे हॉस्टल में यह खबर जंगल के आग की तरह फैल गई थी कि रिसर्च स्कॉलर बड़ी किरण के साथ कुछ हुआ है, वह लापता है और उसकी तलाशी में पुलिस जुटी है। पूरे हॉस्टल को सील कर दिया गया, किसी को भी अंदर आने या फिर बाहर जाने की इजाजत नहीं थी।

हॉस्टल के हर फ्लोर पर कुछ सिंगल रूम रिसर्च स्कॉलर के लिए थे, उसी में से एक में बड़ी किरण तथा एक में छोटी किरण रहती थीं। छोटी और बड़ी का फंडा यह था कि हॉस्टल में किरण नाम की दो रिसर्च स्कॉलर होने के कारण हम जूनियर ने अपनी सहूलियत के लिए, कद काठी के आधार पर उनका नामकरण, छोटी और बड़ी किरण कर दिया था। बड़ी किरण से मेरा पहला परिचय अपने कमरे की खिड़की से हुआ था। वह हॉस्टल के गार्डन में नीचे खड़ी किसी से बात कर रही थी। गोरे रंग और लंबे कद वाली यह लड़की काली साड़ी में लिपटी दूर से सुंदरता की कोई मूरत नजर आ रही थी। मेरी नजर बरबस उस पर अटक गई, मैं ने तत्काल अपने रूममेट शाहदा से पूछा, "यह लड़की कौन है?"

वह बोली, "उसे नहीं जानती, यह साइंस की रिसर्च स्कॉलर किरण सिंह है। फर्स्ट फ्लोर पर रहती है। सुना है किसी राजपूत जमींदार खानदान से है। उसके पिता का जयनगर में बहुत बड़ा बिजनेस है।"

पहली झलक में ही वह मुझे प्रभावित कर गई थी फिर तो सदा मैं इस फिराक में रहती कि कभी पास से उसकी एक झलक देख सकूँ। जल्द ही वह समय भी आ गया। एक शाम वह खुद ही छोटी किरण के साथ हमारे कमरे में आ धमकी।

उसे शाहदा से किसी उर्दू शब्द का अर्थ जानना था। बड़ी किरण ने एक शेर सुनाया था और शाहदा को उसका अर्थ समझाने को कहा। उस दिन मैंने उसे नजदीक से देखा और पाया कि वह अप्रतिम सुंदर है। इसके बाद ऐसे कई मौके आए जब वह हमारे कमरे में आई। वह कई बर रात को खाना खाने के बाद आ जाती और छत पर टहलते हुए शाहदा से उर्दू सीखती रहती। उस समय मैं उसके उर्दू प्रेम का मायने नहीं समझ पाई थी, यह भेद तो बहुत बाद में खुला।

1982 का अक्टूबर महीना था, विश्वविद्यालय में दुर्गापूजा तथा दीपावली की छुट्टियाँ चल रही थीं। अधिकतर लड़कियाँ अपने घर जा चुकी थीं किसी कारणवश जो नहीं जा पाई थीं वही लड़कियाँ हॉस्टल में बची रह गई थीं। मैं भी पिताजी का इंतजार कर रही थी, जैसे ही वे आते मुझे उनके साथ घर जाना था। न जाने क्यों उन्हें आने में देर हो रही थी! मैं चिंतित थी कि कहीं माँ फिर से बीमार न हो गई हों। उस जमाने में मोबाइल फोन तो होते न थे कि पल-पल का समाचार मिलता रहे, पत्र पहुँचने में समय लगता था, तो मन चिंतित था और तभी यह घटना घट गई।

मुझे याद है उसी दिन तलाशी के बाद लगभग ग्यारह बजे छोटी किरण ने मुझे अपने कमरे में बुलाया था। वो काफी सीनियर थी अत: मैं उनका अदब करती थी। वह लिखती थी और खुद को पत्रकार कहती थी। उसके वेशभूषा, बोलचाल सब में एक रूखापन था पर न जाने क्यों मुझे बहुत पसंद करती थीं। इसका कारण संभवत: यह रहा हो कि साहित्य में रुचि के कारण मैं कभी-कभी उसके पास जा बैठती थी और उनकी कविताएँ सुना करती थी, जिसमें अक्सरहाँ समाज को बदलने तथा स्त्रियों को अपने अधिकार के प्रति जागरूक करने की बातें होती थीं। उस उम्र में मुझे ये बातें बहुत रोमांचित करती थीं। दूसरा कारण शायद यह रहा हो कि मैं कॉमनरूम के पुस्तकालय की इंचार्ज थी तो सारे अखबार और पत्रिकाएँ मेरे ही पास आया करतीं थीं जिसे वे कभी-कभी मुझ से मँगवा कर पढ़ा करती थीं। बड़ी किरण उनकी पक्की मित्रों में थी। उस दिन जब छोटी किरण ने मुझे बुला कर वार्डन के पास चलने को कहा तो मैं बिना कोई प्रश्न उठाए उनके साथ हो ली। मुझे बिल्कुल अनुमान नहीं था कि वह वार्डन से क्या बातें करने वाली हैं। मैं तो बस शिष्टाचारवश उनके साथ चल पड़ी थी।

उन्होंने वार्डन के पास पहुँचते ही उन्हें आड़े हाथों लिया और एक के बाद एक प्रश्न दाग दिए। "मैडम क्या हुआ? क्या किरण का कुछ पता चला? हम ऐसे हाथ पर हाथ धरे कब तक बैठे रहेंगे? पुलिस क्या कर रही है? उसे खोज क्यों नहीं रही? रात भर मेरी दोस्त गायब रही है, न जाने उसके साथ क्या हुआ है?"

वार्डन बोली, "पुलिस खोजने में जुटी हुई है। बड़े आश्चर्य की बात है, रात को भागी तो वह हॉस्टल के कोरिडोर में ही थी, उस समय बाहर निकलने के सारे गेट बंद थे, तो फिर वह जा कहाँ जा सकती है! होना तो उसे हर हालत में हॉस्टल में ही चाहिए। समझ में नहीं आता कि उसे धरती खा गई कि आसमान निगल गया?"

"पर हॉस्टल में तो पुलिस उसे खोज चुकी है, वह मिली नहीं तो अब क्या उसे बाहर नहीं खोजना चाहिए? यह भी हो सकता है कि वह भागी तो अंदर हो परंतु इस डर से कि उसे पकड़ कहीं पिता के हवाले न कर दिया जाए, किसी तरह हॉस्टल से भाग निकली हो?"

"तो सवाल यह है कि आखिर किस तरह? क्या कोई और रास्ता है हॉस्टल से बाहर निकलने का?"

"मैडम आप चलें मेरे साथ टॉप फ्लोर पर मैं आपको बताती हूँ। गार्डन से लगे पेड़ों की डालें छत तक पहुँचती हैं, हो सकता है वह उसी के सहारे नीचे उतर गई हो। इससे पहले की बाहर उसके साथ कोई दुर्घटना घट जाए आपको पुलिस पर दबाव बनाना चाहिए कि वो उसे जल्द से जल्द ढूँढे।"

वार्डन हमारे साथ छत तक आईं पर विश्वास न कर पाईं कि इतनी पतली डालियों को पकड़कर कोई तीसरी मंजिल से नीचे उतर सकता है। इधर छोटी किरण थी कि बार-बार इस बात पर जोर दे रही थी कि बड़ी किरण की खोज अब हॉस्टल में नहीं बल्कि बाहर की जानी चाहिए। वार्डन यह कहते हुए नीचे उतर गए कि मैं एक बार फिर से खुद ही हॉस्टल की तलाशी लेने का प्रयास करूँगी।

छोटी किरण यह सुन कर थोड़ी बेचैन सी हो उठी, तैश में आ कर बोली, "मैडम अब आप समय बर्बाद कर रही हैं। पुलिस जल्द से जल्द मेरी दोस्त को खोजे, आप उस पर दवाब बनाएं वरना हम छात्र जानते हैं कि हमें क्या करना है। आप नहीं सुनेंगी तो हार कर मुझे छात्र यूनियन से बात करनी पड़ेगी। ऐसा कहते-कहते उसकी आवाज सख्त हो उत्तेजना से फट पड़ी थी।

छोटी किरण इसके बाद मुझे लेकर सीधे अपने कमरे में आई और कहने लगी, क्या तुम्हें पता है कल किरण के साथ क्या हुआ?"

मैं भी जानने के लिए बेताब थी। मेरे ना में सिर हिलाते ही वह शुरू हो गई, "कल रात करीब दस बजे किरण के पिता तथा उसकी भाभी किरण से मिलने आए, वार्डन के ऑफिस में उसकी बुलाहट हुई। पिता ने किरण की शादी उसकी मर्जी के

खिलाफ कहीं तय कर दी थी और अब बलात उसे अपने साथ ले जाना चाहते थे। जब किरण ने जाने से इंकार कर दिया तो उसके साथ जबरदस्ती की गई। पिता के इशारे पर भाभी ने एक चादर से उसका सिर ढँक दिया फिर ड्राइवर की मदद से उसे दबरदस्ती कार में बिठाने का प्रयास किया। ऐसे में किरण के पास वहाँ से भाग निकलने के सिवाय और क्या रास्ता बचा था! अब तुम तो जानती हो किरण कि डिलडौल, उसने दो चार हाथ भाँजे और खुद को अपने पिता और भाभी की पकड़ से आजाद कर लिया तथा हॉस्टल के कोरिडोर में भाग निकली और तभी से न जाने कहाँ गुम है। दुख की बात यह है कि यह सब अपनी वार्डन के सामने हुआ। उन्होंने उसे बचाने के लिए कुछ नहीं किया। इनका वश चलता तो शायद उसे पकड़ उसी जुल्मी पिता के हवाले कर देतीं। किरण बालिग है, शिक्षित है, समझदार भी अपना भला-बुरा जानती है फिर उसके साथ जबरदस्ती क्यों? इन्होंने पिता को रोकने की कोशिश क्यों नहीं की?

मैं हक्की बक्की उनकी सारी बातें सुन रही थी और समझ नहीं पा रही थी कि मेरी प्रतिक्रिया क्या होनी चाहिए! मैं उस समय तक दुनिया के छल-प्रपंच से दूर, भावनाओं में जीने वाली कोरी सिद्धांतवादी लड़की थी, जिसने अभी तक सुख के राजमार्ग पर ही यात्रा की थी, दुनियादारी की पथरीली पगडंडी से जिसका बास्ता नहीं पड़ा था, ऊपर से राजनीति विज्ञान की छात्रा और भारतीय संविधान में गहरी रुचि रखने वाली तो चुप कैसे रहती अपना मत व्यक्त करते हुए बोल पड़ी,

"हर बालिग व्यक्ति को चाहे वह किसी भी लिंग, जाति और धर्म का हो उसे अपना जीवनसाथी चुनने का संवैधानिक अधिकार प्राप्त है। इस अधिकार से उसे वंचित करने का अर्थ उसे एक मूलभूत मानवाधिकार से वंचित करना है। अपने देश के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जो जीवन तथा निजी स्वतंत्रता का अधिकार हमें मिला है यह उसका एक मूल तत्व है। किसी व्यक्ति से उसका यह अधिकार चाहे वह उसका पिता ही क्यों न हो कैसे छीन सकता है?"

"तुम बिल्कुल सही कह रही हो" छोटी किरण मेरी बात सुन आश्वस्त हुई और कहना जारी रखा, "अब हमें सोचना यह है कि अगर वार्डन का अंदेशा सही निकला और दोबारा खोज होने पर किरण हॉस्टल के किसी कोने से निकल ही आई, तो हमारा लाइन ऑफ एक्शन क्या होगा? क्या तुम और तुम्हारी रूममेट उसका साथ देगी?"

मैंने बिना कुछ सोचे कहा, "किसी के साथ भी जबरदस्ती करना उचित नहीं, हमें अवश्य उनकी मदद करनी चाहिए।"

मेरी बात सुन छोटी किरण खुश हुई और बोली, "देखो, तुम बस इतना करो कि फिफ्थ इयर की अधिक से अधिक लड़कियों को इस बात के लिए तैयार कर लो कि जब वार्डन दुबारा खोजबीन शुरू करे तो सब यहाँ इक्ट्ठी हो जाएँ। यह तय है कि वह मिलेगी नहीं, परंतु अगर मिल भी गई तो हम सब इकट्ठा उसे घेर लेंगे। तुम उसकी टाँग से लिपट जाना, मैं उसे बाँहों से जकड़े रहूँगी। हमसब मिल कर ऐसा माहौल पैदा कर देंगे कि पुलिस उसे ले न जा सके।"

इस बात को सुन कर मैं थोड़ा घबराई पर जाहिर नहीं होने दिया और सहमति में सर हिला कर वापस अपने कमरे में लौट आई। गनीमत यह हुई कि किरण नहीं मिली और यह सब करने की नौबत ही नहीं आई।

इस घटना के बाद तीन दिनों तक हॉस्टल सील रहा और हम सब कैद जैसी स्थिति में रहे। वैसे छुट्टियों का समय था और भोजन हॉस्टल में मिल रहा था तो कुछ खास परेशानी नहीं हुई। इधर किरण की तलाश जारी रही परंतु वह नहीं मिली तो नहीं मिली।

चौथे दिन पिताजी आए और मैं उनके साथ घर चली गई इसलिए इस घटना में मेरी भागीदारी यहीं तक रही। छुट्टियों के बाद जब मैं लौटी तो आते ही पता चला कि किरण सिंह ने अपने पिता के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में मौलिक अधिकार के हनन का मामला दर्ज कराया है तथा इस बीच उसने एक मुस्लिम लड़के से, जो स्वयं भी रिसर्च स्कॉलर है, कोर्ट मैरिज कर ली है। अब बड़ी किरण के उर्दू प्रेम का कारण समझ में आया साथ ही यह बात भी कि उसके पिता इतने आक्रामक क्यों हो गए थे! शायद उसके पिता को यह पता चल गया था कि उनकी बेटी ने किसी मुस्लिम लड़के से शादी का फैसला कर लिया है, इसी बात को वे स्वीकार नहीं कर पाए होंगे। उस जमाने में अंतर्जातीय विवाह की स्वीकार्यता ही कठिन थी फिर यह तो किसी गैर धर्म में विवाह का मामला था। अगर उसके पिता ने इसे अपनी राजपूती शान और प्रतिष्ठा से जोड़ लिया हो तो आश्चर्य क्या!

बहुत दिनों तक हम सब लड़कियों के लिए यह विवाद का विषय बना रहा कि जो किरण ने किया वह सही था या गलत। कोई उसके पक्ष में दलील देती तो कोई विपक्ष में पर जब भी बात उसके हिम्मत की होती तो सब एक स्वर से उसकी दाद देतीं। उस समय हम सबके लिए वह एक मिसाल बन गई थी।

देखते-देखते दो साल बीत गए और हॉस्टल छोड़ने का समय आ गया। इस बीच सदा दिल में यह कसक बनी रही कि काश किरण के गायब होने का राज जान पाते!

यह कसक दिल में लिए ही हम सभी लड़कियाँ घर लौट गए और अपनी-अपनी जिंदगी में रम गए। मेरी भी शादी हो गई। बच्चों के जन्म के बाद उनकी परवरिश तथा नौकरी के झमेले में छात्र जीवन की यादें धीमे-धीमे गुम होती चली गई। इस बीच माँ का देहांत हो गया पिताजी अकेले हो गए। मैं उनसे मिलने जाती रही पर कभी भी अधिक दिन रुकना न हुआ। कई वर्षों बाद गर्मी की छुट्टी में एक बार अधिक समय के लिए जब पिताजी के पास रहने को आई और घर की बेतरतीब हालत देखी तो सफाई में जुट गई। पिताजी पढ़ने-लिखने वाले व्यक्ति थे और अपनी किताबों को ही अपनी संपत्ति मानते थे। कहते, किताबों को देख कर मुझे महसूस होता है जैसे मेरे आस-पास हीरे-मोती बिखरे हैं। तो मैं इस बार उनके इसी हीरे मोती की सफाई में जुटी थी कि अचानक कई वर्ष पुरानी दिनमान पत्रिका हाथ लग गई।

कुछ राज देर से खुलते हैं पर खुलते जरूर हैं। हॉस्टल लाइफ की जो घटना मेरे लिए एक पहेली बन कर रह गई थी और लाख प्रयास के बावजूद जिस गुत्थी को हम सब नहीं सुलझा पाए थे वो राज लगभग दस वर्षों बाद उस दिन अनायास ही प्रकट हुआ। अनजाने में मैं पत्रिका पलटने लगी थी तो उसमें अपने हॉस्टल का चित्र दिखा। चित्र ने मेरा ध्यान आकर्षित किया तो एक रिपोतार्ज पर नजर पड़ी जिसे किसी किरण ने लिखा था। दिल ने कहा हो न हो यह रिपोर्ट छोटी किरण का लिखा हुआ है। मैं सब कुछ भूल उसे पढ़ने लगी और देखती क्या हूँ कि लेख तो उसी घटना के बारे में है। मैं दम साध कर पढ़ने लगी और मेरे सामने एक-एक कर सारे भेद खुलते गए।

अपने पिता से बगावत कर तथा अपनी भाभी और ड्राइवर की पकड़ से खुद को मुक्त कर बड़ी किरण सबसे पहले कॉरीडोर में भागी थी। कॉरीडोर के दोनों तरफ कमरे थे और उसी में कुछ बाथरूम भी थे। उसने खुद को सबसे पहले बाथरूम में ही बंद किया था फिर मौका देख किसी तरह छोटी किरण के पास टॉप फ्लोर पर पहुँची थी। बी.एड. की किसी लड़की ने छोटी किरण के पास अपने कमरे की चाबी रख छोड़ी थी, उसने उसी का फायदा उठाया और बड़ी किरण को तत्काल उसी कमरे में बंद कर बाहर से ताला लगा दिया। जब पुलिस तलाशी के लिए आई उस समय बड़ी किरण उसी कमरे की अलमारी में बंद थी। रिपोर्टताज में उस अलमारी की तस्वीर भी छपी थी। मुझे याद आया कि पुलिस ने हमारे कमरों की तलाशी तो बड़ी सावधानी से ली थी परंतु बी.एड. विंग जो उस समय पूरी तरह वीरान पड़ा था की तलाशी में वैसी सतर्कता नहीं बरती थी। ताला बंद अलमारियों को उन्होंने नहीं

छेड़ा था। अगर पुलिस ने उन बंद अलमारियों को खोला होता तो किरण उसी समय मिल गई होती। हॉस्टल की अलमारियाँ बड़ी थीं और उसके दो हिस्से थे। एक तरफ रैक बने हुए थे जब कि दूसरी तरफ हैंगर टांगने के लिए पूरा खाली छोड़ दिया गया था। खाली हिस्से में अगर कोई चाहे तो आराम से घुस कर बैठ सकता था। छोटी किरण ने इसी का फायदा उठाया था और बड़ी किरण को उस में बिठा कर बाहर से ताला जड़ दिया था। किसी को जरा भी शुब्हा न हुआ। छोटी किरण ने आगे लिखा था कि बड़ी किरण कई दिनों तक उसी कमरे में छिपी रही, उसके खाने-पीने का जुगाड़ छोटी किरण ने ही संभाल रखा था। तीन दिन बाद जब हॉस्टल के गेट खुले और बाहर जाना संभव हुआ तब मौका देख उसे हॉस्टल से बाहर निकाल दिया था।

मेरी स्मृति में अचानक उस दिन की घटनाएँ कौंध गईं और समझ आया कि जब वार्डन ने फिर से तलाशी की बात की थी तब छोटी किरण क्यों बिफर पड़ी थी और उसने मुझ से क्यों कहा था कि अगर किरण मिल जाए तो तुम उसकी टांगों से लिपट जाना। मैं आश्चर्यचकित थी कि किस चालाकी से इस पूरे घटनाक्रम को छोटी किरण ने हैंडल किया था और इस घटना के केंद्र में होते हुए भी किसी को कानों कान भनक नहीं लगने दी थी, उल्टा पुलिस और वार्डन को दोषी ठहराती रही कि वे उसकी मित्र को बचाने के लिए अपना कर्तव्य ठीक से नहीं निभा रहे हैं। उसने मुझे भी अपना मोहरा बना लिया था, यह बात और है कि उसके इस्तेमाल की नौबत ही नहीं आई।

इतने बरसों बाद खुली अलमारी की तरह सारे राज भी खुल चुके थे और मैं अचंभित सोच रही थी आखिर मुझे क्यों जरा भी संदेह न हुआ था? छोटी किरण ने कितनी होशियारी से सब को मूर्ख बनाते हुए अपनी मित्रता निभा दी थी। किरण की जिंदगी में आगे क्या हुआ इसकी खबर तो उस रिपोतार्ज से भी नहीं मिल पाई थी। सोचती हूँ राह चलते किसी दिन कोई एक किरण मिल जाए और यह भी पता चल जाए तो कितना अच्छा हो।

❑ ❑ ❑

सर्वे भवन्तु सुखिनः

खंड–IV

आयोग द्वारा पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित राष्ट्रीय सेमिनार में पढ़े गए कुछ महत्वपूर्ण आलेख

आयोग के माननीय सदस्य डॉ. ज्ञानेश्वर मनोहर मुले एवं नेहू विश्वविद्यालय के माननीय कुलदीप प्रो. प्रभाशंकर शुक्ल, सेमिनार का उद्घाटन करते हुए

सेमिनार का अकादमिक सत्र

साहित्य में मानवाधिकार
विविध पहलू

–डा. दामोदर खड़से,
बी–503–504 हाई ब्लिस,
कैलाश जीवन के पास
धायरी, पुणे–411041
damodarkhadse.gmail.com
मोबाइल : 9850088496

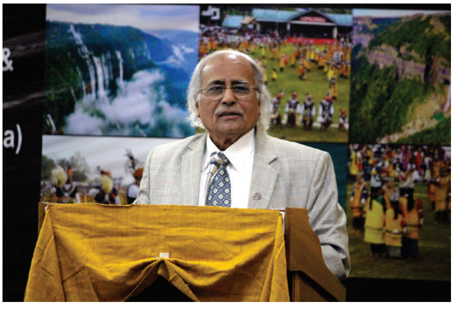

भारत के संविधान की उद्देशिका में यह स्पष्ट उल्लेख है कि भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न समाजवादी पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ–संकल्प किया जाता है। इसके अनुसार समता के अधिकार के अंतर्गत धर्म, जाति, वंश, लिंग, जन्मस्थान आदि के आधार पर किसी को उसके न्यायोचित अधिकारों से वंचित नहीं रखा जा सकेगा व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वंतत्रता होगी वह अपनी आजीविका के लिए कोई व्यापार, उद्योग, सेवा आदि में संलग्न हो सकेगा।

मानव जन्म से स्वतंत्र होता है, यह स्वतंत्रता उसका अधिकार भी है। उसके आत्म-सम्मान, उसकी गरिमा, उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अपना जीवन सार्थक करने का अधिकार है। लेकिन कई बार हितों, स्वार्थों में संघर्ष होता है, टकराहट होती है और ताकतवर व्यक्ति बल-प्रयोग कर दूसरे के अधिकारों का हनन करता है। हिंसा कर दूसरे का न्यायोचित हक छीनने की कोशिश करता है। इस छीना-झपटी में मानवाधिकार का उल्लंघन होता है। तब समता और बंधुत्व की भावना आहत होती है। फिर शोषण, असमानता, अवहेलना, उपेक्षा, अत्याचार, विषमता, भेदभाव बढने लगता है और समाज का कमजोर-वर्ग अपने अधिकारों से बेदखल किया जाने लगता है। अशिक्षा, अज्ञान और गरीबी का लाभ उठाते हुए कुछ लोग अपने राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक प्रभाव और बल का प्रयोग करते हुए असहाय लोगों का शारीरिक, मानसिक और आर्थिक शोषण करते हैं तमाम रूढियों, कुप्रथाओं, अंधविश्वासों का हवाला देते हुए कमजोर लोगों में भय फैलाकर आर्थिक ही नहीं सांस्कृतिक और धार्मिक स्तर पर भी दबाव बनाने में सफल हो जाते हैं ऐसे प्रभावित व्यक्ति दयनीयता की खाई में धकेल दिए जाते हैं और वे असहाय होकर बलशाली लोगोंके चंगुल में फँस जाते हैं वे बेगार करने पर विवश हो जाते हैं यहां उनके अधिकार धूमिल हो जाते हैं सामाजिक रूप से अस्पृश्यता के शिकार होकर वे मुख्य धारा से बहिष्कृत हो जाते हैं ऐसे में व्यक्ति में घुटन, विद्वेष, पीड़ा, अपमान का जन्म होता है और व्यक्ति की गरिमा को ठेस पहुँचती है। समाज में ऐसी स्थिति से संविधान की मूल भावना आहत होती हैं इसीलिए मानव के अधिकारों की रक्षा करना राज्य का कर्तव्य होना होता है। अतः मानवाधिकार आयोग की सक्रियता और सर्तकता व्यक्ति की गरिमा, प्रतिष्ठा और उसकी सार्थकता के प्रति उसकी सजगता ही जन-जन को आत्म-गौरव दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

संघर्ष बलशाली व्यक्ति को मजबूत और अधिक हिंसक बनाता है और कमजोर चिंता, तनाव, ग्लानि से भर जाता है। इससे उसका व्यक्तित्व खंडित होता है और समाज में असमानता और ईर्ष्या-द्वेष का बीज पड़ता है। इससे विकास आहत होता है। ऐसे में अशिक्षा, अज्ञानता, गरीबी को दूर करने के बड़ी मात्रा में जन-जागरण की आवश्यकत होती है। शिक्षा, आत्मज्ञान और सामाजिक समता व्यक्ति के आत्मसम्मान का माध्यम बन सकती है। साहित्य मानव-अधिकारों को मनोवैज्ञानिक ढंग से समाज में प्रस्तुत कर सकता है। प्रेमचंद के अनुसार 'साहित्य जीवन की आलोचना है।' इस तरह जीवन का प्रतिबिंब साहित्य में उभरता है। साहित्य समाज को केवल आईना न होकर समाज को दिशा देने का दायित्व भी उठाता है। वह केवल विसंगतियों,

विरोधाभासों, अनाचारों को उजागर ही नहीं करता बल्कि बेहतरी के लिए कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष रूप में अपनी भूमिका निभता है। जहां भी अन्याय, अनाचार, गैरबराबरी, शोषण और मनुष्यता पर संकट दिखाई देता है, साहित्य पहल करता है। हर क्षेत्र पर साहित्य की पैनी नजर होती है। यह अखबार की रिपोटिंग की तरह न होकर गहरे विश्लेषण कर विसंगति के जड़ों की एक्सरे लेकर तह तक जाता है। कभी सीधे, कभी संकेतों में तो कभी अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति के हित के लिए मनोवैज्ञानिक परिवर्तन की पैरवी करता है। कभी-कभी 'एक्सरे 'ही इतना पारदर्शी और मुखर होता है कि अलग से सुधार के परामर्श की आवश्यकता ही नहीं होतीा ऐसा साहित्य मानवाधिकार के पक्ष में अपना मौन समर्थन देता है। प्रेमचंद की कहानी 'ठाकुर का कुंआ 'को इस श्रेणी में रख सकते हैं बीमार मजदूरन, जो दलित भी है, पानी की मांग करता है, पत्नी से। घर में रखा पानी बहुत गंदा है। पत्नी साहस करके ठाकुर के कुएं से साफ पानी लाकर पति को देना चाहती है। ठाकुर के कुएं से पानी भरना एक चुनौती है, अपनाध भी है, सामाजिक व्यवस्था मों अस्पृश्यता-छुआछूत का जबरदस्त कसाव है। फिर भी वह पति के लिए यह जोखिम उठाती है। कुएं से पानी भरते समय बाल्टी की आवाज से ठाकुर जाग जाता है और उसके कौन है? कहते ही दलित-स्त्री के भीतर इतनी दहशत पैदा होती है कि उसके हाथ से रस्सी छूट जाती है और बाल्टी उस कुएं में गिर जाती है। डर के मारे भागकर गंगी जब झोंपडे में पहुंचती हे तो देखती हे कि उसका पति जोसू लोटा मुंह से लगाये वही गंदा-मैला पानी पी रहा है। जाति, असमानता, भेदभाव, वर्ण और वर्ण संघर्ष के बीच पिस रहे जोखू जैसे मानव से उसका साफ पानी पाने का छिनते अधिकार का चित्रण इस कहानी में है। साथ ही छुआछूत जैसी कुप्रथा के चलते सवर्ण के कुएं से पानी भरना बहुत बड़ा अपराध रहा, जो मानवाधिकार का घोर उल्लंघन है। यह कहानी 1932 में लिखी गई है और बहुत दुःखद है कि आज भी कई स्थानों पर यह कहानी जिंदा हैा

साहित्य ऐसी घटनाओं को समेटता रहता है और आशा की जाती है कि इसके लिए जो जिम्मेदार हैं, दोषी हैं उनमें सकारात्मक मनोपरिवर्तन होा ऐसी ही एक दूसरी कहानी 'कफन' 1936 में प्रकाशित हुई इसमें बाप घीसू और बेटा माधव झोपडे के बाहर बैठे हैं तथा माधव की बीवी बुधिया प्रसव वेदना से तड़प रही है। अंततः वह उसी वेदना से छटपटाकर मर जाती है। उसकी क्रिया-कर्म के गांव के लोग कुछ पैसे देते हैं जिससे घीसू और माधव शराब पीकर मृत बुधिया की मुक्ति की बात करते हैं 'कफन' कहानी एक ओर जहां घीसू और माधव की अकर्मण्यता को बयान करती है, वहीं दूसरी ओर मजदूर, गरीब और अस्पृश्य माने जाने वाले व्यक्ति

के जीवन की स्थिति को रेखांकित करती है। एक और कहानी 'सदगति 'में प्रेमचंद ने 'दुखी' नामक व्यक्ति के जीवन को समर्थ और तथाकथित संभ्रात माने जाने वाले के हाथों कला जाना दर्शाया है। दुखी को वर्ण और वर्ग पूरी तरह इस्तेमाल करते हैं और निरूपयोगी होने पर मरे हुए जानवरों की तरह फेंक दिए जाते हैं उसकी सेवा, मेहनत, पसीने को कोई मोल नहीं होताा मुहूर्त के नाम पर धर्म, प्रथाओं, विश्वासों के ठेकेदार 'दुखी' के अज्ञान, मजबूरी, भोलापन और दलित-गरीब होने का भरपूर लाभ उठाते हैं खटते हुए दुखी का जीवन उखड़ जाता है और उसकी मृत-देह मरे हुए जानवरों की खाई में धकेल दी जाती है। ऐसी 'सद्गति' पर प्रख्यात फिल्मकार सत्यजीत रे ने बहुत संवेदनशील फिल्म बनाई। सबल द्वारा निर्बल के शोषण का यह जीवंत दस्तावेज हैं मानवाधिकार के उल्लंघन के ऐसे उदाहरण आज भी यदा-कदा देखे जा सकते हैं तमाम संवैधानिक और कानूनी व्यवस्था के बावजूद ऐसे दृश्य यहां-वहां उभरते रहते हैं एक अन्य कहानी 'पूस की रात 'भी गरीबी, विवशता और असहायता के मारे पात्रों की ठण्ड में होती त्रासदी का चित्रण है।

'गोदान' प्रेमचंद का सबसे महत्वपूर्ण और लोकप्रिय उपन्यास माना जाता है, जो 1936 में प्रकाशित हुआ। इसे कृषि-जीवन का महाकाव्य भी कहा जाता है। सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक हलचलों की प्रतिध्वनियां इसमें हैं विशेषतः कृषि संस्कृति से जुडे तमाम आयाम इस उपन्यास में परत-दर-परत उभरते हैं नायक होरी का मेहनतकश जीवन कर्ज के फंदे में फंसकर तबाह हो जाता है। शोषण और तनाव में जीते हुए होरी जीवन से हार जाता है। प्रेमचंद के 1936 के उपन्यास के बाद 2002 में सदानंद देशमुख का कठिन जीवन पर महत्वपूर्ण उपन्यास 'बारोमास 'प्रकाशित हुआ है, जिसे मराठी का गोदान कहा जाता है। लगभग 75 वर्ष बाद, आजादी मिलने के बाद भी होरी का नया जन्म साहित्य में सुभानराव के रूप में होता है। लेकिन इतने वर्षों बाद भी इनका शोषण इन पात्रों की गरीबी, लाचारी, विवशता और खटते रहने की नियति कम नहीं होतीा जमीन पर कर्ज बढ़ता जाता है। शरीर का खून पसीना बन कर खेतों को सींचता है, पर अभाव, दीनता, तंगी, मुंह बायें खड़ी रहती है। कर्ज में डूबा किसान तिल-तिल मरता रहता है और अंत में 'बारोमास 'का सुभानराव अनकिए अपराध का दोष भोगकर स्वयं ही फांसी के फंदे में झूल जाता है। व्यवस्था, को-ऑपरेटिव सोसायटियां, बैंक किसी प्रकार सहानुभूति नहीं दिखा पाते। होरी से सुभानराव तक की साहित्यिक-यात्रा हमारे समाज से मनुष्य के जीने और सम्मासन से जीने के अधिकार को विशिष्ट-वर्ग द्वारा हथिया लेने की लम्बी दास्तां है। 'बारोमास' में महाराष्ट्र के विदर्भ के किसानों द्वारा हो रही आत्म-हत्याओं की जिंदा कहानियां हैं

साम्प्रदायिक दंगों में धर्म के आधार पर जुल्म ढाने की कई कहानियॉ लिखी गई हैं शिवमूर्ति का उपन्यास 'त्रिशूल 'में ऐसे ही एक अब्दुल की जीने की छटपटाहट का ब्यौरा है। स्वतंत्रता, समता, बंधुत्व जेसे तत्वों को ऐसी घटनाएँ चुनौती देती प्रतीत होती हैं नाटक विद्या में भी मानवाधिकार की रक्षा के लिए कई कृतियाँ उभरकर आई हैं विजय तेंदुलकर का नाटक 'कमला 'स्त्री की खरीद फरोख्त और उसे वस्तु के रूप में तब्दील करने की भयानक स्थिति का रूपायन हैं जयवंत दलवी के 'पुरूष 'नाटक में दबंग नेता स्त्री पर बलात्कार कर स्वच्छंद होकर समाज में सिर उठाकर चलता दिखता है। ऐसे कितने ही नाटक मंचों पर आए, जिन्होंने मनुष्य पर हो रहे अत्याचार, शोषण, लूट-खसोट कर धन-सम्पत्ति, सत्ता और शक्ति हासिल कर दबे-कुचले और पददलित मानवों का प्राणांतिक शोषण किया है

दलित आत्मकथाओं के माध्यम से जो वास्तविकता शब्दबद्ध हुई है, वह सारे प्रबुद्ध समाज के रोंगटे खडे कर देती है। ऐसे साहित्य के आईने में अपना ही चेहरा देखकर समाज सिहर उठता है। एक जमींदार की खेते की झोंपड़ी में रहनेवाले दलित मजदूर की पत्नी को जबरन जमींदार द्वारा उठाकर ले जाना और उससे जन्मे बच्चे को अपना नाम देने से इन्कार मास्टर जी द्वारा बच्चे की मॉ से पूछकर उसके बाप का नाम दर्ज करना, मास्टर जी के जान पर बन आई। उस जमाने में उस दबंग जमींदार द्व ारा सौ रूपये का नोट मास्टरजी के सामने लहराकर भी असफल होने पर बंदूक तान देता, बहुत सामान्य-सी बात थी। पर मास्टरजी का टस से मस न होना असामान्य बात थी। इस मास्टरजी के कारण उस बच्चे को पिता का नाम मिला, पर अवहेलना, अपमान, अस्पृश्यता, असहायता और अनेकानेक दुनियावी चुनौतियों ने उस बच्चे का बचपन तार-तार कर दियाा फिर भी संघर्ष कर पढ़-लिखकर बड़ा होने पर उसने अपनी आत्मकथ लिखी 'अक्करमाशी 'अर्थात् अवैध संतान! एक तरह से सामाजिक गाली की विरासत उसे मिली... फिर उसने कलम उठाई और दलितों के समाजशास्त्री के रूप में निरंतर दलितों, उपेक्षितों, बहिस्कृत और तिरस्कृत लोगों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाता रहा है। वह लेखक है—शरणकुमार लिंबाले! इसी तरह लक्ष्मण माने, दया पवार, प्र. ई. सोनकाम्बले जैसे साहित्यकारों ने अपनी आत्मकथाओं में समाज के बलशाली लोगों द्वारा दलितों पर किए जाते रहे अत्याचार, अन्याय और शोषण का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया है। बाबूराव बागुल की कहानी 'जब मैंने जाति चुराई 'वर्ण-भेद की एक सनसनीखेज कहानी है। नई नौकरी लगते पर युवक सवर्ण के मकान में किराये से कमरा पाता है। वहीं खाता-पीता है। उसकी अनुपस्थिति में कमरे में चोरी होती है। चोर भाग जाता है। उसके बिखरे सामान में, उसका दसवीं का सर्टिफिकेट मकान-मालिक को

मिलता है। फिर उस युवक की जाति का पता चलने पर सारे सवर्ण उस पर टूट पड़ते हैं–खूब पिटाई होती है। मकान–मालिक की घरवाली बचाने की कोशिश करती है। इतने में दलित बस्ती के लोग भी पहुँचते हैं और सजातीय युवक से कहते हैं, चलिए हम पुलिस में जाएंगे और उनको सबक सिखाएंगे, वह दलित युवक उन्हें शांत करते हुए कहता हैं, 'मुझे इन्होंने नहीं मारा, मुझे तो मनु ने मारा है। 'इस तरह लेखक दलितों की सामाजिक स्थिति की बात करते हुए जाति–प्रथा पर करारा प्रहार करता है

दलित आत्मकथाओं में माहनदास नैमिश्यराय की 'अपने–अपने पिंजरे ', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन ', 'श्योजरा बेचैन की आत्मकथा 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर 'बहुत चर्चित रही है। स्त्री का दु:ख और संघर्ष और दोहरा रूप धारण कर लेता है। सुशीला टाकभौरे अपनी आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में कहती है–'हमारा जाति समुदाय सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा थाा कष्ट, परेशानी, समस्याएं, अभाव जीवन के अंग थे...। 'दलित स्त्रियों पर दोहरी मार पड़ती लगती है। एक ओर सामाजिक, आर्थिक पिछड़ापन दूसरी ओर कभी–कभी पति से प्रताडना और जुल्मों का सामना इसका वर्णन भी मिलता है। साथ ही, दलितों के भीतर भी जातियों के ऊँच–नीच का भेदभाव और अंतर्विरोध होता ही है। कुमुद पावड़े ने अपनी आत्मकथा 'अंत:स्फोट 'में इसका विस्तार से उल्लेख किया है

सवर्ण स्त्रियों द्वारा व्यक्त आत्मकथाओं में भी परिवेशगत, पारिवारिक, सामाजिक शोषण को देखा जा सकता है। चंद्र किरण सौनरैक्सा ने 'पिंजरे की मैना 'आत्मकथा में पति द्वारा अपमानित एवं प्रताडित होने की आर्थिक स्थिति बयान की है। कृष्णा अग्निहोत्री की आत्मकथा 'लगता नहीं है दिल मेरा' में सामंती मनोवृत्ति वाले अहंकारी पति से बहुत दु:ख झेलती है। इस तरह स्त्रियों को सामाजिक विसंगतियों के साथ घर में भी उन्हें अपनी सुरक्षा और सम्मान के लिए चिंतित होना पड़ता है। तमाम भारतीय साहित्य में स्त्रियों की गरिमा, भावना, इच्छा जैसे तत्वों के लिए दूसरों पर आश्रित होने के लिए विवश होना पड़ता है। इसमें अनमेल विवाह, दहेज–प्रथा, परित्यकता, विधवा ऐसी कितनी ही स्थितियां हैं, जो जीवन को चुनौतीपूर्ण बना देती हैं प्रेमचंद की कहानी 'बेटों वाली विधवा' और उपन्यास 'निर्मला' इस बात के प्रमाण हैं

महानगरों में मजदूर–कामगार, पहाड़ों–जंगलों में आदिवासी, गांवों में दलित और हर स्थान पर गरीबों में जी रही बहुत बड़ी जनसंख्या भारतीय साहित्य के केन्द्र में होती है। उनके अधिकारों का हनन करीने वाले तत्व समाज के भीतर ही होते हैं साहित्य समाज को आईना दिखाता है और प्रयास करता है कि ताकतवर लोगों के अत्याचारों को सार्वजनिक कर शोषित लोगों के पक्ष में वातावरण बनाया जाए। साहित्य स्वतंत्रता,

समता और बंधुत्व का पैगाम देता है। इसका उल्लंघन करने वालों को अभिनिर्धारित कर समाज के सामने रखता है।

साहित्य की कविता-विद्या ने भी मानवाधिकार को बहुत सूक्ष्मता से बुना है। मनुष्य के जन्मसिद्ध अधिकार को व्यवस्था के बाहुबली किस तरह अपने चंगुल में कसकर शोषण का दायरा बढ़ाते हैं, इसकी प्रतिध्वनि यदि काव्य में न सुनाई देती तो आश्चर्य की बात थी। धूमिल ने बहुत सीधे-सपाट शब्दों में व्यवस्था और जन-साहित्य की स्थिति को शब्द दिए हैं–

'जनता क्या है?
....
एक भेड़ है
जो दूसरों की ठण्ड के लिए
अपनी पीठ पर
ऊन की फसल ढो रही है!'

साहित्य में जनता की त्रासदी सामूहिक दुःखों को उजागर करती है। व्यवस्था जब व्यक्ति का कानूनी-शोषण करती है, तब इस प्रकार की रचनाओं का जन्म होता है। धूमिल ने जन-भावनाओं को भीतरी गहराइयों तक महसूस किया और राजनीति के छल-कपट का शब्दबद्ध कियाा मनुष्य पर हो रहे अत्याचार को, ठगी को और जन-सामान्य के शोषण को धूमिल ने वाणी दी और ठोस शब्दों में कहा–

'एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूं–
यह तीसरा आदमी कौन है
मेरे देश की संसद मौन है।' – धूमिल

मानव-जीवन में भूख का समाधान पहला अधिकार है। मनुष्य के अस्तित्व को भूख प्रभावित करती है। भूख आदमी को किसी भी स्तर तक पहुंचा देती है। साहित्य इस बात की थाह लेता है कि कौन है जो भूख को समाज में फैलाता है और उसी का हथियार बनाकर लोगों को गुलाम बनाता है। नीरज बहुत शिद्दत से बयान करते हैं–

'देख रहा हूं भूख उग रही है गलियों बाजारों में
मैं देख रहा हूं ढूंढ रही बेकारी कफन मजारों में!'

फिर इस भूख पर दुष्यंत कुमार कहते हैं–

'भूख है तो सब्र कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ,
आजकल दिल्ली में है, जेरे बहस ये मुद्दया
गिडगिडाने का यहाँ कोई असर नहीं होता,
पेट भरकर गालियाँ दो, आह भरकर बद्दुआ।'

मनुष्यों के अधिकारों को छीनने वाली ताकतों को साहित्यकार बखूबी पहचानता है। संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के प्रति उसकी कलम बहुत सचेत और सतर्क रहती है आम आदमी की पीडा, उसका दुःख, उसकी असहायता वह महसूस करता है। वह केवल हालात का बयान ही नहीं करता वह अधिकारों के प्रति आगाह भी करता है। दुष्यंत कुमार के ही शब्दों में–

'वो आदमी नहीं मुकम्मल बयान है,
माथे पर उसके चोट का गहरा निशान है।
सामान कुछ नहीं है फटेहाल है मगर,
झोले में उसके पास कोई संविधान है।'

इन उपर्युक्त पंक्तियों में शायर अधिकारों के लिए सावधान, सर्तक और मुस्तैद रहने की हिदायत देता है। यह भी बताता है कि हालात के कारण आदमी भले फटेहाल हो, पर झोले में उसके संविधान है। वह अपने अधिकारों के प्रति सजग और सतर्क है।

साहिर लुधियानवी ने मानव के अधिकारों को लेकर कई गीत लिखे। शोषण और अत्याचार के खिलाफ खूब लिखा मनुष्य की मजबूरी, हालात की बेवफाई और जिंदगी पर होते अन्याय पर साहिर ने खूब गहराई से सोचा, अपनी सोच सीधे-सरल शब्दों में लोगों तक पहुंचाई :-

'बूढे दहकानों के घर, बनिये की कुर्की आएगी
और कर्जे के सूद में कोई गोरी बेची जाएगी'

लेकिन वे उम्मीद भी जताना नहीं भूलते–

'धरती के आंगन में पल दो पल है रात का डेरा
जुल्म का सीना चीर झांक रहा नया सवेरा
ढलता दिन मजबूर सही, चढ़ता सूरज मजबूर नहीं
रात के राही थक मत जाना सुबह की मंजिल दूर नहीं।'

मानवाधिकार को केन्द्र में रखकर साहित्यकारों ने मानव की पुकार समाज और व्यवस्था तक पहुंचाने की पुरजोर कोशिश की है। नारायण सुर्वे ने विसंगतियों के खिलाफ शब्दों की मशाल बनाई। सामाजिक भेदभाव, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब, शोषक-शोषित सबको करीब से महसूस कर समानता की पैरवी की ताकि समाज सुख और शांति से सांस ले सके। उनके अनुसार, 'रक्त-रक्त की, टूट जाएं दीवारें मानव का अंततः एक गोत्र। 'ज्ञानपीठ पुरस्कार से अलंकृत कवि विंदा करंदीकर स्थितियों की चुनौतियों के बीच व्यक्ति को कठोर बनने का आह्वान करते हैं–

'यह रास्ता अटल है
अन्न बिना, वस्त्र बिना,
ज्ञान बिना, मान बिनाा
यह रास्ता अटल है
मत सुन यह आक्रोश
तेरा गला जाएगा सूखा।
कानों पर हाथ धर
उससे भी आएंगे स्वर
इसलिए कहता सीसा उंडेल
संभल-संभल हो जाएगा पागल।
रोने वाले, रोयेगा कितना
कुढ़ने वाले, कुढ़ेगा कितना?
दबने वाले, दबेगा कितना?
मत सुन ऐसा क्रन्दन
मेरे मन, पत्थर बन!' – विंदा करंदीकर

अपने हर अधिकार से वंचित स्त्री जब कविता में उतरती है, तब एक मौलिक अभिव्यक्त सबको अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। प्रज्ञा दया पवार ने गद्य और पद्य में स्त्री संवेदनाओं को बखूबी उकेरा है। भीतरी घुटन और छटपटाहट को उनकी अभिव्यक्ति सहज ही रेखांकित कर जाती है–

'स्त्री खोजती है, अपना गुम हुआ चेहरा
स्त्री खोजती है, अपनी गुम हुई देह
स्त्री खोजती है, अपनी सिर्फ परछाईं
अंतर्बाह्य रिक्त होते हुए भी
स्त्री सदियों से
चौकोन गुफा का कलश लाँघती है।' –प्रज्ञा दया पवार

दलित स्त्रियों ने अपने परिवेश को व्यक्त कर अपना भीतरी दु:ख उजागर किया है। मानव को संविधान से प्रदत्त अधिकार का रोज उल्लंघन होता है और न्याय के आंखों में पट्टी बंधी होती है। ऐसे में अनुभवों की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का एकमात्र जरिया साहित्य रह जाता है, कविता रह जाती है। इस बात की साक्षी हैं – कुछ स्त्रियों की अभिव्यक्तियां : 'अरे! बदन भर वस्त्र भले मत दो पर बदन से वस्त्र खींचने वालो वे हाथ तो जड़ से काट दे...' ज्योति मांजेवार की यह एक भावुक अपील है। इसी तरह उषा हिंगोवेकर कह उठती हैं – 'मेरी कविताएं सदियों का दु:ख है। और पल – पल होने वाला मेरे जिगर का स्फोट है। 'फिर निर्मला पुतुल कहती हैं –

'चादर में बच्चे को पीठ पर लटकाये
धान रोपती पहाड़ी स्त्री
रोप रही है अपना पहाड़ – दु:ख
सुख की एक लहलहाती फसल के लिए
पहाड़ तोड़ती, तोड़ रही है
पहाड़ी बन्दिश और वर्जनाएं!'

–निर्मला पुतुल

कविताओं में एक ओर जहां जीवन को कसकर लाचार–असहाय बनाकर रखने वाले बंधन हैं, वहीं मुक्ति का मार्ग तलाशती संभावनाएं भी व्यक्त होती रही हैं अधिकारों के लिए सजगता, संघर्ष, सावधानी, सतर्कता सहित साहस और धैर्य का पुन:र्जागरण करती धारा भी देखी जा सकती है। कुंवर नारायण के शब्दों में–

'कोई दु:ख
मनुष्य के साहस से बड़ा नहीं है
वही हारा
जो लड़ा नहीं है।'

–कुंवर नारायण

❑ ❑ ❑

साहित्य में मानव अधिकार : विविध पहलु

–डॉ. अरुण कुमार पाण्डेय
सह आचार्य
राजीव गाँधी विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
रोनो हिल्स, दोइमुख
अरुणाचल प्रदेश –791112
मोबाईल–9612540643
Email: arunpandey1975@ gmail.com

मानवाधिकार से अभिप्राय मौलिक अधिकारों एवं स्वतंत्रता से है जिसका हकदार सम्पूर्ण मानव समुदाय होता है। मानवीय अधिकारों की रक्षण की चिंता प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति में दिखाई पड़ती है। दुनिया के देश जब मानवीय अधिकारों की वैचारिक पृष्ठभूमि को समझने की कोशिश कर रहे थे और व्यवहार में इसे उतारना चाहते थे तब भारत में ऋषियों ने धर्मयुक्त कर्तव्य पालन के निर्देश देकर कर्म सिद्धांतों की स्थापना की थी जिससे मानव अधिकारों की सुरक्षा होती थी। 'वसुधैव कुटुम्बकम' के उदघोष द्वारा संपूर्ण विश्व को एक परिवार मानते हुए समानता और समरसता के एक सूत्र में पिरोने का संदेश मानवीय अधिकारों की उच्च भाव सत्ता को स्थापित करता है। मानव अधिकारों के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो करता ही, उसकी सामाजिक, आत्मिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी होती है। भारतीय दर्शन में मानवीय अधिकारों को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यहाँ के शास्त्रों और साहित्यों में उदघोषित–**'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा**

कश्चिद् दु:ख भावेत' का शाश्वत चिंतन मानव मात्र के कल्याण और उद्धार को ही रूपायित करता है।

मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो हमारी प्रकृति या स्वभाव में निहित होता है। इसके अभाव में हमारा मानव जीवन पूर्णरूपेण विकसित नहीं हो सकता है। मानवाधिकार और मौलिक स्वतंत्रताएँ हमें पूर्णरूपेण विकसित होने के लिए अवसर देती हैं। इसीलिए मानवाधिकारों की सर्जना नहीं की जाती है बल्कि इसकी स्थिति स्वभाविक होती है। अधिकार हमारे सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं, जिसके बिना न तो व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और नहीं समाज के लिए उपयोगी कार्य कर सकता है। वस्तुत: अधिकारों के बिना मानव जीवन बौना है। इन मानवीय अधिकारों का वर्णन युगीन सभी भारतीय साहित्यों में मिलता है। भारतीय सभी वांग्यय में न केवल मानवीय अधिकारों की चर्चा की गई है बल्कि मानवेत्तर जीव-जन्तुओं तथा पेड़-पौधों के प्रति भी संवेदना व्यक्त की गयी है।

मानव अधिकारों के प्रति चेतना और लोक कल्याण के लिए साहित्य की धारा सदैव प्रवाहमान रही है। वैदिक साहित्य, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिंदी के प्रत्येक काल खंड में रचित साहित्य ने सर्वजन सुखार्थ, सर्वजन हितार्थ की भावना का विकास किया है। मानवाधिकार दो रूपों में प्राप्त होते हैं। रोने, हँसने, संतान के प्रति ममता रखने, श्वास लेने, स्वयं को सुरक्षित रखने आदि जैसे अधिकार प्रकृति प्रदत अधिकार हैं तो कुछ अधिकार मनुष्य निर्मित समाज द्वारा प्रदान किये जाते हैं। ऐसे ही यज्ञादि करने का अधिकार, सभी को शिक्षा का अधिकार, नारी को संपत्ति का अधिकार, प्रजा के अधिकार, दास से संबंधित अधिकार आदि के वर्णन से संपूर्ण संस्कृत साहित्य भरा पड़ा है। वैदिक कालीन भारतीय संस्कृति यज्ञ प्रधान संस्कृति थी। समाज के मध्य 'सर्व यज्ञमयं जगत' की व्यापक धारणा विद्यमान थी। इसलिए यज्ञादि का अधिकार सभी को प्राप्त था और इसका उल्लेख ऋगवेद की संहिता के दशम मंडल के 45 वें सूक्त में मिलता है–

'विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमान।
वीलुं चिदद्रिमभिनप्परायजना यदग्निमयजन्त पयंच॥' (ऋग्वेद-10/45/6)

श्लोक के भावार्थ के अनुसार यज्ञादि का अधिकार सभी 'पञ्चजना' अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा निषाद (अति शूद्र) को प्राप्त था। लिंग भेद नहीं होने के कारण स्त्रियों को भी यज्ञ कार्य करने का अधिकार था। नारी अधिकारों का वर्णन अथर्ववेद संहिता में भी प्राप्त होता है। अथर्ववेद संहिता के ग्यारहवें मंडल के प्रथम

सूक्त में **'योसितो यज्ञियाः इमाः'** कहा गया है। इससे नारी के यज्ञादि अधिकारों की पुष्टि होती है। उस युग की नारी यज्ञादि कार्यों के लिए यज्ञीय वेदी के निर्माण में पारंगत होती थी और प्रतिदिन पुरुषों के साथ यज्ञ करती थी। इसका उदाहरण ऋग्वेद संहिता के 5वें मंडल के 27वें सूक्त में 'विश्वारा' नामक नारी के वर्णन में मिलता है। 'विश्वारा' प्रतिदिन यज्ञ करती थीं–

'समिद्धो अग्नि दिर्वि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुष समुविर्या विमाति।
एति प्राची विश्वारा नमोभिर्देवाँ ईलाना हविषा घृताची॥'

(ऋग संहिता–5/27/1)

ज्ञान से हीन मनुष्य पशु के समान होता है। इसलिए भारतीय समाज में शिक्षा को श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। संस्कृत साहित्य में यह वर्णन मिलता है कि वैदिक कालीन तथा उसके वाद के समाजों में सभी को शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। शिक्षा प्राप्ति उसके मानव अधिकार थे। नारियों को गृहविज्ञान की शिक्षा तथा व्यवसायिक ज्ञान की शिक्षा के साथ–साथ धार्मिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक आदि का ज्ञान दिया जाता था। संस्कृत की एक रचना 'नैषधचरितम' के षष्ठ सर्ग में गन्धर्व स्त्रियों को नारद की शिष्यायें के रूप में चित्रित किया गया है। ये स्त्रियाँ संगीत विद्या में प्रवीण थीं–

'भैमिमुपाबीणयदेत्व यत कलि प्रिय शिष्य वर्गः।
गन्धर्ववहवः स्वरमध्यरीण तत कण्ठनालैक धुरीण वीणः।'

(नैषधचरितम–6/65)

लोपामुद्रा, घोषा, दौपदी आदि स्त्रियों ने विधिवत शास्त्र का अध्ययन किया था। मुनि वात्स्यायन के अनुसार स्त्रियां 64 कलाओं में निपुण होती थीं। ये चौंसठ कलाएँ तदयुगीन शिक्षा के उपविभाग हुआ करते थे। 'किरातार्जुनीयम' नामक संस्कृत ग्रंथ में स्त्रियों के विदुषी होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। ग्रंथ की एक पात्र हैं द्रौपदी जो महाभारत की मुख्य नायिका भी है जो राजनीतिक ज्ञान के साथ–साथ दार्शनिक तत्वों से भी भिज्ञ थीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि समान शिक्षा के अधिकारों का उल्लेख अनेक संस्कृत साहित्यों में मिलता है।

नारी को संपत्ति देने सम्बंधी अधिकारों का वर्णन वैदिक कालीन साहित्य में मिलता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में यह कहा गया कि पति–पत्नी में किसी भी प्रकार का साम्पत्तिक विभाजन नहीं होगा। संपत्ति पर दोनों का समान अधिकार होता था–

'जायापत्योर्नविभागोविभागो विद्यते' (आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 2/6/14/20)।

तब विवाह दंपत्ति के आत्मा, मन, प्राण, शरीर को आध्यात्मिक सम्बन्ध द्वारा सुदृढ़ करने का एक चिरस्थायी प्रयत्न माना जाता है। वैदिक काल में गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिए विवाह का अधिकार सबको प्राप्त था। कन्या को वर चयन का अधिकार था। वह जिसे चाहती थी उसे वरण करती थी। पिता इसके लिए एक समारोह का आयोजन करते थे जिसे स्वयंवर कहा जाता था। रामायण का 'सीता स्वयंवर', महाभारत का 'द्रौपदी स्वयंवर' आदि का प्रसंग इस बात के प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य रघुवंशम में 'इंदुमती स्वयंवर', कुमारसंभवम् में इच्छित वर प्राप्ति हेतु पार्वती द्वारा की जाने वाली तपस्या का जो वर्णन प्राप्त होता है वह विवाह के स्वतंत्र अधिकार को रेखांकित करता है। उस समय स्त्री को स्वेच्छा से वर का चयन कर विवाह करने का अधिकार समाज प्रदत था। इसका श्रेष्ठ उदाहारण 'नैषधचरितम' में वर्णित एक कथा में देखा जा सकता है। दमयंती वर रूप में नल को पसंद करती है। इसलिए पिता द्वारा चयन किये गए वर को वह ठुकरा देती है। **(नैषधीयचरितम- 3/19)**

मानवाधिकारों की भावनात्मक पक्षधरता करना साहित्य का चिरंतन प्रयोजन रहा है। प्राचीन संस्कृत साहित्य की तरह ही मध्यकालीन साहित्य सर्जक भी मानवीय अधिकारों के पक्षधर रहे हैं। भक्ति आन्दोलन के गर्भ से उद्भूत संतों की वानियों का साहित्य आत्महीनता, गरीबी, पराधीनता, पतनशीलता, जाति भेद तथा धार्मिक संघर्षो से उत्पन्न मानवाधिकारों के हनन को बचाने का मूल्यवान दस्तावेज है। मानवाधिकारों की गरिमा का बोध तत्कालीन संतों के भक्ति संबंधी पदों में देखा जा सकता है। बंगाल के प्रसिद्ध संत चंडीदास जब बार-बार यह कहते हैं-"सुनो हे मानुष भाई, शबार उपर मानुष सत्य तहार उपर नाई"' अर्थात हे मनुष्य मित्रों सुनों। सबसे ऊपर मनुष्य ही सत्य है, उसके ऊपर कुछ नहीं' तो मनुष्य की सर्वोच्च सत्ता को स्थापित करते हैं और यही मानवाधिकार आयोग की स्थापना का लक्ष्य भी है। संतों की वानियाँ उन्मादी राज सत्ता से टकराती हैं और उनके अहंकार को चूर-चूर करने का संदेश भी देती है। व्यक्ति स्वतंत्रता जैसे मानव अधिकारों का हनन होते देख कुंभनदास जैसा प्रसिद्ध संत कवि काव्य पंक्तियाँ रचकर तत्कालीन शहंशाह को चुनौती देते हैं-

'संतन को कहा सिकरी सों काम।
आवत जात पनहियाँ टूटी, विसरि गयो हरिनाम'

संतों का सीकरी से क्या लेना-देना। आते-जाते जूतियाँ घिसती हैं और हरिनाम भी बिसर जाता है। जिनका मुँह देखने से ही क्लेश होता है उन्हें झुककर सलाम करनी

पड़ती है। स्त्री अधिकारों के प्रश्नों को भी मध्यकालीन संत-कवियों ने बड़ी निर्भीकता के साथ उठाया है। रामचरित मानस की एक चौपाई में संत तुलसीदास अपनी वेदना प्रकट करते हैं–'केहि बिधि सृजी नारि जग मांही, पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।' यहाँ तुलसीदास नारी की स्वतंत्र चेतना के पक्ष में आवाज उठाते हैं। मध्यकालीन संतों की रचनाओं के वर्ण्य विषय सामाजिक विषमता पर प्रहार, दीनता के चित्रण द्वारा असमानता का बोध कराना, जाति-पांति के भेद पर प्रहार, भूख, अन्याय से संघर्ष आदि रहे हैं। समाज में गरीबी का प्रसंग मानव समानता के अधिकार को प्रतिबंधित करता है। कबीर जैसे भक्त कवि की रचनाओं में भी यह यथार्थ ओझल नहीं होता है। समाज में गरीबी की दंश झेल रहे ऐसे लाखों लोगों के साथ अपनी संवेदना भूख रूपी कुतिया के संबोधन से जोड़ते हुए कहते हैं–

'कबीरा क्षुधा कूकरी, करत भजन पर भंग।
या को टुकड़ा डारिके, भजन करो निःशंक॥'

आधुनिक कालीन साहित्य की प्रत्येक विधाओं में मानव और उससे जुड़े मूलभूत अधिकारों के पक्ष में तथा मानवाधिकार हनन के प्रतिरोध में कवियों और लेखकों ने अपनी आवाज उठाई है। छायावादी कवि निराला के काव्य में सामाजिक चेतना मुखर ढंग से सवाल-जवाब करती है। वे ऐसी जातीय संस्कृति के पक्षधर हैं जो साम्राज्यवाद विरोधी हो। उनके लिए पूरी वर्ण व्यवस्था दग्ध मरुस्थल है सुजल नहीं। यह एक ऐसी विष-बेलि है जिसमें विष ही फल है और इसमें दलित ही नहीं स्त्रियाँ भी पिसती हैं। इसकी अभिव्यक्ति निराला 'वह तोड़ती पत्थर' रचना के माध्यम से करते हैं। उनके साहित्य के केंद्र में मानव की मुक्ति है। इसलिए वे दलितों-पिछड़ों से जल्द-जल्द पैर बढ़ाकर अपने बराबर खड़े होने और जीवन के अंधेरे का ताला खोलने का आह्वान करते हैं–

'जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ आओ आओ।
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला
धोबी, पासी, चमार तेली
खोलेंगे अंधेरे का ताला'

वे उस पूंजीपति वर्ग पर कठोर प्रहार करते हैं जिसने आर्थिक असमानता की खाई गहरी कर दी है जिससे मानव शोषित हुआ है–

'अबे, सुन बे गुलाब,
भूल मत जो पायी खुशबु, रंग-ओ-आब
खून चूसा स्वाद का तूने अशिष्ट
डोल पर इतरा रहा है केपिटलिस्ट।'

निराला मानवाधिकार के सजग कवि हैं। गरीबी और भूख से तड़पती मानव जिंदगी को देखकर 'भिक्षुक' कविता के द्वारा अपनी करुणा प्रकट करते हैं। 'भिक्षुक' कविता में निराला एक भिखारी और उसके दो बच्चों का वेदना से भरी ऐसा करुण चित्र खींचा है जिसकी पंक्तियाँ हमारे ह्रदय को झकझोर देती है –

'वह आता,
दो टुक कलेजे के करता, पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लाकुडिया टेक
मुठ्ठी भर दाने को, भूख मिटने को
मुंह कटी पुरानी झोली को फैलाता'

भिक्षुक के साथ चल रहे दो बच्चों का प्राथमिक मानवाधिकार है कि उन्हें दो वक्त की रोटी मिले। लेकिन दाता या भाग्य विधाता से उन्हें यह नहीं मिलती है। पेट की आग से तड़पते बच्चे जब जूठी पतल चाटने के लिए सड़क पर आगे बढ़ते हैं तभी अवारे कुत्ते उनके हठ से पतल छीन लेने के लिए झपट पड़ते हैं। यह एक मनुष्य की दुखद परिस्थिति है जिसे निराला उजागर करते हैं।

प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानंदन पन्त असामनता के पोषक पूंजीपतियों की निंदा करते हुए किसानों के हितों के साथ खड़ा दिखाई पड़ते हैं। वे किसानों को नवीन परिवर्तनों का संवाहक मानते हुए कहते हैं–

विश्व विवर्तनशील, अपरिवर्तित वह निश्चल,
वही खेत गृह-द्वार, वही वृष, हंसिया औ हल।

वह संकीर्ण समूह कृपण, स्वाश्रित, पर पीड़ित
अति निजस्य प्रिय, शोधित, लुंठित दलित, क्षुधार्दित।

राष्ट्र कवि 'दिनकर' को भी पूंजीवादी विषमता से उत्पन्न अन्याय अखरता है। राष्ट्र का निर्माण हो रहा है, नया महल बन रहा है, नींव में जनता है और कवि दिनकर नींव का हाहाकार सुनकर पूंजीवाद का लाभ उठाने वालों से पूछते हैं –

रोटियों पर कौर लेते ही कहीं से
अश्रु की बूंद क्या चुंही कभी है?

इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था का भोग करने वालों की संवेदनहीनता के कारण असंख्य मनुष्यों के जीने के प्राथमिक अधिकारों का हनन होता है। दिनकर इस व्यवस्था के खिलाफ लिखते हैं–

'तोड़ दो इसको, महल को बर्बाद कर दो
नींव की ईंटे हटाओ
दब गए है जो अभी तक जी रहे हैं

जीवितों को इस महल के बोझ से आजाद कर दो।'

आधुनिक कविता जनजीवन की पीड़ा को मुख्य स्वर देती है। अन्याय के विरोध वार कर न्याय के पक्ष में खड़ी होती है। प्रगतिशील कवि नागार्जुन 'प्रतिबद्ध हूँ' कविता में मानव को न्याय दिलाने तथा उसके मानवाधिकार के संरक्षण में मुठ्ठी तान खड़े दिखाई पड़ते हैं–

'प्रतिबद्ध हूँ जी हाँ प्रतिबद्ध हूँ–
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ
अविवेकी भीड़ की। भेड़िया घसान के खिलाफ'

(नागार्जुन की चयनित कविताएँ– सं.– मैनेजर पाण्डेय)

कविता में समाज की विसंगतियों को उजागर करने की ताकत होती है। इसीलिए कविता एक ऐसे समाज की कल्पना करती है जो भेदभाव से मुक्त समता पर आधारित हो। जहाँ भयमुक्त जीवन जीने की स्वतंत्रता हो। लेकिन मानव के इन अधिकारों का जब हनन होता हुआ सर्वेश्वर दयाल जैसा कवि देखता है तो प्रतिरोध में कलम उठा लेता है–

"कलम उठाते ही/ हमें मासूम बच्चे
निरीह औरतें/ मेहनत कश भोले इंसान।

सब हमसाया नजर आते हैं/ उनकी मौत/ हमारी मौत
चाहे वे शत्रु देश के ही क्यों न हों।
हर बेकसूर आदमी की लाश/ हमारी कलम की स्याही।
उतर आती है।"

(कुआनो नदी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृष्ठ- 84-85)

आर्थिक कुचक्रों के कारण होने वाले मानवीय अधिकारों के हनन पर रघुवीर सहाय क्षुब्ध होते हैं। जब वे देखते हैं कि स्त्री और बच्चों को दलित द्राक्षा की तरह चूस कर, उसके अधिकारों का हनन कर समाज के हाशिए पर रख दिया गया है तब उनकी कविता प्रश्न करती है कि रोटी की तलाश करता भूख से व्याकुल पेट क्या अधिकारों की बात कर सकेगा?

'औरतें बांधे हुए उरोज
पोटली के अन्दर है भूख
आसमानी चट्टानी बोझ
ढो रही है पत्थर की पीठ
लाल मिट्टी लकड़ी ललछोर
दांत मटमैले इकटक ढीठ
कटोरे के पेंदे में भात
गोद में लेकर बैठा बाप
खा रहा है उसको चुपचाप।'

(आत्महत्या के विरुद्ध, रघुवीर सहाय, पृष्ठ- 33)

उपरोक्त विवेचन और उदाहरणों के आधार पर यह कहना समीचीन है कि भारत में मानवाधिकार की अवधारणा वर्तमान मानवाधिकार के गठन से नहीं बल्कि प्राचीन समय से पल्वित-पुष्पित होती रही है। हर क्षेत्र और हर काल का साहित्य अपनी पूरी ताकत से शोषण और अत्याचार विरुद्ध अपनी आवाज उठाई है।

❑ ❑ ❑

भाषाई मीडिया उठा रहे हैं आम जन की अवाज

–रविशंकर रवि,

आदरणीय अध्यक्ष जी

और मंच पर बैठे अन्य प्रबुद्ध लोग

मैं सबसे बधाई देना चाहूंगा राष्ट्रीय मानवाधिकार को इतने महत्वपूर्ण विषय पर पूर्वोत्तर में संगोष्ठी का आयोजन करने और इस आयोजन को सफल बनाने के लिए उत्तर पूर्व पर्वतीय विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग को।

अखबार का आदमी हूं, इसलिए सीधे विषय पर आता हूं।

अब कुछ दिन पहले की बात असम के तिनसुकिया जिले मार्घेरिटा के उर्वशी मोरान पति की तलाश में इधर-उधर भटक रही है। उसके पति कोयला खदान में मजदूरी के लिए गया था। उसके बाद से उसका कुछ पता नहीं है। यह बात फरवरी की है। वह महिला स्थानीय थाने में जाकर फरियाद करती है। लेकिन कोई उत्तर नहीं मिलता है। स्थानीय पुलिस मामले को टालने का प्रयास करती है क्योंकि कुछ सफेदपोश लोगों द्वारा बड़े पैमाने पर कोयले का अवध खनन जारी है। पति की जगह पुलिस की तरफ से उस महिला को खदान के ठेकेदारों से पांच लाख रुपए दिलवाने का प्रयास करती है, लेकिन वह महिला अपने पति को चाहती है-जिंदा या मुर्दा। यह आशंका है कि उसके पति की मौत खदान के अंदर हो गई है। उस महिला के सवाल

को स्थानीय पत्रकारों ने उठाया। तब उसकी बात पुलिस के बड़े अधिकारियों तक पहुंची। उसके बाद ही असम के पुलिस महानिदेशक ने उस महिला से मुलाकात की और पूरे मामले की जांच का निर्देश एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी को सौंपा है। यदि बात मीडिया के माध्यम से सामने नहीं आती तो उस महिला की आवाज प्रशासन के वरिष्ठ अधिकारी तक नहीं पहुंचती। कई बार कानून लागू करने वाली एजेंसियां भी दबाव में आ जाती है। वहां पर मीडिया ही एक कमजोर आदमी की आवाज बनकर उसके मानवाधिकार की रक्षा करती है।

असम में गत 3 फरवरी से असम पुलिस का बाल विवाह के खिलाफ अभियान जारी है। महिला मातृ और शिशु मृत्यु दर पर लगाम लगाने के लिए असम को बाल विवाह मुक्त करना जरूरी है। कानूनी कार्रवाई के बिना इस पर रोक नहीं लगेगी, लेकिन इसका व्यवहारिक पक्ष भी देखना होगा। जब अभियान आरंभ हुआ तो थाने के सामने 'अवैध दूल्हे' के परिजनों की हाहाकार, अपने नवजात बच्चे के साथ रोती-कलपती बालिका बधुएं, आत्महत्या का प्रयास, दूल्हे का पलायन आम हो गई थी। सभी जिलों के थाना परिसरों में सिर्फ महिलाओं की प्रदर्शन व चीख-पुकार व आंसू दिखाई दे रही थी। कोई बच्चों को गोद में लेकर रो रहा था तो कोई थाने के सामने विरोध प्रदर्शन कर रहा था। विडंबना यह है कि कानूनन अपराध पर कार्रवाई करने से मानवीय समस्या पैदा हो गई है। लेकिन यह सच्चाई भी सामने है कि नाबालिग लड़की से शादी करना सिर्फ एक अपराध नहीं, बल्कि यह एक लड़की के मौलिक अधिकारों का भी उल्लंघन करता है और उसके स्वास्थ्य के लिए भी खतरा है। केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा किए एक आधिकारिक सर्वेक्षण से परेशान करने वाले डेटा के सामने आने के बाद बाल विवाह के खिलाफ अभियान का निर्णय लिया गया है। असम में 11.7 फीसदी लड़कियां कम उम्र में गर्भवती हो रही हैं। यह आंकड़े बड़ी संख्या में होने वाले बाल विवाह का जीते-जागते गवाह हैं। राज्य के सीमावर्ती जिले धुबड़ी में आंकड़ा और भी भयावह है, जहां 50 फीसदी शादियां कम उम्र में हो रही हैं। ऐसे में लड़कियां कम उम्र में मां बनने को मजबूर हैं। इसलिए कार्रवाई जरूरी है।

जब मीडिया ने उन शादीशुदा महिलाओं के समक्ष उपस्थित समस्याओं को उठाया तो असम मुख्यमंत्री डॉ हिमंता विश्वशर्मा ने गत 20 मार्च को असम विधानसभा के बजट अधिवेशन में स्पष्ट किया है कि राज्य सरकार वर्ष 2026 तक राज्य को बाल विवाह मुक्त कर देगी। इसके लिए राज्य बजट में 200 करोड़ रुपए का प्रावधान

रखा गया है। पीड़ित महिलाओं की राज्य सरकार हर संभव मदद करेगी। इसके लिए सामाजिक जागरुकता अभियान तथा हेल्प लाइन नंबर जारी किया जा रहा है। पीड़ित महिलाओं को सरकार की योजनाओं का लाभ दिया जाएगा, ताकि वे अपने मैके में रह सकें। उनकी निशुल्क पढ़ाई और स्कालरशिप की व्यवस्था की जा रही है।

24 नवंबर, 2007 में गुवाहाटी में एक शर्मनाक घटना घटी। एक नाबालिक आदिवासी युवती को सरेआम नंगा करके उसके प्राइवेट पार्ट पर पैर से हमला किया गया। यह समाचार मीडिया में आने के बाद ही पुलिस सक्रिय हुई और गिरफ्तारी हुई। उस युवती को मुआवजा दिया गया। अन्य मदद उपलब्ध कराई गई। दोषियों के खिलाफ कार्रवाई हुई।

इसलिए कहा जा सकता है कि मानव अधिकारों के सरक्षण और संवर्धन में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के पूर्व अध्यक्ष न्यायमूर्ति श्री एच. एल. दत्तू ने भी एक कार्यक्रम में कहा था कि आयोग देश में मानव अधिकारों के उल्लंघन के मुद्दों को संबोधित करने में मीडिया को अपने मूल्यवान साथी के रूप में मानता है।

लोकतंत्र के चौथे स्तंभ के रूप में स्थापित मीडिया अपनी भूमिका को बखूबी निभा रहा है। यही कारण है कि अंतिम पंक्ति में खड़े वंचित वर्ग की आवाज उठाई जाती है जिससे मानव अधिकारों का संरक्षण संभव हुआ है।

असम के दरंग जिले में तीन बहनों को हिरासत में कपड़े उतारकर पीटे जाने की घटना को मीडिया ने सामने लाया। तब राष्ट्रीय महिला आयोग और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने घटना को लेकर राज्य सरकार को नोटिस जारी कर रिपोर्ट मांगी।

असम के करीमगंज जिले में अवैध शराब बेचने के आरोप में एक महिला को नंगा कर घुमाने और उसकी पिटाई करने का मामला आने के बाद कार्रवाई हुई। अवैध शराब बेचना गलत है, लेकिन इसकी आरोपी महिला के साथ इस तरह का व्यवहार सरासर मानवाधिकार का उल्लंघन है।

नेहू, 1अप्रैल, 2023

❑ ❑ ❑

समकालीन हिन्दी गजलों में मानव मूल्य के प्रश्न

–विजय कुमार भारती
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
क़ाजी नजरुल विश्वविद्यालय,
आसनसोल, प. बंगाल, 713340
vkbharty@gmail.com
Mob: 9732959135

मानव अधिकार का संबंध समस्त मानवीय क्रिया व्यापारों से है। मनुष्य जीवन के सभी क्षेत्रों में मानवाधिकार का संबंध है। अधिकार दिलाने का काम कानून और प्रशासन करता है, पर अधिकार की चेतना एवं प्रेरणा देने का काम साहित्य करता है। इस अर्थ में साहित्य की भूमिका महत्त्वपूर्ण जाती है। मानवाधिकार की चेतना का संबंध मूल्यों, बोध आदि से स्वतः जुड़ जाता है। यदि साहित्यिक विधाओं की बात करें तो मानव अधिकार के प्रश्न जिस प्रकार उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध आदि में उभर सकते हैं, उस तरह कविता आदि में नहीं। फिर भी आज की कविता / गजल मानवीय प्रश्नों के काफी निकट आ चुकी है। मनुष्य जीवन की चुनौतियाँ जितनी जटिल हुई हैं, कविताओं और गजलों ने उसे गंभीरता से पकड़ने की कोशिश की है।

समकालीन हिंदी कविता आंदोलन इस अर्थ में महत्वपूर्ण है कि इसने अपने लक्ष्य से भटकी हुई हिंदी कविता को जनता के गंभीर सवालों से रूबरू कराया। कविता को थोथी कलात्मकता के दलदल से बाहर निकाला और जनतांत्रिक सवालों की और उन्मुख किया। यह आंदोलन 1970 के बाद उभरा,जिसके प्रतिनिधि कवि धूमिल थे। समकालीन हिन्दी कविता का यह आंदोलन,कथ्य और रूप दोनों स्तर घटित हुआ। जो अब तक जारी है। आंदोलन का प्रभाव गजलों पर भी पड़ा। गजलों में कथ्य के स्तर पर और शिल्प के स्तर पर काफी बदलाव हुए। अब गजलों में सिर्फ प्रेम और इश्क़ की बातें न रहीं और वह माशूक़ा के जुल्फों से बाहर निकलने के लिए छटपटाने लगी। अ**दम गोंडवी ने लिखा- "जो गजल माशूक़ के जवों से वाकिफ़ हो चली, उसको अब बेवा के माथे की शिकन तक ले चलो"।** समकालीन हिन्दी कविता की परंपरा में जो महत्त्व धूमिल का है, वही महत्त्व समकालीन गजकों की परंपरा में अदम गोंडवी है। ऐसा नहीं है कि मनुष्यता के सवाल गजलों की पूर्ववर्ती परंपरा में नहीं हैं। **"बसकि मुश्किल है हर इक बात का आसान होना। आदमी को भी मयस्सर नहीं इंसा होना।" (गालिब)** फिराक़ ने भी कहा है–"गर बदल न सका आदमी ने दुनिया को तो समझ लो उस आदमी की ख़ैर नहीं" **फैज को भी कहना पड़ा–"अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजै। और भी गम हैं, जमाने में मोहब्बत के सिवाय।"**

कविता ने वर्तमान समय की चुनौतियों को गहराई से आत्मसात् किया। मानव मूल्यों के संकट और उसके अधिकारों के हनन के सवाल गजलो के केंद्र में आए। गजलों की भाषा में भी व्यापक परिवर्तन हुए। गजलों की भाषा में उर्दू की बजाय हिन्दी की बोलचाल की भाषा शामिल हुई। हिन्दी गजल जनजीवन में व्याप्त सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक विसंगतियों का लेखा जोखा प्रस्तुत करती हुई प्रतीत होती है। **"हिंदी गजल ने सामाजिक जनचेतना को अपने में समेटकर आम आदमी के ह्रदय को वैचारिक मंथन एवं आलोड़न के अवसर उपलब्ध कराए हैं।" (रोहिताश्व अस्थाना, प्रतिनिधि हिन्दी गजलें, पी० एन० प्रकाशन, दिल्ली, 1996, भूमिका)**

जहां तक मानव मूल्यों का सवाल है –

"जो मूल्यवान है, वही सुंदर है।" – आई.ए. रिचर्ड्स

मानव मूल्यों का प्रश्न मनुष्य के जीवन को सुंदर बनाने का प्रयास है। मनुष्य के हालात बदतर हुए और इसका असर गजलों पर भी पड़ा।

एहसास के पहलू में जज्बात के पहलू में, पलती है गजल अपनी हालात के पहलू में। सिक्कों के लिए अपनी बेटी भी न जल जाए। माँ-बाप को ये डर है बारात के पहलू में। (राजेंद्र तिवारी, प्र. हिन्दी गजलें, पृष्ठ 135)

अब तड़पती-सी कोई गजल सुनाए, हमसफर ऊँघे हुए हैं, अनमने हैं। जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में, हम नहीं हैं आदमी, हम झुनझुने हैं। (दुष्यंत कुमार, वही, पृष्ठ 13) आदमी की तमीज ठीक करने वाली कविता की जरूरत धूमिल ने भी महसूस की थी- **"कविता भाषा में आदमी होने की तमीज है।"** हनुमंत नायडू ने भी कहा – **मेरी गजल मशाल है, तू उठ के थाम ले, यह फूल है तो चाहे तो पत्थर का काम ले।** (हनुमंत नायडू, वही, पृष्ठ 40) कहीं देश का दायित्व निर्वाह एक ढोंग बनता जा रहा है तो कहीं देश की संपत्ति का दुरुपयोग जारी है – गजलकार का व्यंग्य देखिए–

देश की अच्छी हिफाजत कर रहे हो, खेत विधवा का समझ कर चार रहे हो, झोपड़ी के नाम सूखा लिख दिया है, महल पर बरसात बन कर झाड़ रहे हो। (किशोर काबरा, वही, पृष्ठ. 46)

विषमता मानवता के मार्ग की बहुत बड़ी बाधा है। शायर का व्यंग्य है- **मुखिया का कुरता है रेशम का, भीड़ पहनती टाट हमारे गांव में बौने हुए विराट हमारे गाँव में, बगुले हैं सम्राट हमारे गाँव में** (विजय किशोर मानव, पृ० 184 नया ज्ञानोदय, गजल महाविशेषांक, अंक 119 जनवरी 2013)

क़ानून व्यवस्था की बड़ी भूमिका मानवाधिकार के संरक्षण में है। परंतु क़ानून का दुरुपयोग करनेवाली शक्तियाँ जब ताकतवर होने लगे तो-

कानून जा छुपा किसी कातिल के शिविर में, इंसाफ की गुहार मचाए हुए हैं लोग। चलिए तिमिर के पार मंजर भी देख लें, उम्मीद की मशाल जलाए हुए हैं लोग (उपेन्द्र कुमार, वही, पृष्ठ 184) हाल में मानवाधिकार तथा मानव कल्याण के संदर्भ में एन.जी.ओ. की भूमिका महत्त्वपूर्ण हुई है, इसमें कोई संदेह नहीं। पर इसका दूसरा रूप सोचनीय है–

सरकारी नौकरियां भूख, हिकारत, कुंठा देती हैं। केवल एनजीओ में ही रोटी भी है, आदर भी। बस्ती, जंगल, पर्वत, मौसम, फसलें भी हैं बंजर भी, नदियों के भीतर ही होता है एक खारा सागर भी। (देवेंद्र आर्य, वही, पृष्ठ.185) बाजार के बढ़ते प्रभाव ने हमें मानसिक रूप से पंगु बना दिया है। वर्तमान समाज में बाजार जितना प्रभावी हुआ है, उससे कम मानवीय रिश्तों में नहीं। **बिकने खरीदने में, रुकावट नहीं रही, हम सब हुए गुलाम कि आहट नहीं रही** (हृदयेश मयंक वही, पृष्ठ 186) मजदूरों के हक में कानून बनाए गए हैं तथा साहित्य और कलाओं ने उनकी निरंतर पक्षधरता की है। फिर भी–

नमक से अब भी सूखी रोटियां मजदूर खाते हैं भले ही कृष्णचंदर ने लिखें हों इनपे अफसाने। ये वो बस्ती है, जिसमें सूर्य की किरणें नहीं पहुंची, करेंगे जान कर भी क्या ये सूरज चाँद के माने। (जयकृष्ण राय तुषार, वही, पृष्ठ 191)

राजनीति ने सिर्फ राजनीतिक संबंधों को ही नहीं, बल्कि हमारे आत्मीय संबद्धों को भी प्रभावित किया। परिणाम यह हुआ कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को मनुष्य के रूप में नहीं, अवसर (काम का आदमी) के रूप में देखता है। **शब्दों के अर्थ और इशारे बदल गये, संबंध अब हमारे तुम्हारे बदल गये। सत्ता की राजनीति हमें ले गयी कहाँ, बिलकुल क़रीब थे जो हमारे बदल गए।** (निरंकार देव सेवक, प्रतिनिधि हिन्दी गजलें, रोहिताश्व अस्थाना, पी.एन. प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृष्ठ.16)

झूठ की महिमा अनंत है और उसका प्रभाव भी। राजनीतिक जीवन से लेकर सामाजिक जीवन में। हालत यह है कि, 'आत्मविश्वास के साथ हम झूठ' बोल रहे हैं, जो सच के बराबर दिखता है।

एक भी तस्वीर अब तक बन नहीं पायी, क्या धरा है आपके झूठे बयानों में वार्ता होगी गरीबी के निवारण पर, रेशमी सोफे पड़े हैं शामियानों में (श्याम प्रकाश अग्रवाल, वही, पृष्ठ 31) मनुष्यता की यात्रा बड़ी कठिन और चुनौतीपूर्ण होती है। अतः कला, साहित्य, राजनीति के जरिए मनुष्य का हित करने के लिए, उसके निकट जाना होता है।

मौसम को जान लेते हैं बिन बाग में गए, होठों से जब भी आपके झरता गुलाब है। फुरसत मिले तो बैठ के पढ़ लीजिए कभी, इस देश की जनता बड़ी

मुश्किल किताब है। (हनुमंत नायडू, वही, पृष्ठ 39) मनुष्य अपने सफर में कभी अकेला नहीं होता, उसका पूरा परिवेश होता है। वातावरण और परिवेश को बचाकर मनुष्य बच सकता है। **पास रखेगी नहीं, सब कुछ लुटाएगी नदी। शंख, सीपी, रेत, पानी – जो भी लाएगी नदी। साल सालों विष पिलाकर आजमाया है इसे, अब हमें भी विष पिलाकर आजमाएगी नदी।** (वही, कमलेश भट्ट कमल, पृष्ठ.133)

हमें मनुष्य होने में बाधित करते हैं, हमारे कुतर्क। हर बुरे काम को अच्छा साबित करने के लिए तर्क और ठोस उदाहरण ढूँढ लेना, कुतर्क ही तो है। **पाप करने की पुण्य करने की सबकी अपनी दलील होती है, प्यार का एक दीप जलता है, रोशनी मीलों मील होती है।** (वही, पृष्ठ 132) वर्तमान परिस्थितियों में स्त्री प्रश्न मनुष्यता के बड़े प्रश्न हैं। इसे हल करने की निरंतर कोशिश हो रही है पर उसके संकट और भी जटिल होते जा रहे हैं। **मजबूरियों का जाल है औरत की जिंदगी, कितना बड़ा सवाल है औरत की जिंदगी। ये जुल्म बलात्कार तो चाँटे की तरह हैं, सहलाया हुआ गाल है औरत की जिंदगी, दुनिया को जिसने बाँटी खुश्बूएँ तमाम उम्र, काँटों भरी वो डाल है औरत की जिंदगी।** (उर्मिलेश वही, पृष्ठ 110)

राजनीति वर्तमान समय की बड़ी वास्तविकता है और मनुष्यता की यात्रा के विस्तार में सहायक भी। बशर्ते उसका प्रतिनिधित्व ईमानदार लोग करें–

एक समय वो भी था जब राजनीति में कद वाले, गिरते-गिरते राजनीति की छत बौनों तक आ पहुँची। तन ख़रीद लेते थे लेकिन मन ख़रीदना मुश्किल था, अब तो आत्मा की ख़रीद भी कुछ नोटों तक आ पहुँची। सुंदरता की अवधारणा भी मनुष्यता की अवधारणा को प्रभावित करती है। रूप और कुरूप का भेद एक विभाजन है। स्त्रियों का इससे बड़ा नुकसान हुआ है।

सुंदर और असुंदर को हम चमड़ी से तय करते हैं, सुंदरता की प्रचलित परिभाषा गोरों तक आ पहुँची। (जहीर कुरैशी, वही, पृष्ठ. 107)

तमाशबीन लोग सिर्फ तमाशा देख सकते हैं, न आदमी के पक्ष में खड़े हो सकते हैं न आदमीयत की रक्षा कर सकते हैं।

चुप रहो देखो तमाशा, अक्ल से मत काम लो, मौन भत्ता लो समझ लो

बेचने का दाम लो। दिन भतीजों के लिए है, रात सालों के लिए, तुम क्षितिज की पंक्ति में लगकर जरा-सी शाम लो (महेश अनघ, वही, पृष्ठ.96)

सबसे बड़ा संकट बिचौलियों को लेकर है। सरकार और व्यवस्था दोनों परेशान है। सरकारी योजना खटाई में पड़ जाती है- **मुँह, ये कौर, बीच में कितने बिचौलिये। बेहाल किस तरह न हो ये पेट बोलिए। ये आदमी है, गाँठ लगा देगा एक और ना इसके आगे अपना कभी दर्द खोलिए।** (हस्तीमल हस्ती, वही, पृष्ठ 88)

भारतीय गाँवों और बस्तियों की हालत में सुधार होने के बाद भी, अब भी वे कई बुनियादी सुविधाओं से वंचित हैं। दूसरी और गरीबी और भुखमरी से ग्रस्त युवा पीढ़ी के जीवन और यौवन बर्बाद हो रहा है – रघुवीर सहाय कविता – 'पानी-पानी' देश में पानी के संकट को दर्शाती है। **निकट गाँवों के राजधानी नहीं है, बस्ती है, बस्ती में पानी नहीं है। गुजरा है जिनका फुटपाथों पर बचपन,मुक़द्दर में उनके जवानी नहीं है।** (विनोद कुमार यूके दीप, वही, पृष्ठ. 78)

आज सिर्फ सत्ता में अपराध नहीं है, अपराधियों की सता है। ऐसे में मानवाधिकारों का उल्लंघन होना लाजिमी है। दूसरी तरफ हम धर्म के मूल स्वभाव की अवहेलना करते हुए, उसके अंधेपन के शिकार हो रहे हैं। **"क़त्ल का इल्जाम है जिस पर, व्यक्ति सत्ता के शिखर पर है। प्यार ही अंधा नहीं होता, धर्म भी अंधे सफर में है। तृप्ति रहती कुछ घरों में भूख हिंदुस्तान भर है।"** (मयंक श्रीवास्तव, वही, पृष्ठ. 64)

कृषि संबंधी कई क़ानून बनाए गए हैं, सुविधाएँ दी गई हैं पर किसानों की हालत अब भी गंभीर है–

गेहूं न धान बोते हैं, अपनी किस्मत किसान बोते हैं। फसल तहसील काट लेती है, हम मुसलसल लगन बोते है। (बेकल उत्साही, वही, पृष्ठ.28)

जो शक्तियाँ, मनुष्य को मनुष्य नहीं रहने देतीं, आज का मनुष्य उन्हीं शक्तियों को हासिल करने में लगा हुआ है – **अर्थ, प्रतिष्ठा, पद की ख़ातिर इतनी खींचातानी है। आदर्शों के पर्वत हिलकर आपस में टकराते हैं।** (चिरंजीत, वही, पृष्ठ 19)

मनुष्य बनने के जरूरी है स्वयं का सही बोध, बाहरी काया उसे मनुष्य नहीं बनाती, आंतरिक व्यक्तित्व बनाता है। आंतरिक शक्ति ही मनुष्य को मनुष्य के पक्ष में खड़े होने का साहस प्रदान करती है–

अपना जिसको ज्ञान नहीं होता, वह पूरा इंसान नहीं होता। ध्येय लोकहित होता है जिसका, घातक वह विषपान नहीं होता। (मनोज तोमर, पृष्ठ 121)

परिस्थितियों के अनुसार मूल्य बदलते हैं। मानव मूल्यों की गतिशीलता में ही उसकी सार्थकता है। मनुष्यता के लिए आत्मविश्लेषण जरूरी है। आधुनिकता मनुष्यता को जीवन देती हैं, जो परंपरा और संस्कृति से विच्छिन्न नहीं होती। मनुष्य जीवन के सभी कार्यों की योजना किसी न किसी रूप में मनुष्य के लिए हुई है, बशर्ते हम उसका निर्वाह समुचित ढंग से करें।

–विजय कुमार भारती

खंड–V

समीक्षा

पर्यावरण के पाठ

हम सबके भीतर एक गांधी है, उसे बचाने की जरूरत है

–ओम निश्चल

गांधी इस देश के राष्ट्रपिता थे, आजादी के संघर्ष में उनका योगदान अप्रतिम था। अपने जीवन, रहन सहन और विचारों से उन्होंने न केवल हिंदुस्तान बल्कि पूरी दुनिया को प्रभावित किया। गांधी होना सहज नहीं है। वे संयम, सदाचरण, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, शील की मिसाल थे। उस बूढ़े की विचारधारा गांधी दर्शन के रूप में पूरे विश्व में समादृत हुई। आज उस व्यक्ति को बहुत अजूबे ढंग से देखा जाता है जो जीवन में गांधी की तरह बनना चाहे। गांधी देखते ही देखते अप्रासंगिक होते गए। बस राजघाट पर मत्था टेकने के लिए एक रस्म अदायगी भर के लिए रह गए हैं। पर ऐसे दुर्लभ समय में भी आज ऐसे तमाम लोग हैं जो भले गांधीवाद के अनुयायी न हों पर उनके विचारों के किसी कोने में एक गांधी ठिठका हुआ मिलेगा। जीवन की सादगी जहां भी आप देखेंगे, गांधी के व्यक्तित्व का आलोक वहां उपस्थित मिलेगा। ऐसे ही एक अनूठे व्यक्ति थे पर्यावरण के प्रहरी अनुपम मिश्र जो गांधी मार्ग के संपादक रहे हैं। पर्यावरण के पाठ नामक पुस्तक में अनुपम मिश्र से लिए गए अनेक बेहतरीन साक्षात्कार हैं जो हमें पानी व पर्यावरण संकट को समझने में मदद करते हैं। 1977 में वे पर्यावरण कक्ष के संचालक के रूप में गांधी शांति प्रतिष्ठान से जुड़े और पर्यावरण व पारिस्थितिकी पर बीसियों पुस्तकें लिखीं। आज भी खरे हैं तालाब, राजस्थान की रजत बूँदें, साफ माथे का समाज, महासागर से मिलने की शिक्षा व अच्छे विचारों का अकाल, आदि। पहली दो पुस्तकें तो छपते ही लोकप्रियता की कसौटी पर छा गईं। देखते ही देखते तमाम भारतीय भाषाओं में उसके अनुवाद

हुए। तमाम आकाशवाणी केंद्रों ने इसे प्रसारित किया। पानी को बचाने का जो महामंत्र उनके पास था वह बड़े से बड़े पर्यावरण विज्ञानियों के पास न था।

वे उस कवि भवानीप्रसाद मिश्र के बेटे थे जिसने जीवन में गांधी मार्ग का अनुसरण किया, पर देश में आपात्काल लगा तो त्रिकाल संध्या करते हुए कविताएं भी लिखीं। जिसकी कविता जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ और सतपुड़ा के जंगल ने देशव्यापी लोकप्रियता पाई। अनुपम मिश्र कवि तो न थे पर उनके भीतर मानवीय संताप, दैवी आपदाओं और दुनियावी दुखों के प्रति एक कारुण्य विद्यमान था। भारत नदियों, झीलों, बावड़ियों, तालाबों का देश है। पर धीरे धीरे इस प्राकृतिक संपदा को हम खोते गए। हममें जल के संरक्षण व प्रबंधन की कोई नीति न थी। सरकारी नीतियां थीं तो बहुत ही अप्रभावी। यही वजह है कि कहीं बांधों ने लाखों जनता को बेघर कर दिया, कहीं बाढ़ के हालात पैदा कर दिए, कहीं पानी का अकाल पैदा हो गया। ग्लोबल वार्मिंग के उत्तरोत्तर बढ़ते खतरे और देश के कम बरसात के कारण जल का अभाव पैदा हो गया। अभी भी देश भर में साफ पानी पीने की व्यवस्था बहुत चुस्त दुरुस्त नहीं है। जो जल रेलवे स्टेशनों आदि पर मुफ्त मिला करता था, वहां भी पानी के अभाव के आसार नजर आने लगे हैं। कारपोरेट कंपनियों ने बोतल बंद पानी का रास्ता ईजाद किया तो दूसरी तरफ पानी के दोहन का संजाल बढ़ता गया। ऐसे में पर्यावरण के लिए स्वच्छ वायु एवं स्वच्छ जल की उपलब्धता सदैव एक चुनौती की तरह रही है। अनुपम मिश्र ने आज भी खरे हैं तालाब – लिखकर जनता को प्रशिक्षित किया कि कैसे तालाबों में बरसात का पानी संग्रहीत किया जाए ताकि जलाभाव के दिनों में मनुष्यों व प्राणि प्रजातियों के लिए उसका उपयोग किया जा सके।

अनुपम मिश्र ने पूरा देश घूमा है। पूरे देश की जल समस्या से वे वाकिफ रहे हैं। पर हमारे यहां पर्यावरण को हमेशा सतही निगाह से देखा गया। जहां वेदों में जल वायु अग्नि आदि की अभ्यर्थना कर प्रकृति को देवतुल्य माना गया वहीं आगे चल कर पिछले सौ सालों में प्रकृति का हमने खुले हाथो दोहन किया है। फलतः न पहाड़ बचे, न जलस्रोत, न तालाब बचे, न झरने, न नदियां। नदियां जो हैं भी वे गर्मी के दिनों में एक नाले में तब्दील दिखाई देती हैं। तभी तो कवि कुंवर नारायण ने क्षोभ से भर कर एक कविता में लिखा, 'बचाना है नदियों को नाला हो जाने से'। पर क्या हम नदियों को नाला हो जाने से बचा पाए। अभी अभी बीते कुंभ के लिए बांधों को खोल कर पानी की विशेष व्यवस्था की गयी ताकि संगम जल प्रवाह से समृद्ध नजर आए और शहर को प्रशस्त बनाने के लिए तमाम पेड़ काट डाले गए। हम आज ऐसे

पर्यावरण संकट के दौर में रह रहे हैं जब न साफ पानी पीने योग्य बचा है न सिंचाई के लिए जल। जो जल है भी वह अतल में जा रहा है।

अनुपम मिश्र की अपनी जल तकनीक व जल प्रबंधन की प्रविधि कई प्रदेशों में इतनी कारगर हुई कि वे पर्यावरण के प्रहरी के रुप में देश भर में जाने पहचाने जाने लगे। अनेक अवसरों पर हिंदी के लेखकों, पर्यावरण प्रेमियों, पत्रकारों ने इस समस्या व इसके निदान पर दो टूक बातचीत की जो समय समय पर पत्र पत्रिकाओं में छपती रही है। उसी बातचीत पर आधरित एक पुस्तक हाल ही में पर्यावरण के पाठ के नाम से आई है जिसमें योगिता शुक्ला, उमेश आनंद, प्रभात रंजन, हरमिंदर कौर बल, गौतम भान, एस पी त्रिपाठी, नीतिश कुमार सिंह, मंजु माहेश्वरी, मनीष चंद्र शुक्ल, सुनील सोनी, जयदीप कर्णिक, मीतू कुमारी, सुरेश प्रभु संजय तिवारी व फिल्म अभिनेता आमिर खान की उनसे हुई बातचीत को संकलित किया गया है। जिन लोगों ने उनकी मूल पुस्तकें नहीं पढ़ी हैं उनके लिए यह एक संपुट की तरह है। तरह तरह के सवाल व उनके समाधान यहां मिलते हैं जिनसे गुजरते हुए हम इस ध रती के पर्यावरण व पारिस्थितिकी को लेकर अनुपम मिश्र की चिंता से रुबरू होते हैं।

सत्यमेव जयते की एक कड़ी में जब आमिर खान ने उनसे पूछा कि मल्हार के इस देश में यह नौबत आ गयी कि पानी के लिए खून बह रहा है। मुझे बताइये हम इस स्थिति में कैसे पहुंचे और क्यों तो क्या बोले अनुपम जी देखिए। वे कहते हैं, “पानी हमकों कुदरत ने इतना अच्छा दिया, हर साल दिया। पर हमारी जेब में उसको रखने की तमीज तो हमें आनी चाहिए। अंग्रेज जब देश में आए तो करीब करीब हमारे पांच लाख गांवों में और कुछ हजार छोटे बडे शहरों में तालाब हुआ करते थे, बड़ी बड़ी झील हुआ करती थी और उन सबमें ऊपरवाला हर साल पानी देता है। पर अभी हमने वह सब खो दिया। हमने सोचा कि पानी तो कहीं से भी आ जाएगा।” शहरीकरण ने धरती के भीतर पानी जज्ब होने में बाधा पैदा की है। आमिर के यह पूछने पर कि पहले 200 फीट पर पानी मिल जाता था, अब 300, 400, 500 फीट तक पहुंच गया है, इसमें क्या खतरे हैं तो वे कहते हैं, “कुदरत पहले ज्यादा नीचे जाने की इजाजत नहीं देती थी पर आज जब हम उससे भी नीचे जा रहे हैं तो कहीं फ्लोराइड मिल रहा है, कहीं आर्सनिक जो कि जहर है और यही जहर हमारे लोग पी रहे हैं। इसे हमारा कोई नया साइंस कोई टेक्नालाजी रोक नहीं पाएगी, इसका इलाज नहीं है।”

अनुपम मिश्र के साथ ये सारे इंटरव्यूज बहुत ही अनौपचारिक फार्मेट में हैं।

सहज चौकन्ने सवाल तो उसके उतने ही नुकीले उत्तर बिना आपा खोए। न केवल जल प्रबंधन बल्कि अकाल, बाढ, शहरीकरण, संस्कृति, जीवन शैली, रहन सहन, नदी जोड़ो परियोजना, समाज के जलदर्शन, कुदरती जल प्रबंधन, तालाब खनन, जल संरक्षण, जलापूर्ति, जलशोधन आदि व्यावहारिक विषयों पर रोचक बातचीत हुई है जिसे मनुष्यता सीख ले सकती है कि वह कैसे आगामी पीढ़ियों के लिए जल बचा कर रख सकती है। कहना न होगा कि अनुपम मिश्र का न होना एक और गांधी का हमारे समय से ओझल होना है। हम सबके भीतर एक गाँधी है। जरूरत है कि हम उसे अपने भीतर सहेजे रहें।

जब मैं कहता हूँ कि वे गांधी मार्ग के संपादक ही न थे, वे खुद गांधी मार्ग पर चलते चलते एक दूसरे गांधी हो गए थे, जो पानी और पर्यावरण के बुनियादी संसाधनों के लिए सरकार का मुंह जोहने वालों को स्वावलंबी बनाना चाहते थे। जो काम जन सहकार से हो सकता है उसके लिए पानी के इंजीनियरों की क्या जरूरत। पर्यावरण के पाठ के सभी साक्षात्कार अनेक तरह के पर्यावरण के सवालों को लेकर हमारे सम्मुख आते हैं। उनसे किया गया सबसे पहला इंटरव्यू योगिता शुक्ला का है। यह सबसे बड़ा है। एक तरह से कहा जाए तो पर्यावरण की एक से एक महीन बात, महीन से महीन चूक पर उन्होंने बात की है जिससे कि आम आदमी भी पढ़े तो उसकी समझ में आ जाए कि पर्यावरण में जो व्यतिक्रम आ रहा है, जो बाढ़, सूखा, विपत्ति के अन्य कारक किसानों और आम जनता पर मंडराते रहे हैं, उसकी मुख्य वजहें क्या है। जल प्रबंधन पर उनकी दो मिलती जुलती पुस्तकों के संदर्भ में योगिता के यह पूछने पर कि दोनों पुस्तकों की रचना प्रक्रिया क्या रही, वे कहते हैं, उन्होंने पानी के काम को समझना राजस्थान से शुरु किया। उन्हें यह समझ आया कि जहां कम पानी गिरता है, मरुभूमि कहा जाता है, जहां समाज में कम पानी उपलब्ध है, उस समाज ने अपने को सबसे रंग बिरंगा संगठित किया है और इस प्रदेश का आकार भी बड़ा है। इस प्रदेश में सबसे पहले उन्होंने एक बगीची देखी जिसमें एक पक्का आंगन था। फिर एक घुटने भर की दीवार थी—पूछने पर पता चला यह पानी का टॉका है। बरसात के मीठे पानी को इकट्ठा करने का टॉका। इस अनुभव से होते हुए वे कितने ही कुंड और टॉकों से गुजरे। कोंकण में उन्होंने पाया कि सबसे ज्यादा पानी वहां बरसता है पर सबका सब समुद्र में चला जाता है और वहां पानी का अभाव बना रहता है। यह पूछने पर कि हिंदी में पर्यावरण साहित्य का अभाव क्यों है वे मानते हैं कि इसका अभाव रहा। जो आया भी वह भी अंग्रेजी से अनूदित होकर लिहाजा उसमें मौलिकता न थी। बस लिपि बदली, विचार नहीं बदला।

अनुपम जी ने पानी के संकट को समझने के क्रम में हर उस कारक को समझा है जो इसके लिए जिम्मेवार हैं। कहीं पानी व्यर्थ समुद्र में जा रहा है तो कहीं उसके संरक्षण की कोई व्यवस्था नहीं, कहीं गांवों में तालाब ही भॉट दिए गए तो जल का संरक्षण कहां हो, पशु पक्षी कहां पानी पिएँ। वक्त जरूरत खेत की सिंचाई कैसे हो। विकास की दौड़ में जहां के खेत व पर्यावरण जिस फसल के अनुरूप नहीं हैं, वहां उन फसलों की खेती ने भी पानी की जरूरत को जन्म दिया। जैसे पंजाब में धान बोया जा रहा है जो पहले तटीय इलाकों या नदी या तराई क्षेत्र की जमीन में लगाया जाता था। अब पंजाब में धान लगेगा तो पानी भी इफरात चाहिए और न बरसात बेहतर है, न जल तल बहुत ऊपर। समस्या यहां से शुरु होती है। नदियां जल का एक आदिम स्रोत हुआ करती हैं पर पिछले सालों में हमने नदियों को क्या बना दिया है। कल कारखानों की गंदगी से भर दिया है। खेतों में रासायनिक खाद के अधिकता ने नदियों को भी प्रदूषित कर दिया। इसकी वजह वे यह कहते हैं कि हमने पर्यावरण की आंख से इस समस्या को नहीं देखा। नदियां धीरे धीरे या तो नालों में तब्दील होती गयी या बाढ़ से उफना कर मानवीय सभ्यताओं को डुबोने लगीं। पानी पीने योग्य तो बिल्कुल रहा नहीं कि राह चलते राही अपनी प्यास बुझा सके जैसा कि पचास के दशक के आस पास होता था। पहले बावड़ियां कुएँ हर फर्लांग, मील या कुछ दूर पर होते थे, आज वे हैं भी तो नाम मात्र के। कुंए का उपयोग ही लोगों ने बंद कर दिया। वे इस बात पर अचरज करते हैं कि एक समय में विकास की बात हुई, फिर उससे जब नुकसान आने लगे तो एक और आपने नारा सुना होगा कि विनाश रहित विकास। फिर उसके बाद एक और टर्म सामने आया, सस्टेनेबल डेवलपमेंट–यानी सातत्यवाला विकास। वे कहते हैं, "इस विकास के कर्ता धर्ताओं के पास कभी भी इतनी राशि नहीं होगी, बुद्धि तो है ही नहीं। इतनी राशि भी नहीं होगी कि वे पूरे देश को सड़कों से पाट दें, पानी का इंतजाम कर दें, पूरे देश के वन ठीक कर लें।" (पर्यावरण के पाठ, पृष्ठ 27) वे पूछते हैं, एक पंजाब बनाया, एक भाखड़ा बनाया। अगर इतना ही बनाने लायक है यह तो मध्यप्रदेश, राजस्थान सबको हरितक्रांति का क्यों नहीं वाहक बना देते। वे कहते हैं पानी की समस्या का समाधान नलकूप नहीं है। वे भी जलस्तर नीचे जाते ही बेकार हो जाएंगे। इसलिए पुराने तालाबों को दुरुस्त रख कर अपनाने पर ही नलकूप ज्यादा दिनों तक चलेंगे।

पर्यावरण के प्रति घटती रुचि के मद्देनजर क्या पारिस्थितिकीय विज्ञान का पाठ्यक्रम कारगर हो सकता है, यह पूछे जाने पर अनुपम जी कहते हैं पर्यावरण के प्रति संवेदना बढ़ने के बजाय घट रही है। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली अपने इलाके के

पर्यावरण से कटी हुई है। किसी को अपने इलाके से कोई मतलब नहीं। उन्हें इस बात की चिंता है कि आज की शिक्षा प्रणाली में स्वदेशी ज्ञान की रत्ती भर गुंजाइश नहीं दिखती। पर्यावरण शिक्षा को वे भाषा के लिहाज से देखते हुए कहते हैं कि अपने समाज से कटा हुआ पढ़ाई लिखाई का कोई भी ढांचा एक तरह से बोझा ही होता है। पर्यावरण विषय भी उसी पद्धति से निकला हुआ एक विषय है। कुल मिला कर जो ज्ञान दिया जा रहा है वो अंग्रेजी विचार का दिया जा रहा है। यानी भाषा हिंदी गुजराती कोई भी हो सकती है, इससे फर्क नहीं पड़ता क्योंकि विचार अंग्रेजी का ही परोसा जा रहा है। आज के समय में जैव विविधताओं के खतरे में होने के संदर्भ में पूछे सवाल में वे कहते हैं कि कई बार चीज हमारे हाथ से निकल जाती है तब हमको याद आती है। ऐसा ही जैव विविधता को लेकर हुआ है। यहां एक वक्त तीन हजार-चार हजार या छत्तीस हजार धान के बीज थे, गेहूँ के बीज थे जिन्हें हर वर्ष लाखों किसान लाखों खेतों में बोते थे। वास्तव में वे कृषि पंडित थे। वे जानते थे कि एक गांव में हम जितनी तरह के बीज बोएंगे उतना कम कीड़ा लगने वाला है। पर आज जैव विविधता नष्ट हो रही है। वे इस बात की भी चिंता करते हैं जिन्हें हम आदिवासी या वनवासी कहते हैं उनके बड़े बड़े राज्य थे, उनके जंगल भी थे, अचानक वे उनसे बेदखल कर दिए गए। फिर वनों का दोहन शुरू हुआ। रेलों के लिए वनों की अंधाधुंध कटाई हुई। वन इस तरह उजड़ने लगे तो प्राणि प्रजातियों के रहने का खतरा भी उभरा। वनीकरण के नाम पर यूकेलिप्टस लाया गया सो लोग इसकी ओर आकर्षित हुए। फसलों के बदले यही लगाने लगे जैसे कि यह अन्न का कोई ठोस विकल्प हो। इसी तरह विलायती बबूल लगाने की मुहिम चलाई गयी।

उन्होंने एक सवाल के जवाब में उन्होंने तालाब खुदवाने के लिए पानी के काम के लिए अनपूछी ग्यारस का जिक्र किया है। यानी ऐसा दिन जब जमीन नम हो फावड़ा चल सके। किसान के पास जब फुर्सत के दिन होते हैं, फसल कट चुकी हो, अगली फसल के लिए अभी समय हो, और साधन भी हो तो यही समय अच्छा काम करने के लिए होता है। वे कहते हैं पानी के कुछ सिद्ध पुरुष होते हैं वे जमीन सूँघ कर बता देते हैं कि यहां पानी मिल सकता है। उन्होंने जगह जगह के भूगोल व फसल चक्र के हिसाब से पानी, अकाल, जलागम, जल संरक्षण आदि की बातें बताई हैं जो उन्होंने चालीस साल के अनुभव से जाना समझा। विज्ञान व तकनीक की उन्नति के बावजूद पानी की समस्या बनी हुई है। क्योंकि तकनीक से बटन दबा कर पानी तो निकाल सकते हैं पर कितने दिन। दो चार दिन में पानी का स्रोत ही नहीं तो पानी कहां से निकलेगा। इसीलिए वे जल के स्थायी स्रोतों के बनाने की बात करते

हैं। सरकारी साधनों पर निर्भर न रह कर आपसी श्रमदान से तालाब, अगोर आदि बनाने की बात करते हैं जिससे बरसात का पानी व्यर्थ न जाए वह अगोर या तालाब या जलाशय में इकट्ठा रहे।

अनुपम मिश्र पानी संकट के लिए एक ऋषि की तरह है जिन्होंने अपना पूरा जीवन इस मुहिम में लगा दिया। कभी एक ऊर्जा मंत्री ने देश की नदियों को जोड़ने की बात उठाई थी। इस विचार के बारे में उमेश आनंद के पूछने पर अनुपम जी का कहना था कि सैकड़ों वर्षों से विकसित नदियों के तंत्र में व्यतिक्रम पैदा कर जोड़ना मूर्खता का काम है। हमारी नदियों का एक तर्क शास्त्र है, विज्ञान है। इस तर्कशास्त्र के भीतर ही हमारी पानी की समस्याओं के समाधान छिपे हैं। दिल्ली में पानी संकट के समाधान पर वे कहते हैं कि पहले दिल्ली में पानी के स्रोत के रूप में टैंक, नहरें और बावड़ियां थीं। इन्हीं पर जीवन टिका था और पानी की कमी कभी नहीं हुई। आज यह समस्या अनेक राज्यों के साथ है जो सूखे का सामना करते रहे हैं। इसका अर्थ है कि विकास का माडल के साथ कही न कहीं कुछ तो गड़बड़ है। उनका कहना था हमें अलग अलग क्षेत्रों के लिए अलग अलग समाधान की जरूरत है–रेगिस्तान से लेकर पहाड़ों और तटीय इलाकों तक। वे कहते हैं समाधान के मानकीकृत प्रयासों से समस्या हल नहीं होनी है। हमें प्रकृति प्रदत्त विविधताओं का सम्मान करना होगा।

पानी के संकट से निपटने में कामयाब जैसलमेर का उदाहरण वे देते हैं कि कैसे वहां जमीन के नीचे जिप्सम की पट्टियों के कारण पानी को उड़ने नहीं देतीं तथा नमी भी भीतर नहीं जा पाती। इसका लाभ वहां के लोगों को मिला जहां बेरियां, कुएँ ओर तालाब मौजूद हैं। इसी तरह वे दिल्ली से थोड़ी दूर पर बसे एक गांव लापोड़िया की बात बताते हुए वे कहते हैं कि वहां केवल 22 इंच वर्षा होती है पर एक बार गांव के लोगों ने जर्जर पड़े तीन तालाब ठीक कराए जहां बरसात का पानी संरक्षित हुआ। फिर आस पास के इलाके में सूखे का प्रभाव पड़ा पर लापोड़िया को टैंकर के पानी की जरूरत नहीं पड़ी। सूझ बूझ से गांव वालों ने यह समस्या हल की। आज उनके यहां 103 कुएं हैं जिनमें पर्याप्त पानी है व भूजल भी है। वे पानी संकट की समस्याओं की तह में जाते हैं। यह देखते हुए कि हरियाणा व पंजाब में धान की खेती नहीं हुआ करती थी, आज बहुत होती है। समस्या यह है भूजल में पानी है नहीं, मानसून में पानी कम बरसता है पर पंजाब या हरियााण में पारंपरिक अन्न मक्का, सरसों इत्यादि छोड़ कर आज गेहूँ व चावल की खेती होती है पर अच्छा अनाज तब भी पैदा नहीं होता। वे चिंता करते हैं कि लगातार होते शहरीकरण से भी जल संकट

पैदा हुआ है इसलिए कब तक गांव शहरों में पानी पहुँचाते रहेंगे। आज स्मार्टसिटी तो बन रहे हैं पर वहां जल का स्मार्ट प्रबंधन नहीं है। वे यह भी चिंता करते हैं पंजाब हरियाणा के कृषि विश्वविद्यालय के कृषिविज्ञानी इन लोगों या सरकार को यह नहीं बताते कि यही हाल रहा तो कुछ दिनों पर यहां पानी की समस्या और विकराल हो जाएगी।

प्रभात रंजन के साथ बातचीत में यह पूछने पर कि हिंदी में ही पर्यावरण की पुस्तकें लिखने का निर्णय क्यों किया, वे कहते हैं, एक तो यह कि जो पुस्तकें लिखी गयीं वे अनुवाद जैसी हिंदी में रहीं। अंग्रेजी में पहुँचने का मोह नही रहा क्योंकि हमारे देश की अपनी दुनिया ही काफी बड़ी है जहां छपने पर तमाम रेडियो स्टेशनों से इसे प्रसारित किया गया सो इसका बहुत लाभ मिला। कुछ लोगों ने इसके अन्य भाषाओं में अनुवाद भी प्रसारित किए कि वहां के लोग अपनी भाषा में इस बात को समझ सकें। आज भी खरे हैं तालाब–अनुपम मिश्र की पहली पुस्तक थी जो 1993 में आई और 3000 प्रतियां छपीं। 1994 में चार हजार प्रतियां, 98 में पुनः तीन हजार कापी छपी। इस तरह अनेक संस्थाओं ने इसके संस्करण छापे। बड़े स्तर पर वितरण के लिहाज से जिससे कि ग्रामीणों को लाभ हो। कहना न होगा कि अनुपम मिश्र की इस पुस्तक को व्यापक लोकप्रियता मिली तथा वे बताते हैं कि लगभग दो सौ अखबारों ने इस किताब का नोटिस लिया। अंश छापे। टिप्पणियां छापीं। उन्होंने यह भी कहा है कि 1847 में देश में पहला इंजीनियरिंग कॉलेज किसी महानगर में नहीं, रुड़की में खोला था अंग्रेजों ने जिसके पीछे सोची समझी रणनीति रही है क्योंकि अंग्रेजों को सिंचाई के लिए नदी के ऊपर सेनहर ले जाने की जरूरत थी और 200 मीटर की लंबी नहर को 1810 में बनाया गया जिसे बनाने वाले कोई इंजीनियर नहीं थे यहां तक कि कभी स्कूल भी नहीं गए थे।

पानी और पर्यावरण के सवालों पर काम करने की प्रेरणा कहां से मिली पूछने पर अनुपम जी कहते हैं लोगों को पानी की समस्या से जूझते देखा तो उसके समाधान का रास्ता निकालने को जुट गया। जंगल बचाओं आंदोलन, चिपको आंदोलन में भाग लिया। पानी के महत्व को समझा तो उसे बचाने संरक्षित करने के काम में जुट गया। अपने दौरों के दौरान उनका अनुभव यह रहा कि गांव के लोग आज भी पानी बचाते हैं किन्तु शहर के लोग पानी अंधाधुंध खर्च करते हैं। जितना बड़ा शहर उतनी बड़ी पानी की समस्या। उनका यह भी मानना है कि पेड़ों ओर तालाबों को बचाये रखने में आम आदमी को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। सब कुछ सरकार के

ऊपर नहीं छोड़ देना चाहिए। वे कहते हैं कि कम से कम एक काम तो हर व्यक्ति कर सकता है कि अपने घर की छत पर आने वाली वर्षा के पानी को संचित करना। हम कम से कम यह आदत तो डालें कि एक गिलास पानी लेकर आधा छोड़ कर उसे फेंक न दें या घंटों तक कार आदि न धोएं। इन्हीं किफायती आदतों से हम पानी को बचा सकते हैं।

अनुपम मिश्र की एक अन्य पुस्तक साफ माथे का समाज– अपने समाज को समझने के बारे में है। वे जल निकायों में हर साल गाद भरने की ओर ध्यान दिलाते हुए कहते हैं कि पहले लोग मिल जुल कर नहरें नदियों की गाद निकाला करते थे। यह पूरे समुदाय का काम था। आज तो मन में ही गाद है तो नदियों की गाद कहां से निकले। एक बातचीत में वे बताते हैं कि हरियाणा, पंजाब पानी की दृष्टि से सबसे ज्यादा खतरे में हैं। फिर गुजरात व महाराष्ट्र के संपन्न इलाके, दिल्ली के संपन्न इलाके जहां पानी बहुत नीचे चला गया है। उत्तराखंड में आए जलप्रलय पर एस पी त्रिपाठी के सवाल पूछने पर वे इसके अनेक कारणों की तह में जाते हैं। 1977 में वे अपने ही यात्रा वृत्तांत प्रलय का शिलालेख की याद करते हैं। इस यात्रा वृत्त में ही वे वहां के पर्यावरण दोहन, आए दिन बनते सैर गाह, और हिमालय को घायल करने की प्रवृत्ति की आलोचना करते हैं और पहाड़ पर होते बेतरतीब विकास की आलोचना करते हैं। वे सरकारों को भी आड़े हाथो लेते हैं जो बड़े माल, पंचतारा होटल, जंगल कटाई में भागीदार बनी हुई हैं। अनुपम जी अन्य पर्यावरणविदनों की बातें सुनी गयी होती तो कुछ साल पहले केदार बद्रीनाथ व उत्तर काशी की त्रासदी, टिहरी डूब की समस्या न आती न आज वहां के तमाम रिहायशी घरोंमें दरारें पड़ती।

भारत में किस प्रकार का जल प्रबंधन उचित होगा इस पर नीतिश कुमार सिंह के उत्तर में वे देश की जलवायु, वर्षा के औसत स्तर, तालाबों बावड़ियों कुंओं आदि की जरूरत के अनुसार कदम उठाने को कहते हैं। मंजू माहेश्वरी के यह पूछने पर कि क्या तीसरा विश्वयुद्ध पानी के लिए होगा, वे कहते हैं कि प्रदेशों के बीच तो हो ही रहा है, दो देशों के बीच भी। बांग्लादेश व भारत पानी को लेकर लड़े हैं। भारत पाकिस्तान में भी नदियों के जल को लेकर विवाद रहा है। तमिलनाडु व कर्नाटक के बीच कावेरी को लेकर जंग छिड़ी। तो ऐसा सोचना कोई अप्रत्याशित नहीं है। वे इतने बड़े कवि के बेटे हैं एक छात्र ने जब अध्यापक को बताया तो उन्हें विश्वास ही न हुआ कि दिल्ली के सरोजिनी नगर के टेंट में चलने वाले स्कूल में इतने मशहूर कवि का बेटा क्यों पढ़ेगा, पर बाद में मानना पड़ा। पिता की शोहरत का अंदाजा तो उन्हें

था ही। राजस्थान के पानी संकट से उन्हें ज्यादा ही लगाव रहा। राजस्थान की रजत बूँदें शीर्षक पुस्तक–राजस्थान के पानीसंकट के अध्ययन चिंतन के कारण ही संभव हुई। मनीषचंद शुक्ल के एक प्रश्न के उत्तर में वे बताते हैं कि 1911 में दिल्ली के राजधानी बनने के वक्त यहां आठ सौ तालाब थे। आज एक भी कहने लायक तालाब नहीं हैं। इसके साथ कितने सारे कुंए, बावड़ियां तो थी हीं। बांधों ने भी अनेक शहर डुबोए हैं। सूरत ऐसे कुछ साल पहले दो महीने डूबा रहा। पानी के काम में लगे अन्य कार्यकर्ताओं अलवर के राजेंद्र सिंह और नागपुर के वलनी को वे आशा की किरण कहते हैं। पहाड़ों में आए दिन बाढ़, भूस्खलन पर चिंता व्यक्त करते हुए अनुपम मिश्र जी कहते हैं उत्तराखंड त्रासदी के बाद हिमालय का यह दौर ऐसा है कि प्रकृति एक छोटा सा पोस्टकार्ड लिखकर भेज रही है कि बेटा तुम भूल गए कि हम कौन और तुम कौन।

पुस्तक अनेक साक्षात्कारों जिज्ञासाओं और अनुपम मिश्र के बताए उत्तरों से संपन्न है। मीतू कुमारी, सुरेश प्रभु, संजय तिवारी व आमिर खान के संवाद इसमें चार चांद लगात हैं। सत्यमेव जयते के लिए आमिर खान के साथ हुई उनकी बातचीत खासा वायरल हुई और पसंद की गयी थी। आमिर ने कई ज्वलंत सवाल उनसे पूछे थे जैसे मल्हार के इस देश में यह नौबत आ गयी कि पानी के लिए खून बह रहा है। ऐसा क्यों और कैसे हुआ। एक वक्त कितने सारे तालाब थे तो वे कम कैसे हो गये। पहले 200 फीट तक पानी मिल जाता था आज 300–400–500 फीट तक जल तल पहुंच गया है। इसमें क्या खतरे हैं। वे कहते हैं, कुदरत ने इतने नीचे की इजाजत ही नहीं दी क्योंकि इससे नीचे गए तो कहीं फ्लोराइड, कहीं आर्सेनिक, ये सब जहर हैं पानी में, पर वही हम पीने को विवश हो रहे हैं क्योंकि इससे ऊपर पानी है ही नहीं और इसे कोई नया साइंस, कोई टेक्नालॉजी रोक नहीं पाएगी, इसका इलाज नही है।

इसमें हैरत नहीं कि अनुपम मिश्र महाराष्ट्र में जन्मे, मध्यप्रदेश में रिहाइश रही, नौकरी दिल्ली में की व चाकरी राजस्थान में। फोटोग्राफी व लेखन का शौक रहा। पिता कवि थे पर अनुपम कविता के क्षेत्र में नहीं गए। पर जो काम उन्होंने पर्यावरण संरक्षण, पानी सरंक्षण आदि को लेकर किया वह एक बड़ी मिसाल है। दशकों के अपने अनुभवों को उन्होंने जिस तरह अपनी पुस्तकों में जरिए सरल हिंदी भाषा में जनता के बीच फैलाया है वह किसी भी संस्थागत प्रयास की तुलना एक भगीरथ प्रयत्न है। उनकी पुस्तकों के पहले तो कापी राइट ही न थे सो कितनी संस्थाओं व

व्यक्तियों ने उनकी पुस्तकें अपने-अपने स्तर पर भी प्रकाशित व वितरित कीं। वे इंदिरा गांधी वृक्षमित्र पुरस्कार, चंद्रशेखर आजाद राष्ट्रीय पुरस्कार, जमनालाज बजाज पुरस्कार, वैद सम्मान व हिंदी अकादमी दिल्ली के सम्मान से नवाजे गए पर मिलने पर गांधी जैसी यह शख्सियत अपनी सादगी से मन मोह लेती थी। एक बार हिंदी अकादमी की ओर से सम्मान दिए जाने के अवसर पर उनके निवास पर मिलने जाने पर उन्होंने वापसी में कुछ पुस्तकें दी थीं। यह उनका अपना तरीका था अतिथि को पुस्तकें भेंट करने का। अनुपम मिश्र की एक अकेली निष्ठा ने जो कार्य किया है व मानवता के इतिहास में अनूठा है। उनके साक्षात्कारों की यह पुस्तक उनके व्यक्तित्व के अनेक पक्षों व उनके विशदज्ञान के गवाक्ष को अनेक तरह से खोलती है इसमें संदेह नहीं। यह पुस्तक पर्यावरणवादियों को ही नहीं बल्कि आम जनता व मानवाधिकारों के लिए कार्यरत इकाइयों को अनिवार्य रूप से पढ़नी चाहिए।

पुस्तक : पर्यावरण के पाठ (साक्षात्कार)
लेखक : अनुपम मिश्र
प्रकाशक : रजा पुस्तक माला के लिए राजकमल प्रकाशन,
1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली
मूल्य रु. 695/-

खंड-VI

साक्षात्कार, साक्षात्कारकर्ता - सर्वमित्रा सुरजन

बादल से निकली हर बूंद बचाएं, तभी जीवन बचेगा

–राजेंद्र सिंह

साक्षात्कारकर्ता – सर्वमित्रा सुरजन

जलसंरक्षण की दिशा में अभूतपूर्व काम करने वाली संस्था तरुण भारत संघ के अध्यक्ष राजेंद्र सिंह किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। पिछली आधी सदी से लगातार भारत के ग्रामीण इलाकों से लेकर जलसंकट का सामना करने वाले अनेक स्थानों में राजेंद्र सिंह जी के नेतृत्व में तरुण भारत संघ काम कर रहा है। इसी का नतीजा है कि राजस्थान जैसे सूखे प्रदेश में भी जल की निर्मल धारा बहने लगी। अनेक नदियों का संरक्षण, तालाबों का निर्माण, पानी बचाने के पारंपरिक ज्ञान को सहेजने और आगे बढ़ाने का काम राजेंद्र सिंह जी ने किया। उन्हें मैग्सेस और स्टॉकहोम वाटर पुरस्कार जैसे अंतरराष्ट्रीय सम्मान मिले। स्टॉकहोम वाटर पुरस्कार सम्मान को जल क्षेत्र के नोबेल पुरस्कार के तौर पर देखा जाता है। लेकिन राजेंद्र सिंह जी की एक और पहचान ये है कि उन्हें अब दुनिया जलपुरुष के नाम से जानती है। नयी दिशाएं के लिए जलपुरुष ने एक साक्षात्कार में जल की समस्या और उसके निदान के साथ-साथ जल संरक्षण के विषय पर विस्तृत चर्चा की। प्रस्तुत है साक्षात्कार के प्रमुख अंश,

प्रश्न 1 – भारत में पानी का परिदृश्य चिन्तित करने वाला है। एक ओर आलीशान रिहायशी इलाके हैं, जहां पानी की बर्बादी पूरे हक से की जाती है, दूसरी ओर मलिन बस्तियां हैं, गांव-देहात हैं, जो पानी के अभूतपूर्व संकट से गुजर रहे हैं। अगर आज भी हमारे देश की महिलाओं को एक बाल्टी पानी के लिए कोसों चल कर जाना पड़ता है, या पानी के टैंकरों की सुरक्षा के लिए पुलिस नियुक्त करनी पड़ती है, तो यह शर्मिंदगी की बात है। मगर सालों साल ऐसे दृश्य देखने के बावजूद कोई समाधान क्यों नहीं निकल

पाता। पानी के इस संकट को आप किस तरह से देखते हैं। कौन इसके लिए जिम्मेदार है?

उत्तर – आपकी चिंता बहुत गहरी है। हम जिसे विकास कह रहे हैं, उसने हमारी विद्या का विस्थापन कर दिया है और इस विस्थापन से विनाश और बिगाड़ हो रहा है। इस विनाश में पानी की सबसे ज्यादा बर्बादी हो रही है। इस बर्बादी के कारण करीब–करीब 40 प्रतिशत लोग ऐसे हैं, जिन्हें अपने जीवन, जीविका और जमीन के लिए पीने के लायक पानी भी नहीं मिलता। फिर ये लाचार, बीमार और बेगार होकर शहरों की तरफ आते हैं। शहरों में भी इनका हाल बहुत बुरा होता है। मैंने अपने पिछले 42 साल के पानी के काम में देखा कि इस जलसंकट ने महिलाओं को भी बहुत कष्ट में डाला है। क्योंकि भारत में पानी का काम, रसोई का काम ज्यादातर महिलाओं के सिर पर ही आता है। पानी लाने के लिए इनको कोसों चलना पड़ता है। बच्चे पढ़ नहीं पाते हैं। पानी के इंतजाम में बच्चे भी लगे रहते हैं। और अब तो ये हाल है कि जब कोई पानी का टैंकर गांव या कच्ची मलिन बस्ती में जाता है, तो पुलिस को भेजना पड़ता है। फिर भी हिंसा और मारामारी होती है। ये शर्मिंदगी सालों साल बढ़ती जा रही है। इस बढ़ते हुए संकट से देश के बुरे हाल हैं और समाज की पानीदार जीवनशैली बिगड़ गई है। इस बुरे हाल को देखते हुए समाधान के जो रास्ते सरकार को ढूंढने चाहिए वो नहीं देख रही है। सामुदायिक विकेन्द्रीकृत जल प्रबंधन से इस समस्या का काफी हद तक समाधान हो सकता है। लेकिन हमारी सरकारें बड़े–बड़े बांध, नदियों को जोड़ना चाहती है। बीमारी कुछ है और दवा दूसरी है, तो हालत बिगड़नी ही है।

जहां तक जिम्मेदारी की बात है तो पानी के संकट का जिम्मेदार समाज से ज्यादा राज है। क्योंकि समाज जिम्मेदार तब होता है, जब समाज पानी का मालिक हो। आज उसका यह मालिकाना हक छीना जा चुका है। आज के कानूनों ने जल का बाजार और निजीकरण जोरों से बढ़ाया है। जल का निजीकरण और बाजारीकरण करने वाली सरकार है, तो बिगाड़ के लिए जिम्मेदार भी सरकार है। पिछले 42 सालों में राजस्थान में हमने सरकारों के मुकदमे झेले, क्योंकि बांध बनाने का हम विरोध करते तो हमारे खिलाफ मुकदमा हो जाता था। सिंचाई एवं जलनिकास अधिनियम 1954 किसी को अनुमति नहीं देता कि वह जलसंरक्षण का काम करे, नदी के पानी के प्रबंधन, तालाब बनाने में काम करे। सरकार समाज को काम नहीं करने देती तो इस बुरे हाल के लिए सरकार ही जिम्मेदार है। या तो सरकार समाज को ये जिम्मेदारी

दे कि बादल आपके लिए पानी लाए हैं तो इनका प्रबंधन आप ही करो, लेकिन सरकार ने ऐसा नहीं किया। बहुत कम हम जैसे पागल लोग होते हैं, जो इन सबके लिए सरकारों से टकराते हैं। तो सरकार को समाज को जिम्मेदारी और हकदारी देना चाहिए ताकि स्थिति सुधरे। इसलिए मैं मानता हूं कि पानी की हकदार सरकार है, तो जिम्मेदार भी सरकार है।

प्रश्न 2 – 28 जुलाई 2010 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने पानी और स्वच्छता के मानव अधिकार को स्पष्ट रूप से मान्यता दी और स्वीकार किया कि स्वच्छ पेयजल और स्वच्छता सभी मानव अधिकारों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। इस प्रस्ताव की पृष्ठभूमि में क्या यह कहा जा सकता है कि भारत में बड़े पैमाने पर मानवाधिकारों का हनन हो रहा है, क्योंकि लाखों लोगों तक स्वच्छ पेयजल की अनुपलब्धता है?

उत्तर – 28 जुलाई 2020 को संयुक्त राष्ट्र महासभा स्वच्छता और जल के मानवाधिकार की मान्यता दी थी। लेकिन इसके बाद जो राष्ट्रीय सरकारें हैं, उन्होंने इसे मन से अपनाया नहीं। संयुक्त राष्ट्र की जो मंशा थी, वो सरकारों की नहीं बन पाई, इसलिए संरा के प्रस्ताव का दुनिया में बहुत जगहों पर ठीक से पालन नहीं हो सका। जहां तक सवाल मानवाधिकार का है तो मेरी मान्यता तो इससे भी आगे है। पानी केवल मानव को मिले ऐसा नहीं, ये पेड़, पौधे, नदियां, समुद्र सबको मिलना चाहिए। लेकिन सबसे पहले मानव को उसका हक मिलना चाहिए। अगर मानव को ही पानी नहीं मिलेगा तो फिर इन सबको पानी कौन देगा। तो यह सरकारों की जिम्मेदारी है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्ताव की पालना करे। भारत को इसमें आगे आना चाहिए। लेकिन भारत में भी जल के मानवाधिकार का हनन हो रहा है। लाखों लोगों को पेयजल और स्वच्छता के साथ जीवन जीने का अवसर नहीं मिल रहा। इससे मानवाधिकारों का हनन हो रहा है।

प्रश्न 3 – 2006 की संयुक्त राष्ट्र विश्व जल रिपोर्ट में कहा गया है कि सभी के लिए पर्याप्त जल है। रिपोर्ट में दावा किया गया है कि जल की कमी अक्सर कुप्रबंधन, भ्रष्टाचार, नौकरशाही जड़ता और मानव क्षमता और भौतिक बुनियादी ढांचे दोनों में निवेश की कमी के कारण होती है। भारतीय जल परिदृश्य को लेकर इस बारे में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर – जल का कुप्रबंधन भ्रष्टाचार, नौकरशाही, बुनियादी ढांचे की कमी, और पानी को प्राण की तरह न मानना, ये सभी कारण है, जिनकी वजह से हम

बेपानी होते जा रहे हैं। हमारी लाचारी, बेकारी, के कारण हम बेपानी होकर उजड़ रहे हैं। हमारे गांवों में पानी के संकट के कारण बहुत बड़ा विस्थापन है। तालाब, कुएं, बोरवेल, ट्यूबवेल सूखे हैं। पीने का पानी नहीं है। ये बहुत बड़ा संकट है और विडंबना ये है कि ये आदमी का बनाया संकट है। जहां खूब पानी बरसता है,वहां भी ये मानवनिर्मित संकट दिन ब दिन बढ़ता जा रहा है।

प्रश्न 4 – कई बार बड़े बुजुर्ग कहते थे कि ऐसा भी जमाना आएगा जब पानी भी बिकने लगेगा और देखते-देखते यह भयावह विचार असलियत बन गया। समाज ने इस असलियत को स्वीकार भी कर लिया। अब हालात ऐसे हैं कि जिसकी जेब में पैसा है, वो बोतलबंद पानी खरीद लेता है और जिसके पास नहीं है, वो अपनी प्यास के साथ संघर्ष करने को मजबूर है। क्या बोतलबंद पानी का विचार आप सही मानते हैं?

उत्तर – मेरे बचपन में पानी बिकना, दूध बिकना बहुत बुरा माना जाता था। लेकिन अब तो सब जगह जल की बोतल पहुंच गई है। जल का निजीकरण, व्यापारीकरण, बाजारीकरण ने भारत को बेपानी बनाया है। भारत जैसे देश में जब तक जल को जीवन, जीविका और जमीर मानकर लोगों ने उसका प्रबंधन किया था, तब तक सब जगह जल उपलब्ध था और गरीब से गरीब इंसान को भी जीने और पीने के लिए पानी मिल जाता था। लेकिन अब रेलवे स्टेशन, नगर निगम, और पंचायतें जो शुद्ध जल पिलाती थी, उनमें भी अब गंदा जल मिलाकर उसे पीने लायक छोड़ा नहीं है, क्योंकि सब जगह पानी की बोतल पहुंचाना है। पानी के बाजार से जीडीपी बढ़ती है, ये सरकार का मानना है। ये पानी का बाजार हमारे लिए बहुत भयानक है। इससे बचना चाहिए। ये हमारे जीवन के लिए ठीक नहीं है।

प्रश्न 5 – जल का वस्तुकरण पूंजीवादी सभ्यता का सच है या असर है या मजबूरी है। आप क्या मानते हैं?

उत्तर – जल का निजीकरण, बाजारीकरण पूंजीवादी सभ्यता का सच है। ये सभ्यता हमारे लिए मजबूरी बनती जा रही है। इस मजबूरी से बहुत सारे लोग जगह से बाहर निकल आए हैं। जैसे हम कह सकते हैं कि हमने राजस्थान में 10800 वर्गकिमी की जमीन पर पानी का बाजारीकरण नहीं होने दिया। जहां-जहां सामुदायिक विकेन्द्रीकृत जलप्रबंधन हुआ है, वहां पानी का बाजारीकरण मिट गया है। आज गांधीजी होते तो जैसे उन्होंने मैनचेस्टर कंपनी की लूट को रोकने के लिए चरखे का विकल्प दिया था। उसी तरह वो हमारे सामुदायिक विकेन्द्रीकृत जलप्रबंधन का मॉडल

तालाब और हर घर में पेयजल हमें उपलब्ध कराते। बाजार के चंगुल में फंसे पेयजल की मुक्ति ही हमारे लिए सबसे जरूरी है।

प्रश्न 6 – कई देशों में नदियों का निजीकरण हो रहा है। चिली जैसे देश में खुलेआम तो कई जगह पर चोरी-छिपे। भारत में कानूनन तो नदी को निजी संपत्ति के तौर पर खरीदा या बेचा नहीं जा सकता, लेकिन कई ऐसे प्रकरण हुए हैं, जहां नदी के जल को निजी लाभ के लिए किसी उद्योगपति को दे दिया गया। जबकि भारत में सर्वोच्च न्यायालय ने एम सी मेहता बनाम भारत संघ के मामले में कहा है कि राज्य, उन सभी प्राकृतिक संसाधनों का ट्रस्टी है जो प्रकृति में सार्वजनिक उपयोग और आनंद के लिए हैं। बड़े पैमाने पर जनता समुद्र के किनारे, बहते पानी, हवा, जंगल और पारिस्थितिक रूप से संवेदनशील भूमि का लाभार्थी है। एक ट्रस्टी के रूप में राज्य प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा के लिए कानूनी रूप से बाध्य है। क्या आप मानते हैं कि भारत में सरकारें ट्रस्टी के तौर पर प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करने में सफल रही हैं?

उत्तर – हां नदियों का निजीकरण हो रहा है। शिवनाथ नदी का निजीकरण दुर्ग जिले में हुआ था। देशबन्धु जैसे अखबार की जागरुकता दिखाई और उसका विरोध किया था और दुर्ग जिले की शिवनाथ नदी इस निजीकरण से बाहर निकल आई। दरअसल ये जो उद्योगपति हैं, वो हमारे पेयजल, हमारी पवित्र नदियों के जल को उद्योगों की गंदगी से खराब कर रहे हैं। नदी की गंदगी का वैसा ही असर होता है, जैसे दूध से भरे हुए मटके में हम थोड़ा सा जामन डाल देते हैं और पूरा दही जम जाता है। उसी तरह अगर हम नदी के स्वच्छ जल में उद्योगों का गंदा पानी मिलाते हैं। तो सारी नदी गंदी हो जाती है। लेकिन इसको रोकने का जो प्रयास होना चाहिए, वो नहीं हुआ है। सर्वोच्च न्यायालय ने समय समय पर कोशिश की है, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय की भी कौन सुनता है। इसलिए हमारे हालात दिन ब दिन बिगड़ रहे हैं। आज सार्वजनिक उपयोग के लिए, आनंद के लिए जल नहीं बचा है। सब प्राकृतिक संसाधनों का मालिक राज्य नहीं होता है, वो ट्रस्टी होता है और लोकतंत्र में लोक के कल्याण के लिए उसका तंत्र काम करता है। लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है। समुद्र, नदिया गंदे हो रहे हैं। जलवायु परिवर्तन का संकट बढ़ गया है। इसके कारण धरती को बुखार चढ़ गया है। मौसम का मिजाज बिगड़ गया है। पारिस्थितिकी बदलने के कारण अब किसानों को पता ही नहीं चलता कि बारिश कब होगी, कब नहीं होगी।

ये जो हमारे हालात बिगड़े हैं, इनको नहीं सुधारा तो हमारे लिए 21 वीं शताब्दी जलवायु परिवर्तन की शरणार्थी बनाने वाली बन जाएगी। इसलिए प्राकृतिक संसाधनों की ट्रस्टी सरकारें इसकी रक्षा के लिए कानूनन जिम्मेदार हैं। उन्हें ऐसा करना चाहिए। जलवायु परिवर्तन के जोखिम या अन्न और जल की सुरक्षा होती रहे, सरकार को ये जिम्मेदारी निभानी चाहिए।

प्रश्न 7 – संयुक्त राष्ट्र की संस्था यूनेस्को की रिपोर्ट के अनुसार साल 2025 तक भारत में पानी की समस्या बहुत ज्यादा बढ़ जाएगी। समग्र जल प्रबंधन सूचकांक (सीडब्ल्यूएमआई) की रिपोर्ट के मुताबिक वर्तमान में भारत के प्रमुख 21 शहरों में लगभग 10 करोड़ लोग पानी की भीषण समस्या से जूझ रहे हैं। देश में साल 1994 में पानी की उपलब्धता प्रति व्यक्ति 6 हजार घन मीटर थी जो साल 2025 तक घटकर 1600 घन मीटर रह जाने की संभावना जताई गई है। आप इस समस्या को किस तरह देखते हैं और इसका उपाय क्या है?

उत्तर – संयुक्त राष्ट्र संघ के अनुसार वर्ष 2025 पीने के पानी की समस्या बढ़ जाएगी। लेकिन ये समस्या तो पहले ही बढ़ गई है। पिछले 9 सालों में 127 देशों की यात्रा में मैंने देखा है कि कैसे लोग बेपानी होकर लाचार, बेकार, बीमार होकर उजड़ते हैं और जलवायु परिवर्तन के शरणार्थी बन रहे हैं। ये हमारे भविष्य के लिए तीसरे जलविश्वयुद्ध को बुलावा है। पहले के दो विश्वयुद्धों में आमने सामने का टकराव था। अब तीसरा युद्ध आमने सामने नहीं पूरी धरती पर फैलकर होगा। बिगड़ते हालात को ठीक करना है तो हमें ये समझना होगा कि जल की उपलब्धता का घटना और बढ़ती आबादी की समस्या जटिल है। इससे बचने के लिए हम सबको मिलकर अपनी सरकारों को ये बात समझानी होगी कि भारत जैसे घनी जनसंख्या वाले देश में सामुदायिक विकेन्द्रीकृत जलप्रबंधन नहीं किया तो अभी से संकट बढ़ेगा।

प्रश्न 8 – जल शक्ति मंत्रालय ने अप्रैल 2023 में भारत की पहली जल निकायों की जनगणना की रिपोर्ट जारी की है, जो देश में तालाबों, टैंकों, झीलों और जलाशयों का एक व्यापक डेटा बेस है। क्या इस तरह की पहल से जलसंकट का समाधान निकालने में मदद मिलेगी या ये सिर्फ एक सरकारी पहलकदमी बनकर रह जाएगी?

उत्तर – जल शक्ति मंत्रालय ने ये जो डेटा तैयार किया है, वो कहने के लिए अच्छी पहलकदमी हो सकती है। लेकिन ये केवल दिखावा है अगर सब डेटा और

नक्शे हैं, तो क्यों नहीं जलसंरचनाओं को पहचान कर सीमांकन और चिह्नीकरण करके उन्हें राजपत्रित किया जाए, जिससे उन पर कब्जे रुक जाए और लोग उन्हें ठीक करने लगे। इसके लिए न बजट की जरूरत है, न पैसे की। ये तो सरकार का कर्तव्य है कि जलाशयों की भूमि का पहचान किया जाए उसी से इन जलसंरचनाओं का अतिक्रमण रुकेगा। और लोग पानी को दूषित करने वालों, बेचने वालों और प्रदूषण करने वालों के खिलाफ लोग लड़ सकेंगे।

प्रश्न 9 – तरुण भारत संघ में पानी और वन संरक्षण पर आपने काफी काम किया है। देश-विदेश में जलसंरक्षण के काम को नजदीक से देखा है। और पानी बचाने के लिए आम लोगों को अपनी मुहिम से जोड़ा भी है। आपने एक जगह कहा है कि जो भी जीवन चलाने वाला साधन है-नदी है, जंगल है, गोचर भूमि है, उस पर अपना हक बनाए रखें। उसके लिए कितना भी संघर्ष करना पड़े, पीछे न हटें। आपके इस आह्वान पर लोगों ने साथ भी खूब दिया है। तो क्या ऐसा कोई खास अनुभव है, इस संघर्ष यात्रा का जो आप हमारे पाठकों के साथ बांटना चाहेंगे।

उत्तर – पानी के लिए काम करते हुए पिछले 42 सालों के बहुत अनुभव है। तरुण भारत संघ में हम लोगों ने पानी की लूट करने वाली कंपनियों को बाहर भगाया, कंपनी लगने नहीं दी। मैं राजस्थान का अनुभव बताता हूं। करौली, धौलपुर, दौसा, सवाई माधोपुर चंबल नदी के दानक्षेत्र, घाटियों में लोग पानी से लाचार होकर बंदूक उठाकर मरने और मारने का काम करते थे। डरते और डराते थे। लाचारी, बेकारी, बीमारी और फरारी उनके जीवन में थी। जिसको जीवन कहते हैं, वैसा जीवन नहीं जी सकते थे। सरकारें उनको डकैत कहती हैं। वो डकैत नहीं थे। डकैत तो आजकल दिल्ली-बंबई में रहते हैं। ये लोग तो अपनी मेहनत करके जब तक पानी था, खेती करते थे, पशु चराते थे, जंगलों पर बसर करते थे। अब जंगल कम हुए, पानी की कमी आ गई तो मवेशी नहीं रख सकते। इसलिए इन्होंने बंदूकें उठाईं। मुझे इनकी ये मजबूरी 35 साल पहले ही समझ आ गई थी. तरुण भारत संघ की एक बड़ी टीम इनके साथ चुपचाप काम करने के लिए लगाई और 35 सालों में इनके इलाकों में हजारों तालाब बनाए। एक नदी की कहानी बताऊं सिवनी नदी में 3 सौ से अधिक जलसंरचनाएं बनाईं। और अभी सिवनी नदी बहने लगी. किनारे के लोग वापस आ गए, खेती करने लगे। इस अनुभव से मैंने सीखा कि जब नदियां सूखती हैं तो सभ्यताएं मर जाती हैं और जब नदियां पुनर्जीवित होती हैं तो फिर वहां की

सभ्यताएं पुनर्जीवित हो जाती हैं। इनके जीवन की लाचारी मिट गई। इस काम में महिलाओं ने खूब योगदान दिया। भगवती नाम की महिला ने 1994 में अपने इलाके में मुझे पहली बार बुलाया था, मैं वहां गया और मैंने इनके खेतों पर पानी का काम किया. जिसके बाद एक दिन भगवती ने अपने पति को बुलाया, मेरे हाथों से अपने पति को साफा और वस्त्र भेंट कराए, उससे बहुत भावुक होकर वो बोला कि भई इस रिवाल्वर के कारण अपनी पत्नी के लिए मैं अब तक कोई कपड़ा नहीं ले पाया, लेकिन मेरी पत्नी ने मेहनत से खेती करके कमाई की और मेरे लिए कपड़े लेकर आई। तो मैं ये रिवाल्वर क्यों रखूं अब मैं खेती करुंगा और वो खेती में लग गया। पुलिस, अदालत सबके पास उसके चक्कर लगते थे, लेकिन मैंने उन्हें समझा दिया कि ये आदमी गलत काम नहीं करेगा, तो उन्होंने भी संवेदनशीलता से 9 महीनों में सारे मुकदमे निपटा दिए, उस पर 42 मुकदमे थे। उसने फिर नयी जिंदगी शुरु की। तो ये अकेला नहीं था, इसके बाद बहुत से लोग ऐसे आए। कम से कम 25 सौ ऐसे लोग अपने गांव में फिर से खेती, पशुपालन करते हैं। आनंद से जीवन जीते हैं, ये आनंद जल से ही आता है। दूसरों को और भी चीजों से आनंद आता होगा, मेरे जीवन में तो जल से आनंद आया। सामुदायिक विकेन्द्रीकृत जलप्रबंधन हुआ, वहां लोगों ने अपने आप को बदल लिया। तरुण भारत संघ में काम करते हुए 42 सालों में ऐसी सैकड़ो हजारों कहानियां मेरे साथ घटी हैं, ये एक कहानी आपके पाठकों के लिए बताई है।

प्रश्न 10 – जलसंरक्षण के लिए आपके सुदीर्घ संघर्ष और योगदान के कारण देश-विदेश में आपकी पहचान बनी। मैगसेसे और स्टॉकहोम जल पुरस्कार जैसे सम्मानों से नवाजा गया। आपको जलपुरुष कहा जाता है, जो एक अनूठी संज्ञा है। बतौर जलपुरुष आपका पानी बचाने के लिए क्या संदेश और सुझाव समाज को है?

उत्तर – जिनके मन में जीने की चाह है उन्हें जल बचाना ही होगा। प्रकृति से जितना जल हम लेते हैं। बादल से निकली हर बूंद को हम पकड़ के धरती माता का पेट भरे। तभी धरती माता हमारा पेट भरेगी।

तो जीने की चाह लिए हम जल बचाएं और पानी की बूंदों को सहेजें. यही मेरा संदेश है।

❑ ❑ ❑

लेखिका/लेखकों के नाम, ई-मेल व मोबाइल नम्बर

क्र.सं.	लेखिका/लेखक का नाम	ई-मेल आई डी	मोबाइल नंबर
1.	शंकर सिंह	shankarsingh68@gmail.com	9868549118
2.	अभय राज सिंह	abhyarajsingh79@gmail.com	9935020196, 7905115359
3.	संदीप भट्ट	mculect.sandeep@gmail.com	9754870534
4.	विनय कुमार शर्मा	dr.vinaysharma123@gmail.com	9415578129
5.	विकास यादव	vikas.yadav7069@icloud.com	
6.	राहुल तिवारी	rahuldocu7@gmail.com	9450486866, 8303884814
7.	सर्वेश कुमार	kumarsarvesh789@gmail.com	9772305191, 7877581100
8.	जितेन्द्र कुमार सरोज	jksaroj89@gmail.com	8932985139, 9453618973
9.	भवेश सक्सेना 'दिलशाद'	bhavesh.dilshaad@gmail.com	9560092330
10.	रमेश कुमार एवं अनु	anutehlan628@gmail.com	8607295418
11.	सुप्रिया पाठक	womenstudieswardha@gmail.com supriya_rajj@yahoo.co.in	9850200918
12.	वरुण कुमार	yahookkv@gmail.com	9312179624
13.	रजनी गोसाईं	rajnigosain3@gmail.com	9968290203, 8851529558
14.	भुवन्या रंजन	rbhuvanya27@gmail.com	8700427573
15.	सुनील कुमार सुधांशु	sunilsudhanshu.du@gmail.com	8383804523

क्र.सं.	लेखिका/लेखक का नाम	ई-मेल आई डी	मोबाइल नंबर
16.	ज्ञानवती धाकड़	gyaanwatidhaker@yahoo.com	9414051684
17.	सुदर्शन वर्मा	drsudarshanvermabbau@gmail.com	9415470836
18.	उर्मिला	shankarsingh68@gmail.com	
19.	कन्हैया त्रिपाठी	hindswaraj2009@gmail.com	9818759757
20.	सुमिता मुद्गल	sumimudgal@gmail.com	
21.	पिंकी तुलसीदास चंदवानी	bhavu27284@gmail.com	
22.	शरद कुमार यादव	sarad.yadav@sbse.du.ac.in	
23.	अपर्णा तिवारी	tiwariaparna509@gmail.com	9873671891
24.	वन्दना यादव	vandanajnu.yadav@gmail.com	9660140849
25.	प्रदीप कुमार	p1b2ali@gmail.com	8178973669
26.	सुमन देवी शर्मा	sumansharma25121988@gmail.com	
27.	अमित कुमार विश्वास	amitbishwas2004@gmail.com	9970244359
28.	ओम प्रकाश	omprakash.36@delhi.gov.in	
29.	नरेश कुमार जितेंद्र कुमार	nareshktyagi18@gmail.com jeetendra.kumar@sbse.du.ac.in	9873899986, 9868903134
30.	नीलमणि शर्मा	neelnisheeth@gmail.com	9311125737
31.	ओम निश्चल	dromnishchal@gmail.com	9810042770
32.	रितु श्रीवास्तव	reet.srivas@gmail.com	9891090232
33.	प्रियंका पुरोहित	priyankapurohit642@gmail.com	8739831001

क्र.सं.	लेखिका/लेखक का नाम	ई-मेल आई डी	मोबाइल नंबर
34.	मणिबेन पटेल	maniben1986@gmail.com	8383805299
35.	तजिन्दर एस. लूथरा	tajendraluthra@gmail.com	9891400008
36.	लक्ष्मी अग्रवाल	meghamyself@gmail.com	7838815582
37.	नीलम चतुर्वेदी	neelam.chaturvedi0412@gmail.com	7042151049
38.	मुकुल अमलास	mkosho83@gmail.com	8208691805

ॐ सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद्दुः खभाग्भवेत्।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।

Website
www.nhrc.nic.in

@India_NHRC

Complaint
011-24651330/24663333

ISSN 0973-7588

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
मानव अधिकार भवन
ब्लॉक-सी, जीपीओ कॉम्प्लेक्स, आईएनए,
नई दिल्ली, 110023
भारत

National Human Rights Commission
Manav Adhikar Bhawan
C-Block, GPO Complex, INA,
New Delhi-110023
India